टेढ़े-मेढ़े रास्ते

ٹیڑھے میڑھے راستے

लेखक

भगवतीचरण वर्मा

A bad novel in our college

ग्रंथ-संख्या—११३

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

द्वितीय-संस्करण
सं० २००५ वि०
मूल्य ७)

मुद्रक—
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

पहला परिच्छेद

१

दिन और तारीख याद नहीं, और उन्हें याद रखने की कोई आवश्यकता भी नहीं, बात सन् १९३० के मई मास के तीसरे सप्ताह की है।

गरमी ने एकाएक भयानक रूप धारण कर लिया था और थरमामीटर ने बतलाया था कि दिन का टेम्परेचर ११५ तक पहुँच गया है। लू के प्रचंड झोंके चल रहे थे और उन्नाव शहर की सड़कों पर सन्नाटा था। लोगों को घर के बाहर निकलने का साहस न होता था; सूर्य के प्रखर प्रकाश से आंखें झुलसी जाती थीं। उस समय दोपहर के दो बज रहे थे।

पण्डित रामनाथ तिवारी अपने कमरे में सोए हुए थे। दरवाजों पर खस की टट्टियां लगी थीं, जिन पर नौकर हर आध घण्टे बाद पानी छिड़क देता था। पंखा चल रहा था।

पंखा-कुली बाहर बरामदे में बैठा हुआ लू के थपेड़े खा रहा था और पंखा खींच रहा था। तीन घण्टे तक लगातार पंखा खींचने के बाद उसे कुछ थकावट मालूम हुई, और उस थकावट पर लू के झुलसा देनेवाले थपेड़े भी विजय न पा सके। उसकी आंखें धीरे-धीरे झपने लगीं और हाथ धीरे-धीरे धीमा पड़ने लगा। आंखें झपते-झपते बन्द हो गईं, हाथ धीमा पड़ते-पड़ते रुक गया; और पंखा-कुली सपना देखने लगा।

पंखा बन्द हो गया और रामनाथ तिवारी की मीठी नींद टूट गई। उन्होंने जोर से आवाज लगाई, "अबे ओ कलुआ के बच्चे—सोने लगा! साले—मारे हंटरों के खाल उधेड़ दूंगा।"

पण्डित रामनाथ का इतना कहना था कि पंखा-कुली चौंक पड़ा। उसने अपनी आंखें खोल दीं और उसका हाथ फिर मशीन की भांति चलने लगा।

पण्डित रामनाथ ने करवट बदली, पर उन्हें नींद न आई। लेटे ही लेटे उन्होंने सिरहाने रक्खे चांदी के गिलौरीदान से पान खाया, उसके बाद उन्होंने घड़ी देखी । अभी केवल दो बजे थे—केवल दो; और उन्हें कचहरी करनी थी पांच बजे शाम को । तिवारीजी उठ कर बैठ गए। उन्होंने आवाज़ दी, "कोई है ?"

"हां सरकार !" कहता हुआ उनका निजी खिदमतगार रामदीन बगलवाले दालान से निकल कर उनके सामने खड़ा हो गया।

"वह खिड़की खोल दो !" तिवारीजी ने कोनेवाली खिड़की की ओर इशारा किया । रामदीन ने खिड़की खोल दी, उसके बाद वह फिर अपने दालान में चला गया।

तिवारीजी ने मेज़ पर निगाह डाली, उस दिन की डाक पड़ी थी। चश्मे के केस से चश्मा निकाल कर लगाते हुए उन्होंने डाक का गड उठा लिया और एक बार आदि से अन्त तक वे डाक को उलट-पुलट गए । दो पत्र उन्होंने व्यग्रता के साथ निकाले, एक पर 'आन हिज मैजेस्टीज़ सर्विस' लिखा था और दूसरे के पते पर उमानाथ के हाथ की लिखावट थी । कुछ देर तक यह सोचकर कि पहले कौन-सा पत्र खोला जाय, उन्होंने उमानाथ का पत्र खोला।

उमानाथ तिवारीजी का मझला लड़का था । बड़े का नाम था दयानाथ और छोटे का प्रभानाथ । दयानाथ कानपुर में वकालत कर रहा था और प्रभानाथ इलाहाबाद से एम० ए० की परीक्षा देकर घर आ गया था । दो-एक दिन में उसकी परीक्षा का फल भी आनेवाला था। उमानाथ दो साल हुए औद्योगिक शिक्षा के लिए जर्मनी गया था । उसका पत्र जापान से आया था, जिसमें उसने लिखा था कि वह जून के दूसरे सप्ताह में कलकत्ता में पदार्पण करेगा।

पत्र पढ़ कर रामनाथ मुस्कराए। एक क्षण के लिए उमानाथ की मूर्ति उनकी आंखों के आगे आ गई। वे उमानाथ पर और भी कुछ सोचना चाहते

थे, पर इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली, क्योंकि सरकारी पत्र आंख फाड़ कर उन्हें देख रहा था । उस पत्र को उन्होंने खोला।

उस पत्र को पढ़कर रामनाथ की मुस्कराहट लोप हो गई और उनका मुख गम्भीर हो गया। उन्होंने उस पत्र को तीन बार पढ़ा और प्रत्येक बार उनके मुख की गम्भीरता बढ़ती ही गई । वह पत्र कलक्टर का था, जिसमें कलक्टर ने लिखा था कि रामनाथ के बड़े लड़के दयानाथ ने कांग्रेस ज्वाइन कर लिया है और सरगर्मी के साथ कांग्रेस की गैर-कानूनी कारंवाइयों में हिस्सा ले रहा है । साथ ही रामनाथ से यह भी कहा गया था कि सरकार रामनाथ के लिहाज से अभी तक दयानाथ के खिलाफ़ कारंवाई करने से रुकी हुई है । कलक्टर साहेब ने यह आशा प्रकट की थी कि रामनाथ अपने बड़े पुत्र दयानाथ को गलत मार्ग पर चलने से रोकेंगे।

तिवारीजी ने पत्र मेज पर रख दिया, तकिया के सहारे बैठ कर वे सोचने लगे । जितना सोचते थे, विचार उतने ही उलझते जाते थे, और अन्त में उन विचारों से ऊब कर उन्होंने फिर पान खाया । इसके बाद उन्होंने घड़ी देखी—साढ़े तीन बजे थे ।

वे लेट गए और फिर सोचने लगे। जिस समय आंख खुली , साढ़े पांच बज रहे थे।

२

पण्डित रामनाथ तिवारी अवध के एक छोटे-से ताल्लुकेदार थे । अपनी रियासत बानापुर में न रह कर वे प्रायः उन्नाव में रहते थे और उसके कारण थे । तिवारीजी सभ्य तथा सुसंस्कृत पुरुष थे, उन्हें सभ्य तथा पढ़े-लिखे लोगों का ही साथ पसन्द था। ग्रामीण जीवन में विद्वानों के संसर्ग का अभाव था। इस अभाव को उन्होंने उन्नाव आकर दूर किया था। यद्यपि उन्नाव छोटा-सा कस्बा था, पर जिला का सदर होने के कारण वहां कलक्टर, डिप्टी कलक्टर आदि पढ़े-लिखे अफ़सर रहते थे।

दूसरा कारण था तिवारीजी का दयालु होना। किसानों की हालत वैसे कहीं भी अच्छी नहीं है, पर अवध के किसानों की हालत तो बहुत अधिक करुणाजनक है । ये किसान अपनी-अपनी फरियादें लेकर राजा साहब, अर्थात् तिवारीजी के पास आते थे; और इनकी शिकायतों को दूर करना तिवारी-जी अपना कर्तव्य समझते थे । पर शियकायतों को दूर करने के अर्थ प्रायः हुआ करते थे राज्य को, अर्थात् तिवारीजी को आर्थिक हानि। इस आर्थिक हानि से बचने के लिए किसानों को ज़िलेदार सरबराहकार और मैनेजर से निपटने के लिए उनके भाग्य पर छोड़ कर तिवारीजी उन्नाव में आ बसे थे।

तिवारीजी आनरेरी मजिस्ट्रेट थे और किसी का नौकर न होने के कारण अपनी अदालत वे अपने बँगले में ही करते थे। इसमें सरकार को भी कोई आपत्ति न थी, क्योंकि यदि तिवारीजी अपने बँगले में अदालत न करते तो सरकार को कोई इमारत किराए पर लेनी पड़ती और इसमें उसका खर्च होता।

किसी का नौकर न होने के कारण तिवारीजी की अदालत का समय भी अनिश्चित था। अदालतों का समय प्रायः दस बजे हुआ करता है। हर एक सम्मन पर यही वक्त दिया होता है और देहात से आने वाले लोगों को ठीक दस बजे अदालत में हाज़िर होना पड़ता है।

तिवारीजी के बँगले के सामनेवाले मैदान में नीम के पेड़ के नीचे मुकदमों में आए हुए लोगों की भीड़ एक बजे से तिवारीजी के दर्शनों का इंतज़ार कर रही थी। कुछ अपने मुकदमों की बातें कर रहे थे, कुछ भयानक गरमी और उससे भी भयानक लू, पर, जिससे उसी दिन तीन आदमी मर चुके थे, टीका-टिप्पणी कर रहे थे और कुछ दबी ज़बान तिवारीजी को गालियां दे रहे थे । तिवारीजी की लाइब्रेरी के कमरे में जो दोपहर बारह बजे से छः बजे शाम तक अदालत का कमरा कहलाता था, पेशकार उस दिन पेश होनेवाले मुकदमों की मिसलों को उलट-पुलट रहा था । उसके इर्द-गिर्द खड़े हुए वकीलों के मुहर्रिर पेशकार साहब की रुपये और अठन्नी से पूजा कर रहे थे ।

५

ठीक छः बजे तिवारीजी अदालत के कमरे में आए। चपरासी खुदा-बख्श से उन्होंने कहा, "सत्यनारायण से बोलो कि वह मेरी मोटर लावे!" और फिर उन्होंने पेशकार से कहा, "आज के सब मुकदमे मुलतवी कर दो, मेरी तबीअत ठीक नहीं, अभी कानपुर जाना है।"

कार कमरे के सामने लग गई। सत्यनारायण ड्राइवर ने आकर सूचना दी। तिवारीजी ने कुछ सोच कर बाहर चलते हुए कहा, "तुम्हें मेरे साथ नहीं चलना है—देखो प्रभा तैयार हो गया?"

"सरकार, छोटे कुंवर तो मोटर पर बैठे आपका इंतज़ार कर रहे हैं!"

"ठीक! प्रभा ड्राइव कर लेगा, तुम्हारी आज की छुट्टी है!" और तिवारीजी कार पर बैठ गए।

प्रभानाथ स्टियरिंग ह्वील पर बैठा था और रामनाथ पिछली सीट पर बैठे नहीं, लेटे थे। उस समय उनका मुख गम्भीर था और उनके मस्तक पर बल पड़े हुए थे। उन्नाव से कानपुर का फ़ासिला केवल ग्यारह मील का है, पर पण्डित रामनाथ तिवारी को वह फ़ासिला ग्यारह सौ मील का मालूम हो रहा था। आंखें खोल कर उन्होंने सड़कों की ओर देखा, सड़क पर लगे हुए मील के पत्थर ने उन्हें बतलाया कि वे अभी केवल दो मील आए हैं। झल्ला कर उन्होंने कहा, "कितना धीमे चल रहे हो प्रभा! तेज़ चलो, मुझे जल्दी है!"

प्रभानाथ ने स्पीडोमीटर की ओर देखा, सुई चालीस पर थी। उसने कार की रफ्तार और तेज़ की, सुई साठ पर पहुंच गई। रामनाथ ने ठंडी सांस ली और फिर आंखें बन्द कर लीं।

इस तरह आंखें बन्द किए हुए वे करीब दो-तीन मिनट बैठे रहे कि एक झटके से चौंक उठे। "कितना आए हैं?" उन्होंने अपने चारों तरफ़ देखते हुए पूछा।

"पांच मील!" प्रभानाथ मुस्कराया, "दद्दुआ क्या बात है जो आप इतने व्यग्र हो रहे हैं?"

रामनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। यद्यपि प्रभानाथ का मुंह सामने था

और रामनाथ उसे न देख सकते थे, पर फिर भी रामनाथ को मालूम हो गया कि प्रभानाथ मुस्करा रहा है—और शायद उन पर। पुत्र की इस बात पर रामनाथ को हलकी सी झुंझलाहट आई, और उनका मौन उनकी झुंझलाहट का द्योतक था।

प्रभानाथ ने बात बदली। "दद्दुआ, साठ मील फ़ी घण्टा की रफ़्तार से गाड़ी दौड़ रही है; अभी उन्नाव छोड़े कुल सात-आठ मिनट हुए होंगे!"

"ऐं! साठ मील फ़ी घण्टा!" कहते हुए पण्डित रामनाथ ने अपनी सोने की जेब घड़ी देखी, "अरे—कुल छः मिनट! गाड़ी धीमी करो प्रभा!"

लेकिन प्रभानाथ ने गाड़ी धीमी करने के स्थान पर और तेज़ कर दी—स्पीडोमीटर अब सत्तर दिखला रहा था। पर रामनाथ ने गाड़ी की इस तेज़ी पर कोई ध्यान नहीं दिया, अपनी बात कह कर वह फिर सोचने लगे थे।

गंगा के पुल के पासवाले सड़क के मोड़ पर गाड़ी धीमी करते हुए प्रभानाथ ने कहा, "दद्दुआ—कहां चलें? बड़के भैया के यहां?"

रामनाथ चौंक उठे, वे तन कर बैठ गए। फिर उन्होंने अपने चारों ओर देखा। बांई ओर गंगा बह रही थीं और सामने करीब दो सौ गज की दूरी पर गंगा का पुल था। उन्होंने कहा, "दया के यहां, सीधे और जल्दी से जल्दी! समझे!"

दयानाथ का बंगला सिविल लाइन्स में था और वे मशहूर आदमी थे। प्रभानाथ ने देखा कि दयानाथ के बंगले की बरसाती के नीचे तीन-चार कारें खड़ी हैं, इसलिए अपनी कार उसे पोर्टिको से कुछ दूर हट कर लगानी पड़ी। रामनाथ ने कहा, "दया को यहीं बुला लाओ!"

प्रभानाथ गाड़ी से उतर कर बंगले की ओर बढ़ा। वह करीब दस कदम ही गया होगा कि रामनाथ ने आवाज़ दी, "नहीं—मैं खुद चलूंगा—ठहरो! तुम मेरे साथ-साथ मेरे पीछे रहोगे।" इतना कह कर रामनाथ कार से उतर पड़े।

दयानाथ के ड्राइंग-रूम में नगर के प्रमुख कांग्रेसमैनों की बैठक हो रही

थी। कमरे के बाहर एक स्वयंसेवक स्टूल पर बैठा हुआ, 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा!' गाने की पहिली पंक्ति बड़ी तन्मयता के साथ गा रहा था।

स्वयंसेवक ने स्टूल पर बैठे ही बैठे कहा, "वकील साहेब से इस समय मुलाकात नहीं हो सकती, कांग्रेस की बैठक हो रही है!"

स्वयंसेवक की बात पर ध्यान न देकर पण्डित रामनाथ तिवारी तेजी के साथ दरवाजे की ओर बढ़े। स्वयंसेवक उठ खड़ा हुआ, अपने डण्डे को उसने दरवाजे से लगा कर कहा, "आप भीतर नहीं जा सकते। मैंने कहा न कि सभा हो रही है।"

पण्डित रामनाथ तिवारी की आंखों में खून उतर आया। एक टुकड़खोर स्वयंसेवक की यह हिम्मत कि वह बानापुर के ताल्लुकेदार पण्डित रामनाथ तिवारी को उनके लड़के के मकान में जाने से रोके! उन्होंने उसी समय एक तमाचा स्वयंसेवक को मारा।

स्वयंसेवक पचीस वर्ष का एक नवयुवक था। पर पैंसठ वर्ष के वृद्ध पण्डित रामनाथ तिवारी का तमाचा खा कर उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और वह ज़मीन पर बैठ गया। रामनाथ तिवारी ने महान् उग्र रूप धारण करके ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया। प्रभानाथ उसके पीछे था।

२

दयानाथ के ड्राइंग-रूम में दस आदमी थे, सभी कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता।

नमक-सत्याग्रह आरम्भ होने से दो महीने तक सरकार चुपचाप सब कुछ देखती रही थी, पर अब सरकार ने भी गिरफ्तारियां आरम्भ कर दी थीं। इधर कांग्रेस ने भी सरगर्मी के साथ अपना युद्ध-मोरचा जमा रक्खा था—जोरों के साथ काम चल रहा था।

सन् १९३० के आन्दोलन में एक खास बात यह थी कि देश के व्यापारियों ने कांग्रेस का बहुत साथ दिया था। यद्यपि जेल जानेवालों

में प्रमुख व्यापारियों की संख्या नगण्य-सी थी, पर उन्होंने धन से बहुत अधिक सहायता की थी। कानपुर उत्तर भारत का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है और इसलिए वहां भी कांग्रेस का बहुत बड़ा ज़ोर था। दयानाथ के यहां जो सभा हो रही थी, उसमें अमीर श्रेणीवाले भी काफ़ी तादाद में थे।

कमरे में रामनाथ के प्रवेश करने के साथ ही लोगों की बातचीत बन्द हो गई और सबों ने रामनाथ की ओर देखा। अपने पिता को देखते ही दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "अरे दद्दुआ!" और उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए!

रामनाथ ने दयानाथ को आशीर्वाद नहीं दिया, क्रोध से उनकी आंखें लाल थीं। उन्होंने एक बार गौर से उस कमरे में बैठे हुए समुदाय को देखा, फिर उन्होंने उन लोगों से कहा, "अपने उस बदतमीज़ टुकड़खोर वालण्टियर को, जिसे आप लोगों ने मेरा अपमान करने के लिए दरवाज़े पर बिठला रक्खा था, सँभालिए। देखिए, उसे कुछ चोट-ओट तो नहीं आ गई?"

उत्तर लाला रामकिशोर ने दिया, "आप दयानाथजी के पिता हैं और उनसे आप सब कुछ कह सकते हैं, लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि आप हम लोगों का अपमान क्यों कर रहे हैं!"

लाला रामकिशोर कानपुर के प्रमुख व्यापारी थे। उनकी चार मिलें थीं, और इनकमटैक्स तथा सुपरटैक्स में वे सरकार को इतना रुपया देते थे जितने की पण्डित रामनाथ तिवारी की निकासी थी। लाला रामकिशोर से पण्डित रामनाथ तिवारी भली भांति परिचित थे, वे ज़रा धीमे पड़े। एक खाली कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा, "लाला रामकिशोर, मैंने आप लोगों का अपमान किया या आप लोगों ने मेरा अपमान किया, यह तो वह स्वयंसेवक ही बतला सकता है, जिसको आपने दरवाज़े पर बिठला रक्खा था, लेकिन मैं इतना ज़रूर कहूंगा, खास तौर से आप से, कि आप-ऐसे शरीफ़ों के लिए यह फ़कीरों, बागियों और आवारों की संस्था कांग्रेस नहीं है। फिर भी अगर मैंने कोई सख्त बात कह दी हो तो माफ़ी मांगे लेता हूं।"

अपने पिता के इस व्यवहार के कारण दयानाथ लज्जा से गड़ा जा रहा था। इस बार उसके बोलने की बारी थी, "ददुआ, मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि एकाएक आप इस बुरी तरह अपनी मनुष्यता पर अपना अधिकार खो बैठेंगे। वह स्वयंसेवक आपको पहचानता नहीं था, यही उसका और हम लोगों का अपराध था।" कुछ रुककर उसने फिर कहा, "और मेरे अतिथियों का जो अपमान हुआ है, उसके लिए आपकी ओर से मैं उनसे माफ़ी मांगे लेता हूं। अब आप अन्दर चलें। जिस काम के लिए हम लोग एकत्रित हुए हैं, वह महत्व का है।"

रामनाथ को बिना कुछ कहने का अवसर दिए ही उसने अपने साथियों से कहा, "आप लोग कार्रवाई जारी रक्खें, मुझे अपने पिताजी से कुछ बातें करनी हैं, तब तक के लिए मैं क्षमा चाहूंगा।" और यह कह कर वह वहां से चल पड़ा।

पण्डित रामनाथ तिवारी चुपचाप उठ खड़े हुए। उनकी शिष्टता और उनकी अहम्मन्यता में उस समय एक भयानक द्वंद्व मचा हुआ था और उस द्वन्द्व के कारण वे बेसुध-से हो रहे थे। दयानाथ के साथ रामनाथ और प्रभानाथ ने दयानाथ के शयन-गृह में प्रवेश किया।

शयनगृह में दयानाथ की पत्नी राजेश्वरीदेवी खादी की धोती पहने हुए तकली पर सूत कात रही थीं। श्वसुर को देखते ही वे उठ खड़ी हुईं और उन्होंने घूंघट काढ़ लिया। इसके बाद उन्होंने रामनाथ के चरण छुए।

रामनाथ उस समय तक किसी हद तक सुव्यवस्थित हो गए थे। उन्होंने आशीर्वाद दिया, "सदा सौभाग्यवती रहो, फलो-फूलो।"

राजेश्वरीदेवी कमरे के बाहर चली गईं, और बरामदे में कमरे के दरवाजे से लगकर खड़ी हो गईं। रामनाथ ने प्रभानाथ की ओर देखा; प्रभानाथ ने अपनी मुस्कराहट दबाने का लाख प्रयत्न किया, पर रामनाथ ने उसकी मुस्कराहट देख ही ली। कड़े स्वर में तिवारीजी ने कहा, "तुम जाकर अपनी भावज से बातचीत करो—यहां रहने की कोई जरूरत नहीं।"

प्रभानाथ की मुस्कराहट का कारण था उसका कौतूहल। घर से वह इस आशा के साथ चला था कि वह अपने पिता और अपने बड़े भाई की मज़ेदार मुठभेड़ देखेगा। वह अपने पिता को जानता था, वह अपने बड़े भाई को भी अच्छी तरह जानता था। पिता पर उसको ममता थी, बड़े भाई के प्रति उसकी श्रद्धा थी। दोनों ही चरित्रवान् तथा अपने-अपने विश्वासों पर दृढ़ आदमी थे। दोनों में ही स्वामित्व का भाव प्रबल था, किसी से दबना दोनों में से एक ने भी नहीं जाना।

प्रभानाथ का मुंह उतर गया, एक मज़ेदार और दिलचस्प दृश्य को देखने से वह वंचित रह गया। सर झुकाए हुए वह बाहर निकला। वहां उसने अपनी भावज को देखा। राजेश्वरीदेवी ने होंठ पर उँगली लगा कर चुप रहने का इशारा किया, बेचारा प्रभानाथ वहां से भी निराश चल दिया। आंगन में वह पहुंचा--सामने रसोईघर में महाराज बाहर से आए हुए अतिथियों के लिए नाश्ता तैयार कर रहा था। प्रभानाथ को एकाएक याद हो आया कि उसे रामनाथ की आज्ञा से शाम की चाय छोड़ कर ही चला आना पड़ा था। नौकर से एक कुर्सी मंगवा कर उसने रसोईघर के सामने डलवा ली, और फिर बैठ कर वह चाय पर जुट गया।

प्रभानाथ के जाने के बाद थोड़ी देर तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। रामनाथ सोच रहे थे--किस प्रकार बात आरम्भ की जाय और दयानाथ रामनाथ की बात की प्रतीक्षा कर रहा था।

रामनाथ ने बात आरम्भ की, "तो देख रहा हूं कि तुम खद्दर-पोश हो गए हो!"

कुछ देर तक अपनी बात का जवाब पाने की प्रतीक्षा के बाद रामनाथ ने फिर कहा, "और सरगर्मी के साथ कांग्रेस का काम कर रहे हो।"

इस बार भी दयानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ का स्वर कड़ा हो गया, "बोलते क्यों नहीं? क्या गूंगे हो गए हो?"

"इसमें मेरे बोलने की क्या आवश्यकता? सब कुछ तो आप देख ही रहे हैं।" शान्त भाव से दयानाथ ने कहा।

दयानाथ के शान्त और दृढ़ स्वर ने रामनाथ को उत्तेजित कर दिया। "हां, सब कुछ देख रहा हूं और उससे भी अधिक सुन रहा हूं! जानते हो, तुम मेरे नाम को, मेरे कुल को कलंकित कर रहे हो!"

"मैंने तो इस सब में कलंक की कोई बात नहीं समझी—और न समझने को तैयार हूं!"

रामनाथ ने अपनी जेब से सरकारी पत्र निकाल कर दयानाथ के सामने फेंकते हुए कहा, "इस पत्र को देखते हो? इसके बारे में तुम्हें क्या कहना है?"

दयानाथ ने पत्र पढ़ा। कुछ सोचकर उसने कहा, "सरकार पुत्र के कामों की जिम्मेदारी पिता पर कैसे रख सकती है, और फिर उसने यही कैसे समझ लिया कि मेरी आत्मा पर आपका पूर्ण अधिकार है?"

रामनाथ इस उत्तर से चौंक पड़े। उन्होंने आश्चर्य से अपने पुत्र को देखा। दयानाथ की उम्र पैंतीस वर्ष की थी—वह कानपुर नगर के प्रमुख वकीलों में था। पर फिर भी रामनाथ की नजर में दयानाथ न पैंतीस वर्ष का आदमी था और न कानपुर का प्रमुख वकील था। रामनाथ की नजर में दयानाथ एक लड़का था—उनका लड़का था—जो उनके सामने नंगा घूमा, जो उनकी टेढ़ी नजर के सामने दबक जाता था, जिस पर उन्होंने हमेशा शासन ही किया था। अपने अधिकार की उपेक्षा पर पिता को एक धक्का-सा लगा। थोड़ी देर तक वे अवाक्, एकटक दयानाथ को देखते रहे।

और एकाएक मर्माहत पिता का स्थान अपमानित स्वामी ने ले लिया। रामनाथ तन कर खड़े हो गए। उनकी भृकुटियां खिच गईं, उनके स्वर में ममता के स्थान पर स्वामित्व की कठोरता आ गई, "अगर सरकार ने यह समझा कि तुम्हारी आत्मा पर मेरा पूर्ण अधिकार है तो उसने गलती नहीं की। मैं अपने अधिकार को अच्छी तरह जानता हूं, यह याद रखना।"

बात अधिक न बढ़े, दयानाथ ने इसलिए कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ ने फिर कहा, "मैं तुमसे कहने आया हूं कि तुम कांग्रेस छोड़ दो। जो मार्ग तुमने अपनाया है, वह गलत है, अकल्याणकारी है। तुम उस संस्था में शामिल हो रहे हो, जो तुम्हें ही नष्ट कर देने पर तुली हुई है।"

"मुझे नष्ट कर देने पर तुली हुई है?" दयानाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"हां, तुम्हें--मुझे--हम सब लोगों को। इतनी बड़ी और ताकतवर ब्रिटिश सरकार को मिटाने की सोचनेवाली संस्था हम जमींदारों को, हम रईसों को छोड़ देगी, यह समझना बहुत बड़ी मूर्खता है।"

दयानाथ ने कहा, "ददुआ, आप क्या कह रहे हैं? हमारी लड़ाई तो विदेशी सरकार से है--यह लड़ाई स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए है। क्या जमींदार और क्या किसान--हम सब गुलाम हैं। और कांग्रेस हम सब गुलामों की संस्था है, जिसका उद्देश्य देश को विदेशियों के शासन से मुक्त करना है।"

उपेक्षा की मुस्कराहट के साथ रामनाथ ने कहा, "तुमने इतना अध्ययन किया, तुमने वकालत पास की, लेकिन तुम्हें अक्ल नहीं आई। यह याद रखना कि गुलामी गुलामी ही है, चाहे वह विदेशियों की हो, चाहे वह अपने देश वालों की हो। विदेशियों की गुलामी से लोगों को छुड़ाने की कोशिश करने वाली संस्था देश-वासियों की गुलामी में लोगों को बंधे रहने देगी--क्या तुम्हें इस पर यकीन है?"

"शायद नहीं!" दयानाथ ने कहा।

"शायद नहीं--नहीं; निश्चय नहीं॥" रामनाथ हंस पड़े, "और इसीलिए मैं कहता हूं कि कांग्रेस को छोड़ दो। हम जमींदारों की भलाई कांग्रेस का साथ देने में नहीं है।" यह कहकर रामनाथ बैठ गए। उनके मुख पर विजय का गर्व था, उनके हृदय में सफलता का विश्वास था।

पर रामनाथ की यह प्रसन्नता क्षणिक थी। अभी तक दयानाथ कुछ दबा-सा बात कर रहा था, अब उसने सामना किया। अभी तक वह अपने पिता से बात कर रहा था, अब उसने अपने विपक्षी से बात शुरू की। उसने कुछ थोड़े-से गम्भीर स्वर में आरम्भ किया, "ददुआ, बात सिद्धान्त की

और इसलिए मेरी बात पर आप बुरा न मानियेगा। मैं कांग्रेस का साथ दे रहा हूँ अपनी गुलामी तोड़ने के लिए। आप का कहना यह है कि दूसरों को गुलाम बनाए रखने के लिए मैं गुलाम बना रहूँ; और मैं अपनी गुलामी तोड़ने पर यदि दूसरे मेरी गुलामी से दूर होते हैं तो उसमें कोई हर्ज नहीं समझता। दूसरों को नष्ट करने के लिए स्वयम् नष्ट होने में आपको विश्वास है, और आप चाहते हैं कि मैं भी इस बात पर विश्वास करूँ!"

रामनाथ ने अपने पुत्र को देखा और थोड़ी देर तक वे एक टक देखते रहे। फिर धीरे से उन्होंने कहा, "दूसरों को नष्ट करने के प्रयत्न में तुम अपने को नष्ट कर रहे हो, मैं नहीं। ब्रिटिश सरकार के शासन में तुम्हें कौन-सा दुःख है? कौन-सा अभाव है? अच्छा खाते हो, अच्छा पहनते हो। जिन्दगी की सभी सहूलियतें तुम्हारे पास हैं। फिर गुलामी कैसी? और अगर तुम अँगरेजों का शासन नापसन्द करते हो," रामनाथ का स्वर एकाएक प्रखर हो गया, "तो याद रखना, ये टुकड़खोर शोहदे तुम्हारे सिर पर अपना पैर रख कर चलेंगे। गुलाम तुम हमेशा रहोगे, गुलामी से बच सकना गैर-मुमकिन है। अभी तुम्हें हर तरह से आराम है, सिर्फ़ कानून की आज्ञा भर मानना है; और बाद में कानून की आज्ञा ही नहीं, इन नीच लोगों के घमण्ड की चक्की में तुम्हें पिसना पड़ेगा। तुम्हें ये तोड़ देंगे, तुम्हें ये कंगाल बना कर जूतों से ठुकराएंगे और तुम जिन्दगी भर के लिए रोओगे। समझे!"

दयानाथ हँस पड़ा, "ऐसी ही बातों से और ऐसे ही विश्वासों से हिन्दुस्तान की यह हालत हो गई है। अपने अन्दर मनुष्यता का अभाव होने के कारण हम दूसरों के अन्दर भी मनुष्यता के अभाव की कल्पना करते हैं। दूसरों को उत्पीड़ित करने का पाप हमारे सिर पर एक भयानक भार-सा लदा हुआ है और यह पाप बराबर हमें नीचे गिराता जाता है। हममें सदिच्छा और ईमानदारी नहीं है। लेकिन इसके ये माने नहीं कि दुनिया में सदिच्छा और ईमानदारी है ही नहीं। मैं यह कहता हूँ कि वैभव में पशुता है, पशुता ही नहीं, दानवता है। और हम दानवों को मनुष्यों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं।"

रामनाथ तड़प उठे। "हां, मैं पशु हूं, दानव हूं, पापी हूं, बेईमान हूं। बात यहां तक पहुंच गई। मेरा लड़का मेरे मुंह पर मुझे गालियां दे रहा है।"

दयानाथ ने शांत भाव से कहा, "आप मुझे गलत समझ रहे हैं दद्दुआ--मैं गालियां नहीं दे। रहा हूं मैं तो सिद्धान्त की बात कह रहा हूं।"

रामनाथ का क्रोध उग्र रूप धारण कर रहा था, "तुम सिद्धान्त की आड़ में मुझे गालियां दे रहे हो, मैं तुम्हारा मुंह तोड़ दूंगा। मैं तुमसे साफ़ कहे देता हूं--या तो तुम चौबीस घण्टे के अन्दर कांग्रेस छोड़ दो या फिर मेरे यहां पैर मत रखना!"

दयानाथ ने कहा, "अगर मेरे अनजाने में आपका कुछ अपमान हो गया हो तो मैं माफ़ी मांगे लेता हूं। लेकिन आप ज़रा शान्त हो कर सोचें तो कि मुझे अपने विश्वास पर चलने का और अमल करने का उतना ही अधिकार है, जितना आपको अपने विश्वास पर चलने का और अमल करने का। मैंने तो आपसे कभी यह नहीं कहा कि आप अपने विश्वास को छोड़ दें।"

रामनाथ चिल्ला उठे, "मैं तुम्हारा बाप हूं कि तुम मेरे बाप हो? खबरदार! अब जो दूसरी बात ज़बान पर आई तो मैं तुम्हारी ज़बान खींच लूंगा!" रामनाथ आवेश से कांप रहे थे, "चौबीस घण्टे का समय दे रहा हूं--एक मिनट ज्यादा नहीं।" इतना कह कर उन्होंने ज़ोर से पुकारा "प्रभा।"

प्रभानाथ ने गरम पकौड़ियां खा कर फलों पर हाथ लगाया ही था कि रामनाथ की आवाज़ उसे सुनाई पड़ी। फलों को छोड़ कर वह दौड़ा, रामनाथ कमरे के बाहर आ गए थे। रामनाथ ने कहा, "चलो—जल्दी चलो! इस मकान में मेरा दम घुट रहा है।"

प्रभानाथ ने कमरे के अन्दर नज़र डाली। दयानाथ खड़ा ज़मीन की ओर देख रहा था। प्रभानाथ ने बाहर ही से कहा, "बड़के भइया प्रणाम!"

दयानाथ ने उसी भांति उत्तर दिया, "आशीर्वाद!"

रामनाथ ने प्रभानाथ का हाथ पकड़ कर दरवाजे की ओर खींचते हुए कहा, "चलो--जल्दी करो!"

दूसरा परिच्छेद

१

रामनाथ के बाहर जाते ही राजेश्वरीदेवी ने कमरे में प्रवेश किया। दयानाथ वैसा ही खड़ा था—मौन, बेसुध। वह क्या सोच रहा था, स्वयम् वह यह न जानता था। उसकी आंखों के आगे था एक भयानक शून्य! एक के बाद एक विचार धुंधलेपन से उठ कर सूनेपन में लोप हो जाते थे।

अन्दर जा कर राजेश्वरीदेवी दयानाथ की बगल में खड़ी हो गईं। दयानाथ के कंधे पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "क्यों, क्या सोच रहे हो?"

दयानाथ चौंक पड़ा, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई आदमी एक दुखद सपना देख कर चौंक उठता हो। उन्होंने अपनी पत्नी को देखते हुए कहा, "कुछ नहीं—योंही...हां, चाय तैयार हो गई?"

"हो गई, न जाने कितनी देर हुई; नौकर शायद बाहर ले भी गया होगा। हां, तुम्हें यह पागलपन क्यों सवार हो गया है?"

"कैसा पागलपन?" दयानाथ ने आश्चर्य से अपनी पत्नी को देखते हुए कहा।

"यही जो दद्दुआ से इतनी कड़ी बातें कह गए!—वे कितने नाराज़ हो गए हैं!"

दयानाथ ने करुण-स्वर में कहा, "हां मुझे अफसोस है कि मुझे इतनी कड़ी बातें कहनी पड़ गईं—क्या बतलाऊं, मैं विवश हो गया था!"

"फिर अब क्या करोगे?"

"अब से क्या मतलब?—मैं समझा नहीं!"

"यही जो ददुआ कह गए हैं कि चौबीस घण्टे के अन्दर कांग्रेस छोड़ दो।"

दयानाथ मुस्कराया, "अब मैं क्या करूँगा? तो इसके माने क्या यह हैं कि तुम मुझे समझतीं नहीं?"--कुछ रुककर दयानाथ ने फिर कहा, "अच्छा, तुम्हीं बतलाओ, मैं क्या करूँगा?"

"मैं क्या जानूं--मैं तो इतना जानती हूं कि तुम्हें क्या करना चाहिए!"

"तो फिर यही बतलाओ!"

"अपने पिता की आज्ञा माननी चाहिए, उनसे क्षमा मांग लेनी चाहिए!"

"और अपनी आत्मा की पुकार की उपेक्षा करनी चाहिए, सत्य का गला घोंट लेना चाहिए, कर्तव्य से विमुख हो जाना चाहिए--यही सब करने को तुम मुझसे कह रही हो!" दयानाथ उठ खड़ा हुआ, वह जोर से हंस पड़ा, "पिता ही नहीं, मेरी पत्नी भी मुझे पाप का रास्ता दिखला रही है, मुझे अपना सहयोग, अपनी सहानुभूति, अपना साहस देने के स्थान पर मेरे सामने बाधा के रूप में उपस्थित हो रही है। यह सब विधि का विधान ही है!"

दयानाथ के मुख पर हाथ रखते हुए राजेश्वरी ने कहा, "ऐसा न कहो--हाथ जोड़ती हूं! मुझे पाप न लगाओ! मैं तुम्हारे भले के लिए ही यह सब कह रही हूं!"

"अपनी भलाई-बुराई मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं!"

"कहां समझ रहे हो? जानते हो, ददुआ वैसे भी उमा बाबू को ज्यादा मानते हैं। ताल्लुका का उत्तराधिकारी वे उमा बाबू को बना देंगे! इसके बाद क्या होगा?"

दयानाथ ने कुछ सोचा, "ठीक कहती हो! उसके बाद मैं कंगाल हो जाऊँगा--तुम यह कहना चाहती हो न! लेकिन मुझे गरीबी की कोई चिन्ता नहीं! कोई भय नहीं!"

"और राजेश-ब्रजेश? उनके लिए क्यों नहीं सोचते?"

"राजेश, ब्रजेश, और तुम—तुम भी! हां, अगर तुम्हें इस गरीबी से डर लगता है, अगर तुम अपने लड़कों को अपाहिज, लुटेरा और ऐयाश बनाना चाहती हो तो तुम बड़े मजे में इन सबों के साथ दद्दुआ के यहां जा सकती हो—मैं इसमें जरा भी बाधा न डालूंगा।" यह कह कर दयानाथ कमरे के बाहर चला गया।

२

जिस समय दयानाथ बाहर वाले कमरे में लौटा, नौकर वहां बैठे लोगों के सामने चाय का सामान रख रहा था। मार्कण्डेय ने मुस्कराते हुए कहा, "क्यों क्यों—चेहरा क्यों तमतमाया हुआ है, दद्दुआ से लड़े या भाभी से?"

"शायद दोनों से!" ब्रह्मदत्त ने चाय का प्याला उठाते हुए कहा।

मार्कण्डेय दयानाथ का अभिन्न मित्र था और समवयस्क था। वह दयानाथ के साथ बड़ा हुआ था, पढ़ा था और खेला था—रामनाथ के खान्दान में वह घर का आदमी समझा जाता था। मार्कण्डेय मिश्र के पिता पण्डित झगड़ू-मिश्र बानापुर गांव में केवल चार पाई के साझेदार थे, और वैभव तथा सम्पदा में पण्डित रामनाथ तिवारी से कहीं नीचे थे। लेकिन माझगांव का मिश्र होने के कारण वे अपने को चत्तू के तिवारी पण्डित रामनाथ से अधिक कुलीन समझते थे और इसलिए वे कभी भी ताल्लुकेदार से नहीं दबे। शायद यही कारण था कि तिवारीजी और मिश्रजी में अधिक नहीं बनती थी।

पर दयानाथ और मार्कण्डेय में बहुत अधिक घनिष्टता थी और उनकी घनिष्टता को उनके पिता पसन्द भी करते थे। इन दोनों की घनिष्टता से दो सम्भ्रान्त कुलों की शत्रुता का अन्त हो रहा था, इसको तिवारीजी और मिश्रजी अच्छी तरह जानते थे, और इस पर प्रसन्न भी थे, यद्यपि स्वयम् अपनी-अपनी अहम्मन्यता और अकड़ से मजबूर होने के कारण दोनों ही अक्सर

मुंह-दर-मुंह एक दूसरे से गाली-गलौज कर लेते थे। मार्कण्डेय कानपुर में वकालत करता था।

मार्कण्डेय, दयानाथ और लाला रामकिशोर के अलावा वहां सात आदमी और थे। इनमें सर्वप्रथम नाम श्यामनारायण का आता है। श्यामनारायण एक तरह से दयानाथ का आश्रित था। श्यामनारायण की उम्र अड़तीस साल की थी, यद्यपि उसकी उम्र पच्चीस वर्ष और पैंतालीस वर्ष के बीच में कुछ भी अन्दाजी जा सकती थी। श्यामनारायण अधिक पढ़ा-लिखा न था, पर वह समझदार और सुलझे दिमाग का आदमी था। इस नाटे कद और इकहरे बदन के आदमी के व्यक्तित्व में किसी प्रकार का कोई आकर्षण न था, आर्थिक कठिनाइयों के भार से वह हरदम दबा रहा। पर उसमें सच्ची लगन थी और दृढ़ता थी। भूखों मरा, पर अपनी ईमानदारी को उसने नहीं छोड़ा।

पांचवें सज्जन का नाम वासुदेव था। वासुदेव कौन है? कहां का रहनेवाला है? उसकी जाति क्या है? यह कोई नहीं जानता था। वासुदेव की उम्र लगभग पैंतीस वर्ष की थी—लेकिन वह एकदम अकेला था। पांच वर्ष पहले वह कानपुर में आया था और उसने एक छोटी-सी बिसातखाने की दूकान खोली थी। पांच वर्ष के अन्दर वह नगर का एक प्रमुख व्यापारी हो गया था। एक छोटे-से मकान में वह रहता था—और लोगों को उसके इस जीवन पर आश्चर्य तथा कौतूहल होता था। एक-आध बार जब उससे उसके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में प्रश्न किए गए, तब उसने केवल एक ही उत्तर दिया, "मेरे सम्बन्ध में आपको इतनी दिलचस्पी लेने की कोई जरूरत नहीं।" फिर भी वासुदेव आदमी महत्त्व का था, किसी बात में उसकी उपेक्षा न की जा सकती थी। इस बात के प्रमुख कारणों में सर्वप्रथम सम्भवतः उसके जीवन का रहस्यमय होना था। एक बार अपने घनिष्ट सहकारियों के अपने जीवन पर प्रकाश डालने के सानुरोध आग्रह पर वासुदेव ने हंसते हुए स्वयम् कहा था, "आप नहीं समझते होंगे कि मैं अपने जीवन को क्यों रहस्यमय रखना

चाहता हूँ। इसका एकमात्र कारण यह है कि रहस्य में एक विचित्र प्रकार का आकर्षण है। चीज़ों का एक बार असली रूप देख लेने पर हम उनकी उपेक्षा करने लगते हैं। मैं उपेक्षा का पात्र नहीं बनना चाहता—मैं अपने आकर्षण को नष्ट कर देने के लिए तैयार नहीं। जिस समय आप मुझे जान लेंगे, आप मुझमें कोई विशेषता न पाएंगे। आप लोग जो महत्त्व मुझे देते हैं, उसका एकमात्र कारण मेरा रहस्यमय और अप्रकट जीवन है।" बात हँसी में कही गई थी और सुनने वालों ने भी इस बात को मज़ाक ही समझा था।

छठे सज्जन का नाम था मौलाना हामिद अली। मौलाना हामिद अली नाटे कद के खुश-मिज़ाज आदमी थे, पुराने रईस। वे अधिक पढ़े-लिखे न थे और सभा-सोसाइटियों में सिवा एकाध फ़िकरा कस देने के अक्सर न बोलते थे, लेकिन वे भावना-प्रधान थे। हामिद अली की आय का अधिकांश भाग भूखे और तकलीफ़ में पड़े हुए लोगों की सहायता में खर्च होता था। उनके हृदय में दया थी—करुणा थी; और वे यह समझते थे कि मनुष्य मनुष्य पहले है, हिन्दू-मुसलमान बाद में। कानपुर-कांग्रेस की कार्यकारिणी के वे एकमात्र मुसलमान सदस्य थे।

डाक्टर हीरालाल सातवें सज्जन थे। कानपुर नगर में उनकी डाक्टरी उनकी योग्यता से कहीं अधिक उनके कांग्रेस के नेता होने के कारण चलती थी। गोरे-से खूबसूरत आदमी, मिष्टभाषी और चलते-पुरज़े। तीन-चार साल के अन्दर ही उन्होंने एक बड़ी-सी जायदाद कर ली थी और वे एक दिन कांग्रेसी सरकार में मन्त्री होने का सपना देखा करते थे।

आठवें सज्जन श्रीयुत रामकृष्ण कानपुर के प्रमुख साप्ताहिक पत्र—आलाप के सम्पादक थे। श्रीरामकृष्ण हिन्दी के सुविख्यात कवि थे और हिन्दी के कुछ आलोचकों का खयाल था कि यदि रामकृष्ण थोड़ा-सा समय राजनीति से निकाल कर साहित्य में लगावें तो वे हिन्दी के अमर कलाकार हो सकते हैं। ऊँचे चरित्र के भावुक आदमी, ईमानदार कार्यकर्ता और अच्छे वक्ता, लेकिन दुनियादारी की उनमें कमी थी। वे भावना में बह जानेवाले

आदमी थे—राजनीति के लिए सर्वथा अयोग्य। कानपुर की जनता उन्हें पूजती थी, रामकृष्ण के मित्र और साथी उन्हें प्यार करते थे। और रामकृष्ण के महत्त्वाकांक्षी सहकारी उनकी भावुकता का बेजा फ़ायदा उठा जाते थे।

नवें सज्जन मुंशी इकबाल शंकर थे। उनका अतीत बड़ा घटनापूर्ण था। उनके पिता मुंशी उल्फ़त राय ने, जो मरने के समय जज खफ़ीफ़ा के पेशकार थे, दो साल पहले अपने एकमात्र सुपुत्र के गुजर-बसर के लिए करीब डेढ़ लाख रुपया छोड़ा था। इस डेढ़ लाख में उनकी प्राइवेट डायरी में दर्ज हिसाब के मुताबिक अब उनके पास करीब तीस हजार रुपया बाकी था। हिसाब इस प्रकार हैं—

आय

नकद बैंक में—	१००,०००)
मकान एक किता—	२००००)
मकान दो किता—	३००००)
(बीवी के नाम)	
मीज़ान	१,५०,०००)

व्यय

मिस रोजा—	७०००)
मुसम्मात धन्नो—	१००००)
गुलशन बीबी—	१२०००)
मुतफ़र्रिक (नाम अनगिनती हैं)—	२१०००)
शराब—	१५०००)
नशे में यार लोग झटक ले गए—	२५०००)
घर का खर्च—दावत—तवाजा—	१००००)
घुड़दौड़—	१००००)
सूद—	१००००)
मीज़ान	१२००००)

जिस समय वे बीबी को अपने नाम की आयदाद बेचने पर मजबूर कर रहे थे, उसी समय उनके चौदह वर्ष के लड़के ने सर पर गांधी टोपी लगाए हुए और हाथ में तिरंगा झंडा लिए हुए घर में प्रवेश किया। उसके दूसरे हाथ में एक परचा था। मुंशी इकबाल शंकर झल्लाए हुए तो थे ही, उन्होंने लड़के को दो तमाचे मारे और परचा उसके हाथ से छीन लिया। उस परचे को वे फाड़ कर फेंकने ही वाले थे कि उनकी नजर उस परचे की लिखावट पर पड़ गई। एक सांस में वे परचे को आदि से अंत तक पढ़ गए और इसके बाद उन्होंने एक तमाचा अपने मुंह पर मारा। उनकी बीबी उनका यह व्यवहार देख कर डर गई, वह बाहर दौड़ी, नौकर को उसने सीधे डाक्टर हीरालाल के यहां भेजा। तेजी से वह लौटी, उसी समय मुंशी इकबाल शंकर ने दूसरी बार उस परचे को पढ़ कर अपने मुंह पर दूसरा तमाचा मारा। बीबी ने हाथ जोड़ कर और आंखों में आंसू भर कर कहा, "बेच दो, अगर तुमसे नहीं रहा जाता तो एक मकान बेच दो; लेकिन यह सब न करो!" मुंशी इकबाल शंकर बीबी को हृदय से लगाकर फूट-फूट कर रोने लगे। तब तक डाक्टर हीरालाल, जो पड़ोस ही में रहते थे, आ गए। उसी दिन से इकबाल शंकर कांग्रेसमैन हो गए।

दसवें सज्जन मजदूर-सभा के सेक्रेटरी थे और उनका नाम था ब्रह्मदत्त। ब्रह्मदत्त के पिता हरदत्त सेठ राधारमण किस्तवालों के तगादगीर थे। इंट्रेन्स फ़ेल होने पर ब्रह्मदत्त को हरदत्त ने बहुत पीटा। दूसरे दिन ब्रह्मदत्त घर से निकल पड़ा। उसने म्योर मिल में कुली का काम कर लिया। पर ब्रह्मदत्त कुलीगीरी करने के लिए न बना था। राजनीति में दिलचस्पी लेने के कारण ही वह फ़ेल हुआ था और यही राजनीति उसके आड़े आई। मिल की नौकरी करते समय उसकी मुलाकात मिलों में प्रचार करने के लिए आये हुए समाजवादी नेताओं से हो गई और उनकी सहायता से उसने मजदूरों के संगठन का काम आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे वह भी मजदूर-नेता बन गया था।

३

दयानाथ ने बैठते हुए कहा, "हां, उन दोनों से लड़कर। और उससे भी अधिक अपने से, अपनी कायरता से लड़कर चला आ रहा हूं! कहिए--क्या-क्या काम हुआ?"

डाक्टर हीरालाल हंस पड़े, "ही! ही! ही! बड़ी मजेदार बात कह दी आपने--अपनी कायरता से लड़कर! वाह--क्या बात कही!"--और एकाएक अपनी बात रोक कर वे फिर हंस पड़े, "ही-ही-ही--काम इतना हुआ कि हम लोग चाय पी रहे हैं। भाई इतना तकल्लुफ करने की क्या जरूरत थी! मेरा तो भोजन यहीं हो गया।"

ब्रह्मदत्त बोल उठा, "डाक्टर साहेब--आप लोग तो सब अमीर आदमी हैं, आप यह सब भले ही कहें, पर हम गरीबों को इतना अच्छा खाने को मिल गया, इसके लिए दयानाथजी को धन्यवाद!"

ब्रह्मदत्त की यह बात वहां बैठे हुए अधिकांश आदमियों को अप्रिय लगी। लाला रामकिशोर ने बात बदलते हुए कहा, "क्यों जी दयानाथ, तुम्हारे पिताजी को तो तुम्हारे कांग्रेस में सम्मिलित होने पर बड़ा धक्का-सा लगा होगा! और मुझे तुम्हारे साहस पर ताज्जुब हो रहा है, क्योंकि तुम्हीं उत्तराधिकारी हो!"

ब्रह्मदत्त ने ताड़ लिया कि रामकिशोर उसकी बात को उड़ाना चाहते हैं! उसने फिर हठ-पूर्वक कहा, "हां, एक ताल्लुकेदार के लड़के का कांग्रेस में शामिल होना ताज्जुब की बात ही नहीं है, हम लोगों के लिए एक बहुत बड़े खतरे की भी बात है!" और ब्रह्मदत्त जोर से हंस पड़ा—मानों वह अपनी बात के जहर को अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा हो।

मार्कण्डेय ब्रह्मदत्त के पास बैठा था। ब्रह्मदत्त का यह व्यवहार उसे अखर गया। उसने कहा, "हां खतरे की बात अवश्य है! और तुम्हारे जैसे अवसरवादी, गैर-जिम्मेदार और अयोग्य आदमियों के लिए तो खास

तौर से। अगर दयानाथ के-से जिम्मेवार, समझदार और सच्चरित्र आदमी क्षेत्र में अधिक संख्या में आ जायं, तो तुम्हें पूछेगा कौन?"

ब्रह्मदत्त ने मानों इस बात को सुना ही नहीं। वह मुस्करा रहा था।

चाय समाप्त हो गई और नौकर चाय के बरतन ले गया। उसके बाद कारंवाई फिर से आरम्भ हुई। रामकिशोर ने कहा, "सवाल हमारे सामने यह है कि इन दो सौ वालंटियरों के जेल जाने के बाद फिर आदमी कहां से आवेंगे?"

दयानाथ ने लापरवाही के साथ कहा, "इसकी चिन्ता ही क्यों? देश में भूखों मरनेवाले किसानों और मजदूरों की कमी नहीं है। कानपुर शहर में ही दो हजार आदमी ऐसे मिल सकते हैं, जिन्हें जेल में भोजन पाना उनके बाहर भूखों मरने की अपेक्षा अधिक अच्छा है!"

श्यामनारायण हँस पड़ा, "आप गलती करते हैं मिस्टर दयानाथ! ये किसान और मजदूर जेल के बाहर तड़प-तड़प कर भूखों मरना पसन्द करेंगे, लेकिन जेल जाकर पेट भरना इन्हें मंजूर नहीं।"

रामकृष्ण ने ब्रह्मदत्त से कहा, "ब्रह्मदत्तजी, आपका क्या खयाल है? क्या मजदूर हम लोगों का साथ देंगे?"

श्यामनारायण बोल उठा, "मजदूर! मजदूरों और मजदूर-सभावालों पर निर्भर रह कर आप अगर यह मूवमेण्ट चलाना चाहते हैं, तो आप मूर्खता करते हैं। जनाब, मजदूर और किसान दोनों गए-बीते हैं। वे न सोच सकते हैं, न समझ सकते हैं; कायरता उनकी नस-नस में भरी हुई है। और ये मजदूर-सभा के आदमी—मजदूरों का भला करने की जगह ये अपना भला कर रहे हैं। मजदूरों का सहारा लेकर बिना किसी योग्यता के ये लोग नेता बनना चाहते हैं। चाहते ही नहीं हैं, बन भी गए हैं।"

रामकृष्ण ने कहा, "श्यामनारायण जी, इस प्रकार आपस में लड़ने के लिए और गाली-गलौज करने के लिए हम लोग नहीं इकट्ठा हुए हैं। हां ब्रह्मदत्त जी, आपने बतलाया नहीं?"

ब्रह्मदत्त ने दबी जबान कहा, "मजदूर तो आपको बड़ी तादाद में नहीं मिल सकेंगे!"

इकबाल शंकर ने पूछा--"क्यों?"

"इसलिए कि इस नगर में उनकी संख्या बहुत अधिक तो है नहीं, और साथ ही अपना पेट भरने का प्रश्न उनके सामने इस बुरी तरह से रहा है कि उन्हें दूसरी बातों पर सोच-विचार करने की कभी फुरसत ही नहीं मिली।"

"पर इस मूवमेण्ट से तो उनके पेट भरने की समस्या भी हल हो जाती है।" इकबाल शंकर ने कहा।

"इस मूवमेण्ट से मजदूरों के पेट भरने की समस्या हल होगी?" देवदत्त हँस पड़ा, "बड़ी मजेदार बात कह दी आपने। लेकिन मैं कहता हूँ कि आप क्यों दूसरों को और खुद अपने को धोखा दे रहे हैं? मैं देख रहा हूँ कि कांग्रेस पूँजीपतियों की संस्था है और पूँजीपतियों का हित ही कांग्रेस का हित है। चार मिलों का मालिक नगर-कांग्रेस-कमेटी का सभापति है और ताल्लुकेदार का लड़का कांग्रेस का मंत्री है। आप लोग अपने हितों पर इन बेचारे मजदूर--किसानों की बलि चढ़ाना चाहते हैं--मैं अच्छी तरह यह सब समझता हूँ!"

इस अप्रिय प्रसंग से ऊब कर रामकिशोर ने कहा, "इस विवाद से कोई फ़ायदा नहीं! हमारे सामने सवाल यह है कि क्या किया जाय। हमें तैयार रहना चाहिए कि सरकार लोगों को गिरफ्तार करती जाय और लोग बराबर सामने आते चले जायें। जिस समय लोगों का सामने आना बन्द हो जायगा, हमारी हार हो जायगी।"

थोड़ी देर तक वहां मौन छा गया--सब सोच रहे थे। इस मौन को मार्कण्डेय ने भंग किया, "लोगों को तैयार किया जाय; अधिक से अधिक आदमी देहातों में भरती किये जायें!"

"लोगों को किस तरह तैयार किया जाय?" रामकिशोर ने पूछा।

"उन्हें रुपये देकर। उन्हें जेल जाने के काम पर नौकर रख कर!" मार्कण्डेय ने मुस्कराते हुए कहा।

"मैं इसका विरोध करता हूं! किराए के आदमियों से मूवमेण्ट चलाना हमारी नैतिकता का पतन जाहिर करता है!" भावुकता के वेग में आकर श्रीरामकृष्ण बोल उठे।

मौलाना हामिद अली एक कोने में बैठे हुए पान चबा रहे थे। इस बात को सुन कर वे चौंक उठे, "लाहौल बिला कू! पण्डित रामकिशन साहेब--इस तरह की बात जबान पर न लानी चाहिए!"

दयानाथ ने सर उठाया--सभी लोग चुप थे, सभी लोग एक दूसरे का मुंह देख रहे थे। उसने धीरे से कहा, "रामकृष्णजी ने जो बात कही, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अगर देश इतना भी तैयार नहीं है कि वह स्वतन्त्रता की लड़ाई में पूर्ण-रूप से भाग ले सके, तो इसका अर्थ यह हुआ कि देश अभी स्वतन्त्र होने के लिए तैयार नहीं है।"

ब्रह्मदत्त मुस्कराया। "और देश को इतना अपाहिज तथा पंगु आप ही लोगों ने तो बनाया है!"

मार्कण्डेय अभी तक सोच रहा था। उसने कहा, "आप लोग बेकार भावुकता के चक्कर में पड़े हैं। जरा चीजों को ठीक तरह से देखिये और उन पर ठंडे दिमाग से गौर कीजिये। अगर आप को लड़ने के लिए सिपाही नहीं मिल रहे हैं तो इसमें लोगों का कोई दोष नहीं है और न हिन्दुस्तान की नैतिकता का ही कोई दोष है। आखिर ये जेल जानेवाले वालण्टियर सिपाही ही तो हैं। तेंतीस करोड़ आदमियों में से अगर सभी आदमी लड़ने के लिए आगे आ जायें, सभी मरने-मिटने को तैयार हो जायें, तो हम लोग विश्व-विजयी हो सकते हैं। लेकिन दुनिया में कहीं भी यह सम्भव नहीं। अगर तेंतीस करोड़ आदमियों में तेंतीस सौ आदमी मुफ्त काम करने को और लड़ने को मिल जायें तो बहुत बड़ी बात होगी। दुनिया के उन्नत से उन्नत राष्ट्रों में भी मुफ्त काम करनेवाले नहीं मिलेंगे। सभी जगह तनख्वाहों पर सिपाही नौकर रक्खे जाते हैं। और इसलिए अगर कांग्रेस मजबूरी की हालत में तनख्वाह देकर लड़ने के लिए सिपाही रखती है तो इसमें हर्ज ही क्या है?"

ब्रह्मदत्त बोल उठा ! पूंजी—पूंजी—पूंजी ! रुपये से आप आदमियों को खरीदें, उन्हें लड़ने को तैयार करें ! अगर कांग्रेस का ध्येय यही है तो मैं इसका विरोध करूंगा !"

रामकृष्ण ने झल्ला कर कहा, "तो फिर तुम्हीं मजदूरों को क्यों नहीं तैयार करते ? क्या हम इस लड़ाई को बन्द करके हार मान लें ?"

ब्रह्मदत्त ने उत्तेजित होकर कहा, "आप लोग इन पूंजीपतियों को, सेठों को, रईसों को, दूकानदारों को, मिल-मालिकों को तैयार करें ! ये खून चूसने-वाले लोग मौज करें और कटें-मरें मजदूर—यह नहीं हो सकता !"

रामकिशोर ने घण्टी दबाते हुए कहा ! "श्री ब्रह्मदत्त जी, इन बातों की यह जगह नहीं है। हमारे सामने एक सवाल है और उसे हल करने का उपाय श्रीयुत मार्कण्डेयजी ने बतलाया है। इस उपाय से जो लोग सहमत हों वे हाथ उठावें।"

आठ आदमियों ने हाथ उठा दिये।

४

मीटिंग समाप्त हो गई और दयानाथ अपने कमरे में अकेला रह गया।

दयानाथ के पास अब केवल बीस घण्टे थे—दूसरे दिन शाम को छः बजे तक उसे अपना निर्णय दे देना था। वह अपने पिता को अच्छी तरह जानता था—उनके हठ को, उनकी दृढ़ता को, उनके स्वभाव को ! दयानाथ के सामने एक महान् समस्या उपस्थित थी—ऐसी समस्या, जिस पर उसका सारा जीवन, सारा भविष्य अवलम्बित था। यह उसकी साधना, नैतिकता और आत्मिक बल की परीक्षा का समय था। उसके सामने एक ओर तो—सुख, वैभव, निश्चिन्तता, घर की शान्ति और सम्भवतः मन की भी शान्ति; और दूसरी ओर था—एक अनन्त द्वंद्व, परिस्थितियों से अनवरत युद्ध, हलचल, सत्य के मार्ग में अगणित बाधाओं का मुकाबिला ! लेकिन एक

दूसरा पहलू भी था । पहले मार्ग में था निस्पन्द जीवन, जहां एक प्रकार का भयानक सूनापन था, जहां पशुता और पाप मानवता को निर्जीव बना कर छोड़ देते थे और दूसरे मार्ग में गरीबी और त्याग के साथ था एक मानसिक संतोष—अपनी आत्मा की शान्ति । दयानाथ को इन दोनों के बीच में बीस घण्टे के अन्दर ही एक को चुनना था, अपना अन्तिम निर्णय देना था । वह बहुत अधिक उद्विग्न हो उठा था । बीस घण्टे का समय—और इतना महत्त्व-पूर्ण निर्णय ! दयानाथ निश्चेष्ट बैठा हुआ सोच रहा था।

उसके ध्यान को राजेश्वरी ने भंग किया । "क्यों जी इस सड़न की गर्मी में बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? उफ़! तुम भी कैसे आदमी हो, चलो खाना खाकर लेटो चलकर !" और राजेश्वरी ने दयानाथ का हाथ पकड़ कर उसे कुर्सी से उठाया।

दयानाथ उठ खड़ा हुआ । चुपचाप वह राजेश्वरी के पीछे-पीछे अपने बंगले की ऊपर वाली छत पर गया। उस समय भी गरम हवा चल रही थी। दयानाथ पलंग पर लेट गया—थका-सा! राजेश्वरीदेवी ने पास बैठते हुए कहा, "खाना ले लाऊं! तुम्हें क्या हो गया है?"

"कुछ भी तो नहीं!" मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए दयानाथ ने कहा, "चाय इतनी पी ली है कि अब भूख नहीं रही! तुम खा लो जाकर—मैं बहुत थका हूं, सोऊंगा।"

"सिर्फ़ दो पूड़ियां दूध के साथ ! तुम्हें खानी ही पड़ेंगी !" राजेश्वरी के स्वर में ममता से भरा आग्रह था।

"अच्छी बात है, ले आओ जाकर !"

राजेश्वरीदेवी चली गईं, दयानाथ फिर सोचने लगा । उसके पलंग के बगल में ही उसके दोनों लड़के राजेश और ब्रजेश सो रहे थे । दयानाथ ने उन्हें देखा, और उसने मन ही मन कहा, "मैं खुद तो इस वैभव को छोड़ रहा हूं, पर क्या इन दोनों लड़कों को कंगाल बना देना उचित होगा? माना कि यह सुख-वैभव, यह ताल्लुका—इन्हें मेरे ज़रिये से ही मिल सकता है। पर

ये उत्तराधिकारी तो अवश्य हैं। और राजेश्वरी!—राजेश्वरी भी निर्धनता से, कंगाली से, त्याग से घबराती है—राजेश्वरी भी!"

दयानाथ अपनी दृष्टि उन लड़कों से न हटा सका। चांदनी छिटकी हुई थी, वे दोनों लड़के सपना देख रहे थे। दयानाथ एकटक उन दो लड़कों को देख रहा था और मानों उसके अन्दर से ही किसी ने उससे कहा, "लेकिन राजेश्वरी इन लड़कों के कारण ही तो इस निर्धनता से, इस त्याग से घबराती है। इनके भाग्य को, इनके अधिकार को, इनके वैभव को, तुम कुचल रहे हो—तुम इन लड़कों के शत्रु हो! और राजेश्वरी इन लड़कों की जननी है। माता बच्चों की रक्षा करना चाहती है, उन्हें एक लुटेरे से बचाना चाहती है।"

दयानाथ मुस्कराया। उसका शोक दूर हो गया था, मनोविज्ञान की एक दिलचस्प समस्या ने उसे उलझा दिया था—थोड़े से समय के लिए उसके अन्दर वाला तार्किक जाग उठा था।

"और मैं?" दयानाथ की विचारधारा पलटी, "क्या मैं राजेश्वरी का पति नहीं हूँ? क्या मेरे ऊपर उसकी ममता नहीं है? इन बच्चों को उसकी गोद में मैंने ही तो दिया—उसका जीवन मेरे जीवन से बिल्कुल घुल-मिल गया है। अच्छा—किस पर उसकी ममता अधिक है, मुझ पर या इन बच्चों पर? राजेश्वरी किसका साथ देगी—मेरा, या इन बच्चों का?"

बिजली के पंखे से जो हवा निकल रही थी, वह भी गरम थी। दयानाथ ने पंखे को बन्द कर दिया। लौटकर वह लेटा नहीं, वह छत पर टहलने लगा। "लेकिन यह प्रश्न ही क्यों? क्या मैं वास्तव में इन बच्चों का शत्रु हूँ? पिता होने के नाते क्या यह मेरा उत्तरदायित्व नहीं है कि मैं इन बच्चों के लिए उचित मार्ग निर्धारित करूँ? मैं इन्हें इस वैभव से दूर कर रहा हूँ, इन्हें मनुष्य बना रहा हूँ, मैं इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहता हूँ। क्या इसमें किसी को आपत्ति हो सकती है?"

दयानाथ के इस तर्क पर किसी ने उसी के अन्दर से फिर प्रहार किया,

"तुम इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहते हो—तुम झूठ बोल रहे हो! क्या इस वैभव को छोड़ने की बात तुमने स्वयम् कभी सोची है? अब जब तुम मजबूर हो रहे हो, तुम आत्म-छलना का सहारा ले रहे हो! तुम्हारे बच्चे कार पर चढ़ते हैं, बंगले में रहते हैं, अच्छा पहनते है और अच्छा खाते हैं। वे कुंवर कहलाते हैं। वे अपने को साधारण जन-समुदाय से पृथक समझते हैं। फिर तुम किस बल पर कहते हो कि तुम उनको उचित मार्ग पर ले जा रहे हो?........."

इसी समय राजेश्वरीदेवी थाली लेकर छत पर आ गईं। दयानाथ ने मन ही मन राजेश्वरी को इस समय आ जाने पर धन्यवाद दिया, क्योंकि उसकी विचार-धारा उसे अब असह्य होने लगी थी।

दयानाथ ने खाना खाया, इसके बाद वह फिर टहलने लगा। पर उसके विचारों ने उसका साथ न छोड़ा—ग्यारह बज गए थे। अब केवल उन्नीस घण्टे बाकी थे।

दयानाथ ने एक महीना पहले वकालत छोड़ दी थी। बंक में उसकी कमाई के पांच हजार रुपये जमा थे। दयानाथ का मासिक खर्च पांच सौ रुपया महीना था। इस हालत में पांच हजार रुपये से वह उसी हालत में दस महीने तक काम चला सकता था। इसके बाद क्या होगा? दयानाथ की समझ में न आ रहा था। उसे बंगला छोड़ देना चाहिए, उसे कार हटा देनी चाहिए, उसे एक साधारण हैसियत के मनुष्य की तरह रहना चाहिए! इसी शहर में ऐसे भी मनुष्य हैं, जो बारह रुपया महीने में अपने बीवी-बच्चों के साथ जिन्दगी बिताते हैं। पर नहीं!—बारह रुपया महीने पर जीवित रहना!—उफ़! वह तो पशु का जीवन है। नहीं—पचास रुपए में! यह भी असम्भव है। सौ रुपये महीने?

हां, सौ रुपए महीने में वह आराम के साथ रह सकता था। पचीस रुपए महीने का मकान, पचीस रुपए महीने घर का खर्च! पन्द्रह रुपए महीने में लड़कों की पढ़ाई, पन्द्रह रुपए महीने में कपड़े और मुतफ़र्रिक खर्च

और बीस रुपए महीने जेब खर्च। और नौकर? पत्नी को जेब-खर्च? मेहमान-दारी? सवारी का किराया?—सौ रुपए महीने भी काफ़ी नहीं हैं। मकान पचीस का नहीं बीस का, मुतफ़रिक में पन्द्रह नहीं, दस; और जेब-खर्च में बीस नहीं, दस। बीस रुपए महीने की बचत......

राजेश्वरी भोजन करके आ गई। उसने दयानाथ के पास जाकर कहा, "कब तक इस तरह टहलते रहोगे? चलो, सोओ भी! चिन्ता करने की क्या बात?"

दयानाथ ने चौंक कर राजेश्वरी को देखा। राजेश्वरी ने फिर कहा, "भला यह भी कोई बात है? तुम अपनी तन्दुरुस्ती बरबाद किए देते हो।"

दयानाथ ने करुण स्वर में कहा, "देखो—मैं जो कुछ करनेवाला हूँ, उससे तुम्हें तकलीफ़ होगी। शायद हम लोगों को यह बंगला छोड़ना पड़े, कार बेचना पड़े!"

दयानाथ का हाथ पकड़कर खींचते हुए राजेश्वरी ने कहा, "मुझे जरा भी तकलीफ़ नहीं होगी। मुझको उसी में सुख है जिसमें तुमको है। अरे सुख-दुख दोनों ही सहने के लिए तो आदमी पैदा हुआ है।"

दयानाथ ने संतोष की गहरी सांस ली, "राजो—जो कुछ कर रहा हूँ, उसको करने के लिए मैं विवश हूँ।"

सुबह जब दयानाथ सोकर उठा, वह अपने में एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति का, साहस का अनुभव कर रहा था। दिन भर वह कांग्रेस का काम-काज करता रहा; शाम के समय करीब पांच बजे वह मोटर पर बैठ कर उन्नाव की ओर चल पड़ा।

५

जिस समय दयानाथ उन्नाव में अपने पिता के बंगले में पहुंचा, उस समय रामनाथ अदालत में बैठे हुए मुकदमा कर रहे थे। प्रभानाथ ने उनका स्वागत किया।

ड्राइंगरूम में पहुंचकर प्रभानाथ ने दयानाथ से पूछा। "बड़केभइया! कल दद्दुआ बड़े नाराज थे। रात को उन्होंने खाना भी नहीं खाया। क्या बात थी?"

दयानाथ गम्भीर हो गया। "प्रभा—दद्दुआ ने रात खाना नहीं खाया—इसका मुझे दुःख है। लेकिन वे बेकार ही मेरे ऊपर नाराज हो गए हैं। तुम्हीं बताओ, अगर मैं अपने विश्वासों पर अमल करूं तो इसमें मेरा क्या दोष?"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया; शायद दयानाथ ने प्रभानाथ के उत्तर की कोई आशा भी नहीं की थी, क्योंकि वह लगातार कहता गया, "मैंने माना कि ताल्लुकेदार का सब से बड़ा लड़का और इस प्रकार ताल्लुका का उत्तराधिकारी होने के कारण सरकार यह नहीं चाहती कि मैं इस मूव-मेण्ट में भाग लूं; मैं यह भी मानता हूं कि जमीन्दारों का हित ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का साथ देने में है, जनता का साथ देने में नहीं, क्यों कि सरकार जमीन्दारों की पीठ पर हाथ रक्खे है, उनके अधिकारों की रक्षा करती है, उनकी ज्यादतियों की उपेक्षा करती है, उनकी पशुता पर आंखें बन्द कर लेती है। लेकिन प्रभा! सोचो तो, हम जमीन्दार यह सब सुविधा, यह सब सुख, के कितनी बड़ी कीमत दे कर खरीद रहे हैं! क्या हमने अपनी आत्मा को शैतान के हाथों नहीं बेच दिया? क्या हमारे हृदयों में वह भावना बाकी बच रही है जिससे हम मनुष्य होने का दावा कर सकें? क्या हममें वह ज्ञान है जो हमें पशुता से ऊपर उठाता है?"

प्रभानाथ कुर्सी पर बैठा था और दयानाथ सोफ़ा पर। प्रभानाथ कुर्सी से उठकर दयानाथ के पास सोफ़ा पर बैठ गया। "मैं समझ रहा हूं बड़के भइया—सब कुछ समझ रहा हूं। लेकिन सवाल यह है कि आप करेंगे क्या?"

दयानाथ मुस्कराया, "करूंगा क्या? प्रभा! यह प्रश्न ही बेकार है। तुम देख ही रहे हो कि मैं क्या कर रहा हूं। मैंने वकालत छोड़ दी है, कांग्रेस का काम मैंने पूरी तौर से अपने हाथ में ले लिया है। शायद कुछ ही दिन और मैं जेल के बाहर हूं। मैं बहुत आगे बढ़ आया हूं प्रभा!"

प्रभानाथ ने कुछ सोच कर कहा, "बड़के भइया ! जरा सोच लीजिए। क्षणिक आवेश में किसी भी काम को कर डालना उचित नहीं। आप इस ताल्लुका को ठुकरा कर बहुत बड़ा त्याग करेंगे—मैं मानता हूं, पर आप इस ताल्लुका के स्वामी रह कर इससे भी अधिक त्याग तथा उपयोगी काम कर सकते हैं—क्या आप ने इस पर भी सोचा है? क्या आप उचित अवसर की प्रतीक्षा नहीं कर सकते ?"

दयानाथ ने सर हिलाते हुए कहा, "नहीं प्रभा! मैं बहुत आगे बढ़ आया हूं। पीछे हटना कायरता होगी......"

दयानाथ ने अपनी बात पूरी भी न की थी कि रामनाथ ने कमरे में प्रवेश किया। रामनाथ के आते ही दयानाथ और प्रभानाथ दोनों ही उठ खड़े हुए। दयानाथ ने पिता के चरण छुए; आशीर्वाद देकर रामनाथ सोफ़ा पर बैठ गए और दयानाथ तथा प्रभानाथ सामने कुर्सियों पर।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। रामनाथ गौर से दयानाथ के चेहरे को देख रहे थे, मानों वे बिना दयानाथ से सुने हुए ही अपने प्रश्न का उत्तर उसके हृदय से निकाल लेना चाहते हों। दयानाथ सर झुकाए हुए ज़मीन पर देख रहा था, मानों वह अपने को कुछ क्षणों के बाद ही आने वाले तूफान का मुकाबला करने के लिए तैयार कर रहा हो। प्रभानाथ उत्सुकता के साथ कभी अपने पिता को और कभी अपने बड़े भाई को देख लेता था।

रामनाथ ने इस मौन से ऊब कर बात आरम्भ की, "हां, तो तुम मेरी बात का जवाब देने आए हो। तुमने क्या तै किया ?"

"मैं अन्तिम बार इस घर में अपना पैर रखने और अपने पिता के चरणों की धूल लेने आया हूं!" दयानाथ ने सर झुकाए ही उत्तर दिया।

"क्या कहा ?" जैसे रामनाथ को जो कुछ उन्होंने सुना, उस पर विश्वास ही नहीं हुआ।

"मैंने तै कर लिया—पीछे फिरना कायरता है और मैं कायर नहीं हूं।"

रामनाथ स्तब्ध-से अपने पुत्र को देखते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "हूँ ! तुम कायर नहीं हो—यह जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा पुत्र कायर नहीं है, मुझे इस पर गर्व है। और मेरा यह वीर पुत्र अपने पिता से ही लड़ने पर तुला है, उस पर ही प्रहार करने को आमादा है ! ठीक ही है ! दुनिया में सब कुछ सम्भव है !"

बड़े करुण स्वर में दयानाथ ने कहा, "दद्दुआ—आप मेरी बात को गलत ढंग से समझ रहे हैं ! एक बार मैंने एक संस्था को अपना लिया है, उसमें बहुत आगे बढ़ गया हूँ। अब उससे हट आना, अपने साथियों को इस मौके पर छोड़ देना कायरता का ही काम होगा। फिर मेरे साथी, साथी ही क्यों, सारी दुनिया मुझे धिक्कारेगी, वह यही कहेगी कि मैं डर कर इस लड़ाई से भाग रहा हूँ !"

रामनाथ मानों तैयार बैठे थे, "लेकिन तुम्हारी यह लड़ाई है किसके साथ ? ब्रिटिश सरकार के साथ न ! और यह ब्रिटिश सरकार ही क्या है, अगर हम जमीन्दार उसके साथ न हों। हम लोग इस गवर्नमेण्ट के अंग हैं। इस ब्रिटिश गवर्नमेण्ट पर प्रहार करने के माने होते हैं जमीन्दारों पर प्रहार करना—मेरे ऊपर प्रहार करना !"

दयानाथ ने केवल इतना कहा, "आप जो चाहे समझ सकते हैं, लेकिन मेरा ख्याल तो ऐसा नहीं है।"

रामनाथ ने कुछ सोच कर कहा, "तो फिर तुमने अपना अन्तिम निर्णय दे दिया है ? भविष्य पर और परिणाम पर अच्छी तरह सोच-समझ कर ?"

"जी हां !"

"नहीं, मैं तुम्हें अड़तालीस घण्टे का समय और दे रहा हूँ। इतना महत्त्व-पूर्ण निर्णय करने के लिए चौबीस घण्टे का समय काफ़ी नहीं है, और खास तौर से उस समय जब तुम्हारा वह निर्णय मेरे साथ हो। तुम मुझे अच्छी तरह जानते हो !" रामनाथ तन कर खड़े हो गए।

दयानाथ ने बैठे-ही-बैठे उत्तर दिया, "जी हां, मैं आपको अच्छी तरह से जानता हूं। इतनी अच्छी तरह कि आप भी अपने को उतना न जानते होंगे। और मुझे समय की कोई आवश्यकता नहीं; मैंने अपना निर्णय दे दिया और मैं मनुष्य हूं। बात से फिरना, पीछे लौटना मैं नहीं जानता।"

रामनाथ घूम पड़े, "तो फिर अब मेरा निर्णय भी सुन लो। आज से जब तक मैं जीवित हूं, तुम इस घर में अपना पैर न रख सकोगे। तुम्हारी बीबी और बच्चे जब चाहे आ सकते हैं, लेकिन तुम नहीं। रही तुम्हारे अधिकारों की बात--उस पर मैं विचार करूंगा। लेकिन इतना तै है कि मेरी जिन्दगी भर तुम्हें पांच सौ रुपया गुजारा मिलता रहेगा। हर महीने यह रुपया तुम्हारे घर पर पहुंच जाया करेगा। तुम्हें यहां आने की कोई जरूरत नहीं। और जब यह रुपया पहुंचना बन्द हो जाय, तब तुम समझ लेना कि मैं मर गया। तब तुम आ सकते हो!"

दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "आप की आज्ञा शिरोधार्य! लेकिन यह पांच सौ रुपया महीना गुजारे की बात--इसमें से एक पैसे की भी मुझे जरूरत नहीं। आप समझते हैं कि आप स्वामी हैं, आप दाता हैं, आप समर्थ हैं; और मैं हीन हूं, गुलाम हूं, असमर्थ हूं! आप गलती करते हैं। मैं गरीबी में रह सकता हूं बिना उफ़ किये। मुझे आपके रुपए की कोई आवश्यकता नहीं--वह आप अपने पास रक्खें!" यह कह कर उसने रामनाथ के पैर छुए और वह तेजी के साथ कमरे के बाहर चला गया।

"Yede mede raste"
By
Bhagwati Charan Varma

तीसरा परिच्छेद

१

रामनाथ जिस तरह खड़े थे, उसी तरह खड़े रह गए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो गया—उनकी आंखों के आगे शून्य था। उनकी विचार-धारा अचानक अस्पष्ट, धुंधली और स्तब्ध हो गई थी—वे पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चेष्ट खड़े थे।

और उनकी यह दशा उस समय तक रही, जब तक उन्हें दयानाथ की मोटर की आवाज नहीं सुनाई दी। दयानाथ की मोटर की आवाज सुनकर वह एक दम चौंक उठे; उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "प्रभा—देखो वह जा रहा है। उसे बुलाओ—जल्दी बुलाओ!"

प्रभानाथ कमरे के बाहर दौड़ा। थोड़ी देर बाद वह लौट आया। उसने कहा, "बबुआ—मैं जब पहुंचा, बड़के भइया की कार फाटक के बाहर निकल गई थी। मैंने बहुत पुकारा, लेकिन शायद उन्हें मेरी आवाज नहीं सुनाई दी।"

रामनाथ ने अधीरता से कहा, "प्रभा—बड़ी मोटर निकाल कर जाओ और उसे रास्ते से वापस ले आओ! मुझे उससे अभी कुछ और जरूरी बातें करनी हैं! जल्दी करो!"

प्रभानाथ तेजी के साथ कमरे के बाहर निकला।

रामनाथ ने तनिक जोर से कहा, स्वयम् अपने से, "गया—मुझे छोड़ कर, घर को छोड़ कर, रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद—सब कुछ छोड़ कर! सिर्फ़ एक हठ—एक पागलपन! उफ़! मेरा लड़का मुझसे ही लड़ने जा रहा है!" और वे कमरे में टहलने लगे।

उन्होंने फिर कहा, अबकी बार अधिक जोर से, एक-एक शब्द पर जोर देते हुए, "सर उठा कर, गर्व के साथ, रुपयों को ठुकरा कर, ममता को तोड़ कर! मुझसे लड़ने, मुझे मिटाने चल दिया! इतना घमण्ड, इतनी अहम्मन्यता—इतनी अहम्मन्यता, इतना घमण्ड!"

रामनाथ कमरे के बाहर निकल आए। प्रभानाथ कार को गैरेज से निकाल कर ला रहा था। रामनाथ ने आवाज़ दी, "प्रभा!"

प्रभा चौंक उठा। रामनाथ का स्वर, जो दो मिनट पहले करुण था और विवश था, वह एकाएक इतना कठोर कैसे हो गया? उसने मोटर पर बैठे ही बैठे कहा, "कहिए!"

"मोटर रख दो—तुम्हारे जाने की कोई आवश्यकता नहीं।" इसके बाद रामनाथ ने धीरे से गुरुता के भार से लदे हुए शब्दों में कहा, "इतना घमण्ड! तो फिर भुगते—अच्छी तरह से भुगते। वह समझता है कि मैं झुकूंगा!" और वे जोर से हंस पड़े। पर उनकी उस हंसी में एक अप्राकृतिक कर्कशता थी, दबे हुए रुदन की अहम्मन्यता और अभिमान-मिश्रित प्रतिक्रिया थी।

प्रभा ने मोटर गैरेज में रख दी, इसके बाद वह टहलने के लिए चला गया। रामनाथ बाहर मैदान में बैठ गए। उनके ताल्लुका के कर्मचारी उस दिन अपने कागजात लेकर आए थे। रामनाथ को घेरे हुए उनके सरबराहकार और ज़िलेदार बैठे थे—मैनेजर उनसे कागज़ों पर दस्तखत करा रहा था। एक कागज़ को देख कर रामनाथ ने कहा, "इस आदमी ने लगान क्यों नहीं अदा किया?"

मैनेजर ने कहा, "यह आदमी जेल चला गया—लगान किससे वसूल करूं?"

"जेल चला गया?—इसी कांग्रेस में?" रामनाथ ने पूछा।

"जी हां! और भी कई काश्तकार गए हैं, लेकिन उनकी बीबी-बच्चों ने लगान अदा कर दिया है!"

"तो फिर इस पर बेदखली का मुकदमा क्यों नहीं दायर करते ?"

"जी—इसलिए कि यह आदमी बराबर अपना लगान अदा करता रहा है। इस पर कभी बाकी नहीं हुई है—यह पहला ही मौका है! इसके बीवी-बच्चे भी गांव में नहीं हैं, नहीं तो वही लगान अदा कर देते। आदमी हैसियत का है!"

"हूं!" रामनाथ ने उस कागज पर हुक्म लिखते हुए कहा, "इस आदमी पर बेदखली का मुकदमा दायर कर दो। मैं नहीं चाहता कि मेरे इलाके में ऐसे आदमी रहें जो बागी हों—जो लड़नेवाले हों! समझे! और इस तरह के जितने आदमी तुम्हें मिलें, मौका पाते ही उन्हें बेदखल कर दो!"

सरबराहकार ने हाथ जोड़ कर कहा, "सरकार! इस तरह के आदमी करीब-करीब सब के सब सरकश हैं। उन्हें दबाने में मुसीबत पड़ेगी—फ़ौजदारी का अन्देशा है!"

"पुलिस की मदद लो—मैं कलक्टर से और कप्तान से कह दूंगा! जब चाहो, तब तुम्हें पुलिस की मदद मिल सकती है। बाकी कागजों को ठीक करके सुबह मेरे सामने पेश करना!" यह कह कर रामनाथ उठ खड़े हुए।

२

दूसरे दिन शाम के समय प्रभानाथ को तार से सूचना मिली कि वह फ़र्स्ट डिवीजन में एम० ए० पास हो गया। तार लेकर वह सीधे अपने पिता के पास पहुंचा, तार उनके सामने रखते हुए उसने पिता के पैर छुए! प्रसन्न होकर रामनाथ ने प्रभानाथ को आशीर्वाद दिया। इसके बाद बैठने का इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "अब इसके बाद तुम्हारा क्या इरादा है?"

"अभी कुछ सोचा नहीं! चाचा जी से बातचीत करके तै करूंगा।"

"चाचा जी! चाचा जी!—श्यामू के पास दिमाग भी है जो सोचे-समझे! तुम क्या करना चाहते हो—मुझसे कहो।"

"चाचा जी का कहना तो है कि मैं कम्पीटीशन इक्ज़ामिनेशन में बैठूं! इम्पीरियल पुलिस में बैठने की तैयारी करने के लिए उन्होंने मुझसे कहा है।"

"और तुम क्या करना चाहते हो?"

"मैं तो यूनीवर्सिटी की सर्विस ज्यादा पसन्द करता हूं। फ़र्स्ट डिवीज़न पाने के कारण मुझे अच्छी सरविस पाने में ज्यादा मुसीबत न पड़ेगी और मेरे प्रोफ़ेसर ने यह वादा भी किया है कि जब तक कोई जगह खाली नहीं होती, तब तक वे मुझे रिसर्च-स्कालर की तरह यूनीवर्सिटी में रक्खेंगे।"

कुछ सोच कर रामनाथ ने कहा, "मैं कह नहीं सकता कि तुम नौकरी कर सकोगे या नहीं; मुझे तो उम्मीद कम ही मालूम होती है। अपने लड़कों को मैं जानता हूँ—सभी स्वामी हैं; गुलामी करने को कोई भी तैयार नहीं! और सर्विस !—वह कहीं की भी हो, गुलामी ही है! लेकिन बहुत सम्भव है, तुम्हारे चाचा जी का असर तुम पर पड़ा हो!"

प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "यह तो समय बतलाएगा! और रही गुलामी की बात—यहां गुलामी करने से कोई बचा नहीं है। फिर चिन्ता किस बात की?"

रामनाथ मुस्कराए। "देख रहा हूँ मेरे सभी लड़के विद्वान् हो गए हैं..." और एकाएक उनकी मुस्कराहट गायब हो गई। उन्हें दयानाथ की याद हो आई—कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा, "प्रभा! यह विद्वत्ता—ये सिद्धान्त! ये सब की सब धोखे की चीजें हैं—यह याद रखना! इनके फेर में पड़ कर मनुष्य अपनी वास्तविकता, जीवन की वास्तविकता—सभी कुछ खो बैठता है। ये सारे सिद्धान्त—यह सारी बुद्धि!—यही हमारे विनाश के कारण हैं। प्रभा—इनसे डरना—इनसे दूर भागना!" और यह कह कर रामनाथ उठ खड़े हुए।

प्रभानाथ ने कहा, "ददुआ! चाचा जी ने बुलाया है—आज ही सुबह उनकी चिट्ठी मिली है!"

"हूं!" रामनाथ फिर बैठ गए, "तो फिर तुम कब जाना चाहते हो?"

"जब आप आज्ञा दें !"

रामनाथ थोड़ी देर तक मौन बैठे रहे, फिर एकाएक वे उठ खड़े हुए, "ज़रा ठहरो—मैं अभी आता हूँ—तुमसे एक ज़रूरी काम है !" यह कह कर वे अन्दर चले गए। उमानाथ का पत्र लिए हुए वे लौटे। पत्र प्रभानाथ को देते हुए उन्होंने कहा, "इसे पढ़ डालो !"

प्रभानाथ ने आदि से अन्त तक पत्र को पढ़ लिया। उसने कहा, "जी हां !—क्या आज्ञा है ?"

"उमानाथ को लेने के लिए किसी आदमी का जाना ज़रूरी है। तुम देख ही रहे हो कि मैं नहीं जा सकता, और दया—खैर छोड़ो उसकी बात ! उसी के कारण तो मेरी यह हालत है। श्यामू को शायद छुट्टी न मिले, अब रहे तुम !"

"तो क्या मुझे कलकत्ता जाना है ?"

"हां, तुम्हीं को जाना पड़ेगा। उमा को आने में अभी करीब पन्द्रह दिन का समय है। तुम कल फ़तहपुर अपने चाचा के यहां चले जाओ, वहां दो दिन ठहर कर कलकत्ता चले जाना। कलकत्ता में इतनी गर्मी भी न होगी और इसलिए तुम वहां पन्द्रह-बीस दिन मज़े में घूम सकते हो।" रामनाथ मुस्कराए, "एम०ए० पास कर लेने पर कुछ घूम लेना, सैर कर लेना बेजा न होगा।"

प्रभानाथ ने अपनी प्रसन्नता को दबाते हुए कहा, "जैसी आज्ञा !"

"और तुम्हें कलकत्ता जाना है मेरी बुइक कार पर। नई कार खरीदने की बात कर ली है, बदले में यह पुरानी कार देनी है—इसे दे देना। और नई कार ले कर उस पर चले आना। कार के कागज़-पत्र और रुपया तुम साथ लेते जाना।"

प्रभानाथ ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "भौजी जी से भी पूछ लूं—शायद वह भी कलकत्ता जाना चाहें।"

"हां, तुमने ठीक कहा—पूछ लो !" पर एकाएक उन्होंने फिर कहा, "नहीं, अपनी भौजी को मत ले जाओ, उसका जाना ठीक न होगा !"

"क्यों ?" प्रभानाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"इसलिए कि उमा अभी विलायत से लौट रहा है। बिना प्रायश्चित्त कर-वाए उसे घर में ले लेने के मानी होंगे सामाजिक बहिष्कार। समझ गए!"

"जी हां।"

"और देखो, उमा के आने के साथ ही मुझको तार कर देना। इसके बाद कलकत्ता में एक हफ्ता और ठहर कर यहां के लिए रवाना होना। साथ ही जब वहां से चलो, तब भी इत्तिला कर देना। इस बीच में मैं प्रायश्चित्त का इन्तज़ाम कर रखूंगा।"

प्रभानाथ को दूसरे दिन सुबह उठ कर चलने की तैयारियाँ करनी थीं। वह सीधा अपनी भावज—उमानाथ की पत्नी महालक्ष्मी के पास गया। महालक्ष्मी अपने लड़के अवधेश को सुला कर अपने ससुर के गिलौरीदान में पान लगा कर रख रही थी। प्रभानाथ ने पहुंचते ही कहा, "भौजी, मिठाई खिलाओ, मिठाई!"

"वाह, मिठाई मैं क्यों खिलाऊं? तुम पास हुए हो—तुम खिलाओ! लेकिन बाबू जी—अकेले मिठाई खिला कर ही नहीं छूटोगे—कुछ उपहार भी देना होगा!"

महालक्ष्मी के सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठते हुए प्रभानाथ ने कहा, "अच्छी बात है भौजी—मैं तुम्हें उपहार दूंगा, ऐसा उपहार जिससे अधिक कीमती चीज़ तुम न पा सकोगी!"

"उंह—बड़े उपहार देनेवाले!" मुस्कराते हुए महालक्ष्मी ने कहा, और अपने देवर के सामने उसने पान की तश्तरी बढ़ा दी। "बाबू जी आज कल मेरे साथ तुम खाना नहीं खाते—कुछ नाराज़ हो?"

"बहुत ज्यादा—इसीलिए तो तुम्हारे लिए उपहार लेने कलकत्ता जा रहा हूं!" प्रभानाथ हंस पड़ा, "सच भौजी, सिर्फ़ तुम्हारे लिए उपहार लेने कलकत्ता जा रहा हूं!"

"सच बाबू जी—कलकत्ता जा रहे हो ?" महालक्ष्मी ने पूछा, "कब ?"

"कल फ़तहपुर जाऊँगा—दो दिन रुक कर कार में सीधा कलकत्ता के लिए रवाना ! समझीं ! मझले भइया आ रहे हैं, उन्हें लेने के लिए ! अब तो खिलाओ मिठाई !"

महालक्ष्मी उठ खड़ी हुई; व्यग्रता से उसने कहा, "आ रहे हैं ?—कब आ रहे हैं—बोलो बाबू जी—दद्दुआ ने तो मुझे नहीं बताया ! सच कह रहे हो ? बोलो बाबू जी, तुम्हें मेरी सौगंद है—सच कहो !"

प्रभानाथ ने कुर्सी पर पैर फैला कर कहा, "तो तुमसे झूठ कहूँगा ? कह दिया न कि अपने पास होने की खुशी में मैं तुम्हारे लिए सब से बड़ी सौगात लाऊँगा। भौजी—अब मिठाई की बात न टालो, निकालो रुपये !"

महालक्ष्मी ने अलमारी खोली और पांच गिन्नियां निकालीं। अपने देवर के हाथ में गिन्नियां रखते हुए उसने कहा, "बाबू जी—मुंह मीठा कर लेना !" और प्रभानाथ ने देखा कि उसकी भावज की आंखों में आंसू भरे हैं।

प्रभानाथ ने उठते हुए कहा, "भौजी, तो मेरा सामान ठीक कर दो, कल शाम को चार बजे मैं यहां से चल दूंगा !"

महालक्ष्मी ने ज़रा संकोच के साथ कहा, "बाबू जी, अगर मैं आप के साथ कलकत्ता चलूं तो कोई हर्ज होगा ?"

"हां !" शांतभाव से प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "मैंने दद्दुआ से कहा था, और पहले वे राज़ी भी हो गए थे—लेकिन फिर एकाएक उन्होंने मना कर दिया ! मझले भइया विलायत से आ रहे हैं न !"

महालक्ष्मी ने निराशा की एक ठंडी सांस ली, "जैसी आप लोगों की मर्ज़ी !"

३

सुबह सात बजे पण्डित रामनाथ तिवारी उन्नाव के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर डाबसन के बंगले में पहुंचे। मिस्टर डाबसन तिवारीजी को बहुत

मानते थे और इसका कारण यह था कि उन्नाव नगर के प्रमुख नागरिक होने के साथ-साथ पण्डित रामनाथ तिवारी में चरित्र-बल था, व्यक्तित्व था। तिवारीजी की अवस्था पैंसठ वर्ष की थी और उनके बाल सन की तरह सफ़ेद थे। वे एकहरे बदन के लम्बे और हृष्ट-पुष्ट आदमी थे—गोरे और खूबसूरत! सिवा उनके सफ़ेद बालों के, उनके शरीर पर बुढ़ापे का और कोई चिह्न न था। उनके बत्तीसों दांत मौजूद थे, उनकी चाल में अकड़ थी, उनके मुख पर सौम्यता और गुरुता का विचित्र सम्मिश्रण था। तिवारीजी की आंखों में अहम्मन्यता की चमक थी, उनकी वाणी में स्वामित्व की गम्भीरता थी। तिवारीजी शिक्षित व्यक्ति थे, और शिक्षित से कहीं अधिक सुसंस्कृत।

मिस्टर डावसन जब कलक्टर हो कर उन्नाव आए थे, उनसे नगर के प्रमुख रईस और जिले के प्रमुख ताल्लुकेदार तथा जमीन्दार मिलने गए थे। सबों ने उन्हें झुक कर सलाम किया था, सबों ने उन्हें हुजूर और अन्नदाता कहा था, सबों ने उनकी खुशामद की थी। एक तिवारीजी ही ऐसे थे, जिन्होंने उनके साथ बराबरी का बर्ताव किया था। मिस्टर डावसन को तिवारीजी का यह बराबरी वाला व्यवहार पसन्द नहीं आया था, और अपनी नाराजगी को उन्होंने तिवारीजी पर उसी समय यह कह कर प्रकट कर दिया था, "पण्डित रामनाथ! जमीन्दारों की जो ज्यादतियां किसानों पर हो रही हैं, मेरा काम उन्हें रोकना है। तुम ताल्लुकेदारों और जमीन्दारों को मेरे शासन-काल में सँभल कर रहना होगा।"

और तिवारीजी ने मिस्टर डावसन को उसी समय उत्तर दिया था, "मिस्टर डावसन! आप डिपटी कमिश्नर हो कर आए हैं—लेकिन इसके ये माने नहीं कि आप हम लोगों से इस तरह की बातें करें। यह याद रखिएगा कि आप उस सरकार की नौकरी कर रहे हैं जो जमीन्दारों के बल पर कायम है। यह एक विडम्बना ही है कि हम जमीन्दार और ताल्लुकेदार अपढ़ और कायर होने के कारण अपने स्थान और अपनी महत्ता को गवां बैठे हैं, नहीं तो आप हम लोगों के साथ किसी हालत में इस तरह से पेश न आ

सकते जिस तरह पेश आ रहे हैं। आप यह समझ लें कि जमीन्दारों और ताल्लुकेदारों को अपना शत्रु बना लेना, सरकार के लिए आत्म-हत्या कर लेना होगा।"

उस डांट का असर मिस्टर डावसन पर पड़ा, उन्होंने देखा कि उनके सामनेवाला आदमी शरीफ़ है, स्वाभिमानी है। उस दिन से मिस्टर डावसन तिवारीजी का आदर करने लग गए। जिस समय चपरासी ने तिवारीजी का कार्ड मिस्टर डावसन को दिया, वे चाय पी रहे थे। उन्होंने चपरासी से तिवारीजी को डाईनिंग रूम में ही बुलवा लिया।

मुस्कराते हुए मिस्टर डावसन ने तिवारीजी से कहा, "गुडमार्निंग राजा साहेब ! आज बहुत सवेरे आ गए !"

"गुडमार्निंग सर !" कहते हुए तिवारीजी एक खाली कुर्सी पर बैठ गए।

"आप मेरे यहां की चाय तो पीजिएगा नहीं—लीजिये, ये फल खाइए !" कहते हुए मिस्टर डावसन ने फलों की तश्तरी तिवारीजी के सामने बढ़ा दी, "क्यों, क्या बात है जो आप इतने गम्भीर हैं ?"

"कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण बात करने आया हूं !" तिवारीजी ने कहा।

"कहिए!"

"मेरे पास परसों एक पत्र गया था, जिसमें मेरे लड़के दयानाथ के कांग्रेस ज्वाइन कर लेने की बात लिखी थी।"

"अरे हां...मुझे याद आ गया। कमिश्नर के डी० ओ० के आधार पर ही मैंने वह पत्र भिजवाया था। फिर?...क्या दयानाथ ने वाकई कांग्रेस ज्वाइन कर लिया है ?"

"ज्वाइन ही नहीं कर लिया है, वह इस वक्त कांग्रेस का सेक्रेटरी भी है। वह इस मामले में बहुत आगे बढ़ गया है !"

"ऐसी बात है ! फिर ?" उत्सुकता से मिस्टर डावसन ने पूछा।

"मैं परसों शाम को उसके यहां गया था। मैंने उसको बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन सब बेकार ! कल उसने मुझसे साफ़-साफ़ कह दिया कि वह कांग्रेस किसी हालत में नहीं छोड़ सकता, चाहे उसे घर-बार भले ही छोड़ना पड़े।"

"क्या आपने उसे कोई ऐसी धमकी दी थी ?" मिस्टर डाबसन ने गम्भीर हो कर पूछा।

"मैंने उसे धमकी नहीं दी, मैंने उससे तथ्य की और वास्तविकता की बात कही थी। देखिए, अगर यह कांग्रेस का मूवमेण्ट केवल गवर्नमेण्ट के ही खिलाफ़ होता तो मैं चुप रहता, लेकिन मैं देखता हूं कि हम जमींदारों का स्वार्थ गवर्नमेण्ट के साथ कुछ इस बुरी तरह बंध गया है कि गवर्नमेण्ट के खिलाफ़ कोई भी मूवमेण्ट जमींदारों के खिलाफ़ पड़ जाता है। ऐसी हालत में जब मेरा बड़ा लड़का रियासत का उत्तराधिकारी इस मूवमेण्ट में हिस्सा ले रहा है तब इसके माने ये हुए कि वह रियासत को, रियासत को ही नहीं, मुझको नष्ट करने पर तुला हुआ है। ऐसी हालत में उसे कोई अधिकार नहीं कि वह मेरे—अपने शत्रु के—साथ रहे।"

मिस्टर डाबसन ने आश्चर्य के साथ अपने सामने बैठे हुए बूढ़े को देखा, फिर धीरे से उन्होंने कहा, "और अगर आज ब्रिटिश गवर्नमेण्ट आप जमींदारों का साथ छोड़ कर जनता का हित करने पर तुल जाय ?"

तिवारीजी ने तन कर उत्तर दिया, "तब मैं समझ लूंगा कि ब्रिटिश सरकार अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रही है। मैं जानता हूं कि हम जमींदार-मिट जाएंगे, लेकिन हमारे पहले ब्रिटिश गवर्नमेण्ट मिट जायगी।"

मिस्टर डाबसन मुस्कराए, "आप शायद ठीक कहते हैं ! लेकिन मैं व्यक्तिगत रूप से इतना जरूर कहूंगा कि यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह सकती। राजा साहेब, कांग्रेस का इतना बड़ा मूवमेण्ट यह साबित कर रहा है कि जनता जाग रही है। यह साफ़ है कि लोग भूखों मर रहे हैं, लोग कंगाल हैं। यह सब किस लिए ? इन लोगों को कौन भूखों मार रहा है ? इन

लोगों को कौन कंगाल बनाए है? हमें इस सवाल पर गौर करना ही पड़ेगा। और मैं समझता हूं कि इनको भूखों मारने में और कंगाल बनाने में आप ज़मींदारों का बहुत बड़ा हाथ है!"

तिवारीजी तिलमिला उठे, "और ज़मींदारों से ज्यादा उन सरकारी अफ़सरों का हाथ है जो दो हज़ार रुपया महीना तनख्वाह पाते हैं, लम्बा भत्ता वसूल करते हैं; बीस साल की नौकरी के बाद जो नकद दस-पांच लाख रुपया हिन्दुस्तान के बाहर विदेश में ले जाते हैं। मिस्टर डाबसन! जो रुपया ज़मींदारों को मिलता है, वह हिन्दुस्तान में ही तो रहता है, घूम-फिर कर वह जनता को तो मिलता है; लेकिन विदेश में जानेवाला रुपया हिन्दुस्तान की तबाही का कारण होता है।"

मिस्टर डाबसन ने अपने सामने खड़े हुए चपरासी से कहा, "पेशकार से बोलो कि कागज़ों पर दस्तखत मैं कचहरी में करूंगा। और जो मिलने आवे उससे कह दो कि साहब को फ़ुरसत नहीं है—शाम के वक्त मुलाकात होगी।"

इतना कहकर मिस्टर डाबसन संभल कर बैठ गए, "क्या कहा आपने? ज़मींदारों को जो रुपया मिलता है, वह हिन्दुस्तान में रहता है? आप कितनी बड़ी गलती कर रहे हैं? कुछ थोड़े-से इने-गिने अंग्रेज अफ़सर हैं—ये कितना रुपया बाहर ले जा सकते हैं? ज्यादा नहीं—राजा साहब, मैं आपको यकीन दिलाता हूं! और ये ज़मींदार! इनका अधिकांश रुपया विलायत में जाता है, मोटरों की कीमत में, सिगरेट में, शराब में, विलायती कपड़ों में और न जाने भोग-विलास की कितनी चीज़ों में। आप ज़रा गौर करें—जितने राजे-महाराजे, ताल्लुकेदार—रईस विलायत जाते हैं, वहां कितना खर्च करके लौटते हैं! दो लाख—चार लाख रुपया प्रतिवर्ष पैदा करनेवाले, और इसमें से आधा से अधिक विलायत में भेज देनेवाले को हमारे दो हज़ार रुपए महीने पर आपत्ति क्यों हो रही है? और राजा साहब, आप यह भी याद रक्खें कि हम शासक हैं; हमने अपनी ताकत से, अनेक कष्ट सह कर, अपना खून बहा कर हिन्दुस्तान को जीता है, उसे बर्बरता से ऊपर उठाया है; हम हिन्दुस्तान का प्रबन्ध कर रहे हैं।"

तिवारीजी चुप थे। मिस्टर डाबसन ने जो बात कह दी थी, उसमें सत्य था। उस सत्य की उपेक्षा तिवारीजी न कर सकते थे।

मिस्टर डाबसन रुके नहीं, वे बातें करने ही बैठे थे। "राजा साहेब! यह ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस गरीब हिन्दुस्तान से अधिक लाभ कर भी नहीं सकती। बहुत थोड़े-से अंग्रेज सरकारी नौकरियों में हैं और केवल उन्हीं की आजीविका चल रही है। और ये अँगरेज संख्या में इतने कम हैं कि अगर हिन्दुस्तान में इनकी आजीविका चलना बन्द हो जाय तो इंगलैण्ड-वासियों को मालूम तक न होगा। फिर एक बात आप और याद रक्खें। हिन्दुस्तान के स्वाधीनता पा जाने के बाद अभी बहुत दिनों तक हिन्दुस्तान को विदेशी विद्वानों को आवश्यकता पड़ेगी। यह तनख्वाह जो हिन्दुस्तान हम लोगों को दे रहा है, अभी कई साल तक हम विदेशियों को मिलती रहेगी।

"अब आती है व्यापार की बात! मैंने माना कि हिन्दुस्तान के साथ व्यापार से इंगलैण्ड को बहुत अधिक फ़ायदा हुआ है, लेकिन यह फ़ायदा किसी भी दूसरे देश को होता जो हिन्दुस्तान के साथ व्यापार करता; और अब यह फ़ायदा दूसरे देशवालों को ही हो रहा है। जापान, जर्मनी, अमेरिका! ये देश अधिक लाभ उठा रहे हैं। यहां भी हमारा लाभ अधिक नहीं है। हिन्दुस्तान इतना गरीब है कि वह मँहगा ब्रिटिश माल खरीद ही नहीं सकता, उसे सस्ता जापानी माल चाहिए। मैं आपसे फिर कहता हूं कि हिन्दुस्तान से इंगलैण्ड को कोई व्यापारिक लाभ भी नहीं है। फिर यह सब क्यों? हम लोग जो अपने सर पर यह मुसीबत उठाए हुए पशुता के पाप के भागी बन रहे हैं, यह सब क्यों?"

तिवारीजी मानों सपना देख रहे हों। उन्हें यकीन न हो रहा था कि एक अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर उनसे यह सब बातें कर सकता है! वे अवाक् बैठे हुए थे।

मिस्टर डाबसन ने चाय का दूसरा प्याला बनाया; इसके बाद उन्होंने अपनी बात फिर आरम्भ की, "हिन्दुस्तान में अंग्रेजों को केवल एक मोह है,

वह है साम्राज्य का। इतना बड़ा मुल्क, जिसकी जन-संख्या तेंतीस करोड़ के ऊपर; लोग बहादुर और समझदार! इतना बड़ा मुल्क किसी भी साम्राज्य की बहुत बड़ी ताकत बन सकता है। आज संसार के अन्य राष्ट्र, जो ब्रिटिश साम्राज्य से दबते हैं, उसके सामने सर नहीं उठा सकते, उसका प्रमुख कारण यह है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के पास हिन्दुस्तान ऐसा मुल्क है। लेकिन यह भूखा-कंगाल और अपाहिज हिन्दुस्तान कब तक हमारी ताकत बना रह सकेगा? ब्रिटिश सरकार भी अनुभव करने लग गई है कि अगर हालत अधिक दिनों तक ऐसी ही रही, तो हमें हिन्दुस्तान से हाथ धोना पड़ेगा। हरेक चीज़ की हद होती है, निर्दयता की, उत्पीड़न की, कुशासन की! और हिन्दुस्तान की हालत अब पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है। इस पराकाष्ठा तक हिन्दुस्तान की हालत पहुँचाने के लिए हम लोग विवश किए गए हैं, और हमें विवश करनेवाले ज़मींदार ही हैं। शायद भविष्य में ब्रिटिश सरकार ज़मींदारों का साथ न दे सकेगी।"

तिवारीजी सुन रहे थे, समझ रहे थे। उन्होंने अपना सर उठाया, सामने बैठे हुए मिस्टर डावसन मुस्करा रहे थे। गला साफ़ करते हुए तिवारीजी बोले, "आपने जो कुछ कहा मिस्टर डावसन, मैं मानता हूँ कि उसमें सत्य है; लेकिन केवल अर्ध-सत्य है। हिन्दुस्तान से इंगलैण्ड को और भी फ़ायदे हैं जिन्हें आपने नहीं कहा। आप यह मानेंगे कि हिन्दुस्तान के धन का बहुत बड़ा भाग इंगलैण्ड उस रुपए के सूद में ले लिया करता है, जो उसने जबर्दस्ती हिन्दुस्तान को कर्ज़ दिया है। यह रकम अरबों तक पहुँच गई है मिस्टर डावसन! इंगलैण्ड यह जानता है कि यह आर्थिक गुलामी हिन्दुस्तान के लिए राजनीतिक गुलामी से कहीं अधिक घातक है। फिर आप कहते हैं कि हिन्दुस्तान से इंगलैण्ड को कोई व्यापारिक लाभ नहीं हो रहा है! यहां भी आपने केवल अर्ध-सत्य कहा है। इंगलैण्ड के जहाज़ माल लाते हैं, ले जाते हैं। इंगलैण्ड से काफ़ी अधिक माल आता भी है। और सब से बड़ी बात तो यह है कि हिन्दुस्तान की व्यापारिक नीति इंगलैण्ड ही निर्धारित करता है। अगर इंगलैण्ड को हिन्दुस्तान से कोई व्यापारिक लाभ नहीं है तो

इँगलैण्ड हिन्दुस्तान के उद्योग-धंधों को क्यों नहीं पनपने देता? हिन्दुस्तानी माल का मुकाबला कीमत में इँगलैण्ड का माल नहीं कर सकता। इँगलैण्ड के मुकाबले में हिन्दुस्तानी व्यवसाय तेजी के साथ उन्नति करता जा रहा है। और यहां इँगलैण्ड ने हिन्दुस्तान के मुकाबले जापान को सुविधाएँ देकर हिन्दुस्तानी व्यवसाय को तोड़ने का प्रयत्न किया है। जापान को इँगलैण्ड जब चाहे रोक सकता है, उसके व्यापार को जब चाहे तोड़ सकता है; लेकिन हिन्दुस्तान अगर खुद एक दफ़े जम गया, तब इँगलैण्ड के लिए उसे तोड़ना असम्भव हो जायगा। इसीलिए इँगलैण्ड हिन्दुस्तान को लुटवा रहा है, ताकि यह देश हरदम अपाहिज ही बना रहे। और आपने ठीक कहा कि इँगलैण्ड को हिन्दुस्तान से मोह साम्राज्य के मामले में ही है, पर हिन्दुस्तान को जन्म-जन्मान्तर तक गुलाम बनाए रखने के लिए यह जरूरी है कि हिन्दुस्तान के सामने हरदम ऐसी समस्याएँ रहें, जिनके ऊपर उठकर या जिनसे अलग होकर उसे अपनी गुलामी पर ध्यान देने की फ़ुरसत ही न मिले। सम्पन्न हिन्दुस्तान अपनी सारी शक्तियां गुलामी से लड़ने में लगा सकता है, लेकिन गरीब हिन्दुस्तान को पहले अपनी भूख से, गरीबी से लड़ना है; पीछे गुलामी की बात आती है मिस्टर डावसन!"

मिस्टर डावसन इस बात का उत्तर देना चाहते थे, लेकिन रामनाथ ने उन्हें इशारे से रोक दिया, "और मैं आपकी बात का भी तथ्य जानता हूँ। जिस समय लोगों में अपनी भूख और गरीबी तथा गुलामी को एक रूप में देखने की क्षमता आ गई, उसी समय आप लोगों ने एक दूसरा रुख ले लिया। जिन साधनों से आपने लोगों को गरीब और अपाहिज बनाया, उनसे लोगों का ध्यान हटाने के लिए आप बेवकूफ़ अपढ़ तथा मूर्ख ज़मींदारों को सामने ला कर और उन्हें महत्त्व दे कर हिन्दुस्तान में गृह-कलह मचवा सकते हैं। नए-नए सवाल उठा लेना, हिन्दू-मुसलमान; वर्णाश्रम-अछूत, किसान-ज़मींदार—ये सब छोटे-छोटे बिना महत्त्व के प्रश्न हैं। इनको महत्त्व दे कर और लोगों की शक्तियों का इन बेकार की बातों पर अपव्यय करा के आप इस गुलामी की अवधि को लम्बी बनाना चाहते हैं। मैं मानता हूँ

आपकी सूझ को—आपके दिमाग को। इसी से आप थोड़े-से आदमी इतने बड़े हिन्दुस्तान पर निरंकुश शासन कर रहे हैं।" इतना कह कर पण्डित रामनाथ तिवारी उठ खड़े हुए।

मिस्टर डाबसन मुस्कराए, "आप हमें गलत समझ रहे हैं! अच्छा जाने दीजिए इस बात को। आपने बताया नहीं कि किस प्रकार मैं आपकी सहायता कर सकता हूं?"

"इस बात-चीत के बाद मुझे आप से सहायता की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती", रामनाथ ने भी मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "एक बहुत बड़ा सत्य जान कर मैं यहां से जा रहा हूँ। मैं आया था आपसे यह पूछने कि दयानाथ की विरासत किस तरह कटवाई जा सकती है; लेकिन मैं समझता हूं कि मैंने गलती की!"

"शायद आपने गलती ही की, क्योंकि विरासत का मामला डिप्टी कमिश्नर के हाथ में न हो कर चीफ़ कोर्ट के हाथ में होता है।" और मिस्टर डाबसन ज़ोर से हंस पड़े।

५

पण्डित रामनाथ तिवारी जिस समय डिप्टी कमिश्नर के यहां से लौटे, बहुत उद्विग्न थे। उन्होंने दयानाथ के साथ अन्याय किया, वे यह मानने को किसी भी हालत में तैयार न थे, लेकिन फिर भी उनका मन भारी था। उनको समझ में न आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। दुनिया एकाएक बदल गई थी—वे अपने सामने एक अजीब तरह का अन्धकार देख रहे थे। एक बहुत बड़ी रियासत का भार उनके कंधे पर लदा था, और वे अकेले थे। उनकी अहम्मन्यता, उनकी गुरुता, उनका स्वामित्व!—इन सबों को एक धक्का लगा, और इस धक्के से वे स्तब्ध हो गए। आज से पहले उन्होंने दूसरे पहलू पर विचार ही न किया था।

वे अपने बंगले तक न पहुंच पाए थे कि एक बहुत बड़ा जुलूस उन्हें

दिखाई दिया। रास्ता भीड़ से रुक गया था, इसलिए ड्राइवर को कार सड़क के एक किनारे रोक देनी पड़ी। वह कांग्रेस का जुलूस था। लोग तिरंगे झण्डे लिये और तरह-तरह के नारे लगाते हुए चल रहे थे। कोई 'इन्किलाब जिन्दाबाद' चिल्ला रहा था, कोई 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा!' गा रहा था।

साधारण परिस्थिति में तिवारीजी को अपनी कार का रुकना बुरा लगता, पर उस दिन उन्हें बुरा न लगा। अपने अन्दर वाले द्वंद्व से वे इतने स्तब्ध और विचलित थे कि उस जुलूस का निकलना उन्हें बुरा लगने के स्थान पर अच्छा ही लगा। वे जुलूस देखने लगे। उन्होंने मन ही मन कहा, "ये निहत्थे आदमी ब्रिटिश सरकार से लड़ रहे हैं! क्या यही लड़ाई है? एक मशीनगन! और ये सब कहां होंगे? कोई भी तो नजर न आएगा! आखिर ब्रिटिश सरकार बल का प्रयोग क्यों नहीं करती? इस पागलपन को क्यों नहीं रोकती?"

कुछ लोगों ने रामनाथ की ओर उँगली उठा कर कहा, "टोडी बच्चा हाय हाय!"

रामनाथ चुप रहे। उनको यह नहीं मालूम था कि टोडी बच्चा के अर्थ क्या होते हैं, पर वे जानते थे कि जो कुछ उनके सम्बन्ध में कहा गया है, वह उनके स्वाभिमान के विरुद्ध है, शायद उनको गाली भी दी गई हो। पर पण्डित रामनाथ को उस समय यह गाली नहीं खली, वे एकटक जुलूस को देख रहे थे और सोच रहे थे, "इतने अधिक आदमी! अगर इनके हाथ में शस्त्र होते तो! उन्नाव-जैसे छोटे कस्बे में इतने अधिक आदमी कांग्रेस के जुलूस के साथ हैं! तो क्या कांग्रेस पर लोगों की श्रद्धा वास्तव में इतनी अधिक हो गई है? ये लोग—ये गवांर—जिन्हें बोलने और बात करने की तमीज नहीं है, जो सोच नहीं सकते, समझ नहीं सकते; जिनमें नैतिकता और चरित्र का सर्वथा अभाव है, ये किसान और मजदूर—ये लोग इस जुलूस के साथ क्यों हैं? क्या ये जानते हैं कि स्वाधीनता किसे कहते हैं? क्या ये जानते हैं कि अधिकार और स्वत्व के अर्थ क्या होते हैं?"

रामनाथ ने देखा कि छोटे-छोटे बच्चे गाना गाते चले जा रहे हैं। उन्होंने फिर सोचा, "और ये बच्चे !"

वे मुस्कराए, "ये बच्चे भी तो जुलूस के साथ हैं। भला ये बच्चे क्या समझ सकते हैं? ये जो मस्तक ऊंचा किए हुए नारे लगाते चले जा रहे हैं—ये सुकुमार और भोले बच्चे! ये क्या जानें कि लड़ाई क्या है! इनमें कौन-सा जोश भर गया है? कौन-सा उन्माद इनकी नस-नस में समा गया है? यह लोग कहां जा रहे हैं? इस जुलूस को बना कर कौन-सी लड़ाई लड़ने की तैयारी कर रहे हैं? लड़ाई?"

रामनाथ हँस पड़े, "लड़ाई! ब्रिटिश गवर्नमेण्ट से लड़ाई? एक मशीनगन—सिर्फ़ एक मशीनगन! हॉविट्ज़र, गैस, टैंक, टारपीडो, हवाई जहाज। जर्मनी के पास यह सब कुछ था। और इन हिन्दुस्तानियों के पास क्या है? बांस में लगा हुआ एक झण्डा, एक 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा' वाला गाना, एक धरना! और इसके अलावा—कड़ाह में मिट्टी डाल कर नमक बनाओ! बस, इसी बिरते पर ये लोग ब्रिटिश गवर्नमेण्ट से लड़ रहे हैं। आखिर इस सब से होता क्या है? ठीक ही है! अगर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट बल का प्रयोग नहीं करती, तो इसमें बेजा ही क्या है? ये निहत्थे अपाहिज हिन्दुस्तानी उसका बिगाड़ ही क्या सकते हैं? ये किसका क्या बिगाड़ सकते हैं? कुछ नहीं—किसी का कुछ नहीं—बेकार की बात!"

अब जुलूस का सब से महत्त्वपूर्ण भाग रामनाथ के सामने आ गया था। कस्बे के प्रमुख व्यापारी, वकील, डाक्टर आदि संभ्रान्त आदमी पैदल खद्दर के कपड़े पहने चल रहे थे। रामनाथ ने उन्हें देखा—उनमें से कुछ लोगों को पहचाना भी, और एक क्षण के लिए वे अपनी आंखों पर विश्वास न कर सके। उन्होंने मन ही मन कहा, "ये भी! ये अमीर लखपती आदमी! ये भी कांग्रेस के साथ शामिल हैं—शरीफ़ हैं! ये क्यों? इन्हें कौन-सा कष्ट है? कौन-सा दुख है? ये लोग अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं! तो फिर दयानाथ ही अकेला मूर्ख नहीं है; मूर्खों का एक बहुत बड़ा दल है, जो

स्वयम् नष्ट होने के लिए तेजी के साथ बढ़ा चल रहा है ! आखिर ये सब के सब चाहते क्या हैं ? स्वराज्य ? यह स्वराज्य है क्या चीज ? जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा जनता का शासन ! और जनता ? यह अपढ़, मूर्ख और कंगाल जनता ? किसी के भी बरगलाने में यह जनता आ सकती है। इसके माने यह हैं कि जो जितना ही मक्कार, चालाक और बेईमान होगा, वही इनका प्रतिनिधि बन सकेगा और इनका प्रतिनिधि बन कर शासन कर सकेगा ! इस स्वराज्य के यही अर्थ होंगे ! रूस, जर्मनी, इटली ! इन देशों में भी तो, जहां की जनता शिक्षित है, अपना हित-अहित समझ सकती है, यही हो रहा है ?"

जुलूस निकल गया था और रास्ता साफ़ हो रहा था। ड्राइवर ने कार स्टार्ट की; रामनाथ ने अपने सामने देखा—वही सन्नाटा, वही निस्तब्धता ! उन्होंने फिर सोचा, "लेकिन यह सब—यह सब ! इसमें है कुछ जरूर ! इस उन्माद में, इस पागलपन में, ऐसी कोई बात जरूर है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जो अमीर-गरीब, बच्चे-बूढ़े, सभी पर अपना अधिकार जमाए हुए है, जिससे मैं डर रहा हूं, डिप्टी कमिश्नर डर रहा है, यह विश्वविजयी और शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार डर रही है ! आखिर यह क्या है ?—क्यों है ?"

५

शाम को चार बजे प्रभानाथ ने रामनाथ के पास जा कर कहा, "दद्दुआ ! अब आज्ञा दीजिए !"

रामनाथ उस समय अपने कमरे में लेटे थे। उनकी उद्विग्नता वैसी की वैसी ही थी—वे सोच रहे थे, दयानाथ के सम्बन्ध में। सुबह से जो कुछ हुआ, जो कुछ उन्होंने देखा, उससे उन्हें कुछ ऐसा लगने लगा था, मानों उन्होंने दयानाथ के सम्बन्ध में तनिक कड़ाई से काम लिया है। लेकिन फिर भी उनके अन्दरवाला हठी स्वामी और शासक बराबर उनके अन्दरवाले पिता

से लड़ रहा था। वह दयानाथ को दोषी घोषित कर रहा था, और यह अपने अन्दरवाला द्वंद्व उन्हें किसी हद तक खल रहा था। प्रभानाथ की आवाज़ सुन कर वे चौंक उठे। उन्होंने पूछा, "क्या कहा?" और वे उठ कर बैठ गए।

"मैं फतेहपुर जा रहा हूं!" प्रभानाथ ने कहा।

"अरे हां!" यह कह कर उन्होंने कमरे के बाहर देखा, "अभी! अभी तो बहुत तेज़ गरमी है..."

रामनाथ की बात काटते हुए प्रभानाथ ने कहा, "कोई बात नहीं! अगर अभी चलूंगा तो आठ बजे के करीब फतेहपुर पहुंचूंगा।"

"अच्छी बात है!" कह कर रामनाथ ने उसी समय श्यामनाथ के नाम एक पत्र लिखा। पत्र प्रभानाथ को देते हुए उन्होंने कहा, "देखो, यह पत्र श्याम को दे देना, और फतेहपुर में दो दिन से अधिक मत रुकना। समझे!"

प्रभानाथ ने पत्र ले लिया, लेकिन वह चला नहीं। सर झुकाए वह खड़ा रहा। रामनाथ ने पूछा, "क्या बात है—कुछ कहना है?"

"जी!" प्रभानाथ ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "मैं कानपुर में बड़के भइया के यहां दो घण्टे के लिए जाना चाहता हूं।"

"दया के यहां? कुछ काम है?"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ ने कुछ देर चुप रह कर कहा, "नहीं—तुम उसके यहां नहीं जा सकोगे!"

प्रभानाथ ने अपना स्वर दृढ़ करते हुए कहा, "दद्दुआ, आप बड़के भइया के साथ ही नहीं, मेरे साथ भी अन्याय कर रहे हैं!"

रामनाथ ने चौंक कर सर उठाया, "क्या कहा? मैं क्या कर रहा हूं?" उनका स्वर कर्कश था।

"अन्याय! आपने बड़के भइया को बहुत बड़ा दण्ड दिया, एक बहुत

छोटे-से अपराध पर—यदि उसे अपराध कहा जा सकता है, और आप मुझे दण्ड दे रहे हैं बिना अपराध के। यह अन्याय नहीं तो क्या है?"

"मैं तुम्हें किस प्रकार दण्ड दे रहा हूँ?" कड़ी निगाह से प्रभानाथ को देखते हुए रामनाथ ने पूछा।

प्रभानाथ ने अविचलित भाव से कहा, "आप मुझे बड़के भइया के यहां जाने से रोकते हैं। आप मेरी भावना पर, मेरे सुख पर, मेरी इच्छा पर अकारण ही नियन्त्रण लगा रहे हैं। हम लोगों को बड़के भइया के यहां जाने से रोक कर आप बड़के भइया को कष्ट पहुँचाना चाहते हैं, लेकिन आप इस बात पर ध्यान नहीं देते कि उनके यहां न जाकर, उनसे न मिल कर मुझे भी कष्ट होगा।"

रामनाथ उठ खड़े हुए, "तुम दया के यहां नहीं जाओगे—समझे! दया को मैंने—रामनाथ तिवारी ने दण्ड नहीं दिया है, दयानाथ को दण्ड दिया है इस कुल के कर्ता ने, इस कुल की ओर से! जब तक मैं इस कुल का कर्ता हूँ, संचालक हूँ, तब तक मेरी प्रत्येक बात, मेरा प्रत्येक निर्णय, कुल का निर्णय है, उसके प्रत्येक सदस्य का निर्णय है। यह याद रखना कि आज-वाला तुम्हारे पिता का अधिकार कल तुम्हारे बच्चों के साथ तुम्हारा अधि-कार होगा।"

प्रभानाथ सर झुकाए हुए चल दिया। मोटर पर सामान रक्खा जा चुका था।

कानपुर पहुँच कर प्रभा ने घड़ी देखी, उस समय पांच बजे थे। लू उस समय भी तेजी के साथ चल रही थी। गंगा के पुल को पार कर के प्रभानाथ ने कार रोक दी। थरमास से उसने पानी पिया, उसके बाद एक ठंढी सांस लेकर उसने चारों तरफ़ देखा! गहरा सन्नाटा था, इधर-उधर कोई आदमी नजर न आता था। प्रभानाथ ने कार दयानाथ के बंगले की तरफ़ मोड़ दी।

दयानाथ उस समय अपने बंगले में ही था। दयानाथ के कमरे में बैठा हुआ मार्कण्डेय उससे उसके पिता के साथ वाले निर्णय पर तथा उसके भावी

जीवन के सम्बन्ध में बातचीत कर रहा था। प्रभानाथ ने दयानाथ के पैर छुए और मार्कण्डेय से प्रणाम करके वह बैठ गया।

दयानाथ ने बातें बन्द कर दीं। प्रभानाथ से उसने कहा, "कहो प्रभा! कैसे आ गए ?"

"फ़तेहपुर आ रहा हूं! वहां से दो दिन के बाद कलकत्ता जाना है।"

"कलकत्ता जाना है! क्यों ?"

"मझले भइया आ रहे हैं!"

"उमा आ रहा है! कब ?"

"आज के बीस दिन बाद! दद्दुआ ने मुझे रिसीव करने के लिए भेजा है!"

"तुम्हें भेजा है!" दयानाथ कुछ रुका, "ठीक है! वे जा नहीं सकते, काका जी को फ़ुरसत नहीं है! और मैं!—मैं त्याज्य हूं। कुल का शत्रु हूं!"

दयानाथ हंस पड़ा—पर उसकी उस हंसी में एक अजीब तरह का रूखापन था,—"प्रभा दद्दुआ ने तुम्हें मेरे यहां आने की आज्ञा दे दी ?"

"जी नहीं! उन्होंने मुझे आपके यहां आने से रोक दिया था।"

दयानाथ ने प्रभानाथ को गौर से देखा! "और तुम उनकी बात को काट कर चले आए! शायद तुमने अच्छा नहीं किया। तुम उन्हें अच्छी तरह जानते हो, फिर भी तुमने यह किया!"

प्रभा मुस्कराया, "जी हां, मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं! लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि वे मेरी इच्छाओं पर, मेरी भावनाओं पर, मनमाना नियन्त्रण नहीं लगा सकते! उनको कोई अधिकार नहीं कि वे मेरे बड़े भाई को मुझसे छुड़वा दें!"

मार्कण्डेय अभी तक चुप बैठा था। इस बार उसने कहा, "प्रभा! तुम गलती करते हो। जब तक तुम उनके साथ हो, जब तक उनके और तुम्हारे हित-अहित एक हैं, तब तक उन्हें पूरा अधिकार है!"

दयानाथ ने मार्कण्डेय को उत्तर दिया, "क्या कहा ? तुम इस गुलामी

के समर्थक हो ? क्या तुम चाहते हो कि एक आदमी के पागलपन को दस आदमी अपनाकर अपना व्यक्तित्व नष्ट कर दें, उस एक आदमी के गुलाम बन जायें ?"

मार्कण्डेय मानों इस तर्क के लिए तैयार बैठा था, "हां, एक आदमी के पागलपन को दस आदमियों का अपना लेना, और शान्तिपूर्वक उसी एक पागलपन को सत्य मान कर रहना अधिक श्रेयस्कर होगा बनिस्बत इसके कि दस आदमी अपना-अपना पागलपन ले कर लड़ें-झगड़ें और अपनी जिन्दगी कलहपूर्ण बना लें।"

दयानाथ ने जरा गरम हो कर कहा, "मार्कण्डेय ! अगर सत्य और औचित्य की कीमत अशान्ति है, तो मैं उस अशान्ति को उस शान्ति से कहीं अधिक अच्छी समझूंगा जो अपने विश्वास को, भावना की हत्या कर के खरीदी जाती है।"

मार्कण्डेय ने कहा, "दयानाथ ! तुम क्या कह रहे हो ? तुम्हारा विश्वास तुम्हारा है ! दुनिया का नहीं है। तुम्हारी भावना भी तुम्हारी है। दुनिया की नहीं है। तुम्हें यह स्मरण रखना पड़ेगा कि दुनिया में तुम्हारी ही भांति हर एक आदमी का अपना निजी विश्वास है, अपनी निजी भावना है। और यही तुम्हारा निजी विश्वास और निजी भावना दूसरों की नज़र में पागलपन है, क्योंकि दूसरों के विश्वास, दूसरों की भावनाएं बिल्कुल दूसरी हैं। और इसलिए तुम्हारी बात ही बेकार हो जाती है, क्योंकि जिस अधिकार को तुम मांग रहे हो, वही अधिकार तुम्हें दूसरों को भी देना पड़ेगा !"

यह तर्क-वितर्क प्रभानाथ को खल रहा था। एक तो उसे जाने की जल्दी थी, दूसरे यह तर्क उस पर ही केन्द्रित था। उसने घड़ी देखते हुए कहा, "बड़के भइया, आप मुझे तो आज्ञा दें, क्योंकि मुझे फ़तेहपुर जाना है। भौजी से मिल कर वहीं से चला जाऊंगा !"

दयानाथ हंस पड़ा, "कैसे पागलों के बीच में आ पड़े हो ! अरे हां, मैं तुम्हारे पास होने पर तुम्हें बधाई देना तो भूल ही गया था।"

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ। दयानाथ ने फिर कहा, "कलकत्ता जा रहे हो—अच्छा शहर है। जरा घूम हो आओगे। और चाचाजी से मेरा प्रणाम कह देना।"

"बहुत अच्छा।" कह कर प्रभानाथ अन्दर जाने लगा। दयानाथ ने प्रभा के निकट आ कर फिर कहा, "देखो, उमा से मेरी स्थिति समझा देना। बानापुर जाते समय, अगर वह अनुचित न समझे तो मुझसे मिल ले—अगर मैं उस समय तक जेल के बाहर रहा।"

प्रभा ने दयानाथ के चरण छुए और मार्कण्डेय को प्रणाम किया। इसके बाद वह अन्दर चला गया। उसके जाते ही मार्कण्डेय और दयानाथ फिर बातें करने लगे।

६

जिस समय प्रभानाथ फ़तेहपुर पहुंचा, पण्डित श्यामनाथ तिवारी अपने बंगले में नहीं थे। वे क्लब में बैठे ब्रिज खेल रहे थे। नौकर से प्रभानाथ ने श्यामनाथ को अपने आने की सूचना दिलवाई। श्यामनाथ वैसे ही क्लब से उठ कर घर चले आए।

पण्डित श्यामनाथ तिवारी की अवस्था पचपन वर्ष की थी, पर वे पैंतालीस वर्ष से अधिक के न दिखते थे। वे फ़तेहपुर में सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस थे। अपने बड़े भाई के समान ही लम्बे और स्वस्थ, पण्डित श्यामनाथ तिवारी अपनी वीरता के लिए प्रान्त भर में प्रसिद्ध थे। बड़े-बड़े डाकू उनके नाम से थर-थर कांपते थे। पुलिस के कर्मचारी उनसे डरते थे।

श्यामनाथ तिवारी की पत्नी का स्वर्गवास उस समय हुआ, जिस समय उनकी अवस्था चालीस वर्ष की थी। दूसरा विवाह करने के लिए उन पर बहुत ज़ोर डाले गए, पर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। उस समय श्यामनाथ को देख कर कोई भी उनकी अवस्था तीस वर्ष से अधिक न कह सकता था; लेकिन वे चालीस वर्ष के हैं—इसे वे अच्छी तरह जानते थे। इसके

अलावा एक तर्क उनके पास और था—वह यह कि पुलिस की नौकरी खतरे से खाली नहीं है, और एक नवयुवती को विधवा बनने के लिए अपने गले में मढ़ लेना वे अनुचित समझते थे। पर असली कारण दूसरा ही था। श्यामनाथ भावना-प्रधान आदमी थे, और उनका अपनी स्वर्गीया पत्नी के प्रति असीम प्रेम था।

श्यामनाथ तिवारी के कोई सन्तान न थी; पर रामनाथ तिवारी के तीन लड़के थे। रामनाथ के सब से छोटे लड़के प्रभानाथ को ही श्यामनाथ ने अपना लड़का मान लिया था, बिना गोद लिए हुए। श्यामनाथ अपने बड़े भाई को देवता की तरह मानते थे; रामनाथ का कथन उनके लिए वेदवाक्य के समान था, चाहे वह उनकी इच्छा के कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो। रामनाथ को भी श्यामनाथ के प्रति अगाध ममता थी।

श्यामनाथ के हाथ में प्रभानाथ ने पिता का पत्र रख दिया। पत्र को आदि से अन्त तक पढ़ कर श्यामनाथ के मुख पर एक विषाद की छाया घिर आई, "दया ने कांग्रेस ज्वाइन कर लिया! यह तो अच्छी बात नहीं।"

प्रभानाथ ने इस बात का उत्तर देना बेकार समझा।

श्यामनाथ कुछ देर तक सोचते रहे, फिर उन्होंने कहा, "फ़तेहपुर आते हुए तुम दया से मिले थे?"

"जी हां! यद्यपि दद्दुआ ने मुझे वहां जाने से रोक दिया था!"

"भइया ने तुम्हें भी दया के यहां जाने से रोका था!—यह क्यों?" कहते हुए श्यामनाथ ने अपना हाथ मेज पर पटक दिया। "भइया को यह कौन-सा पागलपन सूझा! क्या हम सब लोग दया को छोड़ दें? मैं कभी भी भइया का यह अन्याय नहीं बर्दाश्त कर सकता!"

प्रभानाथ ने मुस्कराते हुए कहा, "यह सब आप दद्दुआ से तै कर लें। लेकिन आप उनसे यह न कह दीजिएगा कि मैं बड़के भइया के यहां गया था!"

"उनसे क्या तै कर लूं—खाक ! अपनी ज़िद वे छोड़ेंगे नहीं । क्या को घर से निकाल दिया । निकाल ही नहीं दिया, एक लाटसाहबी हुक्म जारी कर दिया कि हम लोग सब के सब उससे अपना सम्बन्ध तोड़ लें ! कल ही मैं उन्नाव जा कर उनसे बातचीत करूंगा । इस तरह से कब तक चलता रहेगा।"

प्रभानाथ श्यामनाथ की कमज़ोरी को अच्छी तरह जानता था। उसने कहा, "बेकार आप गरम हो रहे हैं ! दद्दुआ के सामने तो आप के होश-हवास सब गायब हो जाते हैं !"

"चुप बदतमीज़ ! देखना—देख लेना—कल इतवार है । कल ही !"

"लेकिन मुझे तो कल रात ही कलकत्ता के लिए रवाना हो जाना है !"

"अरे हां !—दो-चार दिन बाद चले जाना ! कोई हर्ज है !"

"नहीं काकाजी—दद्दुआ ने क्या लिखा है ? आप तो अपनी सफ़ाई देकर अलग हो जाएंगे, बीतेगी मेरे सर पर !"

श्यामनाथ ने पत्र एक बार फिर पढ़ा । मत्थे पर हाथ लगाते हुए उन्होंने कुछ सोचा, फिर धीरे से बोले, "अच्छी बात है। भइया का तो लाटसाहबी हुक्म चलता है । तो फिर कल ही सही, मैं परसों जाऊंगा !"

चौथा परिच्छेद

१

हुगली नदी के किनारे कलकत्ता नगर अपने वैभव पर उन्नत-मस्तक खड़ा है। हुगली नदी को कलकत्ता के हिन्दू गंगा कहकर उसमें बड़ी भक्ति के साथ स्नान करते हैं और अंग्रेज उसे समुद्र का एक हिस्सा मान कर उसमें छोटे-छोटे जहाज कलकत्ता तक ले आते हैं।

जन-संख्या के अनुसार कलकत्ता ब्रिटिश-साम्राज्य का द्वितीय नगर है, और सन् १९१० तक उसे समस्त भारतवर्ष की राजधानी होने का श्रेय प्राप्त था। इसके साथ ही कलकत्ता का एक और भी ऐतिहासिक महत्त्व है, जिसे अधिकांश लोग उस नगर की चहल-पहल में तथा उसके वैभव के आगे भुला देते हैं। कलकत्ता ही हिन्दुस्तान की गुलामी की पहिली सीढ़ी है—अंग्रेजों ने कलकत्ता से ही हिन्दुस्तान को विजय किया है।

और शायद इसीलिए इस नगर में दानवता के साक्षात् दर्शन होते हैं। एक अनियन्त्रित हाहाकार उस नगर में प्रत्येक क्षण सुन पड़ेगा, करोड़पति व्यापारियों के अन्दरवाली पशुता के दर्शन यहां की वेश्याओं में, कंगालों में और परदेस से पैसा कमाने के लिए आए हुए नित्य ही आत्महत्या करने वाले या विवश भूखों मर जानेवाले बेकारों में हो सकते हैं। ऐश के सभी सामान इस नगर में मौजूद हैं, और यह ऐश मनुष्य मानवता का गला घोंट कर कर रहा है। इस नगर में शान्ति नहीं है, इस नगर में सहानुभूति नहीं है, यहां जो कुछ है, वह आज का पिशाच है और उस पिशाच में गुलाम बनने की प्रबल अभिलाषा है।

और यह धन पाने की अभिलाषा।

यह इस नगर का ही नहीं, यह आज की दुनिया का, आज की संस्कृति का, आज की सभ्यता का, सब से बड़ा अभिशाप है। यह अभिशाप इस नगर

में अपने महान् बीभत्स और नग्न रूप में प्रदर्शित है। कोई इस बात को नहीं सोचता कि किस उपाय से यह धन प्राप्त किया जाता है, इस बात पर सोचने का किसी के पास समय भी तो नहीं है। हर समय एक आवाज़--पैसा !" चोरी, डकैती, झूठ, दगाबाजी, हत्या। अपना शरीर बेच कर, अपनी आत्मा बेचकर, अपनी मनुष्यता बेच कर। धन ही अस्तित्व है, धन ही स्वामी है, धन ही परमेश्वर है।

यह धन को नृशंसता इस नगर को एक भयानक अभिशाप बन कर घेरे है। रोज सुबह कंगालों का झुण्ड उस दिन जीवित रहने की चिन्ता को लेकर निकलता है; दर-दर की ठोकरें खाते हुए, आशीर्वाद बांटते हुए वह उस नगर के चक्कर लगाता है। उसके सामने सम्पन्न आदमी हंसते हुए और अठखेलियां करते हुए निकलते हैं, और वह उन लोगों को देखता है। पर वह उन पर ईर्ष्या नहीं करता; वह उनकी जय मनाता है, उनके सामने नाक रगड़ता है। उसे अपने जीवित रहने के अधिकार का पता नहीं--वह लुटेरों की कृपा पर ही अपने जीवन को निर्भर समझता है। और रात के समय मैदानों में, सड़कों पर, नालियों पर, जहां भी जगह मिल जाय, पड़ रहता है--सुबह जीवित उठ कर कुत्तों की जिन्दगी बिताने के लिए, या रात में ही भूख और ठंढ से मर जाने के लिए।

रोज सुबह कुलियों का झुण्ड अपने काम पर जाता है, दिन भर वह मशीनों के नीचे पिसता है भावना-हीन, चेतनाहीन ! और रोज शाम को वह लौटता है, थका-मांदा, टूटा हुआ ! इसके बाद रात ! थकावट से चूर आदमी का या तो ताड़ी अथवा सड़ी शराब पीकर बीवी-बच्चों को उत्पीड़ित करना; या फिर सड़ा-बासी, रूखा-सूखा खाकर पेट भरना और मुरदे की तरह एक संकरी और गन्दी कोठरी में, जिसमें चार या पांच आदमी रहते हैं, एक कोने में लुढ़क जाना ! यही उसका नित्य का जीवन है।

रोज सुबह क्लर्कों का झुण्ड बच्चों के रुदन के बीच में उठता है, अपने सर पर दिन भर की गुलामी के कार्यक्रम को लिए हुए। दफ्तर जाना है, साहब

का मुकाबिला करना है, उसकी गालियां सुननी हैं, ठोकरें खानी हैं। और रोज शाम के समय वह चिन्तित और अशान्त लौटता है। लम्बी गृहस्थी के भार से उसका मस्तक झुका हुआ है, बच्चों को गुलामी के लिए तैयार करने के लिए उसे शिक्षा देनी है। माता, विधवा दादी, बहिन और न जाने कितने आश्रित उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं—उसकी नौकरी की, उसकी कमाई की खैर मना रहे हैं।

और इसके बाद ! इसके बाद आते हैं छोटे-मोटे दूकानदार जो सुबह से शाम तक पशु की तरह अपनी दूकान के खूंटे में बंध कर पैसा पैदा करते हैं। और पैसा पैदा करने के लिए मानों उनकी यह मेहनत अकेले काफ़ी नहीं होती; उन्हें झूठ, फ़रेब, दगाबाजी का अवलम्ब लेना होता है।

और फिर इसके बाद ! लम्बे-लम्बे व्यापारी और पूंजीपति, जिनका एक-मात्र उद्देश्य है पैसा पैदा करना, दुनिया को लूटना, मनुष्यों को भूखों मारना। रुपया पैदा करने के लिए ये सब कुछ कर सकते हैं, इनके पास न धर्म है, न ईमान है। इनकी शक्ति है इनका साहस—खुल कर खेलना। इन पर कोई बन्धन नहीं है, इनके लिए कोई नियम नहीं हैं।

ये वेश्याएं, ये शराबखाने, ये थियेटर, ये सिनेमा, ये घुड़दौड़ और कितने ही ऐसे सामान इन्हीं लोगों की कृपा के फल हैं, इन्हीं लोगों को प्रसन्न करने के लिए कलकत्ता का जन-समुदाय नरक का जीवन व्यतीत कर रहा है, इन्हीं लोगों की दानवता को तुष्ट करने के लिए मनुष्य ने अपने को पशु से भी गया-बीता बना लिया है।

२

युक्त-प्रान्त से कलकत्ता जानेवाले रईस और ताल्लुकेदार अक्सर चौरंगी के मशहूर प्रिंसेज होटल में ठहरा करते हैं। प्रभानाथ ने उन्नाव से ही उस होटल में दो कमरों का एक सूट रिजर्व करा लिया था। अपनी पुरानी कार देकर उसने नई कार भी खरीद ली। अब उसके सामने चहल-पहल से भरा

विराट् कलकत्ता नगर था और उसके सामने उसकी छः सिलेण्डर की नई ब्युइक कार थी।

चौथे दिन प्रभानाथ लैंसडाउन रोड पर अपनी कार लिए जा रहा था--लेक की तरफ़ घूमने के लिए। गाड़ी की स्पीड काफ़ी धीमी थी, प्रभानाथ अपने विचारों में मग्न था। प्रभानाथ को कलकत्ता अच्छा नहीं लगा था, कृत्रिमता के उस विशाल नगर में स्वच्छन्द वातावरण में पले हुए नवयुवक का मानों दम घुट रहा था। जिस उल्लास और उत्साह को ले कर वह चला था, चार दिन में ही वह ठंढा पड़ गया था। कलकत्ता की दानवता ने उस भोले नवयुवक की आत्मा पर एक प्रहार-सा किया। उसे कलकत्ता के अनियंत्रित हाहाकार से अरुचि हो रही थी--वह सोच रहा था।

उसने कार एक सूनी गली में मोड़ दी। भवानीपुर के उस हिस्से में उसे एक प्रकार की शान्ति-सी मिली। वह कुछ थोड़ी दूर ही गया होगा कि उसे पिस्तौल की एक आवाज़ सुनाई पड़ी। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी। प्रभानाथ अपने विचारों से चौंक उठा। जिस ओर से ये आवाज़ें आईं, उसने उस ओर देखा। वह एक मकान का पिछवाड़ा था, जिसका सामना लैंसडाउन रोड पर था।

और उसने देखा कि उसकी मोटर के सामने करीब पांच गज की दूरी पर एक युवती पिस्तौल ताने खड़ी है। कार की स्पीड वैसे भी तेज़ न थी--प्रभानाथ ने कार रोक दी। युवती ने झपट कर कार की बाईं ओर वाला दरवाज़ा खोला और वह प्रभानाथ के बगल में बैठ गई। उसके दाहिने हाथ वाली पिस्तौल की नली प्रभानाथ की पसलियों से लगी थी।

"तेज़ी के साथ चलो--एकदम! पुलिस पीछे है।" भर्राए हुए गले से युवती ने कहा।

पिस्तौल की आवाज़ें फिर हुईं, प्रभानाथ ने कार तेज़ कर दी। कार तेज़ी के साथ चली जा रही थी और युवती का पिस्तौल प्रभानाथ की पसलियों में चुभ रहा था। प्रभानाथ ने कनखियों से उस युवती की ओर देखा। वह

करीब बीस या बाईस वर्ष की बंगाली युवती थी और उसके मुख पर कठोरता थी। उसकी आंखें नीले चश्मे से ढकी थीं, और ढलती हुई संध्या के अंधकार में प्रभानाथ उन आंखों को देख न पा रहा था। पर उसे यह विश्वास हो गया था कि वे आंखें बड़ी-बड़ी हैं और प्रकाशवान हैं। युवती मझोले कद की थी और दुबली थी; उसका रंग गेहुंआ था और यदि वह कुरूप न थी, तो वह सुन्दर भी नहीं थी। प्रभानाथ तेजी से गाड़ी चलाए जा रहा था; अब वह बालीगंज लेक के करीब पहुंच गया था। धीरे-धीरे उसे अनुभव हुआ कि युवती का हाथ कुछ शिथिल होने लगा है। स्टियरिंग व्हील उसके दाहिने हाथ में था, एक झटके के साथ उसने अपने बाएं हाथ से युवती का हाथ पकड़ कर ऐंठ दिया। पिस्तौल युवती के हाथ से छूट पड़ी। पिस्तौल उठाकर प्रभानाथ ने अपनी जेब में रख ली, मुस्कराते हुए उसने युवती से कहा, "कहिए! अब आप क्या चाहती हैं?"

युवती अपने विचारों में मग्न थी; सम्भवतः वह उस काण्ड पर ही सोच रही थी जिससे वह बच कर आई थी। इसी कारण उसका हाथ ढीला पड़ गया था। प्रभानाथ के इस साहस के काम की उसने कल्पना न की थी और इसलिए तैयार भी न थी। और प्रभानाथ ने इतनी शीघ्रता से यह सब किया था कि वह स्तब्ध तथा विमूढ़ रह गई। उसने प्रभानाथ की ओर आश्चर्य से देखा, पर प्रभानाथ की बात का कोई उत्तर न दिया।

इस बार प्रभानाथ ने अंग्रेजी में कहा, "मैंने आप से पूछा कि अब आप के क्या इरादे हैं! आप शायद क्रांतिकारी हैं!"

युवती ने भी अंग्रेजी में उत्तर दिया, "आप जो चाहें अनुमान कर सकते हैं!"

प्रभानाथ मुस्कराया, "एक तो क्रांतिकारी होना ही बहुत बड़ा अपराध है, फिर क्रांतिकारी हो कर असावधानी करना! यह उससे भी बड़ा अपराध है!"

युवती चुपचाप प्रभानाथ को एकटक देख रही थी। प्रभानाथ ने फिर

कहा, "और हर एक शान्ति-प्रिय, राजभक्त और नेक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपराधी को पुलिस के हवाले कर दे!"

युवती ने प्रभानाथ की ओर से मुंह फेर लिया। उसने केवल इतना कहा, "हां, हर एक शान्ति-प्रिय राजभक्त कायर गुलाम का यह कर्तव्य है कि वह विदेशी सरकार की सहायता करे!"

प्रभानाथ हंस पड़ा। "खूब कहा! शाबाश! लेकिन इससे मेरे प्रश्न का उत्तर तो नहीं मिला। मैंने आपसे पूछा कि आपके क्या इरादे हैं? मेरी कार में इतना पेट्रोल नहीं कि मैं इस कलकत्ता नगर का चक्कर लगाता फिरूं और फिर इस नगर से मैं भली भांति परिचित भी नहीं हूं!"

युवती ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप बैठी थी।

प्रभानाथ ने फिर कहा, "बोलिए न! आप कहां चलेंगी?"

"आप मुझे पुलिस-स्टेशन ले चलना चाहते हैं न! वहीं चलिए!" युवती ने कहा।

प्रभानाथ मुस्कराया, "जाने भी दीजिए—सरकार को एहसानमन्द बनाने की अभी मुझे कोई जरूरत नहीं! घर में एक नहीं, दो-दो आदमी यह काम बड़ी खूबी के साथ कर रहे हैं।"

युवती ने आश्चर्य से प्रभानाथ को देखा, "क्या कहा? मैं समझी नहीं!"

"यही कि मेरे पिता और मेरे काका यह काम कर रहे हैं। घर में दो राजभक्त जरूरत से ज्यादा हैं।"

इस बार युवती ने गौर से प्रभानाथ को देखा। लम्बा और गोरा-सा खूबसूरत नवयुवक—मुख पर तेज। आंखों में चमक, चौड़ा सीना और बातचीत में एक लापरवाही की अजीब मस्ती! युवती कुछ क्षणों के लिए अपनी बगल में बैठे हुए नवयुवक को देखती रही।

प्रभानाथ युवती को न देख रहा था, फिर भी उसे उसकी दृष्टि का पता

था। कार उस समय तक लेक का एक चक्कर लगा चुकी थी। उसने फिर कहा, "तो फिर आपने बतलाया नहीं कि मैं आपको कहां पहुंचा दूं। जिस काम को मुझे जबरदस्ती अपने ऊपर लेना पड़ा है, अब उसे प्रसन्नतापूर्वक पूरा भी कर देना चाहता हूं!"

युवती एकाएक कांप उठी! अभी तक वह शांत थी, अब एकाएक उसे उस खतरे की याद हो आई, जिससे वह निकल कर आई थी। उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा, "मुझे......मुझे श्यामबाजार...नहीं—नहीं श्यामबाजार में ही ले चलिए!"

प्रभानाथ ने अपनी कार रसा रोड से श्यामबाज़ार की तरफ़ मोड़ दी! उसने फिर पूछा, "क्या उस घर में और भी लोग थे ?"

"हां, दो और! लेकिन पुलिस के आते ही एक निकल भागा था, और दूसरे के मत्थे पर दो गोलियां लगीं। उफ़!......" युवती कांप रही थी।

प्रभानाथ ने फिर कोई बात न की, वह कुछ सोचने लगा। धरमतल्ला के पास पहुंच कर उसने फिर कहा, "क्या पुलिस आप को पहचानती है?"

"शायद नहीं!"

"फिर उसने उस मकान पर छापा क्यों मारा?"

"मैं ठीक नहीं कह सकती। शायद उस मकान पर उसका शक था!"

"क्यों ? वह मकान किसका है?"

"किराए का। हम लोगों की वहां बैठक भर हुआ करती थी। हां, हमारे हथियार भी वहीं रहते थे, लेकिन वहां रहता कोई नहीं था।"

"यह बात है!" कह कर प्रभानाथ मौन हो गया।

श्यामबाज़ार के पास पहुंच कर प्रभानाथ ने गाड़ी धीमी करते हुए कहा, "देखिए, आप यहीं कहीं उतर जाइए—शायद मेरा आपका मकान देखना उचित न होगा।"

"क्यों?"

"इसलिए कि आपको बचानेवाला अभी तक आपका पूरा पता नहीं जानता।" यह कह कर प्रभानाथ ने कार रोक दी। युवती कार से उतरी नहीं। प्रभानाथ ने फिर कहा, "देखिए, मैं आपका नाम नहीं जानता, आपका पता नहीं जानता; और मैं आपका नाम और पता पूछूंगा भी नहीं। मुझे आपके साहस पर आश्चर्य है, आपके प्रति मुझमें एक प्रकार के आदर का भाव जाग उठा है। लेकिन अगर आपको मेरी किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता पड़े, ऐसी सहायता जो मैं बिना जोखिम में पड़े कर सकता हूं, तो आप मुझ से सहर्ष ले सकती हैं!" यह कह कर प्रभानाथ ने अपने पर्स से अपना कार्ड निकाल कर युवती को दे दिया। उसके कार्ड पर उसका कलकत्ता-वाला पता लिखा था।

युवती ने कार्ड ले लिया और प्रभानाथ की ओर कृतज्ञता से देखा। वह कार से उतर पड़ी, उसने प्रभानाथ को आदरपूर्वक नमस्कार किया और वह चल दी।

एकाएक प्रभानाथ को युवती के पिस्तौल की याद हो आई। उसने युवती को बुला कर अपनी जेब की तरफ़ इशारा किया, "और यह! क्या इसकी आपको कोई आवश्यकता पड़ेगी?"

"इस भीड़ में इसे किस तरह ले जाऊंगी?" युवती के स्वर में एक प्रकार की अनिश्चिन्तता थी।

"और शायद अभी इसका आपके पास होना खतरनाक भी साबित हो! खैर मेरे पास यह आपकी अमानत है, जब जी चाहे ले लीजिएगा।"

३

युवती को श्यामबाज़ार में उतार कर प्रभानाथ अपने होटल में लौट आया। होटल में पहुंच कर उसने देखा कि अभी केवल साढ़े आठ बजे हैं। बिजली का पंखा खोल कर वह एक आरामकुर्सी पर बैठ गया, और सोचने लगा। वह धीरे-धीरे उस नाटक की महत्ता का अनुभव करने लगा, जिसके

अभिनय में एक आकस्मिक परन्तु प्रमुख अभिनय कर के वह लौटा था। उसने मन ही मन पूछा, "लेकिन क्या यही अन्त है?"

और एकाएक उस युवती की शक्ल, जिसे उसने पूरी तरह देखा भी न था, उसकी आंखों के आगे नाच उठी। वह दुबला-पतला शरीर, लम्बा और निस्तेज मुख, बड़ी-बड़ी चमकती हुई आंखें! वह युवती सुन्दरी न थी, प्रभानाथ ने इस विषय में अपना निर्णय मन ही मन दे दिया था; पर वह कुरूप है--यह वह किसी हालत में स्वीकार न कर सकता था। और उस युवती का स्वर! अजीब तरह का, कुछ फटा हुआ, कुछ दृढ़ और कुछ मीठा! आखिर वह युवती कौन थी? प्रभानाथ ने सुन रक्खा था कि बंगाल में क्रान्तिकारियों का एक बहुत बड़ा दल है, और उस दल में स्त्रियां भी हैं। उसने पढ़ा था कि वे स्त्रियां भी अपने प्राणों की बाजी लगा कर काम कर रही हैं। पर उसने कभी गम्भीरतापूर्वक इस बात पर न सोचा था, सोचने की शायद उसे जरूरत भी नहीं पड़ी थी। उसके कुल और समाज में स्त्रियां कोमल, परतन्त्र तथा विवश होती थीं; वे ममता की मूर्ति थीं, उनकी मुस्कराहट में करुणा थी, उनके जीवन में त्याग था। और प्रयाग के सभ्य समाज के एक अंग में उसने देखा था कि स्त्री विलासिता और वासना की प्रतिमूर्ति है। वह नाचती है, गाती है, लुभाती है और अपने इस कृत्रिम स्वर्ग में लोगों को डुबा कर वह नरक दिखला देती है। स्त्री के उस रूप को, जिसे उसने उस दिन देखा था, पहले कभी न जाना था।

प्रभानाथ ने पढ़ा था कि स्त्री शक्ति है, वह दुर्गा है, वह काली है। पर उसने केवल पढ़ा भर था, उस दिन उसने काली के साक्षात् दर्शन भी किए। यह करुणा और विलासिता की मूर्ति नारी--यह प्राणों पर खेलने कैसे निकल आई?

और किसी ने प्रभानाथ के अन्दर से कहा, "इसमें आश्चर्य ही क्या है? नारी मिटना जानती है, मरना जानती है!"

प्रभानाथ मुस्कराया, "नारी मिटना जानती है, मरना जानती है; पर

वह मारना कब से जान गई है? दूसरों के खून से हाथ रंगना, पिस्तौल ले कर बाहर निकल आना--उफ़!"

एकाएक प्रभानाथ को युवती के पिस्तौल की याद हो आई, जो उसकी जेब में पड़ा था। वह उठा, खूंटी पर टंगे कोट की जेब से उसने पिस्तौल निकाली, पिस्तौल को उसने गौर से देखा। वह एक सस्ते मेल की जापानी पिस्तौल थी, छः कारतूस उसमें मौजूद थे।

प्रभानाथ ने अभी तक कीमती और अच्छी पिस्तौलें ही देखी थीं। उसके पिता के पास तीन पिस्तौलें थीं--ताल्लुकेदार होने के कारण पण्डित रामनाथ तिवारी को लाइसेंस की जरूरत नहीं थी। उसके पास भी एक पिस्तौल थी, लेकिन उसे लाइसेंस लेना पड़ा था। उसकी पिस्तौल कोल्ट थी--कीमती और निशाने की पक्की! प्रभानाथ ने उलट-पुलट कर उस पिस्तौल को देखा, फिर धीरे से उसने उस पिस्तौल को अपने ड्रार में बन्द कर दिया। उसके पास जो लाइसेंस था, उसके अनुसार वह बंगाल में अपनी पिस्तौल नहीं ला सकता था।

उस रात प्रभानाथ का सिनेमा जाने का प्रोग्राम था, उसने टिकट मंगवा लिया था। वह उठा, लेकिन उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके पैरों में बल नहीं है, उसके शरीर में बल नहीं, उसके प्राणों में बल नहीं। एक अजीब तरह की थकावट उसमें भर गई है।

४

दूसरे दिन प्रभानाथ देर से सो कर उठा; रात भर वह सपने देखता रहा, और ये सपने सुखद न थे।

सुबह की चाय उसने अपने कमरे में ही मंगा ली। नौकर जिस समय चाय की ट्रे लाया, उसके हाथ में कागज का एक टुकड़ा था, जिस पर अंग्रेजी में लिखा था, "वीणा मुकर्जी।"

प्रभानाथ के सामने रातवाली बंगाली युवती की तस्वीर आ गई। तो

उस स्त्री का नाम वीणा मुकर्जी था? नौकर ने कहा, "सरकार! क्या हुक्म है?"

"यहीं भेज दो, और साथ में एक ट्रे चाय और!"

नौकर चला गया। थोड़ी देर बाद वीणा ने प्रभानाथ के कमरे में प्रवेश किया, पर वह अकेली न थी। उसके साथ एक और स्त्री थी। इन दोनों के कमरे में प्रवेश करते ही प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ, "आइए--नमस्कार!" कह कर उन दोनों का उसने स्वागत किया।

"नमस्कार!" कह कर दोनों युवतियां कुर्सियों पर बैठ गईं।

वीणा ने अपने साथ वाली युवती की ओर इशारा करते हुए, "ये मेरी सखी श्री प्रतिभा दे हैं। और ये हैं मिस्टर प्रभानाथ, जिनकी बातें हम कर रही थीं!"

"आपसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई!" प्रतिभा ने कहा।

"मुझे भी आपसे मिल कर प्रसन्नता हुई!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया, इसके बाद उसने गौर से प्रतिभा को देखा। सांवला-सा लम्बा मुख, गाल पिचके हुए, आंखें धँसी हुई और उन आंखों पर मोटे-मोटे कांचों वाला चश्मा। मझोले कद की दुबली-सी स्त्री थी। उसके मुख पर कठोरता थी, उसकी आंखों में कठोरता थी, उसके शरीर में कठोरता थी, उसके स्वर में कठोरता थी--उसके व्यक्तित्व में कठोरता थी।

प्रभानाथ ने प्रतिभा से अपनी आंखें हटा कर वीणा को देखा--दोनों में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों में ही कठोरता थी, दोनों में ही पुरुषत्व था। अन्तर केवल इतना था कि वीणा इन दोनों में अधिक अच्छी दिखती थी, वीणा की आंखों में कठोरता होते हुए भी चमक थी, तरलता थी। वीणा के मुख वाली कठोरता में निहित एक प्रकार की कोमलता थी जो कभी-कभी उभर आती थी, उसमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण था, जिसे प्रभानाथ समझ न पा रहा था। वीणा के स्वर में भी कृत्रिम कठोरता के अन्दर सरसता थी--भावना थी।

नौकर चाय की एक और ट्रे ला कर रख गया। प्रभानाथ ने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "मैं अभी चाय पीने बैठा ही था कि आप लोग आ गईं! आप लोग भी चाय पीजिएगा न!" कुछ रुक कर उसने फिर कहा, "और आप लोगों के मौजूद रहते मैं अपने हाथ से चाय तैयार करूँ, यह तो ठीक न होगा!"

प्रतिभा ने उत्तर दिया, "क्यों?—इसलिए कि यह सब काम अभी तक स्त्री करती आई है; आप लोगों के लिए स्त्री सुख का सामान जुटाने की साधन है!" और मानों अपनी इस कटुता पर वह स्वयम् ज़ोर से हँस पड़ी।

लेकिन वीणा ने चाय तैयार कर दी। उसने एक प्याला प्रभानाथ को दिया।

वीणा के हाथ से चाय का प्याला लेते हुए प्रभानाथ ने कहा, "आपने गलत नहीं कहा; स्त्री सुख का सामान जुटाने की साधन ही नहीं है, वह स्वयम् सुख है!"

"स्त्री सुख है या उसका शरीर सुख है, उसकी सुन्दरता सुख है? स्त्री का रूप उससे छीन लो, उसकी मोहिनी उससे हटा लो, और फिर? फिर वही स्त्री तुम्हारे वास्ते नरक बन जायगी!" प्रतिभा के स्वर में एक अजीब तरह की कर्कशता थी।

प्रतिभा के इस कथन से, उसके स्वर की कर्कशता से प्रभानाथ सहम-सा गया। उसने एक बार फिर गौर से प्रतिभा को देखा और वह घबरा गया। अचानक उसका ध्यान प्रतिभा की उम्र पर गया, उसकी अवस्था करीब पचीस वर्ष की थी। एकाएक उसके मन में यह प्रश्न उठा, "क्या ये दोनों युवतियां अभी तक अविवाहित हैं और अगर अविवाहित हैं तो क्यों? और अगर नहीं हैं तो ये इतनी स्वतंत्र किस प्रकार हैं?"

प्रभानाथ ने प्रतिभा की उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, शायद उसके पास कोई अच्छा उत्तर था भी नहीं। वह चुपचाप चाय पीने लगा। प्रतिभा भी चुपचाप चाय पी रही थी। यह मौन वीणा को किसी हद तक अप्रिय लग रहा

था; पर वह भी मौन रहने को विवश थी। चाय समाप्त हो गई। प्रभानाथ ने अपना प्याला रखते हुए कहा, "तो फिर!"

इस "तो फिर!" के अन्दरवाले प्रश्न को प्रतिभा समझी, वीणा नहीं। प्रतिभा ने कहा, "हम लोग अपनी पिस्तौल वापस लेने आई हैं और साथ ही आपको साहस के लिए बधाई देने आई हैं।"

प्रभानाथ मुस्कराया, "मेरे साहस पर आप लोग मुझे बधाई देने आई हैं? धन्यवाद! पर मैं समझता हूं कि बधाई मुझे देनी चाहिए, आपको नहीं। आप लोग स्त्री होकर प्राणों का खेल खेल रही हैं!"

प्रतिभा पर प्रभानाथ की मुस्कराहट का कोई असर नहीं पड़ा। उसी गम्भीरता और शुष्कता के साथ उसने कहा, "यह इसलिए कि हमारे देश के नवयुवक नपुंसक और कायर हैं; न उनमें साहस है और न उनमें स्वाभिमान है!"

"शायद आप ठीक कहती हैं।" प्रभानाथ इस सम्बन्ध में अधिक तर्क नहीं करना चाहता था।

थोड़ी देर तक फिर मौन छाया रहा। प्रभानाथ ने कुछ देर पहले तर्क-वितर्क को बचा दिया था, लेकिन उससे रहा न गया। उसके अन्दरवाली उत्कण्ठा, उसके अन्दरवाला कौतूहल और उसके अन्दरवाला मानव जानना चाहता था कि क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है। उस मौन को प्रभानाथ ने तोड़ा, "आखिर यह सब क्यों? आप लोगों ने जो मार्ग अपनाया है, उससे होगा क्या? क्या वास्तव में आप समझती हैं कि इस मार्ग पर चल कर आप लोग कुछ कर सकेंगी—आप लोगों को कोई सफलता मिलेगी?"

इस बार वीणा के बोलने की बारी थी, "हम लोग कुछ कर सकेंगी या नहीं, इसको जानने की मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं। अन्त को किसने जाना है—कोई बतला सकता है? फिर उस अन्त की चिन्ता ही क्यों की जाय?"

इस उत्तर से प्रभानाथ सकपका गया। अजीब तरह की स्त्री थी वह,

जिसने यह उत्तर दिया था, और अजीब तरह का उसका तर्क था। फिर भी उसने कहा, "मैं मानता हूँ कि अन्त को कोई नहीं जान सका है, पर उसकी कल्पना तो की जा सकती है। कल्पना करने के लिए ही तो यह बुद्धि हमें मिली है।"

"लेकिन तुम्हारी यह कल्पना सही है या गलत है—इसका निर्णय कौन करेगा? तुम जिस वातावरण में रह रहे हो, जिस तरह की शिक्षा तुम पा रहे हो, जिस दृष्टिकोण को तुम्हारे सामने पेश किया जा रहा है, उस सब का असर तुम्हारी कल्पना पर पड़ता है या नहीं?" वीणा ने पूछा।

प्रभानाथ ने देखा कि वे स्त्रियां, जिनसे वह बातें कर रहा है, काफ़ी आगे बढ़ी हुई हैं; फिर भी अपनी पराजय, और खास तौर से स्त्रियों के हाथ से, उसे स्वीकार न थी। उसने कहा, "पर वास्तविकता के प्रति अन्धे होना भी तो अच्छा नहीं है! हमें वास्तविकता को देखना ही पड़ेगा। इस इतनी बड़ी ब्रिटिश सरकार को, जिसके पास बड़े-से-बड़े विनाशकारी अस्त्र-शस्त्र मौजूद हैं, थोड़े से नौजवान, जिनके पास निशाने के पक्के हथियार तक नहीं हैं, किस प्रकार के बल से हरा सकेंगे? आप एक आदमी को मार देंगी, लेकिन इससे क्या? और जिस आदमी को आप मार देंगी, बहुत सम्भव है, वह बेचारा उतने बड़े दण्ड का भागी भी न हो जो आप उसे देंगी। फिर यह सरकार एक आदमी की जान का बदला दस आदमियों की जान से लेगी, महज अपनी शान, अपना गौरव कायम रखने के लिए।"

वीणा हँस पड़ी, "हां, आप ठीक कहते हैं। वास्तविकता को भुलाना ठीक नहीं। और मैं तो केवल एक वास्तविकता जानती हूं; वह यह कि हम सब गुलाम हैं—पशुओं से गये-बीते हैं। गुलाम को अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं, उसकी जिन्दगी दूसरों के वास्ते है। उस जिन्दगी से फ़ायदा ही क्या? दस नहीं; अगर सौ, बल्कि हजार आदमी मारे जायें, तो मुझे खुशी होगी। मैं समझूंगी कि दुनिया में हजार गुलामों की कमी हुई।"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा को देखा। भावना के आवेश में उसने

बहुत भयानक बात कह डाली थी, लेकिन उस बात में रक्त को जमा देने-वाली भयानकता के साथ उससे अधिक ठंढा और कुरूप सत्य था। वह एक-टक वीणा को देखता रहा।

प्रतिभा प्रभानाथ की यह मुद्रा देख कर मुस्कराई, "बहुत सम्भव है, आप को हमारी बातें कुछ विचित्र-सी लगें, आप हमारी बातों से सहमत न हों। आपको बहलाने के लिए दुनिया में बहुत-कुछ है। सुख-वैभव, उल्लास-विलास, सभी कुछ ! लेकिन हमारे सामने सत्य है, महाकुरूप सत्य ! हमारे सामने भूख, बेकारी, अपमान और पशुता का जीवन है। हम लोग लाख कोशिश करने पर भी अन्धे नहीं बन सकते !"

प्रभानाथ कह उठा, "मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, जरा भी नहीं समझ पा रहा हूँ ! मैंने कभी इस पहलू पर सोचा ही नहीं !" और वह उठ खड़ा हुआ। ड्रार से पिस्तौल निकाल कर उसने सामने मेज पर रख दी। उसने कहा, "लीजिए !"

वीणा ने पिस्तौल उठा कर अपने झोले में डाल ली। एकाएक उसे खयाल हो आया कि जो कुछ बातें अभी हुईं, उनसे बहुत सम्भव है कि प्रभानाथ के दिल को आघात पहुँचा हो। उसने मुस्कराते हुए कहा, "हम लोगों की बात का बुरा न मानिएगा—जो कुछ हमने कहा, आवेश में आ कर कहा; आपको दुखाने के लिए ज़रा भी नहीं !"

प्रभानाथ को भी मुस्कराना पड़ा, "नहीं—नहीं—मैंने एक नया दृष्टिकोण देखा, जो शायद ठीक हो। आप निःसंकोच रहें, मुझे बुरी लगने के स्थान पर यह बातचीत अच्छी ही लगी।"

प्रतिभा और वीणा उठ खड़ी हुईं। वीणा ने चलते हुए कहा, "क्या फिर कभी हम लोग आपके यहां आ सकती हैं? आप अभी कितने दिन और कलकत्ता रहिएगा?"

"मैं कह नहीं सकता, लेकिन अभी कम से कम पन्द्रह दिन तो यहां रहना ही होगा; और रही आप लोगों के आने की बात, वह मैं आपसे कभी-

कभी आ जाने के लिए कहना ही चाहता था, लेकिन संकोचवश कह नहीं सका।"

५

वे दोनों युवतियां चली गईं और प्रभानाथ अकेला रह गया। अब उसका मन भारी न था, उसके शरीर में स्फूर्ति थी, उसकी विचार-धारा में हल-चल थी। उसने एक नई दुनिया देखी, एक नया दृष्टिकोण देखा। वह उठ खड़ा हुआ।

फोन करने के लिए वह नीचे उतरा। फोन करनेवाले कमरे में पहुंच कर उसने देखा कि एक दुबला-सा बंगाली युवक वहां के बंगाली क्लर्क से बातें कर रहा है। बंगाली क्लर्क ने कहा, "नहीं, अब मेरे पास रुपया नहीं है। अभी दस दिन पहले तुम पांच रुपए ले गए थे, वही वापस नहीं मिले। मैं कहां से दूं?"

उस युवक ने कहा, "सिर्फ़ दो रुपए! मा की हालत बहुत खराब है। सवा रुपए दवा के लिए और बारह आने पथ्य के लिए। बड़ी दया होगी। मैं आपका सब रुपया अदा कर दूंगा।"

उस बंगाली क्लर्क ने उस युवक की ओर बड़ी विवशता की दृष्टि से देखते हुए कहा, "नहीं सोमेन—मेरे पास कुल बारह आने पैसे हैं। भला चालीस रुपये महीने की नौकरी कर के और कलकत्ता में रह कर मैं बचा ही क्या सकता हूं?"

प्रभानाथ ने उस युवक को देखा। एक मोटी और मैली धोती, और एक कुरता। उसके पैरों के चप्पल जवाब देने लगे थे। पर शक्ल से वह पढ़ा-लिखा मालूम होता था। प्रभानाथ ने क्लर्क के पास जाकर कहा, "माफ़ कीजिएगा—क्या बात है?"

प्रभानाथ की इस दस्तन्दाजी पर उस समय उस बंगाली क्लर्क ने बुरा नहीं माना। उसने एक ठंडी सांस लेते हुए कहा, "क्या बतलाऊं—यह मेरा

दूर का भतीजा है, एम० ए० पास है। लेकिन इससे क्या ? एक पैसा नहीं पैदा करता, दर-दर की ठोकरें खा रहा है।"

उस नवयुवक की आंखों में आंसू थे। उसने कहा, "इसमें मेरा क्या दोष है ? मेरे भाग्य का दोष है। कहीं भी तो नौकरी नहीं मिलती, बीस-पचीस की भी नहीं—" प्रभानाथ की ओर देखते हुए उसने कहा, "आप ही बतलाइए, नौकरी करने के लिए मैं तैयार हूं, दिन भर इस शहर की धूल फांकता हूं, चक्कर लगाता हूं, लेकिन नौकरी नहीं मिलती!"

"फिर ?" प्रभानाथ ने पूछा।

क्लर्क ने कहा, "और मैं चालीस रुपया महीना पा रहा हूं, पत्नी, चार बच्चे, और एक विधवा बहिन! भला बतलाइए, मैं किस तरह से जिन्दा हूं—यह मैं ही जानता हूं। और इसकी मा बीमार है—यह भूखों मर रहा है। मा के लिए दवा नहीं है। हे भगवान्!" यह कह कर उसने अपनी जेब से बारह आने निकाल कर सोमेन के आगे रख दिए, "ले जाओ, केवल इतना ही है।"

सोमेन ने बारह आने पैसों को एक बार देखा। ऐसा मालूम होता था कि वह उन्हीं बारह आने पैसों को ले लेगा। पर उसने एकाएक अपने को रोका—उसने एक ठंढी सांस ली और वहां से चल दिया।

प्रभानाथ ने टेलीफोन नहीं किया, लपक कर उसने दरवाजे से निकलते हुए सोमेन को पकड़ लिया। उसने कहा, "देखो, एक परदेसी की थोड़ी-सी सहायता पर बुरा न मानना!" यह कह कर उसने पांच रुपए का एक नोट सोमेन के हाथ में रख दिया।

और उसने देखा कि सोमेन की आंखों में आंसू भरे हैं।

प्रभानाथ तेजी से अपने कमरे में लौट आया। उसने कपड़े पहने और वह निकल पड़ा। उसने अपनी कार नहीं ली। अभी तक उसने कलकत्ता को एक दूसरी ही नजर से देखा था। अभी तक वह विलासी की हैसियत से घूमा था; ऊंची इमारतें उसने देखी थीं, थियेटर उसने देखे थे, सिनेमा उसने देखे

थे। बड़े-बड़े होटलों में उसने खाना खाया था, गाना सुनते हुए, नाच देखते हुए। और उसने समझा था कि वह कलकत्ता अच्छी तरह से देख रहा है।

आज वह पैदल निकल पड़ा, कलकत्ता का शरीर देखने के लिए नहीं, कलकत्ता की आत्मा देखने के लिए। वह धरमतल्ला पहुंचा। दफ्तरों का समय हो चुका था, इसलिए वहां उतनी भीड़ न थी जितनी वह शाम के समय देखा करता था। और उसने वहां भिखमंगों का जमाव देखा। एक—दो—तीन—चार! अरे इन भिखमंगों की संख्या की कोई सीमा नहीं! एक ओर से आते हैं, दूसरी ओर चले जाते हैं—बूढ़े, अपाहिज, कोढ़ी!

धरमतल्ला से वह चला चितपुर रोड की ओर! और उसने तंग गलियों को देखा जिनमें से सड़ी बदबू आ रही थी। करोड़पति व्यापारी की दूकान के सामने बैठा कराह रहा था कौड़ियों का मुहताज जन-समुदाय। वह और आगे बढ़ा।

अब वह बड़ाबाजार पहुंच गया था—कलकत्ता के लखपतियों और करोड़पतियों के मुहल्ले में। एकाएक वह चौंक उठा; उसने मुड़ कर देखा, दाहिनी ओर हैरीसन रोड पर रिक्शावाला चिल्ला रहा था, "दो सवारियां और चार पैसे! डेढ़ मील रिक्शा खींचनी पड़ी है।" और प्रभानाथ ने देखा कि वह रिक्शावाला दुबला-सा अधेड़ आदमी है, जिसके शरीर पर मांस नहीं है। उसके सामने दो मारवाड़ी खड़े थे—हरेक का वजन ढाई मन से कम न होगा। एक ने कहा, "चार पैसे दे दिए हैं—ठीक है। जाओ मुकदमा दायर करो जाकर!"

लोग एक तरफ़ से आते थे और दूसरी तरफ़ चले जाते थे। रिक्शावाला रो रहा था और गालियां दे रहा था। किसी को फ़ुरसत नहीं थी कि वह उस रिक्शावाले की फ़रियाद सुने। दोनों मारवाड़ी चल पड़े। तब तक प्रभानाथ ने बढ़ कर एक का हाथ पकड़ा, "क्यों जी, तुम्हें शरम नहीं आती!" उसने दृढ़ता के साथ कहा।

जिस मारवाड़ी का हाथ पकड़ा गया था, उसने हाथ छुड़ाने की कोशिश

करते हुए कहा, "तुम कौन हो ? छोड़ो मेरा हाथ !" और उसने झटका दिया। लेकिन उसको ऐसा मालूम हुआ कि उसका हाथ फ़ौलाद के शिकंजे में जकड़ा हुआ है।

प्रभानाथ ने कहा, "मैं कोई भी हूं, इससे तुम्हें मतलब नहीं। मैं सिर्फ़ यह कहता हूं कि क्या इस रिक्शेवाले की मेहनत सिर्फ़ एक आना ही है ?"

दूसरे मारवाड़ी ने कहा, "जाओ बाबू—अपना काम देखो जाकर !"

जिस ढंग से और जिस स्वर में यह बात कही गई थी, उससे प्रभानाथ को बुरा लगना स्वाभाविक ही था। उसने उससे डांट कर कहा, "चुप रहो !" और फिर वह रिक्शावाले की ओर मुड़ा, "क्यों जी, तुम्हारी मजदूरी कितनी होती है ?"

"सरकार ! मिलना तो मुझे चार आना चाहिए, लेकिन दो आने, दस पैसे, जितना भी मिल जाय, ले लेता हूं। आख़िर पेट तो भरना ही पड़ता है !"

प्रभानाथ ने उस मारवाड़ी से, जिसका हाथ वह पकड़े हुए था, कहा, "एक आना और इस रिक्शेवाले को देना होगा।"

भीड़ इकट्ठी हो रही थी और लोग आपस में टीका-टिप्पणी कर रहे थे। उस मारवाड़ी ने, जो मुक्त था, आंखें तरेरते हुए कहा, "अगर हम न दें तो !"

प्रभानाथ ने हाथ को कसते हुए कहा, "तो का सवाल ही नहीं उठता। एक आना देना ही पड़ेगा।"

मारवाड़ी दर्द से कराह उठा। उसने अपने साथी से कहा, "अरे दो भी एक आना पैसा।"

लोगों की सहानुभूति उस समय तक रिक्शेवाले की तरफ़ नहीं, जो कि वास्तव में पीड़ित और गरीब था, बल्कि प्रभानाथ की तरफ़ हो गई थी, क्योंकि प्रभानाथ उस दृश्य का प्रमुख अभिनेता था। कुछ लोग कह उठे, "अब मिला सेर का सवा सेर ! बच्चू की अक्ल दुरुस्त हो गई !"

उस समय तक दूसरे मारवाड़ी ने जेब से इकन्नी निकाल कर रिक्शेवाले के सामने फेंक दी थी।

प्रभानाथ वहां से चल दिया।

अब प्रभानाथ बागबाजार की ओर बढ़ा, नगर की गन्दगी को पार करते हुए। उस समय दोपहर के बारह बज रहे थे, पर प्रभानाथ को भूख न मालूम हो रही थी। धूप काफ़ी तेज थी, पर प्रभानाथ को गरमी भी न मालूम हो रही थी। वह चल रहा था, सब कुछ देखता हुआ, सब कुछ सुनता हुआ! उसके मन में कोई विचार न था, वह कोई तर्क न कर रहा था। यही देखना-सुनना उसका सारा विचार था, उसका सारा तर्क था!

जिस समय प्रभानाथ होटल लौटा, चार बज चुके थे। वह बुरी तरह थका हुआ था।

६

उस दिन के बाद तीन दिन तक प्रभानाथ होटल के बाहर न निकला। दिन भर वह अपने कमरे में लेटा रहता था। एकाएक उसकी विचारधारा पर, उसके दृष्टिकोण पर, उसके अस्तित्व पर एक भयानक प्रहार हुआ था—ऐसा प्रहार, जिसके लिए वह जरा भी तैयार न था। वह विश्वास न कर सकता था उन घटनाओं पर, जो दो दिन के अन्दर ही जाड़े की बरफ़ से लदी हुई उत्तरी हवा की भांति उसके अन्दरवाली हरीतिमा को झुलसाती हुई; उजाड़ती हुई निकल गई।

वीणा, प्रतिभा, वह बंगाली युवक जिसका नाम सोमेन था—और वह रिक्शावाला। इनमें से हर एक व्यक्ति अपना व्यक्तित्व लिये हुए था, हर एक व्यक्ति हिन्दुस्तान की ही नहीं, मानवता की दुरवस्था पर प्रकाश डाल रहा था, हर एक व्यक्ति प्रभानाथ की सोई हुई चेतना पर प्रहार कर रहा था। होटल का खाना, होटल का सुख! ये सब पाशविक हँसी हँस रहे थे, मानवता का उपहास कर रहे थे। और इसी पाशविकता के वातावरण में प्रभानाथ की आत्मा मनुष्यता का मनन कर रही थी, उसको समझने की कोशिश कर रही थी, उसको अपनाने का संकल्प कर रही थी।

चौथे दिन सुबह के समय जब प्रभानाथ चाय पीने के लिए खानेवाले कमरे में गया। वहां के बंगाली क्लर्क ने उसके पास आकर दबी जबान कहा, "कुंवर साहेब! उस दिन आपने मेरे जिस भतीजे को देखा था न! कल रात गले में फांसी लगा कर उसने आत्म-हत्या कर ली!"

प्रभानाथ के हाथवाला चाय का प्याला छूट गया, "क्या कहा? आत्म-हत्या कर ली?"

"जी हां!" अपनी आंखों में उमड़ते हुए आंसुओं को हाथ से पोंछते हुए उसने कहा, "उसकी मां का परसों देहान्त हो गया! अन्त्येष्टि-क्रिया के लिए भी प्रबन्ध करने को उसके पास पैसा न था। हम लोगों ने किसी प्रकार सब कुछ किया। और कल!—कल सुबह न जाने क्यों वह अजीब तरह की बातें करने लगा था। कहता था कि मां को एक दिन को भी सुख—शान्ति वह नहीं दे सका! मां ने उसे पढ़ाने-लिखाने में अपना गहना-कपड़ा सब बेच दिया था और उसका लड़का उसकी दवा-इलाज तक न कर सका!"

प्रभानाथ ने ठंडी सांस भर कर कहा, "फिर!"

"हम लोगों ने उसे बहुत समझाया-बुझाया, पर सब बेकार! मुझे तो यहां हाजिरी बजानी थी; और आज सुबह मालूम हुआ कि उसने आत्म-हत्या कर ली! हे भगवान्!"

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ, उससे चाय नहीं पी गई। वह अपने कमरे में लौट आया और लेट गया। पर उससे लेटे भी न रहा गया—उसकी आत्मा छटपटा रही थी। क्या यह सब कुछ सच था—या एक भयानक दर्दनाक सपना? वह उठ पड़ा; उसने घड़ी देखी—ग्यारह बजे थे।

कपड़े पहन कर वह पैदल ही घूमने निकल पड़ा। अभी वह बहुत दूर भी न गया था कि उसने देखा—सामने एक बहुत बड़ी भीड़ खड़ी है। वह भीड़ की ओर बढ़ा—कौतूहलवश! भीड़ चीरता हुआ वह आगे पहुंचा और उसने देखा कि एक रिक्शावाला जमीन पर पड़ा है और उसके मुंह से खून निकल रहा है। लोग आते हैं—उसे देखते हैं—और चले जाते हैं। कोई

कुछ कहता नहीं, करता नहीं। प्रभानाथ ने और बढ़ कर रिक्शावाले की शक्ल देखी और वह चीख उठा—"अरे !" यह वही रिक्शावाला था, जिसे प्रभानाथ ने कुछ दिन पहले मारवाड़ी से इकन्नी दिलवाई थी। प्रभानाथ वहां खड़ा न रह सका—वह एकदम वहां से चल पड़ा।

उसे एक टैक्सी दिखाई दी—वह उसी में बैठ गया। टैक्सीवाले ने पूछा—"कहां ?"

"जहां जी चाहे !" प्रभानाथ ने अन्यमनस्क भाव से कहा।

टैक्सीवाले ने एक बार प्रभानाथ को गौर से देखा, यह अन्दाजने की कोशिश करते हुए कि बाबूजी कितनी पिये हुए हैं और बाबूजी की हैसियत क्या है। पर उसका शक जाता रहा। न बाबू पिये हुए थे और न बाबू की हैसियत कम थी। उसने कार चौरंगी रोड पर मोड़ दी। रास्ते में उसने कहा, "बाबू ! क्या कलकत्ता पहली मरतबा आए हैं ?"

"हां !" प्रभानाथ ने मानों उस प्रश्न पर ध्यान ही नहीं दिया।

"तभी ! अच्छा तो कलकत्ता की खास-खास जगहें देखेंगे ?" यह कहते हुए कार म्यूजियम के सामने रोक दी, "बाबूजी ! यह म्यूजियम है !"

"देख चुका हूं ! बढ़े चलो !"

टैक्सी आगे बढ़ी। विक्टोरिया मेमोरियल के पास पहुंचकर टैक्सीवाले ने टैक्सी धीमी करते हुए कहा, "बाबूजी—यह विक्टोरिया मेमोरियल है।"

"बढ़े चलो—देख चुका हूं !"

टैक्सी अब अलीपुर में चली जा रही थी। ड्राइवर ने पूछा, "चिड़ियाघर देख चुके हैं बाबू साहेब ?"

"हां, अच्छी तरह से !"

टैक्सीवाला झल्लाया। उसने कहा, "और बाबू साहेब—टैक्सी का मीटर देख रहे हैं ?"

मीटर पर पांच रुपए आठ आने आ गए थे। प्रभानाथ ने मुस्कराते हुए कहा, "हां, मीटर भी देख रहा हूं ! अच्छा, अब मोड़ दो !"

होटल पहुंचने पर उसे सूचना मिली कि एक स्त्री उसका एक घंटे से इंतज़ार कर रही है। प्रभानाथ ने कमरे में पहुंच कर वीणा को बुलवाया। वीणा आज बहुत उदास थी। उसे बिठलाते हुए प्रभानाथ ने कहा, "कहिए! मेरे बड़े भाग। मैं तो समझता था कि शायद अब आपके दर्शन न होंगे!... आज आप इतनी उदास क्यों हैं? अरे, आप तो रो रही हैं।"

वीणा ने धीमे स्वर में कहा, "मिस्टर प्रभानाथ! प्रतिभा मुझसे बिछुड़ गई!"

"प्रतिभा आपसे बिछुड़ गई?—मैं समझा नहीं!"

"एक मकान में, जहां हम तीस आदमी थे, पुलिस ने छापा मारा। उस समय प्रतिभा अपनी पिस्तौल लिए हुए पुलिसवालों को रोके रही और बाकी आदमी निकल गए। इसके बाद प्रतिभा गिरफ्तार हो गई!"

"गिरफ्तार हो गई—यह तो बुरा हुआ!"

"नहीं मिस्टर प्रभानाथ—अभी कुछ और आगे है। पुलिस के हाथ में पड़ना, अपनी इज्जत खोना, मुख़बिर बनाए जाने के लिए असह्य यातनाएँ सहना! मिस्टर प्रभानाथ—आप नहीं जानते, यह कितना भयानक है। प्रतिभा इसके लिए तैयार न थी।"

प्रभा एकटक वीणा को देख रहा था, "फिर?"

"फिर प्रतिभा ने वही किया जो उसकी परिस्थिति में पड़े हुए किसी भी समझदार आदमी को करना चाहिए था। उसके पास पोटेसियम साइनाइड था। उस भयानक विष की एक ख़ुराक ने ही प्रतिभा को इस सब से मुक्त कर दिया।"

प्रभानाथ चुपचाप बैठा था; वीणा की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी।

कुछ देर तक दोनों मौन बैठे रहे। प्रभानाथ के लिए यह मौन असह्य हो गया। उसने उठते हुए कहा, "यह सब हो गया! उफ़!"

"क्या कहा ?" वीणा ने पूछा।

"कुछ नहीं! सोच रहा था कि एक दिन का भी ठिकाना नहीं! चारों तरफ़ देखता हूं और मालूम होता है कि हर चीज़ अनिश्चित है।"

वीणा मुस्कराई—एक अजीब करुण और विषादमय मुस्कराहट थी उसकी, "इतना सोचने से फ़ायदा ही क्या ? हमारा सोचना हमारी सहायता कब कर सकता है ?"

और वीणा की यह मुस्कराहट एक तरह से प्रभानाथ के हृदय में चुभ गई। उसने कहा, "एक बात पूछूंगा, सही-सही उत्तर दीजिएगा!"

"पूछिए!"

"आपने खाना खाया है या नहीं ?"

कुछ सोच कर वीणा ने कहा, "खाना तो मैंने नहीं खाया, भूख नहीं लगी। सुबह चाय पी ली थी।"

"और मैंने भी नहीं खाया। मैं आपके खाने का भी आर्डर दिये देता हूं।"

खाना खा चुकने के बाद प्रभानाथ ने वीणा से कहा, "चलिए, थोड़ा-सा घूम आवें। फिर आप जहां कहिएगा, वहां आपको उतार दूंगा।"

आज कई दिन बाद प्रभानाथ ने अपनी कार निकाली। उस समय न जाने क्यों उसके हृदय में एक नई उमंग आ गई थी। वह प्रसन्न था। उसकी बगल में वीणा बैठी थी, ठीक उसी तरह जिस तरह वह उस दिन बैठी थी, जिस दिन उसने वीणा को बचाया था। उसने वीणा से पूछा, "क्या आप कलकत्ता की रहनेवाली हैं ?"

"जी नहीं—मैं चटगांव की हूं। कलकत्ता में मैं पढ़ रही हूं।"

प्रभा मुस्कराया, "किस क्लास में ?"

"इस वर्ष एम० ए० पास किया है। आगे क्या करूंगी—मैं नहीं जानती।"

"और मैंने भी इस वर्ष एम०-एस-सी० पास किया है। और आगे क्या करूंगा, मैं भी नहीं जानता," यह कह कर प्रभानाथ अपनी ही बात पर हंस पड़ा।

"जानने से न कोई लाभ है, न जानने की कोई आवश्यकता है। क्या प्रतिभा जानती थी कि आगे उसे क्या करना पड़ेगा !" वीणा ने करुण स्वर में कहा ।

"क्या प्रतिभा आपकी रिश्तेदार थी !"

"नहीं, वह कायस्थ थी, मैं ब्राह्मण हूं। लेकिन इससे क्या ? वह मेरी अभिन्न साथिन थी, मेरी बहिन की तरह थी ।" वीणा ने कुछ रुक कर फिर कहा, "हम लोग साथ रही हैं, साथ पढ़ी हैं और साथ ही हम लोगों ने काम आरम्भ किया । पर अब !—अब वह मेरा साथ छोड़ गई ! हे भगवान् ! मुझे अकेली छोड़ गई, एकदम अकेली छोड़ गई !"

प्रभानाथ चुपचाप वीणा की बात सुन रहा था; अन्दर ही अन्दर वह सोच रहा था, बड़ी तेजी के साथ ! वह एक विचित्र दुनिया में आ पड़ा था—उस दुनिया के अस्तित्व पर उसका विश्वास करने का जी न चाहता था, लेकिन वह विश्वास करने को मजबूर था । उसने कहा, "कौन किसके साथ रहा है ? प्रतिभा ने अपना काम किया और उसने अपना जीवन सार्थक कर लिया। शायद वह उन अनगिनती लोगों से कहीं ऊंची थी, कहीं भाग्यवान थी जो सुख-वैभव का अकर्मण्यता-मय जीवन बिता कर पशु की मौत मर जाते हैं !"

प्रभानाथ ने यह बात वीणा को सान्त्वना देने को कही थी, पर बात समाप्त होने के बाद उसने यह अनुभव किया कि उसने अपने अन्दर निहित एक बहुत बड़े सत्य को ढूंढ़ निकाला । जो बात उसने कह दी थी, वह उसकी थी, उसके अन्दर वाली मानवता का वह एक महत्त्वपूर्ण निर्णय था । और प्रभानाथ को इस पर आश्चर्य हुआ।

"शायद आप ठीक कहते हैं । पर मैं इस समय कुछ समझ नहीं पा रही हूं, कुछ भी नहीं !"

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। प्रभानाथ ड्राइव कर रहा था, और उसके मुख पर एक दृढ़ता थी—एक अजीब तरह की चमक उसकी आंखों में थी। एकाएक वह अपनी इस अस्पष्ट और धुंधली विचार-धारा से जाग पड़ा, उसने चौंक कर वीणा की ओर देखा। और वीणा बैठी थी, शान्त—करुण—दयनीय!

प्रभानाथ ने वीणा से कहा, "क्या मैं जान सकता हूं कि आप कहां रहती हैं? चलिये, आपके घर पर चलूं!"

कुछ सोचकर वीणा ने कहा, "शायद आपका मेरे मकान में जाना उचित न होगा। बहुत सम्भव कि है वहां हमारे दल के कुछ लोग इकट्ठा हों और आप उनसे मिलना चाहें।

"बहुत सम्भव है वे मुझसे न मिलना चाहें!" प्रभानाथ ने मुस्कराते हुए कहा, "एक अजनबी आदमी—उसका आप लोगों का समुदाय किस प्रकार भरोसा कर सकता है!"

वीणा ने तनिक ज़ोर दे कर कहा, "चलिए, आप जरूर चलिए! वे लोग आप पर भरोसा करें या न करें, पर मैं आप पर भरोसा कर सकती हूं, कर ही नहीं सकती, करती हूं। मैं जानती हूं कि आप मनुष्य हैं, और जब मैं भरोसा करती हूं, तब उन्हें भी भरोसा करना होगा।"

"आपको अपने ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है!" हंसते हुए प्रभानाथ ने कहा।

"आप गलत कहते हैं; मुझे आपके ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है!" वीणा ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

प्रभानाथ ने इस बार वीणा को गौर से देखा; नारी—असहाय और निर्बल! दूसरों पर भरोसा करनेवाली और विश्वास करनेवाली नारी! वीणा सर झुकाए बैठी थी; उसके मुख पर वही दृढ़ता थी, वही कठोरता थी! पर उस कठोरता और उस दृढ़ता के भीतर छिपी हुई नारी ने ही कहा था, "मुझे आपके ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है।"

प्रभानाथ ने कहा, "तो फिर चलिए—मैं चलता हूं!"

७

जिस मकान में वीणा रहती थी वह एक गली में था। मकान छोटा-सा और गंदा-सा था। सड़क पर ही प्रभानाथ को रोक कर वीणा ने कहा, "आप थोड़ी देर ठहरिए, मैं आती हूं!"

करीब पांच मिनट बाद वीणा लौटी, उसने कहा, "आइये!"

जिस कमरे में वीणा प्रभानाथ को ले गई, वह दुमंजिले पर था। उस समय उस कमरे में तीन युवक बैठे थे। वीणा के साथ प्रभानाथ के कमरे में प्रवेश करते ही वे तीनों युवक उठ खड़े हुए। उनमें से एक ने अंग्रेज़ी में कहा, "आपका स्वागत है!"

प्रभानाथ ने कमरे को अच्छी तरह देखा। वह काफ़ी बड़ा कमरा था, लेकिन उसमें थोड़ा-सा सामान था। दो टीन के छोटे-छोटे ट्रंक, दो खूंटियां जिन पर दो धोतियां लटक रही थीं, कुछ किताबें जो उन ट्रंकों पर रक्खी थीं या बिस्तरों पर बिखरी पड़ी थीं, और दो बिस्तरे जो फ़र्श पर अगल-बगल बिछे थे और जिन पर वे तीनों युवक बैठे थे। इसके बाद प्रभानाथ ने उन तीनों युवकों को देखा। प्रभानाथ को खड़ा देख कर वीणा ने कहा, "मेरे यहां कुर्सी तो कोई नहीं है, आप ज़मीन पर बैठने का ही कष्ट करें।"

प्रभानाथ लज्जित-सा ज़मीन पर बैठ गया।

प्रभानाथ जिस युवक के सामने बैठा था, वह लम्बा-सा और गठे बदन का था। उसका रंग किसी हद तक सांवला कहा जा सकता था, लेकिन वह कुरूप न था। उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की रही होगी। उसका नाम अपूर्व गंगोली था, पर उसके साथी उसे 'बड़दा' कहते थे। अपूर्व ने एम० एस-सी० पास किया था और कलकत्ता-विश्वविद्यालय में वह रिसर्च-स्कालर रह चुका था। उसका प्रमुख विषय था केमेस्ट्री, और वह उन दिनों एक केमिकल फ़र्म में नौकरी कर रहा था।

बड़दा की दाहिनी तरफ़ दूसरा युवक था। वह भी लम्बा था, पर वह दुबला और गोरा था। उसकी आंखों में चश्मा लगा था और उसके कपड़ों से मालूम होता था कि उसके सम्बन्धियों की आर्थिक अवस्था अच्छी है। वह विश्वविद्यालय में एम० ए० का विद्यार्थी था और उसकी अवस्था लगभग इक्कीस वर्ष की रही होगी। उसका नाम था अविनाश घोष।

बड़दा की बांईं ओरवाला युवक काला था और किसी हद तक कुरूप कहा जा सकता था। उसके कपड़े मैले और मोटे थे। उसकी अवस्था लगभग चौबीस वर्ष की रही होगी और उसका नाम हरिपद मलिक था। पर उसके साथी उसे 'महाजन' कहते थे। हरिपद को देखने वाला इस बात की कल्पना भी न कर सकता था कि इस युवक ने अपने दल के संचालन में करीब दस हज़ार रुपए अपने घर से दिए हैं।

वीणा भी एक कोने में बैठ गई। बड़दा से उसने कहा, "यही श्रीयुत प्रभानाथ हैं जिनका जिक्र अभी मैंने आप से किया था।

बड़दा ने प्रभानाथ को गौर से देखा, मानों वह प्रभानाथ के हृदय की तह तक पहुंचने का प्रयत्न कर रहा हो। थोड़ी देर तक वह इस प्रकार प्रभानाथ को एकटक देखता रहा, इसके बाद उसने कहा, "आपने हमारे एक सदस्य की जो सहायता की, उसके लिए हम लोग आपको धन्यवाद देते हैं!" इसके बाद उसने वीणा से कहा, "वीणा! तुम्हें यह मकान छोड़ना पड़ेगा। इस मकान में तुम्हारा रहना खतरनाक है—समझीं!"

"और अगर मैं यह मकान न छोड़ूं?" वीणा ने पूछा।

"इसका सवाल ही नहीं उठता। प्रतिभा के मकान का पता पुलिस लगा रही है।"

प्रभानाथ के मन में एकाएक प्रश्न उठा, "क्या यह दूसरा बिछौना प्रतिभा का है? क्या प्रतिभा वीणा के साथ ही रहती थी?"

और उसके इस प्रश्न का उत्तर, अविनाश के उस प्रश्न से जो वीणा से

किया गया था, दे दिया, "हमने प्रतिभा के पहिचान की सब चीजें नष्ट कर दीं?"

"नहीं। थोड़ी-सी जरूर नष्ट की हैं, लेकिन कुछ थोड़ी-सी नहीं कीं!"

"कुछ थोड़ी-सी क्यों नहीं नष्ट कीं? क्या तुम हम लोगों का विनाश चाहती हो?" अविनाश ने तेजी के साथ पूछा।

"मैं तुम लोगों पर आंच न आने दूंगी—इतना विश्वास रक्खो! पर वे चीजें—नहीं, मैं अपनी सखी की यादगार को कभी-भी नष्ट न करूंगी। तुम लोगों के सम्बन्ध की कोई चीज इस कमरे में नहीं है!" वीणा ने करुण-भाव से कहा।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। जिस स्वर में वीणा ने यह बात कही थी, उससे यह स्पष्ट हो गया था कि उन चीजों को नष्ट करने में वीणा की भावना को गहरी ठेस लगेगी, उसके मन को महान् पीड़ा होगी।

अपूर्व मुस्कराया, प्रभानाथ की ओर देखते हुए उसने कहा, "हरि इच्छा! स्त्री-हठ ही है! रहेगा, और उसे रहना पड़ेगा।

हरिपद बोल उठा, "हां, इसमें क्या शक है, स्त्री-हठ रखना ही पड़ेगा। फिर अपनों के स्मृति-चिह्न को पूर्णतया नष्ट कर डालना असम्भव है!"

"और अपनों के स्मृति-चिह्न को रखने के लिए अपना हृदय ही सब से उपयुक्त स्थान है।" अपूर्व ने प्रभानाथ से कहा, "क्यों न मिस्टर प्रभानाथ, अपना हृदय ही ऐसी चीज है, जिसकी अन्त तक रक्षा की जा सकती है। बाकी चीजें चोर चुरा ले जा सकता है, डाकू छीन सकता है, जरा-सी भी लापरवाही से वे दूसरों के हाथ में पड़ सकती हैं, और फिर वही स्मृति-चिह्न अपना काल बन सकता है?"

"आपका कहना बिल्कुल ठीक है!" प्रभानाथ को उस तर्क की सार्यकता को स्वीकार करना पड़ा।

"आप भी ऐसा कहते हैं, आप भी मुझे यह हृदय-हीन काम करने को प्रेरित करते हैं!" बड़े करुण और विवश स्वर में वीणा ने प्रभानाथ की

ओर देखते हुए कहा, "प्रतिभा ठीक ही कहती थी कि पुरुष कठोर होते हैं; उनके पास हृदय नहीं है, उनके पास भावना नहीं है।" यह कह कर वीणा उठ खड़ी हुई और एक टीन का ट्रंक उठा कर उसने अपूर्व के सामने रख दिया, "यह ट्रंक है जिसमें कुछ कपड़े हैं और कुछ पत्र हैं ? ये पत्र प्रतिभा की मां के हैं। इसके अलावा यह बिस्तर है, जिस पर आप बैठे हैं । केवल इतनी चीजें हैं, और इन्हें आप ले सकते हैं, इन्हें भी आप नष्ट कर सकते हैं।"

हरिपद ने कहा, "तुम्हारे पास कोई और चीज है जो प्रतिभा ने तुम्हें दी हो ?"

"हां, एक धोती, जो उसने मुझे दुर्गापूजा के अवसर पर ले दी थी, और एक पुस्तक—रवि बाबू की "चयनिका"—कहिए तो उन्हें भी दे दूं !"

"नहीं, उन्हें नष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं । पर एक काम करना होगा।" अपूर्व ने कहा।

"वह काम ?"

"इस मकान को कल तक छोड़ देना पड़ेगा। इसमें रहना तुम्हारे लिए निरापद नहीं है। मकान मैंने देख लिया है, कल सुबह उसका पेशगी किराया देकर उसकी चाबी ले लूंगा।"

"कल क्यों, मैं आज, इसी समय इस मकान को छोड़ने को तैयार हूं। यह मकान मुझे काटने लगा है !" वीणा ने कहा।

"और यह प्रतिभा का ट्रंक तथा उसका बिस्तर ! इन्हें नष्ट कर डालना उचित है । मुझे दे दो, मैं इन्हें गंगा के सिपुर्द कर दूं, जहां उसकी अस्थियां गई हैं, वहीं यह चीजें भी चली जायें !" हरिपद ने मुस्कराते हुए कहा।

वीणा सिहर उठी। उसने केवल इतना कहा, "आप जो जी चाहे करें, पर यह न उपहास का विषय है, न अवसर है ।" यह कह कर वह उठी । उसने प्रतिभा का ट्रंक प्रतिभा के बिस्तर में लपेट कर हरिपद के हवाले किया। उस समय उसकी आंखें तरल थीं, बड़ी कोशिश से वह अपने फूट पड़ने-वाले रुदन को संभाले थी ।

इतने ही में एक और युवक ने कमरे में प्रवेश किया । वह युवक विच-लित था । आते ही उसने कहा, "पुलिस को प्रतिभा के मकान का शायद पता लग गया है—मुझे अभी-अभी यह सूचना मिली है । बहुत सम्भव है, आज ही इस मकान पर पुलिस का धावा हो !" इतना कह कर वह तेजी से चला गया।

इतना सुनते ही वे तीनों युवक भी उठ खड़े हुए । हरिपद ने पुलिन्दा बगल में दबाया; उसने कहा, "वीणा अपना सामान संभालो; और यहां से अभी, इसी समय चल दो । मैं तो रवाना हुआ।"

"लेकिन मैं कहां जाऊं ? इस समय—रात में ?"

अपूर्व ने उन दोनों युवकों से कहा, "आप लोग चलें, मुझे वीणा का तो प्रबन्ध करना ही होगा !" यह कह कर वह कमरे में बिखरे हुए सामान को बटोरने लगा।

सब लोग चले गए, अपूर्व, वीणा और प्रभा रह गए । अपूर्व ने कहा, "वीणा—तुम मेरे यहां चल सकती हो, लेकिन तुम जानती ही हो , मेरे पास सिर्फ एक कमरा है ! खैर—मैं रात किसी मित्र के यहां काट लूंगा !"

वीणा ने प्रभानाथ की ओर देखा।

प्रभानाथ अभी तक मौन यह सब देख रहा था, अब उसने कहा, "नहीं, आपका रात के समय किसी होटल में रहना ठीक होगा । आप मेरे होटल में चल कर रह सकती हैं, मैंने दो कमरे ले रक्खे हैं !"

अपूर्व ने संतोष की एक गहरी सांस ली, "इससे अच्छा और क्या होगा ! केवल एक प्रश्न है मिस्टर प्रभानाथ ! हम लोगों के सम्पर्क में इतना अधिक आकर आप अपने को खतरे में डाल रहे हैं !"

वीणा का सामान उस समय तक अपूर्व ने लपेट लिया था । उस सामान को उठाते हुए प्रभानाथ ने कहा, "इस खतरे पर विचार करने का अभी मेरे पास समय नहीं है !"

८

प्रभानाथ के साथ वीणा प्रिंसेज होटल में आ गई। होटल के दरबान को प्रभानाथ के साथ एक स्त्री को देख कर आश्चर्य हुआ, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। रईसों और ताल्लुकेदारों का रात के समय किसी स्त्री के साथ होटल में वापस लौटना दरबान के लिए बहुत साधारण-सी बात थी। वह केवल मुस्करा दिया। लेकिन प्रभा की तीव्र दृष्टि और गम्भीर मुद्रा देख कर वह सहम गया—और उसके सामने से हट गया।

वीणा जिस कमरे में ठहरी थी, उसका रास्ता प्रभानाथ के कमरे में से होकर था। वीणा ने कमरे में पलंग के नीचे अपना असबाब रख दिया, स्तम्भित-सी उसने अपने चारों ओर देखा।

वह कमरा काफ़ी बड़ा था, और अच्छी तरह से सजा हुआ था। वीणा कुछ देर तक मौन खड़ी रही, इसके बाद वह पलंग पर निर्जीव की तरह गिर पड़ी। प्रभानाथ के और वीणा के कमरे के बीच का दरवाज़ा बन्द था, लेकिन वीणा प्रभानाथ के पैरों की चाप साफ़-साफ़ सुन रही थी। प्रभानाथ बड़ी व्यग्रता के साथ अपने कमरे में टहल रहा था।

वीणा कुछ देर तक मौन लेटी रही, वह अपने हृदय की धड़कन को शान्त कर रही थी। करीब दस मिनट तक वह न कुछ सोच सकी, न समझ सकी; वह केवल इतना अनुभव कर सकी कि वह एक अजीब दुनिया में आ पड़ी है—एकदम अनोखी, एकदम अज्ञात! उसने एक बार फिर उस कमरे को गौर से देखा और वह सर से पैर तक सिहर उठी। उसने अपने को उस कमरे में, जहां का प्रत्येक कण उसके लिए अनजान, अपरिचित और नया था, अकेला एकदम अकेला पाया। वह चौंक कर उठ खड़ी हुई। उसने दरवाज़ा खोला—और उसने देखा कि वह प्रभानाथ के कमरे में प्रभानाथ के सामने खड़ी हुई है।

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुन कर प्रभानाथ टहलते-टहलते रुक गया

था। वीणा को अपने सामने खड़ी देखकर उसने मुस्कराने का प्रयत्न किया, "क्यों, क्या बात है ?"

वीणा ने प्रभानाथ के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, एकटक वह प्रभानाथ को देख रही थी, चित्रलिखित-सी और भूली-सी ! एक नये और अनजाने वातावरण में वह अचानक आ पड़ी थी—उस वातावरण को वह समझ न पा रही थी, अपना नहीं पा रही थी ।

वीणा को इस प्रकार अपनी ओर एकटक देखते देख कर प्रभानाथ हंस पड़ा। उसने कहा, "क्या बात है ? आप इस प्रकार मुझे देख क्यों रही हैं ?"

वीणा प्रभानाथ के निकट जाकर खड़ी हो गई । उसने कुछ रुककर बहुत धीमे स्वर में कहा, "आप मनुष्य हैं या देवता ?" और उसकी आंखों में आंसू भरे थे ।

प्रभानाथ का हाथ वीणा के मस्तक पर चला गया । उसने कहा, "न मैं देवता हूं, न मनुष्य ! मैं केवल पशु हूं; और सोच रहा हूं कि क्या आप लोगों के सम्पर्क में आकर मैं मानवता का रूप देख सकूंगा ?"

"और मैं कहती हूं कि हम लोगों के सम्पर्क में आकर आप अपने को बहुत बड़े खतरे में डाल रहे हैं । हम लोग प्राणों का खेल खेल रहे हैं; किसी भी समय हमारा शरीर गोलियों से छलनी हो सकता है, हमारा गला फांसी के फन्दे में फंस सकता है, किसी भी समय हमारा टिमटिमाता हुआ जीवन-प्रदीप बुझ सकता है !" वीणा ने प्रभानाथ की आंखों से अपनी आंखें मिलाते हुए कहा।

प्रभानाथ का स्वर गम्भीर हो गया, "हां, मैं जानता हूं ! और मैं यह भी जानता हूं कि कोई भी मनुष्य अमर नहीं है; मृत्यु का कोई विधान नहीं, नियम नहीं और अवधि नहीं । वह कभी भी आ सकती है—उस पर मनुष्य का कोई भी वश नहीं ! फिर भय कैसा ?"

कुछ देर तक दोनों एकटक एक दूसरे को देखते रहे । दोनों एक दूसरे के पास खड़े हुए थे, इतने पास कि एक दूसरे की सांस एक दूसरे को लग रही थी । वीणा प्रभानाथ के और पास आ गई, इतने पास कि दोनों का शरीर स्पर्श कर गया । उसने कहा, "क्या आप सच कह रहे हैं ?—कहिए—बत-

लाइये—यह सब आप क्यों कर रहे हैं ? आप हम लोगों के सम्पर्क में न आइए—आप अपने को खतरे में न डालिए !"

प्रभानाथ मुस्कराया, "क्यों नहीं ? अगर मैं तुम्हारे दल में शामिल भी हो जाऊं, तो इसमें तुम्हें क्या आपत्ति हो सकती है !"

वीणा ने बहुत धीमे से कहा, "आप नहीं समझ पा रहे हैं ! नहीं, आप न आइए—आप न आइए ! मैं आपसे प्रार्थना करती हूं !"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा को देखा ।

और वीणा अब पागल की तरह कह रही थी, "नहीं, मरने के लिए मैं हूं—और सब हैं । लेकिन आप ! आपके मरने का अभी समय नहीं है। आप अगर विपत्ति में पड़ जायेंगे तो मैं नहीं रह सकूंगी—नहीं रह सकूंगी !......"

एकाएक वीणा चौंक उठी । वह क्या कह रही है, क्यों कह रही है ? लज्जा से उसका मुख लाल हो गया । वह घूम पड़ी , तेजी के साथ वह अपने कमरे में भाग गई और उसने भीतर से कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया !

× × ×

दूसरे दिन प्रभानाथ देर से सोकर उठा । उसी दिन उमानाथ को कलकत्ता आना था । पिछले दिन उसे सूचना मिल चुकी थी ।

वीणा अन्दरवाले कमरे में ही थी ! वह रातवाली घटना से लज्जित-सी थी । प्रभानाथ ने द्वार खटखटाया और वीणा ने द्वार खोल दिया । उस समय आठ बजे थे । दोनों ने साथ बैठकर चाय पी । चाय पीते हुए प्रभानाथ ने कहा, "आज मेरे भाई आने वाले हैं !"

"आज ही !" वीणा ने पूछा ।

"हां—दस बजे के करीब उनका जहाज आ जायगा ।"

"अच्छी बात है । मैं अभी जा रही हूं—कोई मकान अपने लिए ठीक कर लूंगी !"

चाय पीकर प्रभानाथ डाक्स की तरफ उमानाथ को रिसीव करने के लिए रवाना हुआ और वीणा मकान ढूंढने के लिए शहर की ओर !

पाँचवाँ परिच्छेद

१

"हलो प्रभा !" उमानाथ ने प्रभानाथ से हाथ मिलाते हुए कहा, "कौन-कौन मुझे रिसीव करने आया है ?"

"अकेला मैं !"

"अकेले तुम ! चलो यह अच्छा हुआ !" उमानाथ ने कुछ रुककर कहा, "बात यह है कि मेरी बीवी भी साथ में आई है—वह अभी स्टीमर में ही है। मैं साथ इसलिए नहीं लाया कि कहीं दद्दुआ, काकाजी या बड़के भइया न आए हों !" उमानाथ के मुख पर अब मुस्कराहट आ गई थी, "खैर, अब चिन्ता की कोई बात नहीं—उसे भी मैं साथ ही लिए आता हूँ !" यह कह कर उमानाथ फिर से जहाज़ के अन्दर चला गया और प्रभानाथ उमानाथ को आश्चर्य से देखता रह गया।

करीब पन्द्रह मिनट बाद उमानाथ एक स्त्री के साथ वापस आया। वह स्त्री योरोपियन थी और उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की रही होगी। वह सुन्दरी कही जा सकती थी; उसकी आँखें गहरी नीली थीं और उनमें चमक थी, उसका चेहरा लम्बा और कठोर और बाल छोटे-छोटे तथा अस्तव्यस्त थे। उमानाथ उस स्त्री के साथ आकर प्रभानाथ के सामने खड़ा हो गया, "प्रभा, यह मेरी पत्नी हिल्डा है—और हिल्डा —ये मेरे भाई प्रभानाथ !"

हिल्डा ने अपना हाथ बढ़ाया, लेकिन प्रभानाथ वैसा ही खड़ा रहा। उसका सारा शरीर सुन्न-सा पड़ गया था; उसका जी न हो रहा था कि वह अपनी आँखों और अपने कान पर विश्वास करे। उसने कहा, "तो क्या आपने जर्मनी में एक विवाह और कर लिया ?"

उमानाथ हँस पड़ा, "देख तो रहे हो—मेरी पत्नी मेरे साथ है। लेकिन प्रभा, तुम एकदम सन्नाटे में कैसे आ गए?"

प्रभानाथ ने अपने अन्दरवाले उमड़ते हुए रुदन को दबाते हुए कहा, "और यह जानती है कि आप विवाहित हैं?"

"हां! यह भी जानती है कि मैंने अपनी पहली पत्नी से अपनी इच्छा के अनुसार विवाह नहीं किया, वह मेरे गले में जबर्दस्ती मढ़ दी गई है। मैं उससे प्रेम नहीं करता, कर भी नहीं सकता; वह मेरे लिए त्याज्य है!" और यह कह कर उसने हिल्डा से अंग्रेजी में कहा, "हिल्डा—मेरा भाई जानना चाहता है कि क्या तुम्हें यह मालूम था कि हिन्दुस्तान में मेरा विवाह हो चुका है और मेरी पत्नी वहां मौजूद है!"

हिल्डा ने प्रभानाथ से अंग्रेजी में कहा, "हां-हां—उमा ने सब बात मुझे बतला दी थीं—कितना भला आदमी है यह तुम्हारा भाई!" और यह कह कर उसने वहीं उमानाथ को चूम लिया।

प्रभानाथ ने अपनी आंखें फेर लीं—उमानाथ हँस पड़ा। उसने प्रभानाथ से कहा, "अच्छा चलो, यह न तो बात करने की जगह है और न समय है!"

प्रभानाथ स्टियरिंग ह्वील पर बैठा और उमानाथ उसकी बगल में। हिल्डा पीछे की सीट पर बैठी थी।

उमानाथ ने पूछा, "क्यों प्रभा, दद्दुआ के न आने का कारण तो मैं समझ सकता हूं कि वह कहीं आते-जाते नहीं, और काकाजी के भी न आने का, क्योंकि उन्हें छुट्टी न मिली होगी। लेकिन बड़के भइया क्यों नहीं आए, यह ताज्जुब की बात है!"

प्रभानाथ ने अनमने भाव से कहा, "बड़के भइया को दद्दुआ ने घर से अलग कर दिया है।"

"क्या कहा?" उमानाथ चौंक उठा, "बड़के भइया को दद्दुआ ने घर से अलग कर दिया! यह क्यों?"

"बड़के भइया कांग्रेसमैन हो गए हैं!"

"तो इसमें बुरा ही क्या है?"

"बुरा-भला तो ददुआ जानें।"

"समझा!" उमानाथ मुस्कराया, "तो फिर मैं अकेला नहीं हूं, बड़के भइया भी मेरे साथ हैं।"

"क्या कहा आपने?—क्या आप भी कांग्रेसमैन हैं?"

"नहीं—इतना बड़ा वेवकूफ़ नहीं हूँ कि कांग्रेस-वांग्रेस के चक्कर में पड़ूं।" उमानाथ हँस पड़ा, फिर कुछ गम्भीर होकर उसने कहा, "देखो प्रभा—किसी को बतलाना नहीं! मैं बड़के भइया से कहीं अधिक महत्वपूर्ण, कहीं अधिक उपयोगी, कहीं अधिक सार्थक काम कर रहा हूं। मैं समाजवादी हूं।"

प्रभानाथ ने उमानाथ की बात ध्यान से सुनी, लेकिन उसने उस पर कुछ कहा नहीं। उसने केवल एक बार अपने भाई की ओर गौर से देखा।

"क्यों? इस तरह मुझे क्यों देख रहे हो? जानते हो, मेरी पत्नी भी समाजवादी है। प्रभा, इस युग की उलझनों की एकमात्र सुलझन है समाजवाद। मैं जहां से आ रहा हूं, जिस वातावरण में मैं रहा हूं, वहां मैंने जीवन का संघर्ष देखा है और मैंने उस पर मनन किया है।"

कार इस समय तक होटल के सामने पहुंच गई थी। प्रभानाथ ने कार रोकते हुए कहा, "लीजिए, हम लोग पहुंच गए।"

सब लोग कार से उतर कर ऊपर गए। प्रभानाथ ने खाना आर्डर किया। फिर वह अपने भाई के पास आकर बैठ गया। हिल्डा ने अपना सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट उमानाथ को दी, फिर उसने सिगरेट-केस प्रभानाथ की तरफ़ बढ़ाया।

प्रभानाथ ने ग्लानि से अपना मुंह फेरते हुए कहा, "धन्यवाद! मैं सिगरेट नहीं पीता।"

"अच्छा करते हो!" उमानाथ ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "क्या

बतलाऊं यार प्रभा ! मैं इन लोगों के चक्कर में पड़ कर न जाने क्या-क्या पीना सीख गया हूं, और पीना इतना बुरा भी नहीं है, जितना कुछ लोगों ने समझ रक्खा है । फिर भी मैं तुम्हें पीने की सलाह न दूंगा, अगर बिना पिए मस्त रह सको तो इससे बढ़ कर कोई बात नहीं।"

प्रभानाथ चुप बैठा सोच रहा था । उसके सामने बैठा था उसका बड़ा भाई उमानाथ जिसे वह लड़कपन से बहुत अधिक मानता रहा था, जिससे उसके पिता को और उसके परिवार को बड़ी-बड़ी आशाएं थीं, जिसकी उसकी देवी के तुल्य भाभी घर में उत्कण्ठा के साथ प्रतीक्षा कर रही थी । और उस भाई की बगल में बैठी थी एक जर्मन-स्त्री, जो उमानाथ की पत्नी बन कर उसके घर में भयानक अभिशाप के रूप में, उसकी भाभी के लिए साकार वैधव्य बन कर आई थी । और यह स्त्री उमानाथ से उम्र में बड़ी थी।

इतने में वीणा ने कमरे में प्रवेश किया । वीणा के कमरे में आते ही सब लोग चौंक पड़े । प्रभानाथ ने खड़े हो कर वीणा से कहा, "वीणा ! ये मेरे भाई मिस्टर उमानाथ हैं और—ये मेरे भाई की दूसरी पत्नी श्रीमती हिल्डा तिवारी हैं।...और" इस बार उसने उमानाथ की ओर घूम कर कहा, "ये मेरी मित्र श्री वीणा मुकर्जी हैं।"

वीणा ने नमस्कार किया और उमानाथ और हिल्डा ने नमस्कार का उत्तर दिया। हिल्डा कुर्सी पर बैठ गई।

थोड़ी देर ठहर कर वीणा ने प्रभानाथ से कहा, "मैंने अपने वास्ते मकान ले लिया है । अपना सामान लेने आई हूं, नीचे रिक्शा खड़ा है !"

"अरे ! रिक्शा क्यों लेती आईं ? मैं अपनी कार पर आपको पहुंचा दूंगा । और अब आप खाना खा कर ही यहां से जा पाइयेगा !" प्रभानाथ ने दरवाजे की ओर बढ़ते हुए कहा, "रिक्शा विदा करके मैं अभी आता हूं !"

प्रभानाथ बाहर चला गया । थोड़ी देर तक उमानाथ वीणा को ध्यान-पूर्वक देखता रहा, फिर इसके बाद उसने मुस्कराते हुए वीणा से पूछा, "आपसे प्रभानाथ की कितने दिन की दोस्ती है ?"

उमानाथ के इस प्रश्न से, और उससे भी अधिक उमानाथ की मुस्कराहट से वीणा तिलमिला उठी। शुष्क स्वर में उसने कहा, "पता नहीं कि मुझसे यह प्रश्न करने का आपको कितना अधिकार है! आप सभ्य समाज के आदमी हैं, देश-विदेश घूमे हैं, आपको साधारण शिष्टाचार का तो पता होना चाहिए!"

"अरे—आप तो नाराज हो गईं," उमानाथ को अपनी गलती महसूस हुई या नहीं यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह कहता गया, "देखिए—मेरी बातों पर बुरा मानकर आप गलती करेंगी, क्योंकि जिसे आप सब लोग शिष्टाचार कहते हैं उस पर मैं जरा भी विश्वास नहीं करता—मैं—क्यों हम आज कल के प्रगतिशील लोग, जरा भी विश्वास नहीं करते। दुनिया के आदमियों ने अपना जीवन कितना कृत्रिम बना लिया है, इसी शिष्टाचार, इन्हीं झूठे और आडम्बरपूर्ण आचार और विचार के कारण!" उमानाथ ने हिल्डा की ओर इशारा किया, "देखिए, ये हैं मेरी पत्नी हिल्डा! आप कोई भी बात इनसे पूछिए, यह आपको बिना किसी हिचकिचाहट के स्पष्ट उत्तर देंगी। और फिर मैंने तो आपसे एक बहुत सादा-सा प्रश्न किया था, मेरा मंशा जरा भी आपके हृदय को दुखाने का न था।"

उस उत्तर से वीणा हत-प्रभ-सी हो गई, उसे अपने अकारण क्रोध पर क्रोध आ रहा था। उसने कहा, "प्रभानाथजी से मेरा करीब पन्द्रह-सोलह दिन का परिचय है।"

"इतने ही दिनों में इतना घनिष्ठ परिचय हो गया? देख रहा हूँ हिन्दुस्तान बड़ी तेजी के साथ तरक्की कर रहा है—मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" इस बार वह अपनी पत्नी की ओर घूमा, "हिल्डा—सुना तुमने! यहां की हालत इतनी बुरी नहीं है जितनी मैं समझे हुए था।"

और उसी समय प्रभानाथ कमरे में आ गया। वीणा से उसने कहा, "रिक्शावाले को मैंने विदा कर दिया!"

शाम के समय उमानाथ मारीसन से मिलने चला गया।

प्रभानाथ अकेला रह गया। इधर तीन-चार दिन से वह वीणा से न मिला था। सुबह उसे कानपुर के लिए रवाना होना था—वीणा से उसका मिल लेना जरूरी था। वह वीणा के मकान की ओर चल पड़ा।

उस समय दिन ढल चुका था और सड़कों पर बिजली का प्रकाश होना आरम्भ हो गया था। प्रभानाथ ने कोई सवारी नहीं ली, पैदल वह चल रहा था। वीणा के मकान के सामने वह रुका। उसे साहस न हो रहा था कि वह मकान के अन्दर प्रवेश करे—वह जानता था कि उसका कलकत्ता से जाना वीणा को अच्छा न लगेगा। उसे भी तो अपना जाना खुद अच्छा न लग रहा था। उसी समय उसे सुनाई पड़ा, "प्रभा बाबू!"

प्रभानाथ ने देखा कि वीणा मुस्कराती हुई उसकी ओर बढ़ रही है। वीणा ने उसके पास आकर कहा, "मैं अभी आपके ही यहां जाने को निकली हूँ, यह देखने के लिए कि आप अभी कलकत्ता में हैं या नहीं। देखिए, इधर कई दिनों से आपके दर्शन नहीं हुए!"

"और अगर मैं कलकत्ता से चला गया होता?" प्रभानाथ ने न जाने क्यों यह प्रश्न पूछ दिया।

वीणा ने वैसे ही उत्तर दिया, "तो मैं समझती कि मेरी साधना में बल नहीं है!" और वह खिलखिलाकर हंस पड़ी, "आप चले कैसे जाते—बिना मुझसे मिले हुए और मुझे अपना आशीर्वाद दिए हुए!"

इस बार वीणा की आंखें प्रभानाथ की आंखों से मिल गईं, वीणा का स्वर कुछ करुण हो गया। उसने कहा, "आप आए क्यों नहीं? मैंने आपकी कितनी प्रतीक्षा की! तीन दिन तक मैं घर के बाहर नहीं निकली हूँ—इसलिए कि कहीं आप आकर निराश न चले जायें। और आज!—आज मुझसे न रहा गया। आज मैं अपने से विवश हो गई और आपको ढूंढने के लिए निकल पड़ी। मैं जानना चाहती थी कि मेरी भावना, मेरी तपस्या—यह सब झूठ तो नहीं है!"

प्रभानाथ के सारे शरीर में पुलक का प्रकम्प भर गया, वीणा से यह सब सुनकर—अपनी विजय पर ! वीणा का हाथ अपने हाथ में लेकर उसने कहा, "चलो, कुछ घूम आवें ! कल सुबह मैं जा रहा हूं; आज बिदा की रात है ! चलो, थोड़ा-सा हँस बोल लें, फिर न जाने कब मिलना हो !"

"क्या कहा ? कल आप जा रहे हैं ?" वीणा को जैसे काठ मार गया, "इतनी जल्दी !"

प्रभानाथ ने एक टैक्सी वाले को, जो पास ही खड़ा था, इशारा किया। टैक्सी आ गई। वीणा को टैक्सी पर बिठला कर उसकी बगल में बैठते हुए प्रभानाथ ने कहा, "कलकत्ता आए हुए काफ़ी दिन हो गए, अब तो लौटना ही है। और फिर यहां मेरी क्या आवश्यकता ? मुझे वहां जाकर काम आरंभ कर देना है !"

टैक्सी चली जा रही थी और वीणा कह रही थी, "मैं आपसे प्रार्थना करती हूं, आपके हाथ जोड़ती हूं, आप इस काम में न पड़ें। आप नहीं जानते कि आप मृत्यु के साथ खेलने को अग्रसर हो रहे हैं !"

"मैं जानता हूं ! तुम भी तो मृत्यु के साथ खेल रही हो !" प्रभानाथ मुस्कराया।

"मुझे खेलने दीजिए, मुझे मरने दीजिए ! लेकिन आप"—वीणा की आंखों में आंसू आ गए थे, उसकी आवाज़ कांप रही थी, "लेकिन आप इधर मत बढ़िए। मैं जानती हूं कि आप वीर हैं, साहसी हैं ! लेकिन फिर भी— आप नहीं समझ रहे हैं।"

"मैं सब समझ रहा हूं, सब जानता हूं, वीणा !" प्रभानाथ कुछ रुका, "जीवन की न जाने कितनी धाराएं हैं, न जाने कितनी गतियां हैं। जिस धारा में मैं बह रहा हूं, जिस गति को मैंने अपनाया है, वह खतरे से खाली नहीं है—मैंने माना, लेकिन खतरे से खाली है क्या ? मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता, कितनी ही सावधानी के साथ कोई क्यों न रहे ! पैदल चलते हुए हम मोटर से कुचल सकते हैं, रेल में सफ़र करते हुए रेल लड़ सकती है। हम

मकान की सीढ़ी से फिसल सकते हैं, घर में आग लग सकती है, भूकम्प के धक्के से मकान गिर सकता है और हम दब सकते हैं ! कौन-सी ऐसी जगह है, जहां मृत्यु न हो ? तो फिर इस मृत्यु से भय कैसा ? और फिर जिस धारा को मैंने अपनाया है, उसमें अनिश्चितता है, हलचल है, स्पन्दन है और साथ ही कर्तव्यपालन करने का संतोष भी है !"

वीणा प्रभानाथ की बात में निहित अहम्मन्यता को नहीं देख सकी, प्रभानाथ के आग के साथ खेलने के शौक को नहीं पहचान सकी; वह देख सकी केवल अपना आदर्श; और उसने प्रभानाथ के कंधे पर अपना सर रख दिया । प्रभानाथ का हाथ वीणा की ग्रीवा पर पड़ा, इसके बाद वीणा ने अनुभव किया कि एक पुष्ट और शक्तिशाली हाथ ने उसके सिर को तनिक ऊँचा किया । और फिर एक सुन्दर मुख उसके मुख से मिलने को झुका । इसके आगे वीणा कुछ न देख सकी, उसकी आंखें बन्द थीं । हां, उसने अधरों के पराग का अधरों पर और श्वासों के सौरभ का श्वासों में अनुभव अवश्य किया-विसुध सी, अर्ध-चेतना की अवस्था में !

जिस समय वीणा घर लौटी, बारह बज चुके थे । एक विचित्र मादकता और पुलक का आलस्य उसके नेत्रों में, उसके सारे शरीर में, उसके प्राणों में भरा हुआ था । उसके कान में प्रभानाथ के अन्तिम शब्द गूंज रहे थे, "वीणा ! तुम्हें मेरे साथ काम करने के लिए आना पड़ेगा । एक महीने के अन्दर ही मैं तुम्हें बुला लूंगा !"

छठा परिच्छेद

१

प्रभानाथ के साथ मारीसन और उमानाथ कानपुर पहुंच गए। ग्रान्ड ट्रंक रोड से कानपुर नगर में प्रवेश करते हुए उमानाथ ने कहा, "प्रभा ! सीधे बड़के भइया के यहां चलो। कामरेड मारीसन जब तक कानपुर में हैं, तब तक बड़के भइया के मेहमान होकर रहेंगे। तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

दयानाथ के बंगले की तरफ़ कार मोड़ते हुए प्रभानाथ ने कहा, "वहीं चल रहा हूं। लेकिन जहां तक बड़के भइया के घर पर मिलने की बात है, वहां मैं अभी कुछ कह नहीं सकता।"

"क्यों, क्या बात है ?" उमानाथ ने पूछा।

"जब मैं कलकत्ता जा रहा था तब उन्होंने मुझसे कहा था कि वे कभी-भी जेल जा सकते हैं।" कुछ रुक कर प्रभानाथ ने फिर कहा, "अगर बड़के भइया अभी तक जेल न गए हों तो बड़ा अच्छा हो ! आपसे मिलने के लिए वे कितने उत्सुक थे !" कार इस समय तक मेस्टन रोड पर आ गई थी।

मेस्टन रोड पर बड़ी भीड़ थी, कार को रुक जाना पड़ा। सामने से कांग्रेस का एक जुलूस आ रहा था, और जुलूस में सब से आगे थे दयानाथ। दयानाथ के गले में गजरे लटक रहे थे, उनके मस्तक पर तिलक लगा था, और उनके हाथ में था तिरंगा झण्डा। पीछे-पीछे जन-समुदाय महात्मा गांधी की जय, भारतमाता की जय, कांग्रेस की जय तथा दयानाथ की जय के नारे लगाता हुआ चल रहा था। अगल-बगल की पटरियों पर लोग खड़े तमाशा देख रहे थे।

उमानाथ ने कहा, "अरे, ये तो बड़के भइया हैं। इसके माने हैं कि अभी तक जेल के अन्दर नहीं पहुंचे !"

"अन्दर पहुंचने की तैयारी है !" किसी ने मुस्कराते हुए कहा। उमानाथ और प्रभानाथ ने देखा कि मार्कण्डेय कार के पास खड़ा हुआ मुस्करा रहा है। मार्कण्डेय ने फिर कहा, "स्वागत है उमानाथ ! मजे में तो रहे? और देख रहे हो न ! ठीक बलि-वेदी के बकरे की तरह दयानाथ को लोग लिए चल रहे हैं ब्रिटिश-सरकार की भेंट चढ़ाने के लिए ! गजरों से लाद कर, उनकी आरती उतार कर, उनकी जयजयकार करके यह जन-समुदाय दयानाथ को जेल की तरफ़ लिए जा रहा है !"

"मैं समझा नहीं मार्कण्डेय भइया ! यह जुलूस तो जेल की तरफ़ नहीं जा रहा है।" उमानाथ ने कहा।

"हां, यह जुलूस जेल की तरफ़ नहीं जा रहा है, लेकिन दयानाथ जेल की तरफ़ जा रहे हैं। जानते हो ? दयानाथ कानपुर के डिक्टेटर बनाए गए हैं, और डिक्टेटर बनने के माने होते हैं दूसरे ही दिन जेल में ठूंस दिया जाना। कल या परसों दयानाथ गिरफ्तार कर लिए जायंगे, और फिर उसके बाद कोई दूसरा डिक्टेटर नियुक्त होगा। शायद वे लोग मुझको ही नियुक्त करें। और इस प्रकार यह लड़ाई चल रही है।" मार्कण्डेय हंस पड़ा।

उमानाथ भी हंस पड़ा, "लड़ाई तो दिलचस्प मालूम होती है। लेकिन मैं यह जरूर कह सकता हूं कि यह लड़ाई हिन्दुस्तान को ही शोभा दे सकती है। लड़ते जाइए यह लड़ाई, देखें, आप लोग कब तक लड़ते हैं।"

जुलूस इस समय तक निकल गया था। प्रभानाथ ने कार स्टार्ट करते हुए कहा, "मार्कण्डेय भइया, चलिए हमारे यहां चल रहे हैं न ?"

मार्कण्डेय ने जाते हुए जुलूस पर एक नजर डाली, "नहीं, जुलूस के साथ चला हूं तो उसके साथ अन्त तक रहना भी चाहिए। अभी एक घण्टे में मैं दयानाथ के साथ तुम्हारे यहां आता हूं।" यह कह कर मार्कण्डेय चला गया।

जिस समय मोटर ने दयानाथ के बंगले के कम्पाउण्ड में प्रवेश किया, राजेश्वरीदेवी बरामदे में चिन्ताग्रस्त बैठी कुछ सोच रही थीं। दयानाथ सज-धज कर जुलूस के साथ गए थे। दयानाथ को पहिला तिलक उन्होंने लगाया

था, पहिली आरती उन्होंने उतारी थी, पहली माला उन्होंने पहनाई थी और हंसते हुए दयानाथ को राजेश्वरी ने विदा दी थी; लेकिन इस आदर, सम्मान और साथ-साथ अपनी उस वीरता के अन्दर निहित व्यंग को भली भांति समझती थी। यह माला पहनाना, तिलक लगाना, आरती उतारना और फिर हंसते हुए विदा देना—यह सब का सब ऊपरी दिखावा था, केवल आत्मछलना थी। अन्दर ही अन्दर राजेश्वरी के प्राण रो रहे थे। जो कुछ उसने किया, वह लोकाचार को निभाने के लिए, और शायद इससे भी अधिक इसलिए कि दयानाथ को इसमें प्रसन्नता हो, दयानाथ उसे कायर या निर्बल न समझ बैठें; और यह सब कर लेने के बाद जब जुलूस उसके बंगले से बाहर हो गया तो राजेश्वरी ने एक भयानक सूनेपन का अनुभव किया। एक ठंडी सांस लेकर उसने राजेश और ब्रजेश को देखा! दोनों बच्चे कितने प्रसन्न थे। वे बाग में खेल रहे थे। राजेश—आठ साल का राजेश—गा रहा था "झण्डा ऊंचा रहे हमारा!" और छः साल का ब्रजेश बीच-बीच में चिल्ला उठता था, "इन-किलाब जिन्दा-बाद!—महात्मा गांधी की जय!—भारतमाता की जय!"

उन बच्चों को क्या मालूम कि उनके पिता जेलखाने के लिए इतना सज-धज कर उस लम्बे जुलूस के साथ गए हैं। वे प्रसन्न थे—एक मेला देख कर और राजेश्वरी बरामदे में बैठी हुई उन भोले बच्चों को देख रही थी, उनके तथा अपने भविष्य पर सोच रही थी।

पति की अनुपस्थिति में ये बच्चे ही उसके साथ रहेंगे। और ये बच्चे पूछेंगे कि बाबूजी कहां हैं? ये बच्चे रोएंगे! और राजेश्वरी ने फिर से उन दोनों बच्चों की ओर देखा। बच्चों के साथ-साथ उसकी दृष्टि बंगले के बगीचे पर पड़ी, और वहां से हट कर बंगले पर! "क्या इस बंगले में अकेले इन बच्चों के साथ रहना ठीक होगा? उसके परिवार की देख-भाल कौन करेगा?" और एका-एक उसे घर की याद हो आई—अपने घर की! उन्नाव में उसके ससुर, उसके देवर, उसकी देवरानी—सभी कोई हैं; और वे सब चाहते हैं कि वह अपने बच्चों के साथ उन्नाव जा कर रहे। "लेकिन मेरा वहां जाना असम्भव है! बात यहां तक पहुंच गई है, इनको उन्होंने त्याग दिया और मुझे वे बुलाते

हैं।" राजेश्वरी मुस्कराई, "मानों मैं इनसे अलग हूँ। मानों वे बच्चे इनके नहीं हैं!" नहीं, इस बँगले को छोड़ कर वह नहीं जायगी। अकेली रहेगी—वह एक वीर की पत्नी है, वह भी वीर बनेगी। यह उसकी तपस्या का काल है!

एकाएक राजेश्वरी की विचार-धारा टूट गई, कार की आवाज सुन कर। राजेश्वरी बँगले के अन्दर चली गई। सुखिया महरी से उसने कहा, "देखो कौन आया है!"

सुखिया घर के बाहर निकलने भी न पाई थी कि प्रभानाथ और उमानाथ ने घर में प्रवेश किया। प्रभानाथ ने अपनी भावज के पैर छुए और उमानाथ ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा, "हलो भौजी—हाऊ डू यू डू—अरे, भूल गया—नमस्कार! अच्छी तरह तो रहीं!"

"अरे उमा बाबू!" आश्चर्य से राजेश्वरी ने कहा, "कब आए! आइए, बैठिए।"

"अभी-अभी कलकत्ता से कार में चला आ रहा हूँ!" राजेश्वरीदेवी के साथ कमरे में चलते हुए उमानाथ ने कहा, "रास्ते में बड़के भइया को भी देखा! बड़े ठाठ से जा रहे थे। उन्होंने मेरी तरफ़ नजर भी नहीं डाली, अपनी जयजयकार के नारे सुनने में मस्त थे। बड़े आदमी हो गए हैं न!" उमानाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा, "भौजी, यह क्या स्वांग बना रक्खा है उन्होंने—आपने उन्हें रोका क्यों नहीं?"

राजेश्वरी अपने देवर के हँसमुख-स्वभाव को भली भांति जानती थी। उसने कहा, "बाबू यह स्वांग है, या क्या है, यह मैं क्या जानूं? मैं तो स्त्री ठहरी, बिना पढ़ी-लिखी मूरख! और तुम्हारे भइया काफ़ी समझदार हैं। जो कुछ करते हैं, सोच-विचार कर करते हैं और गलत नहीं करते। आखिर देश का काम है! मैं क्यों उन्हें रोक कर पाप की भागी बनती?"

उमानाथ मुस्कराया, "आप भी पूरी तौर से बड़के भइया के रंग में रंग गई हैं भौजी! लेकिन यह सब निरा पागलपन है—मैं कहता हूँ, कांग्रेस गलत रास्ते पर है!"

"अच्छा-अच्छा ! पहले मुंह-हाथ धो लो और कपड़े बदल डालो--एकदम भूत बने हो !" हंसते हुए राजेश्वरीदेवी ने कहा, "फिर जितना तर्क-वितर्क करना हो, वह अपने बड़े भइया से कर लेना--वह आते ही होंगे !" यह कह कर राजेश्वरीदेवी ने सुखिया को सब इंतजाम कर देने का आदेश दिया और खुद रसोई-घर में नाश्ता बनाने चली गई।

२

प्रभानाथ और उमानाथ जिस समय मुंह-हाथ धोकर बाथ-रूम के बाहर निकले, नाश्ता हो गया था। उमानाथ ने कहा, "भौजी, मेरे साथ मेरे एक दोस्त भी हैं--नाश्ता आप बाहर भिजवा दें। और चलिए, मैं अपने दोस्त से आपको इंट्रोडयूस भी करवा दूं--बड़े मज़ेदार आदमी हैं !"

राजेश्वरी ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा। राजेश्वरी की इस मुद्रा को देख कर प्रभानाथ हंस पड़ा। उसने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, अब आप योरोप में नहीं हैं, हिन्दुस्तान में हैं। यह आप मत भूल जाया करिए।"

"अरे हां।" अपनी गलती महसूस करते हुए उमानाथ ने कहा, "मैं भूल ही गया था कि मैं इस वहशी मुल्क में आ गया हूं। अच्छा तो भौजी-जी, प्रभा को आप यहीं नाश्ता करा दीजिए और मेरा तथा मेरे दोस्त का नाश्ता बाहर भिजवा दीजिए।" यह कह कर उमानाथ बाहरवाले कमरे की ओर चल दिया।

जिस समय उमानाथ ड्राइंग-रूम में पहुंचा, कामरेड मारीसन सोफ़ा पर लेटे हुए एक गाना गा रहे थे। उमानाथ के पहुंचते ही उन्होंने कहा, "कामरेड उमानाथ--बड़ी देर लगा दी। अब बतलाओ कि मेरे ठहरने का इंतज़ाम कहां होगा ?"

"पहले चाय तो पी लो, फिर बातचीत होगी।" उमानाथ ने उत्तर दिया, "उस समय तक मेरे बड़े भाई भी लौट आवेंगे।"

दोनों कामरेड चाय पर जुट गए। चाय समाप्त कर लेने के बाद उमानाथ ने मारीसन से कहा, "कामरेड—तुम्हारी उम्र क्या होगी?"

कुछ सोच कर और कुछ हिसाब लगा कर कामरेड मारीसन ने बतलाया, "अट्ठाईस वर्ष, सात महीने, उन्नीस दिन!"

थोड़ी देर चुप रह कर उमानाथ ने फिर पूछा, "कामरेड—अगर बुरा न मानो तो मैं पूछूंगा कि तुम्हारा विवाह हुआ है या नहीं!"

"इसमें बुरा मानने की क्या बात है?" मारीसन ने जम्हुआई लेते हुए कहा, "नहीं कामरेड, विवाह करने की बात कभी सोची ही नहीं; और सोचता भी कैसे? यहां तो हर समय इस बात की चिन्ता रही कि जिन्दा रहने के लिए रूपया कैसे पैदा करूं। और फिर इस पवित्र सिद्धान्त की सेवा में लग गया।"

उमानाथ मुस्कराया, "हां कामरेड! मैं समझता हूं कि तुम्हारी जैसी परिस्थिति में पड़े हुए आदमी के लिए विवाह करना उचित न था। लेकिन अब तो परिस्थिति बदल गई है—अब तुम विवाह कर सकते हो!"

"शादी तो कर सकता हूं कामरेड", कुछ खिन्न-सा होकर मारीसन ने कहा, "लेकिन क्या बताऊं, हिम्मत नहीं पड़ती। न जाने बीबी के साथ कैसी निपटे। और तुम जानते ही हो कि आजकल की औरतें काफी बढ़ी-चढ़ी होती हैं। बजाय इसके कि वे पुरुष की सेवा करें, वे पुरुषों से सेवा कराना चाहती हैं।"

"और अगर तुम्हें ऐसी बीबी मिल जाय जो तुम्हारी सेवा करे, सेवा ही नहीं, बल्कि तुम्हारी दिन-रात पूजा करे, और इसके साथ जो कुछ भी रूखा-सूखा मिल जाय उससे पेट भर ले तो?"

कामरेड मारीसन ने कामरेड उमानाथ को विस्फारित नयनों से देखा, "कामरेड उमानाथ! क्यों बेकार की बातें करते हो! मेरा वक्त ज्यादा कीमती है—और मजाक करने के मूड में मैं कतई नहीं हूं!"

"नहीं कामरेड। यह बेकार की बात नहीं है, और न मैं मजाक ही कर रहा हूं। मैं सचमुच पूछ रहा हूं कि अगर तुम्हें ऐसी स्त्री मिल जाय तो?"

"तो ऐसी स्त्री या तो बूढ़ी और गर्जमन्द होगी, या फिर महाकुरूप होगी। और मैं बूढ़ी या कुरूप स्त्री से कभी शादी नहीं कर सकता।"

"अरे न बूढ़ी न कुरूप, बल्कि जवान और बला की खूबसूरत!"

"सच!" कामरेड मारीसन ने अब उठ कर बैठते हुए उत्सुकता के साथ पूछा, "क्या वास्तव में ऐसी स्त्री मिल सकती है? मुझे विश्वास नहीं होता! कामरेड उमानाथ, क्या तुम सच कह रहे हो?"

"हां कामरेड मारीसन, अगर शादी करना चाहते हो तो तुम्हें ऐसी स्त्री मिल सकती है।"

"और तुम्हारा यह कहना है कि वह देवता की तरह मुझे पूजेगी?"

"हां!"

"और रूखा-सूखा जो कुछ मिल जाय, उसे खाकर खुश रहेगी?"

"हां।"

"और शराब तो नहीं पीती, सिगरेट तो नहीं पीती, डांस की शौकीन तो नहीं है, खेल-तमाशों में ज्यादा दिलचस्पी तो नहीं लेती?"

"बिल्कुल नहीं।"

"और तुम्हारा कहना है कि खूबसूरत है?"

"बिल्कुल परी की तरह।"

कामरेड मारीसन अब उठ खड़े हुए; लपक कर उन्होंने कामरेड उमानाथ से हाथ मिलाया, "अच्छा कामरेड उमानाथ, ऐसी स्त्री से मैं शादी करने को तैयार हूं। लेकिन एक सवाल मैं और करूंगा—वह स्त्री कौन है?"

उमानाथ ने थोड़ी देर तक यह सोचा कि आया कामरेड मारीसन से सारी स्थिति स्पष्ट कर दी जाय या नहीं; और उन्होंने तै कर लिया कि आखिर

स्थिति तो स्पष्ट करनी ही पड़ेगी, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों; लिहाजा जल्दी से जल्दी स्थिति क्यों न स्पष्ट कर दी जाय। उन्होंने धीरे से कहा, "देखो कामरेड—अभी यह बात किसी से कहना मत! बात यह है कि मेरी पहली पत्नी में ये सब गुण मौजूद हैं। और चूंकि मैं उससे प्रेम नहीं करता—नहीं, ऐसी बात नहीं है, जब यहां से गया था तब तो प्रेम करता था, लेकिन बाद में हिल्डा से प्रेम करने लगा और उससे शादी भी कर ली; इसलिए मैं समझता हूं कि मुझे अपनी पहली पत्नी को तलाक दे देना चाहिए और औरत वह नेक है, इसलिए मैं चाहता हूं कि जब वह खाली हो जाय तो तुम उससे शादी कर लो!"

उमानाथ ने अपनी बात खत्म की ही थी कि उन्हें हंसी के ठहाके की एक आवाज सुनाई दी। उसने मुड़ कर देखा कि मार्कण्डेय हंसता हुआ कमरे में प्रवेश कर रहा है। मार्कण्डेय ने उमानाथ के पास आकर कहा, "उमा, तुम शायद भूल गए हो, इसलिए मैं तुम्हें याद दिलाए देता हूं कि हिन्दुओं में तलाक नहीं होता; तलाक हिन्दू-ला के अनुसार निषिद्ध है।"

कामरेड मारीसन ने चौंक कर कहा, "क्या कहते हो? क्या हिन्दुओं में डाइवोर्स नहीं होता? मैं किसी भी हालत में यह मानने को तैयार नहीं। मेरे बेहरा रामदीन की औरत ने एक दूसरे आदमी से शादी कर ली थी और वहां तो तलाक हो गया था?"

"अपने बेहरा की बात छोड़िये। वह शूद्र रहा होगा; और शूद्रों पर पूरी तौर से—खास तौर से शादी-विवाह के मामलों में हिन्दू ला लागू नहीं होता। हिन्दू-ला सवर्ण हिन्दुओं पर ही लागू होता है।"

इस बार उमानाथ के बोलने की बारी थी। उसने कहा, "मार्कण्डेय भइया, आपसे एक प्रार्थना है, आप मेरे विवाह की बात किसी पर प्रकट न कीजिएगा—इसका आप मुझे वचन दे दें। देखिये, अभी आते ही मैं यह सब झगड़ा-फसाद नहीं मचाना चाहता, आप बड़के भइया से भी यह सब मत कहिएगा। मैं खुद समय आने पर यह प्रकट कर दूंगा।"

मार्कण्डेय ने उमानाथ का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, "उमा, मैं वचन देता हूं कि मैं यह बात किसी से न कहूंगा! मुझे अफसोस है कि यह बात मेरे कान में पड़ गई, और इससे भी अधिक अफसोस इस बात का है कि तुम, जितना मैंने समझा था, उससे अधिक मूर्ख निकले।" मार्कण्डेय मुस्करा पड़ा। मार्कण्डेय अब कुर्सी पर बैठ गया था। उसने गौर से कामरेड मारीसन को देखते हुए उमानाथ से फिर कहा, "और अपने इन साथी का परिचय तुमने मुझसे अभी तक नहीं कराया, यद्यपि हम दोनों में बातचीत हो गई है।" मार्कंण्डेय इस बार मारीसन से बोला, "मेरा नाम मार्कण्डेय मिश्र है---मैं आपका परिचय जानना चाहता हूं!"

"मार्कंण्डेय मिश्र! अनुप्रास-युक्त नाम है मिस्टर मार्कंण्डेय मिश्र! और मेरा नाम है कामरेड मारीसन। मैं कम्यूनिस्ट हूं; कामरेड उमानाथ के साथ उत्तर भारत में घूमने का इरादा है!"

"कामरेड मारीसन! ये मिस्टर मिश्र पक्के बुर्जुआ हैं---यह मैं आपको बतला दूं, और बुर्जुआ होने के साथ किसी हद तक सिनिक भी हैं। आप ज़रा इनसे होशियार रहिएगा---ये कांग्रेसमैन हैं।" उमानाथ ने मुस्कराते हुए कामरेड मारीसन को आगाह किया।

"ऐसी बात है!" मारीसन अब मार्कण्डेय की ओर घूमा, "हां, देख रहा हूं आप खादी पहनते हैं, आप राष्ट्रीयता को माननेवाले हैं; और राष्ट्रीयता पर विश्वास करनेवाला आदमी मानव-समाज का घोर शत्रु होता है। मानवता में यह भेद, यह श्रेणी-विभाजन, यह विषमता! तुम हिन्दुस्तानी हो, तुम हिन्दू हो, तुम ब्राह्मण हो! और इन सब बातों के फेर में पड़ कर तुम यह भूल जाते हो कि तुम मनुष्य हो।"

मार्कण्डेय ने मारीसन को गौर से देखा।—"आप जो कुछ कह रहे हैं वह नई बात नहीं है। मैंने इसे बहुत सुना है, बहुत पढ़ा है—और आप जानते हैं मैं इन बातों को क्या समझता हूं?---अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रलाप!"

"आप इसे प्रलाप कह सकते हैं। आपके पास शब्द हैं, आपके पास

ज़बान है। लेकिन यह अमिट और अक्षय सत्य है। तुम किस बात के लिए लड़ रहे हो? तुम क्या चाहते हो? तुम कहोगे—'स्वतन्त्रता।' और मैं पूछता हूँ कि तुम्हारी यह स्वतन्त्रता क्या बला है? जिस स्वतंत्रता के लिए तुम लड़ रहे हो, क्या उसे पा जाने पर जनता के साथ होनेवाला यह उत्पीड़न बन्द हो जायगा? आज करीब डेढ़ सौ वर्ष ही तो हुए हैं तुम हिन्दुस्तानियों को गुलाम हुए। उसके पहले क्या था? मनुष्य का मनुष्य पर अत्याचार, रक्त-शोषण, निर्बल को गुलाम बनाना—गुलाम ही नहीं, उसे पशु बना देना। तुम कुछ थोड़े-से आदमी, जो समाज के नेता हो, जो समाज के श्रेष्ठ अंग होने का दम भरते हो; तुम स्वतन्त्रता पाना चाहते हो, निरीह और बेज़ुबान जनता को और भी भयानक गुलाम बनाने के लिए! तुम गुलामी से छूटना चाहते हो दूसरों को अपनी गुलामी की चक्की में पीसने के लिए!"

कुछ रुक कर कामरेड मारीसन ने फिर कहा, "ब्रिटिश सरकार पूंजीवादी है—तुम पूंजीवादी हो। सरकार शक्तिशाली है। तुम शक्तिहीन हो! अंग्रेज मौज करते हैं, मलाई और माल वे ले जाते हैं। तुम्हें बचा-खुचा मिलता है। और इसीलिए तुम लड़ते हो। यह मलाई और माल तुम पाना चाहते हो। लेकिन यह मूक और उत्पीड़ित जन-समुदाय, जिसे भिखारी बनाकर यह माल मारा जा रहा है, कब तुमने इस पर ध्यान दिया? नहीं मिस्टर मिश्र! यह लड़ाई गलत है, बेकार है! इस लड़ाई में मेरी कोई सहानुभूति नहीं है। मैं तो कहता हूँ कि जन-समुदाय को आगे आना चाहिए। उन्हें डट कर मोरचा लेना चाहिए तुम लोगों से—तुम शोषण करनेवालों से......"

मारीसन रुक गए। उसी समय दयानाथ ने कमरे में प्रवेश किया। उमानाथ की ओर बढ़ते हुए दयानाथ ने कहा, "तो तुम लौट आए! तुम्हारा स्वागत! ठीक मौके पर तुम आ गए हो उमा! अगर दो एक दिन की और देर हो जाती तो छः महीने के लिए मैं तुम्हें न देख पाता!"

"यह मेरे मित्र कामरेड मारीसन हैं—और ये मेरे बड़े भाई श्री दयानाथ तिवारी हैं!" उमानाथ ने अपने बड़े भाई और कामरेड मारीसन का परिचय

कराते हुए कहा, "भइया, कामरेड मारीसन को मैं उत्तर भारत घुमाने लेता आया हूँ !"

पर मानों दयानाथ ने मारीसन पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। उनकी विचार-धारा किसी दूसरी ओर थी, "और प्रभा कहां है ?" दयानाथ ने पूछा।

"अरे हां ! प्रभा कहां है ?" उमानाथ ने कमरे में चारों ओर देखते हुए कहा, "वह तो अन्दर से आया ही नहीं ! मालूम होता है उसने लम्बी तानी !" कुछ रुककर उमानाथ ने फिर कहा, "बैठिए न ! यह क्या स्वांग आपने बना रक्खा है ! और ये फूलों के गजरे, जो आपकी गर्दन पर झूल रहे हैं, निकालिए इन्हें और बाहर भिजवा दीजिए !"

"बाहर जा कर तुम्हारी शैतानी और भी बढ़ गई है !" दयानाथ हंस पड़ा। गजरों को मेज़ पर रखते हुए उसने कहा, "देख रहा हूँ कि तुम ददुआ से बढ़ कर ही निकलोगे !"

उमानाथ भी हंस पड़ा, "मेरे घर में कम किसी से कोई नहीं है। बड़के भइया, आप अपने को ही क्या समझते हैं ? जो कुछ मैंने आपके सम्बन्ध में सुना है, और जो कुछ मैं देख रहा हूँ, उससे मैं कह सकता हूँ कि आप बहुत आगे बढ़े हुए हैं।" फिर धीरे से उसने कहा, "बड़के भइया, ददुआ को अभी पता नहीं कि मैं क्या हूँ, आपको भी पता नहीं ! लेकिन इतना मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे आप लोग अपने से पीछे न पाइएगा !"

दयानाथ ने मुस्कराते हुए कहा, "देख रहा हूँ, विलायत से तुम विलायत की सभ्यता, संस्कृति और विचार-धारा भी साथ लेते आए हो। तीन साल के अन्दर ही तुमने अपनी सारी हिन्दुस्तानियत अपने से निकाल फेंकी। इस परिवर्तन पर मैं तुम्हें बधाई नहीं दे सकता !"

इसी समय बाहर कुछ हलचल-सी मालूम हुई। नौकर ने आकर इत्तिला दी कि कुछ सिपाहियों के साथ पुलिस सब-इंसपेक्टर बाहर खड़े हैं।

३

दयानाथ उठ खड़े हुए, "देख रहा हूँ कि हम लोगों का अनुमान गलत था। गिरफ्तारी कल न हो कर आज ही होगी। अच्छा, मैं भीतर हो लूं।" और उन्होंने नौकर से कहा, "थानेदार साहेब को यहां बुला कर बिठलाओ, मैं अभी आता हूँ।"

राजेश्वरीदेवी राजेश और ब्रजेश को खाना खिला रही थीं। दयानाथ को देखते ही वे उठ खड़ी हुईं। बाहर कोलाहल बढ़ता ही जाता था; पुलिस-वालों को देख कर जनता की भीड़ बंगले के बाहर एकत्रित हो रही थी। राजेश्वरी ने दयानाथ से पूछा, "यह शोर कैसा है ?"

"शायद मेरी गिरफ्तारी का वारंट आया है; इसी समय जाना पड़ेगा।" मुस्कराते हुए दयानाथ ने कहा।

राजेश्वरी सुन्न-सी रह गई। उसके मुंह से शब्द न निकला, एकटक वह दयानाथ को देख रही थी।

बाहर के कोलाहल से प्रभानाथ की नींद टूट गई, "क्या बात है ?" कहते हुए वह कमरे से बाहर निकला और उसने देखा कि उसकी भावज राजेश्वरी रुआसी-सी खड़ी है और उसके सामने ही खड़ा हुआ दयानाथ मुस्करा रहा है।

"आप आ गए, बड़के भइया ? लेकिन यह शोर कैसा ?" प्रभानाथ ने दयानाथ से पूछा।

"हां, मैं आ गया, और मुझे लेने के लिए पुलिस भी आ गई है—बाहर खड़ी है। उमा, तुम अपनी भावज को संभालो—उससे कहो, "वीर बनो, यह कायरता का समय नहीं है !"

राजेश्वरी ने साहस किया, "मैं कायर नहीं हूं। लेकिन—लेकिन !..."

राजेश और ब्रजेश खाना छोड़ कर उठ आए थे और अपने पिता के

आस-पास खड़े थे। दयानाथ ने दोनों बच्चों को प्यार किया, फिर पत्नी के मस्तक पर हाथ रख कर उन्होंने कुछ ममता-भरे, कुछ स्नेह-युक्त और कुछ गम्भीर स्वर में कहा, "राजेश्वरी ! यह मेरी तीर्थ-यात्रा है ! अविचलित भाव से, अपनी शुभ कामनाओं के साथ मुझे विदा दो ! साहस करो और धैर्य धारण करो !"

राजेश्वरी ने अपने पति को इस बार पूरी नज़र से देखा—और उसके सामने खड़ा था लम्बा हृष्ट-पुष्ट, गौर-वर्ण का एक वीर, हिमालय की भांति अचल, मेघ-माला की भांति गम्भीर ! कितना तेजवान, सुन्दर, साहसी और श्रेष्ठ था उसका पति ! उसका अन्तर प्रसन्नता से भर गया, उसकी छाती अभिमान से फूल उठी। दौड़कर वह रसोई-घर से दही-अक्षत ले आई। उसने अपने पति का तिलक किया और फिर बड़ी भक्ति के साथ उसने अपने पति के चरण छुए।

प्रभानाथ के साथ दयानाथ बाहर निकला। थानेदार भूपसिंह दयानाथ के इंतजार में ड्राइंग-रूम में बैठे हुए उमानाथ से बातें कर रहे थे। जिस समय दयानाथ ड्राइंग-रूम में आया; उमानाथ थानेदार भूपसिंह की बात का समर्थन कर रहा था, "जी हां, यह तो आप का फर्ज है। भला हिन्दुस्तानी कहीं नमकहरामी कर सकते हैं? हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने लार्ड क्लाइव और उनके साथियों को चावल खिलाया और खुद माड़ पीकर लड़े—हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का राज्य कायम कराने के लिए; सन् ५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम के समय सिक्खों ने न जाने कितने हिन्दुस्तानी बागियों को पेड़ों पर लटका दिया। सब से बड़ा पाप है नमकहरामी !"

थानेदार भूपसिंह की समझ में न आ रहा था कि उनकी तारीफ़ की जा रही है या उनका मजाक उड़ाया जा रहा है; लेकिन अपनी नेकनीयती और भलाई का सबूत देने की गरज से उन्होंने कहा, "क्या बताऊं कुंवर साहेब ! दिल से मैं महात्मा गांधी का बड़ा भारी भक्त हूं ! लेकिन नौकरी कर रहा हूं ! लम्बी गृहस्थी है—"

भूपसिंह की बात बीच में ही काट कर उमानाथ ने कहा, "और आप अपने बीबी-बच्चों को फांसी पर लटकाने को कतई तैयार नहीं। और एक दफ़े आप उन्हें फांसी पर लटकाने को तुल भी जायें तो भला वे कब मानने लगे। लम्बी गृहस्थी चलाने के लिए लम्बा खर्च भी चाहिए, और यह लम्बा खर्च निकालने के लिए लम्बी रकम की भी जरूरत होती है और इस लम्बी रकम के लिए लम्बा झूठ, लम्बी दगाबाज़ी, लम्बी रिश्वत, इन सब का सहारा लेना होता है!"

थानेदार भूपसिंह मुंह बाए हुए उमानाथ की बात सुन रहे थे। ऐसे मुंह-फट, मुंह पर गाली सुनानेवाले आदमी से उन्हें अभी तक वास्ता न पड़ा था; लेकिन साथ ही उमानाथ भूपसिंह पर पूरी तरह से हावी हो गया। दयानाथ यह बातचीत सुन कर मुस्कराया, उसने भूपसिंह के पास आ कर कहा, "थानेदार साहेब! मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूं!"

दयानाथ को सामने खड़ा देख कर भूपसिंह की जान में जान आई। उठ कर उन्होंने दयानाथ को सलाम किया, "मुझे अफसोस है कि आपकी गिरफ्तारी का वारंट मुझे सौंपा गया है!"

"इसमें अफ़सोस की क्या बात है? मैं तैयार हूं, आप अपना फ़र्ज़ अदा कीजिए!"

"नहीं पण्डितजी—इसमें जल्दी की कोई जरूरत नहीं। आपको जो-जो काम करना हो, कर लें। और अगर आप कहें, तो मैं कल आऊं!" भूपसिंह ने कहा।

दयानाथ ने उत्तर दिया, "नहीं थानेदार साहेब, इतनी तकलीफ़ करने की कोई जरूरत नहीं। जैसा कल वैसा आज! चलिए, मैं तैयार हूं!"

दयानाथ को विदा करके प्रभानाथ और उमानाथ अपनी भावज के पास अन्दर चले गए। जब तक दयानाथ नहीं गए, राजेश्वरी साहस-पूर्वक खड़ी रही; पर उनके जाते ही वह एकाएक फूट पड़ी। राजेश और ब्रजेश भी रो रहे थे, अपने पिता के जाने पर नहीं—उन्हें शायद यह पता भी न था कि

उनके पिता जेल गए हैं—बल्कि अपनी माता के रोने पर। उमानाथ ने कहा, "भौजी ! यह क्या हो रहा है ? छी ! छी ! कहीं इस तरह से धीरज खोया जाता है ! बड़के भइया अगर यह जान गए तो उन्हें कितना दुख होगा !"

राजेश्वरी ने आंखें पोंछ कर सामने देखा, उसके दोनों देवर उसके आगे खड़े थे । सब से नजदीकी, उसके निजी ! उसे कुछ ढाढ़स हुआ । उसने कहा, "बाबूजी ! अकेली हूं, क्या करूंगी ! कुछ समझ में नहीं आता।"

"क्यों, अकेली क्यों हो ? हम लोग तो हैं ! कल सुबह हम लोग उन्नाव जा रहे हैं। तैयारी कीजिए । आपका घर-द्वार सभी कुछ तो है !" उमानाथ ने कहा।

"नहीं बाबूजी ! मेरा घर-द्वार कुछ नहीं है ! वह सब तो उसी दिन छूट गया, जिस दिन उन्होंने इस रास्ते पर कदम रक्खा । मैं और ये दोनों बच्चे ! बस, हम लोग अकेले और सामने सारी दुनिया ! ददुआ ने तो हम लोगों को अलग कर दिया है !"

इस बार प्रभानाथ के बोलने की बारी थी, "भौजी जी ! ददुआ ने आप लोगों को कब अलग किया है ! बड़के भइया से उन्होंने मेरे ही सामने साफ़-साफ़ शब्दों में कहा था कि आप लोग, आप और राजेश-ब्रजेश जब चाहें, घर में आ सकती हैं । आपको हमारे साथ चलना पड़ेगा; यहां अकेली कैसे रहिएगा !"

एकाएक राजेश्वरीदेवी तन कर खड़ी हो गईं, "इन्हें अलग कर दिया और हम लोग सर-आंखों पर ! प्रभा बाबू ! आप क्या समझ कर यह कह रहे हैं ? आप समझते हैं कि जिस घर में ये कलंकित, अपमानित और निरावृत हैं, जहां त्याज्य हैं, उस घर में मैं पैर रक्खूंगी ! भूखों मर जाऊंगी, भीख मांग लूंगी, मजूरी कर लूंगी, लेकिन उन्नाव में पैर न रक्खूंगी ! इतना आप समझ लीजिए !"

उमानाथ ने ताली पीटते हुए कहा, "वेल सेड, भौजी जी ! चाहिए भी यही ! ददुआ को भी ज़रा पता लग जाय कि उनकी अहम्मन्यता को एक

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

परिच्छेद सातवाँ परिच्छेद सातवाँ परिच्छेद सातवाँ

२ २ २

[illegible]

[illegible]

चलो !" चलो !" चलो !"

[illegible]

ये प्रमुख

ये प्रमुख सभ्य-गण बानापुर में पण्डित रामनाथ तिवारी के अतिथि होकर आए थे । सुबह दस बजे के करीब उमानाथ मोटर से आनेवाला था; और तिवारीजी ने अपने लड़के के प्रायश्चित्त का विधान करवाया था । इस प्रायश्चित्त में योग देने के लिए आस-पास के कनौजिया जाति के सरपंच आमंत्रित किए गए थे ।

जिस समय भांग छन रही थी, झगड़ू मिश्र भी आ पहुंचे । भांग छानकर सरपंच फिर बैठे, अभी केवल आठ बजे थे ।

पण्डित परमानन्द सुकुल ने पण्डित झगड़ू मिश्र के सामने चूना-तमाखू से भरी अपनी हथेली फैलाते हुए कहा, "लेव मिसिरजी सुरती ! हां, तौन तिवारीजी केर बिटवा जर्मनी मां पढ़ि के लौट रहा है—है न ऐस बात !"

झगड़ू मिश्र ने एक चुटकी तमाखू लेते हुए उत्तर दिया, "हां-हां ! तमाम दुनिया छान के आवा है, तीन साल विलायत में रहा है—मजाक है !"

"तो फिर तुरकनो के देस मां गा होई ?" मन्नू दुबे ने एक कुटिल मुस्कराहट के साथ पूछा ।

मन्नू दुबे की मुस्कराहट की कुटिलता को झगड़ू मिश्र नहीं समझ सके, सीधे-सादे उन्होंने उत्तर दिया, "हां, काहे नाहीं। तुरकनो के देस मां घूमा है । हम कहा नाहीं कि दुनिया घूम के आय रहा है !"

परमानन्द सुकुल ने अब बम का गोला फेंका, "तो काहे हो मिसिरजी, तुरकन के देस मां तुरकन के हाथ का भोजनो कीन्हिस होई ! और फिर तुरकन के देस मां खाद्य-अखाद्य सबै चलत है।

पण्डित परमानन्द के इस प्रश्न से पण्डित झगड़ू मिश्र भड़क उठे । अब उनकी समझ में आया कि मन्नू दुबे और परमानन्द सुकुल का मतलब क्या है । पण्डित मन्नू दुबे और परमानन्द सुकुल अपनी कुलीनता, अपने अभिमान और अपने कटु-स्वभाव के लिए बैसवाड़े में प्रसिद्ध थे । अगर ये दोनों कुलीन कनौजिया किसी से दबते थे, तो पण्डित रामनाथ तिवारी से या पण्डित झगड़ू मिश्र से । पण्डित रामनाथ तिवारी से इसलिए कि वे ताल्लुकेदार थे,

शिक्षित थे और चरित्रवान् थे; और पण्डित झगड़ू मिश्र से इसलिए कि वे सेर के सवा सेर थे। अब उन्हें मौका मिला था कि वे पण्डित रामनाथ तिवारी पर हावी हो सकें; और झगड़ू ने इन दोनों के दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझ लिया। झगड़ू ने एक बार इन दोनों को कड़ी नज़र से देखा, फिर उन्होंने अपने स्वर को और भी कठोर बनाते हुए कहा, "खटकुल के लिए कौनो चीज अखाद्य नाहीं—यू समझ राख्यो!"

बैजनाथ वाजपेयी, जो छटांक भर भांग का गोला चढ़ा कर आंख मूंदे गड़गप्प बैठे थे, झगड़ू के इस कड़े स्वर से चौंक उठे। आंखें खोल कर उन्होंने कहा, "ठीक है मिसिरजी! हम लोग स्पर्श-मात्र से अखाद्य का खाद्य, अशुद्ध का शुद्ध बनाय सकित है! कृपा बनी रहे मरघट-निवासी बम भोला-नाथ की। तो भाई, एक दफे फिर बोलो विजया भवानी की जय!"

लेकिन बैजनाथ वाजपेयी का यह वाक्य फीका रहा। यह अवसर हँसी का नहीं था, बातों ने उग्र रूप धारण करना आरम्भ कर दिया था।

नीलकण्ठ अवस्थी इन उपस्थित सज्जनों में सब से अधिक विद्वान् समझे जाते थे, क्योंकि काशी में उन्होंने पांच वर्ष तक वैद्यक पढ़ी थी और वहां से यह कहते हुए लौटे थे कि परीक्षाफल को योग्यता की कसौटी बनाना सब से बड़ी मूर्खता है। एक बार खखार कर और अति गम्भीर मुद्रा बना कर अवस्थीजी ने कहा, "शास्त्र का विधान जो है शो तोड़ना मनुष्य के लिए वर्जित है। वाजपेयीजी, हम जो कुछ कर सकते हैं, वह शास्त्र के विधान से और जो है शो, जो कुछ नहीं कर सकते, वह भी शास्त्र के विधान से!"

गणपति अग्निहोत्री और नीलकण्ठ अवस्थी में एक जमीन के पीछे पुरानी अदावत चली आती थी। अभी तक तो वे मौन दर्शक की भांति बैठे बात-चीत का रस ले रहे थे, पर अब उनसे न रहा गया। उन्होंने कुछ अजीब तरह से मुंह बना कर कहा, "अवस्थीजी, तुम्हें यह सास्तर की बात करब सोभा नाहीं देत। पांच बरस कासी मां रहिके भाड़ तो झोंकत रहेव—नापास हुई के लौट आएव!"

परमानन्द सुकुल नीलकण्ठ अवस्थी के बहनोई थे। साले का यह अप-मान उन्हें अखर गया। कड़क कर उन्होंने कहा, "गणपति पण्डित जरा जबान सम्हाल के बात कीन्हेव, नाहीं तो जीभ काढ़ि लेब!"

गणपति सकपकाए, लेकिन झगड़ू ने गणपति को सहारा दिया, क्योंकि गणपति का अपमान परमानन्द सुकुल-द्वारा हुआ था। उन्होंने तन कर कहा, "कौन सार ऐस है जो गणपति पर हाथ लगावे--जरा देखो तो! और गणपति कहो, फिर कहो, एक मां नाहीं, हजार मां कहो!"

मन्नू दुबे ने अपनी लाठी सँभालते हुए कहा, "मिसिरजी, तिवारीजी की कोठी मां बैठि के ई बातें भले करि लेव, बाहर निकसि के करौ तो हम बताई!" यह कह कर मन्नू ने परमानन्द को गर्व से देखा। परमानन्द को सहारा मिला। लाठी लेकर वे खड़े हो गए, "तो फिर मिसिरजी, हम तुम्हार और गणपति की मर्दानगी—। एक दफा ई फिर वह बात निकारैं जबान से; और अगर इहां खून-खराबा न हुई गा तो हम बाह्मन नाहीं चमार!"

झगड़ू मिश्र के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती थी। उन्होंने भी अपनी लाठी सँभालते हुए गणपति से कहा, "गणपति पण्डित! फिर से कहो, और फिर जिहका हमार मर्दानगी देखै का होय, आवै हमारे सामने!"

गणपति को इसमें तो कोई आपत्ति नहीं थी कि झगड़ू मिश्र में तथा परमा-नन्द सुकुल एवं मन्नू दुबे में चले; उन्हें इनकी लड़ाई देखने की इच्छा भी थी; पर इस मामले में उन्हें शक था कि पहला वार झगड़ू पर होगा या उन पर होगा। सम्भावना यही थी कि पहला वार उन्हीं पर हो, और अपने ऊपर पहला हाथ पड़ने में उन्हें बड़ी आपत्ति थी। इसलिए उन्होंने झगड़ू का आश्वासन होते हुए भी मौन रहना ही उचित समझा।

कुछ देर तक गणपति का इंतजार करने के बाद झगड़ू ने जरा जोर से कहा, "काहे हो गणपति पण्डित! गूंगे हुइ गए हो का? कहौ ना—देखी ई लोग का बिगाड़े लेत हैं!"

लेकिन गणपति लड़ाई-झगड़े के बीच में पड़ने को जरा भी तैयार नहीं नजर आए।

झुंझला कर झगड़ू ने कहा, "कायर कहूं का सार! अच्छा तो सुनो परमानन्द और मन्नू! हमकहित हैं नीलकण्ठ से कि पांच बरस तक उइ कासी मां भाड़ झोंकिन! शास्त्र की बात चलाउब उन्हें सोभा नाहीं देत है! अब जेहिको-जेहिकी इच्छा होय, वह बाहर निकल आवे और निपट लेय!"

लाठी उठा कर मन्नू दुबे और परमानन्द सुकुल दोनों उठ खड़े हुए। झगड़ू के साथ दोनों बाहर निकले। और उनके पीछे-पीछे अन्य अतिथिगण दर्शक की हैसियत से उन लोगों को भड़काते हुए, या बीच-बचाव कराने की कोशिश करते हुए चले।

लेकिन उस दिन वाली फौजदारी शायद भगवान् को मंजूर न थी, क्योंकि जैसे ही इन सज्जनों ने दालान पार की, वैसे ही पण्डित रामनाथ तिवारी अपनी कोठी से बाहर निकले। इन लोगों को शोर मचाते हुए और लाठी लिए हुए निकलते देख कर रामनाथ तिवारी को शक हुआ। आगे बढ़ कर उन्होंने पूछा, "क्यों, क्या मामला है?"

झगड़ू ने रामनाथ से कहा, "बैठो हो तिवारीजी, हम लोग अबहीं आवत हन! जरा हम लोगन मां कुछ विवाद उठ खड़ा रहै सो उइका निर्णय करै का है।"

रामनाथ तिवारी ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "इस विवाद पर आप लोग फिर कभी निर्णय कर लीजिएगा, अभी इसका अवसर नहीं है।"

परमानन्द ने कहा, "तिवारीजी, आप न बोलैं! जरा हम देख लेई कि ई कहां के धन्नासाह हैं!"

"अच्छा—बहुत हो चुका। चलिए, बैठिए चल कर!" कुछ आज्ञा के स्वर में पण्डित रामनाथ तिवारी ने कहा।

पण्डित रामनाथ तिवारी के इस स्वर से सब लोग भली भांति परिचित थे, चुपचाप सब लोग घूम पड़े। दालान में पहुंच कर फिर सब पंच लोग बैठ गए; रामनाथ भी अब उस समुदाय में शामिल हो गए थे।

इसी समय मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। रामनाथ तिवारी उत्सुकता के साथ बाहर निकले, झगड़ू मिश्र भी उनके साथ थे !

२

कार रोकते हुए प्रभानाथ ने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, आपको याद है न कि हिन्दुस्तान में, और खास तौर से बानापुर में पिता के चरण छूने की प्रथा है ?"

"हां प्रभा ! तुम निश्चिन्त रहो। मैं जानता हूं कि यह जंगली प्रथा हम लोगों में प्रचलित है !" उमानाथ ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"जी हां, लेकिन कहीं यह न भूल जाइएगा कि बबुआ इस जंगली प्रथा के बहुत बड़े हिमायती हैं !" यह कह कर प्रभानाथ कार से उतर पड़ा। उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए।

उमानाथ को भी अपने पिता के चरण छूने पड़े। फिर झगड़ू की ओर देख कर उसने कहा, "हलो झगड़ू काका ! प्रणाम। आप अच्छी तरह तो हैं !"

इस 'हलो' तथा कुशल-क्षेम के प्रश्न को सुनकर झगड़ू गद्गद हो गए। "आशीर्वाद मझले कुंवर। बहुत दिनन बाद आए हो ! तौन दुनिया घूम के अब ई बिहात मां आय रहे हौ......" और यह न समझ पा कर कि अब आगे क्या कहा जाय, झगड़ू चुप हो गए।

रामनाथ ने कहा, "उमा ! घर के अन्दर प्रवेश करने के पहले तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा !" यह कह कर वे घूम पड़े।

झगड़ू के साथ उमानाथ ने रामनाथ का अनुसरण किया; प्रभानाथ कार से असबाब उतरवाने में लग गया।

जिस समय ये लोग प्रायश्चित्त में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित सभ्यगण के सामने पहुंचे, सभ्यगण विवाद में व्यस्त थे। विवाद का विषय

यह था कि क्या उमानाथ के प्रायश्चित्त करने से रामनाथ तिवारी का कुल अपनी मर्यादा कायम रख सकेगा या नहीं। पर इन लोगों के पहुंचते ही विवाद बन्द हो गया। रामनाथ तिवारी ने बैठते हुए कहा, "तो मिश्रजी, फिर प्रायश्चित्त के लिए सब तैयारी पूरी है न?"

झगड़ू ने एक बार सभ्यगणों पर निगाह डाली, फिर वे बोले, "हां तिवारी-जी, सब कुछ तैयार है।"

मन्नू दुबे ने, जो प्रायश्चित्त-विरोधी दल के नेता थे, साहस किया, "तिवारी-जी, हम कनौजियन मां बिलइतिहन का न कबौं प्रायश्चित्त भा है, और न आज होई! हम सब पंचन की तो राय कुछ ऐसी है!"

रामनाथ तिवारी ने अपने सम्मुख बैठे हुए लोगों को एक बार आश्चर्य-पूर्वक ध्यान से देख कर कहा, "दुबेजी, आपके साथ जो-जो पंच शामिल हों, वे स्वयम् यह बात कहें; मौन का अर्थ स्वीकृति समझा जायगा!"

अब परमानन्द सुकुल ने कहा, "हम लोग सब हों। अपन कुल और समाज की मर्यादा भला इहां को छोड़ सकत है?"

"हां ठीकै तो है!" पण्डित नीलकण्ठ अवस्थी ने परमानन्द का साथ दिया, "भला हम लोग कबौं शास्त्र के बाहर जाय सकित है? कुल और समाज की मर्यादा सब के ऊपर है।"

झगड़ू मिश्र से अब न रह गया, उन्होंने नीलकण्ठ की आंख से आंख मिला कर कहा, "काहे हो अवस्थीजी, जब तुम्हरी रांड़ भौजाई घर से निकसि गई, तब कुल की मर्यादा कहां गई रहै?"

"कहा कहेव मिसिरजी!" परमानन्द ने लाठी उठाते हुए कहा, "जरा एक दफा फिर तो ई बात बोलो!"

झगड़ू के हाथ में भी लाठी तन गई थी। वे बोलना ही चाहते थे, कि रामनाथ तिवारी ने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें रोका, "इस बात से यहां कोई मतलब नहीं! सवाल यह है कि इस प्रायश्चित्त में कौन-कौन शरीक है?"

"हम तैयार!" बैजनाथ बाजपेयी ने कहा।

"हम तैयार !" अलगू दीक्षित ने कहा।

"हम तैयार !" गणपति अग्निहोत्री ने कहा।

"लेकिन मैं नहीं तैयार !" उमानाथ जो मौन खड़ा यह काण्ड देख रहा था, बोल उठा, "यह सब स्वांग आप ही को मुबारक रहे दद्दुआ। ये कुत्तों से भी गए-बीते आदमी हमारे घर में आकर हमारा ही अपमान करें और आप सब कुछ चुपचाप देखते रहें, चुपचाप सुनते रहें ! मुझे आप पर आश्चर्य हो रहा है !"

झगड़ू मिश्र ने गर्व से उमानाथ की ओर देखा, "शाबाश—मझले कुंवर—ठीक कहेव ! चलो तिवारीजी, प्रायश्चित्त को कौनो आवश्यकता नाहीं, आगे चल के दीख जाई !"

लेकिन कुत्ते से अपनी तुलना परमानन्द सुकुल और मन्नू दुबे को बहुत अखरी ! मन्नू दुबे ने उठते हुए कहा, "लड़कऊ—यू याद राखेव ! घर मां अतिथि बुलाय के उनका अपमान करब सब से बड़ा पाप आय ! तुम्हार कुल का कुल नष्ट हुइ जाई—आज ब्राह्मण के मुख से यू वाक्य निकसा है, और ई का फल मिली।

२

महालक्ष्मी ने प्रभानाथ के उतरे हुए चेहरे को देख कर पूछा, "क्यों, क्या बात है बाबूजी ! कुशल तो है ? वह कहां है ?"

अपनी गम्भीरता और उदासी को छिपाने का विफल प्रयत्न करते हुए प्रभानाथ ने कहा, "यों ही, रास्ते की थकावट है भौजीजी ! मझले भइया को दद्दुआ प्रायश्चित्त कराने ले गए हैं, अभी आते ही होंगे।"

प्रभानाथ के इस उत्तर से महालक्ष्मी को संतोष नहीं हुआ। वह अपने देवर के स्वभाव को अच्छी तरह जानती थी, इतनी थकावट से प्रभानाथ उदास होनेवाला नहीं था। एक भावी आशंका उसके हृदय में समा गई,

उसका मन बैठ-सा गया। प्रभानाथ अपनी भौजी के पास ठहरा नहीं, सीधे वह अपने कमरे में चला गया।

थोड़ी देर तक महालक्ष्मी उदास खड़ी दरवाजे की ओर देखती रही, इसके बाद उसे पैरों की आहट सुनाई दी। उसने देखा कि उसके ससुर के साथ उसके पति आ रहे हैं; उसने घूंघट काढ़ लिया और वह कमरे के अन्दर चली गई।

उमानाथ को उसके कमरे के द्वार पर छोड़ते हुए रामनाथ ने कहा, "अच्छा, तुम थके हुए होगे, जाओ आराम करो जाकर।" और रामनाथ तिवारी चले गए।

उमानाथ ने अपने कमरे में प्रवेश किया। एक बार उसने अपने चारों तरफ़ देखा; धुंधला अतीत उसकी दृष्टि के सामने स्पष्ट होने लगा। महालक्ष्मी एक कोने में मौन खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी कि उसके स्वामी आगे बढ़ कर आवें—उसको अपने भुजा-पाश में आबद्ध कर लें। वह करीब बीस सेकण्ड इसी तरह खड़ी रही, पर उमानाथ आगे नहीं बढ़ा। ये बीस सेकण्ड महालक्ष्मी को बीस मिनट, बीस घण्टे, बीस वर्ष—नहीं बीस युग से भी अधिक लगे।

अब उससे अधिक प्रतीक्षा न की गई; विकल, अस्त-व्यस्त वह बढ़ी और अपने स्वामी, अपने देवता के चरणों पर वह रोती हुई गिर पड़ी।

लेकिन उसका यह सुख भी अधिक देर तक न रह सका; उमानाथ ने हँसते हुए कहा, "यह क्या मजाक हो रहा है? उठो भी, आखिर यह सब जंगलीपन क्या तुम लोग नहीं छोड़ सकतीं?" और यह कह कर उमानाथ दो कदम पीछे हट गया।

महालक्ष्मी के हृदय में धक्का-सा लगा। दो वर्ष तक वह जिसकी माला जपती रही, जिस देवता की प्रतिमा को अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित कर के आंसुओं से नहलाती रही, जिसे श्वासों का संगीत सुनाती रही, वही देवता उसकी पूजा का, उसकी भावना का निरादर कर रहा था, तिरस्कार कर रहा

था। मर्माहत नत-मस्तक उपेक्षिता-सी वह उठ खड़ी हुई। उसने एक बार उमानाथ को ध्यान से देखा, उसने पहचानने की कोशिश की कि उसके सामने उसके स्वामी ही हैं या और कोई है! और उसने देखा कि उसको धोखा नहीं हुआ। वही उमानाथ—सुन्दर, स्वस्थ, लापरवाही की मस्ती से भरा हुआ—उसके सामने खड़ा था वह उमानाथ, जिस पर उसे गर्व था, जिसको पति-रूप में पाकर उसने अपना जीवन धन्य समझा था।

और एकाएक महालक्ष्मी की दृष्टि उमानाथ के शरीर को चीरती हुई उसकी आत्मा तक पहुँच गई। उसने उमानाथ की आत्मा में एक अजीब तरह का धुंधलापन देखा; उसने देखा कि उसके स्वामी के हृदय का स्पन्दन मन्द तथा शिथिल पड़ गया है—वह सिहर उठी।

उमानाथ एक कुर्सी पर बैठ गया और कौतूहल के साथ महालक्ष्मी को देखने लगा। वह महालक्ष्मी की उस करुणा से भरी हुई तेज दृष्टि को न समझ सका। उसने मुस्कराते हुए कहा, "कहो! तुम अच्छी तरह तो रहीं?"

"जी हां—आपके आशीर्वाद से!" महालक्ष्मी ने धीमे से कहा।

"लेकिन तुमने मुझसे कुछ नहीं पूछा! खैर मैं स्वयम् बतलाए देता हूँ कि मैं अच्छी तरह रहा। देखो, मैंने दुनिया देखी है; बड़ी मजेदार जगह है। मुझे अफ़सोस है कि तुम मेरे साथ नहीं चलीं!......"

उमानाथ और कुछ कहता, लेकिन महालक्ष्मी को अपनी तरफ़ एक विचित्र प्रकार से देखते देख कर वह रुक गया। उमानाथ महालक्ष्मी की उस दृष्टि को तो नहीं समझ सका, उस दृष्टि में तीव्र करुणा से भरी हुई ममता को तो वह नहीं पहचान सका, लेकिन इतना उसने अवश्य अनुभव किया कि उस दृष्टि में कुछ अनोखापन है, ऐसी कोई चीज है, जिससे वह परिचित नहीं है, जो उसके लिए नई है, एक पहेली के रूप में है।

उमानाथ ने बात बदली, "अच्छा, जानती हो कि मैं थका हुआ हूँ। नहाने का इंतजाम करवा दो, कपड़े बदल डालूं!"

४

शाम को चार बजे श्यामनाथ की कार रामनाथ की कोठी के सामने रुकी। रामनाथ तिवारी उस समय सो रहे थे। प्रभानाथ ने उनका स्वागत किया! "अरे प्रभा! तो तुम आ गए?--उमा भी साथ आया है न!" श्यामनाथ ने पूछा।

"जी हां!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"लेकिन तुम फ़तेहपुर क्यों नहीं ठहरे?" श्यामनाथ ने ज़रा कड़े स्वर में पूछा।

"मुझे यहां आने की जल्दी थी--और दद्दुआ ने सीधे यहां आने को कहा था।"

"दद्दुआ ने कहा था! तो दद्दुआ सब कुछ हैं और मैं कुछ नहीं; जो कुछ वह कहें, वही हो! मैं कभी यह बर्दाश्त नहीं कर सकता!" श्यामनाथ ने मेज़ पर हाथ पटकते हुए कहा।

श्यामनाथ ने इतने ज़ोर से हाथ पटका था कि उसकी आवाज़ से पण्डित रामनाथ तिवारी की, जो बगल वाले कमरे में ही लेटे हुए थे, नींद टूट गई। उन्होंने वहीं से आवाज़ दी, "अबे ओ लखना के बच्चे! देख तो यह शोर कौन कर रहा है?"

"सरकार छुटके राजा आए हैं!" लखना ने उत्तर दिया।

"श्यामू आया है? कब?" पलंग पर उठ कर बैठते हुए रामनाथ ने कहा, "उसे यहां भेज दो!"

श्यामनाथ ने जा कर अपने बड़े भाई के चरण छुए।

"आशीर्वाद!" रामनाथ ने कहा, "कहो, इतनी धूप में कैसे आए? कोई खास बात है?"

"जी हां!" दबी ज़बान श्यामनाथ ने कहा।

थोड़ी देर तक रामनाथ श्यामनाथ की बात की प्रतीक्षा करते रहे; पर श्यामनाथ को साहस न हो रहा था कि वे अपनी बात कहें। कुछ झुंझला कर रामनाथ ने कहा, "कहो न! क्या कहना है?"

"कल दया गिरफ्तार हो गया!"

"दया गिरफ्तार हो गया?" रामनाथ चौंक उठे, पर उन्होंने वैसे ही अपने को संभाल लिया। कुछ देर वे सोचते रहे, इसके बाद उन्होंने कहा, "तो फिर क्या करूँ? जो जैसा करेगा, वैसा भोगेगा भी! जानते हो श्यामू, डिप्टी कमिश्नर ने मुझे पहले ही आगाह किया था, और उनका पत्र पाकर मैंने दया से कांग्रेस छोड़ देने को भी कहा था। लेकिन उसने घर से अलग होना—हम लोगों से छूट जाना पसन्द किया, लेकिन कांग्रेस छोड़ना उसे मंजूर न था।

"वह तो जो कुछ होना था हो गया। अब सवाल हमारे सामने यह है कि उसकी पैरवी करके किस प्रकार उसे जेल जाने से बचाया जाय!" श्यामनाथ ने कहा।

"उसकी पैरवी करने की, उसे बचाने की सोचने की कोई आवश्यकता नहीं?" रूखे स्वर में रामनाथ ने कहा, "मैंने उसे घर से अलग कर दिया है, मेरे लिए वह मर चुका है—उसका कोई अस्तित्व नहीं!"

"उसका कोई अस्तित्व न सही, लेकिन उसके बीवी-बच्चे तो हैं। वे लोग हमारे ही कुल के हैं। दुनिया क्या कहेगी?"

"दुनिया की मुझे कोई परवाह नहीं; दुनिया को खुश रखने के लिए अपने विश्वास को तोड़ा जाय, अपने सिद्धान्त से गिरा जाय, कमजोरी दिखाई जाय! श्यामू, मैं इस पर विश्वास नहीं करता। मुझे ताज्जुब तो यह है कि मुझे अच्छी तरह जानते हुए तुमने यह बात मुझसे कैसे कही!"

श्यामनाथ निरुत्तर रह गए। घर से वे न जाने क्या-क्या सोच कर चले थे, लेकिन रामनाथ के सामने पहुंचते ही उनके सारे मन्सूबे, सब विचार प्रखर सूर्य के सामने बरफ़ की तरह गल कर-बह गए। कुछ देर तक वे मौन

और उदास बैठे रहे, फिर उन्होंने एक ठंढी सांस ले कर कहा, "जैसी आपकी इच्छा ! लेकिन बड़ी बहू और राजेश-ब्रजेश का तो प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।"

"हां !" कुछ सोच कर रामनाथ ने कहा, "उनका प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। कल ही मैं उमा या प्रभा को कानपुर भेजूंगा, उन्हें यहां ले आने के लिए।"

"कल क्यों, आज क्यों नहीं ? आप जानते ही हैं कि वे लोग वहां अकेले हैं।"

"ठीक कहते हो !" रामनाथ ने आवाज दी, "अबे ओ लखना—छुटके भइया को यहां भेज दे !"

प्रभानाथ अभी तक बगल के कमरे में ही बैठा था। लखना के कहने की बिना प्रतीक्षा किए हुए ही वह रामनाथ के कमरे में दाखिल हुआ।

"तुम्हें मालूम है कि दया गिरफ्तार हो गया ?" रामनाथ ने पूछा।

"जी हां !" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"तो फिर तुम्हें अभी कानपुर जा कर अपनी भावज तथा राजेश-ब्रजेश को साथ लाना पड़ेगा ! समझे !"

"मेरा वहां जाना बेकार है, क्योंकि भौजीजी यहां आने को बिल्कुल तैयार नहीं हैं। मैंने आज सुबह ही उनसे चलने को कहा था।"

"क्या तुम दया के यहां गए थे ?"

"जी हां ! मझले भइया से वे मिलना चाहते थे। कल उनकी गिरफ्तारी के समय हम लोग वहीं मौजूद थे।" प्रभानाथ ने साहस के साथ कहा, "और जब हम लोगों ने भौजीजी से यहां आने को कहा, तो उन्होंने यह कह कर कि वे भीख मांग कर, गुलामी करके वहीं रहेंगी, लेकिन यहां पैर न रक्खेंगी, इनकार कर दिया।"

"बात यहां तक पहुंच गई है !" रामनाथ ने श्यामनाथ की ओर देखा।

"यह तो आप ही समझिए। जहां तक मेरी समझ है, मैं तो यही कहूंगा

कि बड़ी बहू ने जो कुछ कहा वह उचित ही कहा। स्त्री की महत्ता इसी में है कि वह अपने पति के अस्तित्व में अपना अस्तित्व मिला दे, सुख-दुख में वह पति का साथ दे।"

"लेकिन वह मेरे घर की बहू है—मेरे घर की !" दांत पीसते हुए रामनाथ ने कहा, "मेरे घर की बहू इस तंगी की हालत में रह कर मेरे कुल को कलंकित नहीं कर सकती—कभी नहीं कर सकती !"

"तो फिर आप ही को कानपुर जाना पड़ेगा बदुआ !" प्रभानाथ ने कहा।

"हां, मैं कानपुर जाऊंगा—अभी चल रहा हूं। प्रभा, मोटर तैयार करवाओ। और तुम्हें भी मेरे साथ अभी चलना पड़ेगा।"

"चलना तो मैं भी चाहता हूं !" दबी ज़बान श्यामनाथ ने कहा, "और अगर आप अनुचित न समझें तो मैं एक बार दया से जेल में मिल कर कोशिश करूं !"

"किस बात की कोशिश ?" रामनाथ ने पूछा।

"कि वह कांग्रेस से अलग हो जाय !"

"लेकिन इससे फ़ायदा ?"

"इससे फ़ायदा यह होगा कि उसके इस आश्वासन से मैं दया को जेल जाने से बचा सकता हूं !" श्यामनाथ ने उत्तर दिया।

"तो इसके माने ये हुए कि वह सरकार से एक प्रकार से माफ़ी मांगे !" रामनाथ ने श्यामनाथ को देखा, "नहीं श्यामू!" एक रूखी मुस्कराहट रामनाथ के चेहरे पर आ गई, "माफ़ी मांगे—इतना ऊपर चढ़ कर अब वह अपने को एक दम गिरावे ! दया इसके लिए कभी भी तैयार न होगा ! और अगर एक बार वह माफ़ी मांगना स्वीकार भी कर ले तो मैं उसे कायर समझूंगा। नहीं—श्यामू, यह बेकार की बात है। हां, अगर तुम कानपुर चलना चाहते हो, तो चलो। लेकिन तुम अभी उमा से नहीं मिले हो—तुम यहीं रुको !

५

जिस समय रामनाथ तिवारी की कार दयानाथ के बंगले में पहुंची, सूर्यास्त हो रहा था। राजेश और ब्रजेश बरामदे में बैठे हुए मार्कण्डेय के साथ खेल रहे थे। रामनाथ को देखते ही दोनों लड़के "ददुआ आए ! ददुआ आए !" कहते हुए अपने बाबा के पास दौड़े; मार्कण्डेय ने उठकर रामनाथ को प्रणाम किया।

आशीर्वाद देकर रामनाथ बरामदे में ही बैठ गए। प्रभानाथ से उन्होंने कहा, "अपनी भावज से जाकर कहो कि मैं उसे बानापुर ले चलने आया हूँ। वह चलने की तैयारी कर ले—अभी एक घंटे में उसे चलना है!"

प्रभानाथ अन्दर चला गया।

मार्कण्डेय के कपड़ों पर नजर डालते हुए रामनाथ ने कहा, "तो तुम भी खद्दर-पोश हो गए हो!"

"जी हां!" मार्कण्डेय ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

"और दया के क्या हाल हैं?"

"उन्हें आज छः महीने की सजा हो गई।"

"इतनी जल्दी ! कल रात को गिरफ्तारी और आज सुबह सजा!"

"जी हां! इसमें ताज्जुब की बात ही क्या है," मार्कण्डेय ने कहा, "गवर्नमेन्ट जानती है कि हम लोग जेल जाने के लिए ही गिरफ्तार होते हैं, और हम जानते हैं कि हमें जेल जाना ही है। इन मुकदमों को आपने देखा नहीं—बड़े दिलचस्प होते हैं। न कोई नियम, न कोई विधान! सीधा-सादा कार्यक्रम ! उन्हें सजा देनी है और हमें कोई पैरवी नहीं करनी। पांच मिनट में पूरी कार्रवाई खत्म हो जाती है।"

रामनाथ ने एक तीव्र नजर मार्कण्डेय पर डाली, पर मार्कण्डेय पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। अपनी गम्भीरता वह अधिक देर तक न बनाए रख

सका, खिलखिलाकर वह हँस पड़ा, "ददुआ, आप आश्चर्य न करें! हम लोग इसी तरह लड़ते हैं। यह एक अनोखे किस्म की लड़ाई है, जिसे दुनिया नहीं समझ पाती, ब्रिटिश गवर्नमेन्ट नहीं समझ पाती, हम स्वयम् नहीं समझ पाते। पर इतना मैं जानता हूं कि सारी दुनिया इस लड़ाई पर हैरान है। दुनिया के लोग लड़ते हैं मारने के लिए, हत्या करने के लिए; और हम लड़ते हैं मरने के लिए, तकलीफ़ उठाने के लिए! हमारे पास ऐसा अस्त्र है, जिसे साम्राज्यवाद की बड़ी से बड़ी हिंसा भी नहीं काट सकती।"

मार्कण्डेय की बातों में रामनाथ तिवारी को दिलचस्पी आने लगी थी। उन्होंने पूछा, "और वह अस्त्र क्या है?"

"अहिंसा!" मार्कण्डेय ने कहा, और कुछ रुक कर उसने फिर आरम्भ किया, "और ददुआ, अहिंसा के माने हैं मानवता। बली वह है जो बड़ा से बड़ा कष्ट उठा सके, बिना उफ़ किए, हंसते हुए; जिसके पास आत्मा का बल है। और आप शायद पूछें कि यह आत्मा का बल क्या है? आत्मा का बल है—प्रेम, दया, त्याग! दूसरों को उत्पीड़ित तो सभी करते हैं, लेकिन वास्तव में आदमी वह है, जो दूसरों को सुख दे सके और दूसरों को दुखी बनाने के बजाय दूसरों के दुख को बंटा सके।"

अब रामनाथ के अपने दृष्टिकोण पेश करने की बारी थी। उन्होंने कहा, "मार्कण्डेय, तुमने जो कुछ कहा, उसमें एक बहुत बड़ी गलती कर गए। तुम्हें यह मानना पड़ेगा कि जीवन में सुख प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य अपने लिए, अपने सुख के लिए, जीवित रहता है। जिस समय हम खुद-ब-खुद दुख को अपनाते हैं, हम प्राकृतिक नियम की अवहेलना करते हैं। और प्राकृतिक नियम की अवहेलना वर्जित है। जीवन का नियम क्या है? समर्थ की असमर्थ पर विजय! अनादि काल से समर्थ असमर्थ पर शासन करता आया है और अनन्त काल तक शासन करता रहेगा! इसको तुम रोक कब सकते हो? भगवान् ने दुनिया में दो चीजें सम नहीं बनाईं; सभी जगह विषमता है। सभी जगह अच्छे-बुरे, ऊंचे-नीचे, सबल-निर्बल का भेद है! और यही भेद

प्राकृतिक है। याद रखना, निर्बल सबल का आहार रहा है। तुम अहिंसा की दुहाई देते हो, लेकिन यह अहिंसा है क्या ? यह अहिंसा निर्बल की अपने को धोखा देने की प्रवृत्ति है ! तुम हिंसा इसलिए नहीं करते कि तुम हिंसा करने के काबिल नहीं, तुम स्वयम् हिंसा के शिकार हो और कमजोर हो। पर तुम सबल को अहिंसा पर विश्वास नहीं दिला सकते ! यह अहिंसा आत्म-छलना से भरा सिद्धान्त है, जो तुम्हें जरा भी ऊँचे नहीं उठा सकता, जो तुम्हारी नपुंसकता का द्योतक है !"

मार्कण्डेय मुस्कराया, "ददुआ, आपने जो कुछ कहा, वह बहुत पुराना सिद्धान्त है। पर हम लोग बहुत आगे बढ़ चुके हैं। हम लोगों का कहना है कि हिंसा पशुता की प्रवृत्ति है, मानवता की नहीं; और मनुष्य पशुता को छोड़ कर मानवता का पूर्ण विकास कर रहा है। मैं मानता हूं कि हम में अभी पशुता बाकी है, लेकिन क्या हम उस पशुता को अपनाए ही रहें या उसे छोड़ कर मानव बनें ? पशु असमर्थ है और इसलिए वह हिंसा की शरण लेता है, पर मनुष्य समर्थ है। उसके पास बुद्धि नाम का अमोघ अस्त्र है, और इस बुद्धि के बल से वह सारी प्रकृति का स्वामी है। मनुष्य खेती करता है, अन्न उपजाता है। जहां पानी नहीं है, वहां वह कुआं खोद कर पानी निकालता है, जहां नदियां नहीं हैं, वहां वह नहर काट कर सिंचाई करता है। उसने प्रकृति पर विजय पा ली है, और धीरे-धीरे वह प्रकृति के अनंत रहस्यों को सुलझाता चला जा रहा है। पर उसके विकास में एक बात बाकी है, वह अपनी पाशविक हिंसा को अभी तक नहीं छोड़ सका है। अपने हित को वह अपना सत्य तो मानता है, लेकिन दूसरों के हित की, जो मानवता का सत्य है, वह अभी तक उपेक्षा करता रहा है। हममें दया, प्रेम, त्याग, ये सब प्रवृत्तियां मौजूद हैं। इन प्रवृत्तियों को विकसित कर के अपने सत्य को और मानवता के सत्य को एक-रूप कर देना—यही अहिंसा है !"

रामनाथ तिवारी हँस पड़े; उनकी उस कटु हँसी में उपेक्षा थी, व्यंग था। उन्होंने कहा, "अपने हित को मानवता का हित बना देना, अपने सत्य को और मानवता के सत्य को एक-रूप कर देना ! बातें बड़ी सुन्दर हैं और

मजेदार हैं। लेकिन सब से बड़ा सवाल यह है कि क्या तुम यह सब करते हो ? एक बात याद रखना, तुम बने हो अपनी प्रवृत्तियों से, तुम शासित हो अपनी भावनाओं से ! तुम्हारी ये प्रवृत्तियां और ये भावनाएं तुम्हें कर्म करने को प्रेरित करती हैं, अन्यथा कर्म असम्भव है। प्रत्येक कर्म के पीछे एक प्रेरणा है, और वह प्रेरणा तुम्हारी भावना की है। मार्कण्डेय , भावना ही मनुष्य का जीवन है, भावना ही प्राकृतिक है, भावना ही सत्य है और नित्य है ! भावनाओं के मामले में मनुष्य विवश है। और यही विवशता, तथा इस विवशता के कारण प्राणि-मात्र में विषमता संसृति है। तुम सब एक-सा बनने की कोशिश करो, एक ही ढंग से सोचना चाहो; लेकिन यह कभी भी सम्भव नहीं। मैं कहता हूं कि तुम लाख प्रयत्न करने पर भी ऐसा नहीं कर सकते......"

रामनाथ तिवारी ने अपनी बात समाप्त भी नहीं की कि प्रभानाथ आ पहुँचा। रामनाथ ने अपनी बात वहीं रोक दी। प्रभानाथ से उन्होंने पूछा, "कहो !"

धीमे स्वर में प्रभानाथ ने कहा, "भौजीजी यहां से जाने को राजी नहीं हैं !"

"तुमने उनसे यह बतलाया कि मैं स्वयम् आया हूं, और यह मेरी आज्ञा है !"

"जी हां ! और उनका कहना है कि उनको आज्ञा देनेवाला केवल एक व्यक्ति है—बड़के भइया !"

पण्डित रामनाथ तिवारी ने अपना होठ चबाते हुए मार्कण्डेय की ओर देखा, वह गम्भीर बैठा था। "ठीक है ! उसके पतिव्रत धर्म पर मैं बहुत प्रसन्न हूं। चलो जरा मैं भी उस देवी की बातें सुन कर अपना जीवन सार्थक और सफल कर लूं !"

रामनाथ तिवारी प्रभानाथ के साथ अन्दर के आंगन में पहुंचे। उन्होंने जोर से कहा, "प्रभा ! बहू से कहो कि उसे अभी-अभी कानपुर चलना है।

यहां अकेली कैसे रहेगी—यहां उसका कौन है ? वह किस पर अवलम्बित रहेगी ?"

और राजेश्वरी ने इतनी जोर से कहा कि रामनाथ तिवारी सुन लें, "बाबूजी ! ददुआ से कह दीजिए कि बानापुर में भी तो मेरा कोई नहीं है !"

"और हम लोग क्या मर गए ?" रामनाथ चिल्ला उठे !

"नहीं ! लेकिन आप लोगों ने उन्हें घर से तो अलग कर दिया है, उनको बानापुर जाने तक का अधिकार नहीं है। मैं उन्हीं की पत्नी तो हूं ! मैं आप सब लोगों की जो कुछ होती हूं, उन्हीं के कारण तो होती हूं। जब वे आप-द्वारा त्याज्य हैं तब भला मैं कैसे आपकी हो सकती हूं या आपके साथ चल सकती हूं ? जिस घर में मेरे स्वामी का अपमान और निरादर हो वहां मैं आदर पाऊं, वहां मैं सुख से रहूं, यह मेरे लिए लज्जा की बात होगी !" राजेश्वरी ने दृढ़ता के साथ कहा।

राजेश्वरी का एक-एक शब्द रामनाथ के हृदय में शूल की भांति चुभ रहा था। राजेश्वरी के कथन के सार की वे उपेक्षा नहीं कर सकते थे। फिर भी एक बार उन्होंने प्रयत्न किया, "अच्छी बात है। लेकिन राजेश और अगेश मेरे साथ जाएंगे—समझीं !"

पर उनका यह वार भी खाली गया, "अगर आप चाहते हैं तो इन्हें ले जा सकते हैं। मैं जानती हूं कि इन पर आपका पूरा अधिकार है। पर माता की ममता को इन बच्चों से छीन कर आप इनका उपकार करने के स्थान में अपकार ही करेंगे !" शान्त भाव से राजेश्वरी ने कहा।

रामनाथ तिवारी अपनी इस पराजय से तिलमिला उठे। उन्होंने कहा, "मैंने समझा था कि सद्गृहिणी और उच्चकुल की लड़की अपने पति को सुबुद्धि देने में सहायक होती है, अपना, अपने पति का, अपने बच्चों का हिताहित पहिचानती है !"

और मानों राजेश्वरी के पास उत्तर तैयार था, "मैं तो यह जानती हूं कि

स्त्री मूक तथा निरीह होती है। उसके पास निजी इच्छा नाम की कोई वस्तु नहीं!" और इतना कह कर वह चुप हो गई।

६

घर से निकल कर रामनाथ तिवारी सीधे अपनी कार पर बैठ गए, उन्होंने मार्कण्डेय की ओर देखा तक नहीं। प्रभानाथ से उन्होंने कहा, "एकदम चलो! ये लोग भुगतने पर तुले हैं, तो फिर भुगतें! विनाश-काले विपरीतबुद्धिः!"

रामनाथ का हृदय कह रहा था कि वे पराजित हुए और बुरी तरह पराजित हुए! पर उनकी अहम्मन्यता उस पराजय को स्वीकार करने के लिए ज़रा भी तैयार न थी। उनकी इस अहम्मन्यता के क्रोध ने उनके हृदय की करुणा को दबा अवश्य दिया था, लेकिन उस करुणा को मिटा न सका था। रामनाथ का हृदय भारी था; उनके अन्दर एक अशान्ति की ज्वाला जल रही थी। उन्होंने दयानाथ को घर से निकाल दिया था, उन्होंने दयानाथ का अपमान किया था केवल अपनी अहम्मन्यता को तुष्ट करने के लिए—बिना भविष्य पर सोचे-समझे!

और आज उन्होंने अपने उस कार्य का परिणाम देखा, जिसे क्षणिक आवेश में आकर उन्होंने कर डाला था। उन्हें अपने ही ऊपर क्रोध आ रहा था, लेकिन उनकी अहम्मन्यता उनके उस क्रोध को अपने ऊपर से हटा कर दूसरों को उसका लक्ष्य बना रही थी। उन्होंने मन ही मन कहा, "उस औरत की इतनी हिम्मत कि वह मुझसे ज़बान लड़ावे, मुझसे!—अपने पति के पिता से!"

कार चली जा रही थी। रामनाथ ने प्रभानाथ से कहा, "प्रभा! तुमने सब कुछ देखा है, सब कुछ सुना है। दया एक बार मेरा अपमान कर के मुझसे क्षमा पा सकता है—वह मेरा लड़का है। लेकिन यह औरत! यह मेरा अपमान कर के कभी-भी क्षमा नहीं पा सकती—यह याद रखना!"

"लेकिन भौजीजी ने तो आपका कोई अपमान नहीं किया दद्दुआ !" प्रभानाथ ने कहा, "उन्होंने जो कुछ किया, वह अपना कर्तव्य समझ कर किया।" फिर उसने कुछ रुक कर कहा, "और दद्दुआ, एक बात मैं भी कह दूं। अगर वे आपके साथ चली आतीं तो वे मेरी नजर में गिर जातीं !"

"चुप रहो!--" रामनाथ चिल्ला उठे!—"तुम भी ! तुम सब मेरी उपेक्षा करने पर, मेरा विरोध करने पर तुल गए हो!"

कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा, "मालूम होता है, सब कुछ एकदम बदल गया!"

बानापुर पहुंचने पर उन्हें मालूम हुआ कि श्यामनाथ और उमानाथ शाम के समय शिकार के लिए चले गए थे और अभी तक वापस नहीं आए।

तिवारीजी बैठकर सोचने लगे। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि वे एक नई दुनिया में आ पड़े हैं, ऐसी दुनिया में, जिसकी उन्होंने कल्पना तक न की थी। "पुराना युग बदल रहा है, तेजी के साथ !" उन्होंने सुना था; पर उन्होंने यह कभी न सोचा था कि यह पुराना युग है क्या, और न उन्होंने कभी इस बात की कल्पना की थी कि उस पुराने युग के बदलने के बाद आनेवाला नया युग कैसा होगा ! उनके सामने उनकी रिआसत थी, उनकी बेजुबान, पशु से भी गई बीती रिआया थी और उनकी अहम्मन्यता से युक्त उनका विशाल वैभव था। उनका मस्तक गर्व से ऊंचा था, स्वामित्व की गुरुता से युक्त उनका अस्तित्व उनके लिए सत्य था और नित्य था। रामनाथ को इस बात का अभिमान था कि उनमें झूठ, बेईमानी आदि अवगुण न थे, और जब वे दुनिया की इन छोटी-छोटी कमजोरियों को देखते थे, उनकी छाती गर्व से फूल उठती थी। उन्हें धर्म पर विश्वास था, उन्हें ईश्वर पर विश्वास था। लोग तिवारीजी को मानते थे, उनका आदर करते थे। "तिवारीजी की बात में तथ्य है, तिवारीजी के निर्णय में न्याय है!" चारों तरफ़ इस बात की चर्चा थी।

तिवारीजी जोर से कह उठे, "लोग कहते हैं कि मेरे निर्णय में अन्याय है! क्या इस बार मेरा निर्णय गलत हुआ ?"

और तिवारीजी अभी तक जो कुछ हुआ था, उस पर बड़ी तेजी के साथ अवलोकन कर गए। उसके बाद उनकी अहम्मन्यता ने दृढ़ता के साथ कहा, "कभी नहीं, मेरा निर्णय गलत हो ही नहीं सकता !"

"फिर यह सब क्यों ? मेरे निर्णय का विरोध मेरे घर में ही हो रहा है—मेरे लड़के ही मेरे निर्णय का विरोध करने पर तुल गये हैं। आखिर यह सब क्यों ?" रामनाथ के अन्दरवाले बुद्धिवादी तार्किक ने उनकी अहम्मन्यता पर शंका की।

तिवारीजी ने फिर कहा, "यह क्यों ? यह सब कुछ बदल कैसे गया ? एकदम बदल गया, मैं पहचान नहीं पा रहा हूं ! दया कांग्रेस में शामिल हो गया, अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारने को वह तैयार है। और बड़ी बहू ! मेरे सामने उसे बोलने की हिम्मत कैसे हो गई ? बोलने ही की नहीं, जबान लड़ाने की ! और प्रभा ! वह भी मुझसे कहता है कि मैं गलती कर रहा हूं !" क्या वास्तव में मैं गलती कर रहा हूं ?"

"शायद !" तिवारीजी ने ही उत्तर दिया। उन्हें सुबह की घटना याद हो आई जब एकत्रित कनौजिया-मण्डल ने प्रायश्चित्त के विरुद्ध अपना निर्णय दिया था। "सुबह मैंने ही तो प्रायश्चित्त का विधान रचाया था ! यह प्रायश्चित्त क्यों ? क्योंकि हमारे समाज में प्रायश्चित्त की प्रथा प्रचलित है। समाज की रूढ़ियां बुरी तरह से हमारे ऊपर लदी हैं—मुझ पर भी ! और अगर उन लोगों ने प्रायश्चित्त का विरोध किया तो उसमें भी उनका कोई दोष न था। वे सब के सब पुराने रूढ़ि-वादी युग के हैं। और उनके साथ उमानाथ ने भी उस प्रायश्चित्त का विरोध किया ! क्यों ? इसलिए कि वह नए युग का है ! नए युग की विचार-धारा को अपना कर वह आ रहा है !"

"और मैं ?" तिवारीजी ने अपने से पूछा, "मैं भी नए युग का हूं ! जिसे लोग पढ़कर, सीख कर अपनाने की कोशिश कर रहे हैं, उसे मैं स्वयम् अपने-आप, अपनी प्रेरणा-द्वारा, अपने अनुभवों-द्वारा अपना चुका हूं ! मैं नए युग का हूं, लोग चाहे मानें चाहे न मानें ! फिर यह सब जो देख-सुन रहा

हूं, यह सब क्या है ? क्या यही नया युग है ?" तिवारीजी को उस कांग्रेस के जुलूस की याद हो आई, जो उन्होंने करीब एक महीना पहले देखा था।

"दयानाथ और उसकी पत्नी ! प्रभानाथ, मार्कण्डेय, लाला रामकिशोर ! ये लोग भी तो अपने को नए युग का प्रतिनिधि कहते हैं ! तो फिर यह नया युग है क्या ? आत्म-छलना, बेवकूफ़ी, हिताहित के प्रति घोर अज्ञानमयी उपेक्षा !"

और एकाएक तिवारीजी की विचार-धारा टूट गई उमानाथ की आवाज़ से। वह श्यामनाथ से कह रहा था, "और काका ! जिसे आप शिष्टता कहते हैं, वह ढोंग है, जिसे आप सभ्यता या तहज़ीब कहते हैं, वह मनुष्य की पराजय का खोखलापन है, जिसे आप धर्म और बिश्वास कहते हैं, वह आप के अन्दरवाली गुलामी की प्रवृत्ति है !"

"बात यहां तक पहुंच चुकी है ! युग की नवीनता, देख रहा हूं, सीमाओं को एक बार तोड़ डालने पर तुल गई है !" रामनाथ तिवारी ने मुस्कराते हुए मन ही मन कहा और वे उठ खड़े हुए।

उन्होंने देखा कि बरामदे में चचा-भतीजे आमने-सामने बैठे बातचीत कर रहे हैं और उनके सामने शर्बत के गिलास हैं।

७

पण्डित श्यामनाथ तिवारी अपने भतीजे के ज्ञान के भण्डार को देख कर अवाक् बैठे थे और उमानाथ कहता जा रहा था, "काका ! मैं तो यह मानता हूं कि जितने धर्म हैं, जितने नियम हैं, जितने देवी-देवता हैं, जितने परमेश्वर हैं, उन सब का निर्माण हमने किया है, हमने, यानी मनुष्य ने ! और अब हम खुद अपनी बनाई हुई चीज़ों के गुलाम बन गए हैं, सब समझते हुए, सब जानते हुए। हम इस बुरी तरह अपने बिछाए हुए जाल में क्यों फंस गए ? आप जानते हैं काकाजी ?"

मुंह बाए हुए पण्डित श्यामनाथ तिवारी यह सब सुन रहे थे और न

समझते हुए भी समझने की कोशिश कर रहे थे तथा बीच-बीच में सर हिला देते थे। उमानाथ का यह प्रश्न सुन कर चौंक उठे; फिर भी अपने को संभालते हुए उन्होंने कहा, "इसलिए कि कहीं कोई जाल ही नहीं था, और अगर था भी तो हमने उसे देखा ही नहीं और साथ ही हमने उस जाल को बिछाया भी नहीं था!"

उमानाथ हँस पड़ा, "मैं तो आपको शक्ल देख कर ही जान गया था कि जो कुछ मैंने कहा है, उसे आप ज़रा भी नहीं समझे! काकाजी, एक बात मैं आपको बतला दूं! हम सब आदमी हैं, सब में एक ही तरह का खून बह रहा है, सब को एक ही तरह की भूख लगती है, एक ही तरह की प्यास लगती है। सभी हँसते हैं, सभी रोते हैं। फिर मनुष्य-मनुष्य में यह भेद-भाव क्यों? आपने कभी इसे समझने की कोशिश की है?"

सर हिलाते हुए श्यामनाथ ने कहा, "इसे समझने की तो कोशिश कभी नहीं की; और सब से बड़ी बात तो यह है कि यह सवाल ही मेरे सामने कभी नहीं उठा। पता नहीं क्यों? देखो उमा, मैं अपने काम-काज में इतना फँसा रहता हूं कि मुझे सोचने-विचारने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। हां, बड़के भइया शायद इस मामले में कुछ बता सकें।"

उमानाथ हँस पड़ा, "दद्दुआ की बात छोड़िए। देखिए काकाजी, आपको मैं एक बात बतलाता हूं। लेकिन अपने तक ही रखिएगा, किसी से कहिएगा नहीं। वह यह कि आप ठीक तरह से सोच सकते हैं, लेकिन आपको सोचने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती, या फिर आप इतने ज्यादा आलसी हैं कि सोचना ही नहीं चाहते। और दद्दुआ के पास सोचने की फ़ुर्सत है, और वे सोचते भी हैं, लेकिन वे ठीक तौर से सोच नहीं सकते!

अपनी तारीफ़ सुनकर श्यामनाथ का मुख प्रसन्नता से खिल गया। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, "क्या बताऊँ उमा...अब आगे......"

लेकिन श्यामनाथ कहते-कहते रुक गए और उनकी मुस्कराहट गायब हो गई। सामने पण्डित रामनाथ तिवारी खड़े हुए दोनों को गौर से देख

रहे थे। श्यामनाथ हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए और श्यामनाथ को उठते हुए देख कर उमानाथ भी खड़ा हो गया। रामनाथ ने दोनों को बैठने का इशारा करते हुए उमानाथ से कहा, "हां, तो तुम अभी कह रहे थे कि मैं ठीक तरह से सोच नहीं सकता! है न ऐसी बात?"

श्यामनाथ ने उमानाथ को बचाने की कोशिश की, "नहीं बड़के भइया! बात यह थी..."

बीच में ही श्यामनाथ की बात को काटते हुए रामनाथ ने कहा, "चुप रहो श्यामू—झूठ बोलने की कोशिश मत करो! जब तुमसे कुछ पूछूं, तब बात करना! हां तो उमा, तुम कह रहे थे कि मैं ठीक तरह से सोच नहीं सकता। ताज्जुब की बात यह है कि अभी-अभी कुछ देर पहले मैं भी अपन से यही सवाल कर रहा था कि मैं ठीक तौर से सोच रहा हूं! जानते हो! दया की दुलहिन ने यहां आने से इनकार कर दिया है!"

श्यामनाथ और उमानाथ दोनों ही मौन रहे। कुछ रुक कर रामनाथ ने फिर कहा, "उसने इनकार कर दिया यह कह कर कि उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं। उसने मेरी उपेक्षा ही नहीं की, उसने मुझे अपना शत्रु समझ लिया है। और मैं सोच रहा हूं कि क्या कभी उस औरत से मेरी शत्रुता की कोई बात तक उठ सकती है! फिर भी देख रहा हूं कि वह मुझे अपना दुश्मन समझ बैठी है। यही नहीं; उसने, उस औरत ने मेरे कुल से, मेरे घर से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है। देखते हो श्यामू! दुनिया कितनी बदल गई है।"

"तो फिर अब क्या करना होगा?" दबी जबान से श्यामनाथ ने पूछा।

"अब क्या करना होगा! सवाल मेरे सामने है। लेकिन कुछ समझ में नहीं आता! मैं जानता हूं कि दया के पास अधिक रुपए नहीं थे। अगर वह जेल के बाहर होता और वकालत करता होता तो मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। लेकिन वह जेल में है; उसे आज छः महीने की सजा हो गई है। मुझे उसकी बीबी की चिन्ता है, उसकी बीबी से बढ़ कर राजेश-ब्रजेश की चिन्ता है।

उनका लम्बा खर्च कैसे चलेगा ? जब दया यहां से गया था, तब मैंने कहा था कि मैं पांच सौ रुपया महीना बराबर उसके गुजारे के लिए भेजता रहूंगा। लेकिन अपनी अकड़ में उसने यह पांच सौ रुपया महीना लेने से भी इनकार कर दिया।"

"तो अब आप यह पांच सौ रुपया महीना उसके घर में भिजवा दें; दया की अनुपस्थिति में आप का कर्तव्य है कि आप उसके स्त्री-बच्चों का भरण-पोषण करें! क्यों उमा, ठीक है न!" श्यामनाथ तिवारी ने अपनी बातों के समर्थन के लिए उमानाथ की तरफ़ देखा।

पर उमानाथ से समर्थन पाने के स्थान पर उसके मुख पर एक हल्की-सी व्यंगात्मक मुस्कराहट को देख कर श्यामनाथ तिवारी को क्रोध आ गया। इस क्रोध के आवेश में वे आगे कह गए, "और अगर आप नहीं भेजना चाहते तो मैं अपने पास से उसके घर में यह रुपया भेज दिया करूंगा।"

"तुम निरे बेवकूफ़ ही रहे!" रामनाथ ने गम्भीरतापूर्वक अपने छोटे भाई को देखते हुए कहा।

८

दूसरे दिन सुबह चार बजे पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने बन्दूक उठाई। उमानाथ को जगा कर उन्होंने कहा, "अगर शिकार पाना चाहते हो तो अभी निकल चलो, आठ बजे तक लौट आवेंगे।"

श्यामनाथ के साथ उमानाथ शिकार के लिए चल दिया। मैदानों को पार करते हुए दोनों चले जा रहे थे और उमानाथ श्यामनाथ से कह रहा था, "काकाजी! मैं आप से पूछता हूं, आखिर मनुष्य-मनुष्य पर अत्याचार क्यों करता है? दुनिया में वस्त्र की कमी नहीं, अन्न की कमी नहीं; करोड़ों मन अनाज प्रतिवर्ष सड़ जाता है, करोड़ों गज कपड़ा प्रतिवर्ष गल जाता है; और इतना सब होते हुए भी करोड़ों आदमी प्रतिवर्ष भूख से या ठंढ से मर जाते हैं। आखिर यह क्यों?"

सर खुजलाते हुए पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने उत्तर दिया, "शायद ये करोड़ों आदमी अपने पूर्व जन्म तथा इस जन्म के पापों का फल भोग रहे हैं। यह तो भगवान् का विधान है, और इसलिए मैं इस पर चिन्ता नहीं करता !" यह कहते-कहते श्यामनाथ ने अपनी बन्दूक संभाली। सामने करीब पचास गज की दूरी पर हिरनों का एक झुण्ड जा रहा था। काले हिरन को चुन करके उन्होंने निशाना साधा और बन्दूक का घोड़ा दबा दिया। लेकिन निशाना चूक गया और वह काला हिरन छलांगें मारता हुआ मय अपने झुण्ड के आंख से ओझल हो गया था। एक हिरनी गिर पड़ी। श्यामनाथ तिवारी का चेहरा उतर गया।

उमानाथ हंस पड़ा, "खैर काका, अफ़सोस की कोई बात नहीं। कुछ न कुछ तो हाथ लगा ही !"

श्यामनाथ तिवारी ने एक ठंढी सांस ले कर कहा, "देखा उमा ! मौत हिरनी की थी, नर की नहीं थी ! और यद्यपि मैंने निशाना नर पर लगाया था, और तुम जानते ही हो कि मेरा निशाना अचूक है, मेरे मुकाबिले का निशानेबाज पुलिस-फ़ोर्स में नहीं है। लेकिन न जाने कैसे नर बच गया, और हिरनी मर गई। यह सब ईश्वर की इच्छा थी। भगवान् को नर का मरना मंजूर न था।"

उमानाथ बड़ी दिलचस्पी के साथ श्यामनाथ की बात सुन रहा था। उसने उत्तर दिया, "हां काका, अभी-अभी जो कुछ आपने कहा, वह अक्सर कहा जा चुका है, कोई नई बात नहीं है। वह एक बहाना है, अपनी पराजय स्वीकार न करने का। अपनी असफलता की, अपनी पराजय की जिम्मेदारी आप अपनी कमजोरी पर न रखकर अपनी कल्पना-द्वारा एक अज्ञात को पैदा करके उस पर लाद देते हैं, और इस तरह आप दुनिया को ही नहीं, अपने को भी धोखा देने का प्रयत्न कर रहे हैं।....काका—"

श्यामनाथ तिवारी को उमानाथ की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने कड़े स्वर में कहा, "देखो जी उमा ! विलायत-इलायत तुम चाहे जितना

घूम आए हो, लेकिन तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि मैं तुमसे बड़ा हूं और मुझसे ज़बान लड़ाना तुम्हें शोभा नहीं देता।"

श्यामनाथ के इस उत्तर से उमानाथ चुप हो गया। और थोड़ी देर तक चचा-भतीजे में कोई बात नहीं हुई। इस बीच में श्यामनाथ को अपने क्रोध पर पश्चात्ताप हुआ। उस मौन के खिंचाव को वे सहन न कर सके; उन्होंने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "अच्छा उमा! अबकी तुम्हारी गोली चलाने की बारी है; देखें तुम कितने बड़े शिकारी हो!"

उमानाथ खिलखिला कर हंस पड़ा, "मैं जानता हूं काका, कि आप अधिक देर तक गुस्सा नहीं कर सकते। आदमी आप खूब हैं; सीधे-सादे! लेकिन आप सोचते क्यों नहीं? मशीन की तरह आप काम करते हैं, और इसका नतीजा यह होता है कि दूसरे लोग आपकी नेकी और भलाई का दुरुपयोग करते हैं। इससे आप दुनिया का भला नहीं कर पाते। काका, अगर आप मेरी सलाह मानें, तो मैं आपसे कहूंगा कि आप ज़रा थोड़ा-सा पढ़ा करें, और पढ़ने के बाद उस पर सोचा करें। मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि आप वास्तव में दुनिया का भला कर सकेंगे। जो जीवन आप आजकल अपनाए हुए हैं, उससे न आप अपना भला कर पाते हैं और न दूसरों का।"

"तो क्या पढ़ने से सोचने-विचारने में तबीअत लग जायगी?" गंभीरतापूर्वक श्यामनाथ ने पूछा।

"जी हां, ज़रूर लगेगी। और आपको पता लग जायगा कि जिस रास्ते पर आप चल रहे हैं, वह सही है या गलत। दुनिया में अनेक विचार हैं, अनेक मत हैं; इन सब को आप देखें, इन पर आप मनन करें। इसमें हर्ज ही क्या है? और इसके बाद आप खुद निर्णय कर लें। काका, हम हिन्दुस्तानियों की हालत इसलिए खराब है कि हम सोचना-समझना ज़रा भी नहीं चाहते, बराबर पुरानी लकीर के फ़कीर बने रहते हैं। और इसीलिए मैं कहता हूं कि हमें सोचने-समझने की आदत डालनी चाहिए!"

उमानाथ के इस लम्बे व्याख्यान ने पण्डित श्यामनाथ तिवारी पर असर

जरूर किया। उन्होंने कहा, "ठीक कहते हो उमा, मैं अवश्य पढ़ा करूंगा, पढ़ने के लिए फ़ुरसत निकालूंगा। लेकिन मेरे सामने एक मुसीबत है; मुझे यह नहीं मालूम कि पढ़ा क्या जाय ! रामायण और गीता —ये तो अपने यहां की खास-खास किताबें हैं और इन्हें मैं पढ़ चुका हूं। और अंगरेजी की किताबों में दो-एक उपन्यास पढ़े हैं। रोज 'लीडर' पढ़ लेता हूं और कभी-कभी इलस्ट्रेटेड वीकली भी देख लेता हूं। इसके अलावा और क्या पढ़ा जाय, यह तुम्हें बताना होगा। और बतलाना ही नहीं, तुम्हें वे किताबें भी मेरे लिए मंगवा देनी होंगी।"

"यह मंजूर !" उमानाथ ने उत्तर दिया।

आठ बजे दोनों शिकारी वापस लौटे, थके हुए। पण्डित रामनाथ तिवारी इन दोनों का इंतजार कर रहे थे। पण्डित रामनाथ तिवारी उदास थे, रात भर उन्हें नींद न आई थी। अपने अन्दरवाले द्वंद्व से पीड़ित और मर्माहत—वे रात भर करवटें बदलते रहे। सुबह जब उन्होंने उमानाथ को बुलवाया, तब उन्हें मालूम हुआ कि उमानाथ श्यामनाथ के साथ शिकार खेलने निकल गया है। इसी बीच में पण्डित झगड़ू मिश्र श्यामनाथ के आने की खबर पाकर उनसे मिलने के लिए आ गए थे। तिवारीजी और झगड़ू मिश्र—दोनों एक दूसरे से दस कदम की दूरी पर चुपचाप बैठे थे; दोनों में से कोई भी एक दूसरे से बात आरम्भ करने को तैयार न था।

श्यामनाथ को देखते ही झगड़ू ने आवाज लगाई, "कहो हो श्यामू ! न जाने कब से हम तुम्हार इंतजार कर रहे हन ! अच्छी तरह तो रहचो !"

श्यामनाथ तिवारी और झगड़ू मिश्र लड़कपन के दोस्त थे। दोनों ही मस्त, दोनों ही खेल-कूद और लड़ाई-झगड़े में तत्पर ! परिस्थितियों की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता से श्यामनाथ तिवारी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस हो गए थे और झगड़ू को अपनी जमींदारी का भी कुछ हिस्सा बेचना पड़ा था।

श्यामनाथ तिवारी झगड़ू की आवाज सुनते ही प्रसन्नता से खिल गए। वे झगड़ू से मिलने के लिए बढ़े ही थे कि उनकी नजर पण्डित रामनाथ पर

पड़ी और वैसे ही वह रुक गए। रामनाथ तिवारी ने श्यामनाथ को अपनी ओर आते देख कर मुस्कराते हुए कहा, "श्यामू ! झगड़ू तुम्हारा बहुत देर से इंतज़ार कर रहे हैं, उनसे मिल कर मेरे पास आना। मुझे आज शाम को ही उन्नाव जाना है।"

६

"बात मझले कुंवर कड़ी कहि दीन्हिन, इतना तो माने का पड़ी," झगड़ू मिश्र ने तमाखू फांकते हुए प्रायश्चित्तवाले दिन के प्रसंग पर कहा, "मुदा जो कुछ कहिन, उहिमां फरक रत्ती भर नाहीं।"

ज़रा चिन्तित होकर पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने कहा, "खैर वह तो ठीक है, लेकिन मैं जानता हूं परमानन्द सुकुल और मन्नू दुबे को ! हम लोगों से बदला लेने की वे पूरी कोशिश करेंगे। बहुत सम्भव है, वे हमें जाति से बाहर करने में भी सफल हो जायें !"

"अरे जो तुम लोगन का जात से बाहर करि सके उहिका देखन का है। हम आज कहे देत हन कि अगर तुम लोग जात मां न चलो तो हमार नाम झगड़ू मिसर नाहीं। का बताई श्यामू ! हमरे पास तो रुपैया नाहीं, नहीं तो हमहूं मारकण्डे का विलायत भेजित ! हां सुन्यो ! मारकण्डे भी सुराजी बन गए, गांधी बाबा के भगत !" झगड़ू ने मुस्कराते हुए कहा।

"क्या कहा ?" चौंक कर श्यामनाथ ने पूछा, "और तुमने मना नहीं किया ?"

"का बताई श्यामू ! वहौ बड़ा हुइगा, पढ़-लिख के वकालत कर रहा है, समझदार है। हम भला उहिका का मना करित !" कुछ रुक कर झगड़ू ने फिर कहा, "और श्यामू—एक बात और है। हमरी समझ मां गांधी बाबा गलत भी नाहीं कहत हैं। कांग्रेस हम पंचन की भलाई के लिए तो बनी है।"

पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने आश्चर्य से झगड़ू मिश्र की ओर देखा—

और उन्हें याद हो आया कि वे सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस हैं। उन्होंने ज़रा तन कर कहा, "झगड़ू, मेरा अनुभव तो यह है कि कांग्रेस में ज्यादातर शोहदे और लफंगे ही हैं; और मुझे ताज्जुब हो रहा है कि तुम्हारी सहानुभूति कांग्रेस के साथ है।"

झगड़ू मुस्कराए, "ईमा ताज्जुब को कौन बात है? इतना तो निश्चय है कि किसान लोग भूखन मरत हैं, और हम हो लोग जो छुटकवा जमींदार कहावत हन, हमरी दसा कौन अच्छी है।"

इसी समय उमानाथ इन लोगों के बीच में आ गया। झगड़ू से उमानाथ ने मुस्कराते हुए कहा, "प्रणाम झगड़ू काका। कल तो आपसे बातचीत ही नहीं हो सकी।"

झगड़ू ने प्रसन्न मन कहा, "आशीर्वाद मझले कुंवर! अब हीं हम तुम्हरे बिसे मां श्यामू से बतियात रहे रहन! तौन कल तुम सुनाएव तो बड़ी खरी-खरी!"

उमानाथ को "कल की बात" से कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने कहा, "झगड़ू काका, परसों मार्कण्डेय भइया से कानपुर में मुलाकात हुई थी। पूरी तरह से कांग्रेस के रंग में रंगे हुए थे। कह रहे थे कि जल्दी ही जेल जाने वाले हैं।"

झगड़ू चौंक उठे। मार्कण्डेय के कांग्रेसमैन बन जाने पर तो उन्हें आपत्ति नहीं थी, लेकिन मार्कण्डेय के जेल जाने पर उन्हें आपत्ति जरूर थी। उन्होंने चिन्तित होकर पूछा, "का कह्यो? जेल जायं वाला हैं! देखो कैसे जात हैं जेल! यू कबौ न होई! जो बात हमरे कुल मां कबहूं नाहीं भई ऊ भला अब कैसे हुई सकत है?"

उमानाथ हंस पड़ा, "और हमारे कुल में भी तो कभी कोई जेल नहीं गया। लेकिन बड़के भइया को कल सजा हो गई!"

"का कह्यो?" झगड़ू चौंक उठे, "बड़के कुंवर गिरफ्तार हुइ गए! और तिवारी चुप बैठे रहे?"

"नहीं, चुप तो नहीं रहे! उन्होंने बड़के भइया को सीधे अपने घर से

निकाल बाहर किया।" उमानाथ ने कहा, "लेकिन झगड़ू काका, ददुआ की बात छोड़िए। उन्होंने बड़के भइया को घर से अलग कर दिया, तो इससे क्या! हम लोग थोड़े ही बड़के भइया को छोड़ देंगे! क्यों काका, क्या राय है आप की?" उमानाथ ने श्यामनाथ से पूछा।

"कुछ सोचकर पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने कहा, "काम तो दया ने ऐसा किया है कि हम लोग उसका मुंह न देखें, लेकिन घर का लड़का ही है। शरीर का कोई अंग अगर बेकार हो जाय, तो उसे काट तो नहीं दिया जाता!"

झगड़ू मिश्र ने कहा, "का बात कहयो श्यामू! जितनी तुम मां अकल है, अगर उसकी आधी हूं अकल तिवारीजी मां होत तो उइ आदमी नहीं होरा हुई जाते!" और यह कह कर झगड़ू अपनी बात पर जोर से हंस पड़े, और तब तक हंसते रहे जब तक अचानक उन्हें मार्कण्डेय की याद नहीं हो आई। मार्कण्डेय की याद आते ही झगड़ू एकाएक गम्भीर हो गए। कुछ चुप रह कर उन्होंने श्यामनाथ से कहा, "श्यामू! मार्कण्डेय का कौनो तरा से जेल जायें से रोका चाही!"

"आप लोग क्यों पत्थर पर सर पटकना चाहते हैं?" उमानाथ ने कहा, "झगड़ू काका! अगर आप समझते हैं कि मार्कण्डेय भइया को जेल जाने से रोक सकेंगे तो आप गलती करते हैं।"

उमानाथ की बात झगड़ू को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने खंखार कर कहा, "का कहयो मझले कुंवर? मारकण्डे हमार बात न मानी? तो फिर तुम हमका अबहीं तक चीन्हेव नाहीं!"

"तो फिर आपको जल्दी करनी चाहिए। कोई ठिकाना नहीं कि मार्कण्डेय भइया कब गिरफ्तार हो जायें? कौन जाने कि वे अभी जेल के बाहर हैं या नहीं।"

"ऐस बात है?" झगड़ू चौंक कर उठ कर खड़े हुए, "तो फिर आजै जाय का पड़ी।"

"मैं भी आज शाम को चल रहा हूं! मेरे साथ मोटर पर चले चलना!" श्यामनाथ तिवारी ने झगड़ू से कहा।

आठवां परिच्छेद

१

श्यामनाथ ने अपने बड़े भाई से कहा, "अगर आप कहें तो एक दफ़े मैं भी कानपुर जा कर दया की दुलहिन को समझाने की कोशिश करूं ! आखिर इस हालत में उसका वहां रहना तो ठीक नहीं !"

रामनाथ ने अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया, "तो तुम समझ रहे हो कि तुम्हारे समझाने का उस पर कोई असर पड़ेगा?—ऐसी हालत में तुम गलती कर रहे हो !" कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा, 'लेकिन मैं तुम्हें रोकूंगा नहीं, कुल की प्रतिष्ठा और मान के लिए कोई भी प्रयत्न अनुचित नहीं है । तुम जा सकते हो और अगर चाहो तो साथ में उमा को भी लेते जाओ, एक से दो अच्छे होते हैं।"

सब लोग दोपहर को ही बानापुर से उन्नाव पहुंच गए थे । यह बातचीत उन्नाव में शाम के समय हुई थी । उस समय झगड़ू मिश्र भांग पीस रहे थे और अपने सामने बैठे हुए उमानाथ से विजया भवानी का गुण-गान कर रहे थे । "सो मझले कुंवर ! एक दिना बमभोलानाथ शंकरजी को विजया नाहीं मिलीं, सो हुइ गे उदास । कहूं उनकेर जी न लाग, और समाधो मां उनकेर जी न लाग । सो माता पारबती जब देखिन बमभोलानाथ के ई हाल, तो उन्हें भई चिन्ता । चारों तरफ़ गन दौड़े, दूत दौड़े, कार्तिक दौड़े, गनेश दौड़े, ब्रह्माण्ड का कोना-कोना छान डाला गा । लेकिन विजया भवानी का तो सूझा मजाक, ऐसी गायब भईं कि उनकेर पता जो न लाग सो न लाग। अब खुद रवाना भईं माता पारबती विजया भवानी का ढूंढन । बिचारी बिना खाए-पिए मारी-मारी फिरीं, सात लोक, चौदह भुवन, आकाश-पाताल सब जगह गईं जो विजया भवानी लेकिन न मिलीं सो न मिलीं ।

"अब सुनो शंकरजी का हाल! हाल—बेहाल! अबहीं तक तो शंकरजी रहे दुखी, और अब चढ़ा उन्हें क्रोध! तो मझले कुंवर! महादेवजी के हाथ फड़के, पैर फड़के, त्रिशूल फड़का! और ब्रह्माण्ड मां मच गई त्राहि-त्राहि। सुर दौड़े, असुर दौड़े, ब्रह्मा दौड़े, विष्णु दौड़े; लेकिन विजया भवानी जो न पसीजीं सो न पसीजीं।"

उमानाथ ने अपनी हंसी को दबाते हुए कहा—तो झगड़ू काका, प्रलय क्यों नहीं हुआ?

झुंझला कर झगड़ू बोले, "बात न काटो मझले कुंवर, पहिले पूरी कथा सुनि लेव! तौन तब चला नादिया। बड़े-बड़े सींग, लम्बी पूंछ, लाल-लाल आंखी। अपने स्वामी का दुखी देखि के चढ़ि आवा वह का क्रोध। तौन नादिया शुरू कर दीन्हिस चरब घास-पात। उजड़ गए बन-उपबन नन्दन-कानन। अब देखो तौन एक जंगल के एक घूरा मां विजया भवानी छिपी मुसकाय रही रहैं। ई जितने गन, दूत कातिक, गनेस, ब्रह्मा, विष्णु—भला ई बिचारे कब सोच सकत रहैं कि विजया भवानी घूरा मां छिपी हुई हैं। तौनि जो नादिया फुफकार भरिस सो विजया-भवानी के पराण सूख गए। हाथ जोड़ सन्मुख उपस्थित भईं। बस नादिया विजया का पूंछ मां लपेट के उठाय लीन्हिस सींग पै और ले आवा महादेव बाबा के पास!"

"तब तो महादेवजी नादिया से बड़े प्रसन्न हुए होंगे!" उमानाथ ने कहा।

"अरे कुछ न पूछो मझले कुंवर! शंकरजी वैसे ही बरदान दीन्हिन कि जो नर विजया का सेवन करी, वह का नादिया की गति प्राप्त होई!"

"तो इसके माने हैं कि भांग पीनेवाले बैल होते हैं!" और उमानाथ जोर से हंस पड़ा।

लेकिन दुर्भाग्यवश यह मजाक झगड़ू की समझ में तब आया जब वे लोटे की भांग का पहिला आधा हिस्सा गले के नीचे उतार चुके थे, और शेष भांग को गले के नीचे उतारने के क्रम में थे। यह निश्चय करके कि उमानाथ को इस बदतमीजी का जवाब पूरी तरह से विजया को गले के नीचे

उतार कर दिया जायगा, झगड़ू ने भांग पीने की रफ्तार में तेजी कर दी। और जब खाली लोटा उन्होंने अपनी आंखों के आगे से हटाया तब उन्हें अपने सामने पण्डित श्यामनाथ तिवारी दिखाई पड़े।

श्यामनाथ उमानाथ से कह रहे थे, "एक घंटे के अन्दर ही कानपुर चलना है, और तुम्हें साथ लेकर। एक दफे मैं भी दया की दुलहिन को समझाना चाहता हूं। और सुनो झगड़ू, तुम मार्कण्डेय के यहां चलना चाहते हो न! तो मेरे साथ मेरी मोटर पर चले चलो!"

दूसरे लोटे की ओर, जिसमें भांग अभी रक्खी थी, इशारा करते हुए झगड़ू ने कहा, "यह ठीक कह्यो। अच्छा, तो विजया तैयार है, छान लेव न!"

श्यामनाथ तिवारी ने एक बार लोटे में रक्खी भांग के गहरे रंग को देखा, फिर उन्होंने उमानाथ की तरफ नजर डाली। उमानाथ ने बढ़ावा दिया, "हां काका, छान लीजिए न! संकोच की क्या बात है?"

"तो फिर लावो, थोड़ी-सी पी ही लूं!" और पौन लोटा भांग आंख बन्द करके एक सांस में चढ़ा गए।

श्यामनाथ के जाने के बाद झगड़ू उमानाथ की ओर घूमे। उमानाथ ने जो उनका मजाक उड़ाया था, वह इस समय तक वे भूल गए थे; उन्होंने लोटे में बची हुई भांग की ओर इशारा करते हुए कहा, "मझले कुंवर! तो फिर तुमहूं शंकरजी का परसाद स्वीकार करो!"

"नहीं झगड़ू काका! यह भांग का नशा सब से खराब। नशा ही करना है तो नशों का राजा मौजूद है—शराब।"

"का कह्यो? शराब!" झगड़ू ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा, "काहे हो मझले कुंवर! का तुम विलायत मां जायके सराबौ पियन लागेव?"

"हां काका—लेकिन इसमें हर्ज ही क्या है? नशा है, चाहे वह भांग हो चाहे अफीम हो, चाहे शराब हो! अगर शराब का भोग देवी पर लग सकता है, तो मनुष्य भी शराब पी सकता है। इसमें आपको क्या आपत्ति?"

"अरे देवी-देवता की बात न चलाओ! ऊ समर्थ हैं। सब कुछ कर सकत हैं; और हम ठहरेन मनई। तौन बेद-शास्त्र मां शराब निषिद्ध है। मझले कुंवर—हमरी एक बात मानो—तुम शराब छोड़ देव!"

उमानाथ झगड़ू की बात का उत्तर देने ही वाला था कि नौकर ने आकर कहा, "सरकार , मोटर तैयार है। छोटे राजा आप लोग का बुलाय रहे हैं।"

२

जिस समय श्यामनाथ की कार मार्कण्डेय के मकान के सामने रुकी, मार्कण्डेय श्रद्धानन्द पार्क में कांग्रेस की सार्वजनिक सभा का सभापतित्व कर रहा था। यह सूचना मार्कण्डेय के नौकर ने झगड़ू को दी। झगड़ू कार से उतरने लगे, लेकिन उमानाथ ने उन्हें यह कह कर कार पर फिर से बिठला लिया, "चलिये झगड़ू काका, हम आपको श्रद्धानन्द पार्क में उतार दें, है ही कितनी दूर! मैं भी चलता हूं। काका! आप न चलिएगा, लेकिन हम लोगों को फाटक पर उतार दीजिएगा!"

श्यामनाथ तिवारी ने हिचकिचाते हुए कहा, "वहां जाकर क्या करोगे?"

"देखिये काका! मैंने आज तक कांग्रेस की कोई भी मीटिंग नहीं देखी; और फिर इस मीटिंग के सभापति मार्कण्डेय भइया हैं। साथ ही झगड़ू काका भी देख लेंगे कि मार्कण्डेय भइया कितने बड़े आदमी हो गए हैं!"

श्यामनाथ निरुत्तर हो गए। श्रद्धानन्द पार्क के पास झगड़ू और उमानाथ कार से उतर गए। श्यामनाथ के जाने के बाद इन दोनों ने श्रद्धानन्द पार्क में प्रवेश किया।

श्रद्धानन्द पार्क ठसाठस भरा था, लोगों में अजीब उत्साह था! जिस समय ये लोग पार्क के अन्दर पहुंचे, मार्कण्डेय व्याख्यान दे रहे थे। मार्कण्डेय क्या कह रहा था, यह तो ये लोग नहीं सुन सकते थे, क्योंकि ये लोग बहुत पीछे खड़े थे, पर जनता के उत्साह, बीच-बीच में उठनेवाली तालियों

की गड़गड़ाहट, पर सर्वत्र फैली हुई शान्ति से उमानाथ और झगड़ू दोनों ही समझ गए कि मार्कण्डेय की वक्तृता का असर जनता पर पूरी तरह से पड़ रहा है।

सभा समाप्त हो गई,। झगड़ू के साथ उमानाथ मार्कण्डेय की ओर बढ़ा। कांग्रेस के स्वयंसेवकों का समूह मार्कण्डेय को घेरे खड़ा था। उमानाथ कोट-पैन्ट और टाई पहने था, उसका हैट उसके हाथ में था। एक स्वयंसेवक ने उमानाथ को देखकर कहा, "यह बन्दर कहां से छूट आया है?"

दूसरे स्वयंसेवक ने उमानाथ से ही कहा, "आपको शर्म नहीं आती कि आप यह हैट-टाई पहने हुए हैं!"

तीसरे स्वयंसेवक ने उमानाथ के हाथ से हैट छीन ली और चौथे ने अपने सर की गांधी टोपी उमानाथ के सर पर रख दी।

मार्कण्डेय मुस्कराता हुआ यह सब देख रहा था। उमानाथ ने गांधी टोपी अपने सर से उतार कर जमीन पर फेंकते हुए कहा, "अगर तुम इस टोपी से ही स्वराज्य लेना चाहते हो तो तुम लोग बहुत बड़े बेवकूफ हो!" और यह कह कर उसने गांधी टोपी अपने पैरों के नीचे कुचल दी।

गांधी टोपी का यह अपमान उन स्वयंसेवकों को बहुत बुरा लगा। उन लोगों ने उमानाथ को चारों तरफ से घेर लिया, और हिंसा की भावना उनके मुखों पर आगई। मार्कण्डेय ने देखा कि मामला अब बढ़नेवाला है; उस घेरे को चीर कर वह आगे बढ़ा, "कहो जी उमा! कब आए!" यह कह कर जमीन पर पड़ी हुई गांधी टोपी उसने उठा ली।

यह देखकर कि उमानाथ मार्कण्डेय का परिचित है, स्वयंसेवकगण वहां से हट गए। स्वयंसेवकों के हटते ही मार्कण्डेय की नजर झगड़ू पर पड़ी जो एक कोने में खड़े आश्चर्य के साथ यह तमाशा देख रहे थे। वैसे ही मार्कण्डेय ने कहा, "अरे बप्पा! आपौ?"

झगड़ू ने मार्कण्डेय की ओर घूमकर कहा, "हां, अब ही मझले कुंवर और श्यामू के साथ मोटर पर आय रहे हन! तुम्हार गुन सुन के चले आएन!"

३

मार्कण्डेय का मकान मेस्टन रोड पर श्रद्धानन्द पार्क से करीब सौ गज की दूरी पर था। मकान पर पहुँच कर झगड़ू ने मार्कण्डेय से कहा, "तुम कुल मां कलंक लगावन पर तुले भए हो!"

"कुल में कैसा कलंक ?" मार्कण्डेय ने आश्चर्य से अपने पिता की ओर देखा।

"हम सुन रहे हन कि तुम जेल जांय वाले हो! तौन यह न हमरे कुल मां कबहूं भा है और न होई! इतना नीक करिके समझ राखेव!"

अपने पिता की बात पर मार्कण्डेय को हँसी आ गई। वह अपने पिता को बहुत अच्छी तरह जानता था। उसने कहा, "बप्पा! यह तो ठीक है कि यह हमारे कुल में कभी नहीं हुआ; लेकिन जो बात पहले कभी कुल में नहीं हुई, वह आगे क्यों न हो, यह मेरी समझ में नहीं आता!"

"तुम्हारी समझ में नाहीं आवत है तो न आवे, कुल की मर्जादा हम नीक करिके समझित है, ई पर हमें तुम्हार सलाह की जरूरत नाहीं है!" झगड़ू ने जरा कड़े होकर कहा।

मार्कण्डेय अपने पिता के थोड़ा निकट आ गया, "बप्पा! तो फिर आपने मुझे वकालत क्यों पढ़ाई? हमारे कुल में कभी किसी ने अंग्रेजी नहीं पढ़ी थी और वकालत नहीं पढ़ी थी। मुझे भी आप देहात में ही रखते, अज्ञान का जीवन व्यतीत करने देते, पशु की मौत मर जाने देते! अगर मैं जेल जाना चाहता हूँ तो चोरी करके नहीं, डाका डाल कर नहीं, बल्कि अपनी आत्मा से प्रेरित होकर, देश और समाज के हित के लिए।"

मार्कण्डेय के इस तर्क ने झगड़ू पर असर किया, मार्कण्डेय यह बात झगड़ू की मुद्रा देख कर समझ गया था। वह कहता ही गया, "बप्पा! हम लोग ऋषियों की सन्तान हैं, उन ऋषियों की, जिनका काम था पाप को निर्मूल करने के लिए अथक परिश्रम करना, इस प्रयत्न में घोर यातनाएं

सहना, अपने को मिटा कर विश्व का कल्याण करना ! लेकिन आगे चल कर हम ब्राह्मण अपना धर्म भूल गए । और ब्राह्मणों की इस भूल का दण्ड भोगना पड़ रहा है सारे देश को । हम हिन्दुस्तानी गुलाम हैं, हम हिन्दुस्तानी भूखों मर रहे हैं । बप्पा ! मैं जो कुछ कर रहा हूं, वह ब्राह्मण का कर्तव्य है, वह दूसरों की भलाई के लिए है, वह पुण्य-काम है !"

झगड़ू निरुत्तर हो गए थे। लड़खड़ाती आवाज़ में उन्होंने कहा, "नाहीं, हम तुमसे कांग्रेस छोड़न के लिए थोड़े ही कह रहे हन ! हम तो केवल इतना कहा कि तुम जेल न जाओ । उहां जात-कुजात सबै के हाथ का अन्न खाय का पड़त है । उहां ब्राह्मणत्व नाहीं रहि सकत।"

मार्कण्डेय हँस पड़ा । अपने पिता के साथ कौन-सा तर्क चलेगा, वह यह जानता था । बजाय इसके कि वह अपने पिता को ब्राह्मणत्व का असली रूप बतलाने का प्रयत्न करता, उसने कहा, "किसका ब्राह्मणत्व बचा हुआ है बप्पा ! पम्प का पानी पीनेवाला क्या यह कह सकता है कि उसने विधर्मियों के हाथ का जल नहीं पिया ? इस अंगरेजी राज्य में जहां दवा विलायत से बन कर आती है, जहां पानी का प्रबन्ध विलायती कम्पनियों के हाथ में है, किसका ब्राह्मणत्व बना है ? मैं बड़े-बड़े कुलीन और धर्म-ध्वज ब्राह्मणों को जानता हूं और यह भी जानता हूं कि विलायत में बने हुए केक और बिस्कुट वे बड़े शौक से खाते हैं । और साथ ही बप्पा, अगर जेल में मुझे दूसरी जाति वालों के हाथ का अन्न खाना पड़ेगा, तो वह आपद्धर्म होगा । आपद्धर्म शास्त्रोक्त है !"

उमानाथ मार्कण्डेय के समझाने की विधि तथा झगड़ू के समझने की विधि पर दंग रह गया । उसने कहा, "हां झगड़ू काका ! मार्कण्डेय भइया कहते तो ठीक हैं !"

झगड़ू ने ठंढी सांस भरकर कहा, "कहत तो ठीकै हैं—लेकिन का बताई मझले कुंवर, हमार मन नाहीं गवाही देत है। तौन मारकण्डे, तुम अब बड़े हुइ गए हो, पढ़े-लिखे हो, समझदार हो—जैस तुम ठीक समझो, वैस करो ।"

यह बात हो ही रही थी कि बाहर से आवाज़ सुनाई पड़ी, "मिस्टर मार्कण्डेय मिश्र हैं ?"

नौकर सबइंसपेक्टर गंगाराम को अपने साथ उसी कमरे में ले आया। सब इंसपेक्टर ने आते ही मार्कण्डेय के हाथ में एक लिफ़ाफ़ा दिया। मार्कण्डेय ने लिफ़ाफ़ा खोल कर पत्र पढ़ा, वह पत्र मार्कण्डेय को चौबीस घंटे के अन्दर कानपुर छोड़ देने का नोटिस था। मार्कण्डेय ने गंगाराम से कहा "तो आप कल इसी वक्त आ जाइयेगा, मैं तैयार रहूँगा।"

"आप तैयार रहेंगे?—मैं समझा नहीं !" गंगाराम ने पूछा।

"यही कि गवर्नमेन्ट मुझे गिरफ्तार करना चाहती है, और मैं गिरफ्तार होने के लिए तैयार हूँ। क्या आप समझते हैं कि मैं कानपुर छोड़ कर चला जाऊँगा ?"

सर झुका कर सबइंसपेक्टर ने कहा, "समझ गया ! अच्छा, अब इजाज़त दीजिए !"

गंगाराम के जाने के बाद मार्कण्डेय ने झगड़ू से कहा, "आप आ गए बप्पा ! यह अच्छा हुआ। कल शाम के समय मेरी गिरफ्तारी होगी; आप कल तक यहीं रहिएगा !"

झगड़ू ने आश्चर्य से मार्कण्डेय को देखा, "और ई चौबीस घंटा पहिले बताय गए कि तुम्हार गिरफ्तारी होई। का हे मारकण्डे, अगर ई बीच मां तुम कानपुर से चले जाव तो ई तुम्हें कैसे गिरफ्तार करिहें ?"

उमानाथ हँस पड़ा, "वाह झगड़ू काका ! आप इतना भी नहीं समझे ? पुलिस तो यह चाहती ही है कि मार्कण्डेय भइया शहर छोड़ के चले जायें। अगर ये कानपुर छोड़ कर चले जायें तो पुलिस इन्हें हर्गिज़ गिरफ्तार न करेगी।"

"काहे हो मारकण्डे ?" झगड़ू ने पूछा।

"हां बप्पा ! यह लिफ़ाफ़ा जो मुझे अभी मिला है, इसमें लिखा है कि

में चौबीस घंटे के अन्दर शहर छोड़ दूं, नहीं तो सरकार मुझे गिरफ्तार कर लेगी !"

"तो काहे नाहीं गांव चले चलत हो ?" झगड़ू ने कहा।

"और दुनिया यह कहे कि मैं कायर हूं—सरकार यह कहे कि कांग्रेस में डरपोक आदमी भरे हैं !"

झगड़ू की समझ में यह सब न आ रहा था। उन्होंने कुछ झल्ला कर कहा, "तो फिर जो तुम्हरे जी मां आवै वह करो; हम तुमका रोक थोड़ो रहे हन !"

"मैं जानता हूं बप्पा ! आप मुझसे कभी भी गलत बात करने को न कहेंगे। अभी तक जो कुछ आपने किया है या मुझसे करने के लिए कहा है, वह मेरे हित के लिए !" मार्कण्डेय ने अपने बूढ़े पिता की ओर प्रेमपूर्वक देखते हुए कहा।

उमानाथ आश्चर्य के साथ इन पिता-पुत्र को देख रहा था; वह समझ नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है ! जो कुछ उसे झगड़ू के सम्बन्ध में ज्ञात था, उससे वह उस दृश्य पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। उसने अपने सामने बैठे हुए ठेठ गंवार को देखा, झुर्रियों से भरा हुआ कठोर मुख, और उस मुख पर जीवन के भयानक संघर्ष तथा चिन्ताओं का और पग-पग पर सामनेवाली असफलताओं तथा विवशताओं का लम्बा इतिहास ! और इन सबों की तह में एक सहृदय मानव जिसका भलाई पर विश्वास, दूसरों के हित के प्रति जिसमें आन्तरिक इच्छा; जिसमें स्वार्थ-परार्थ, अच्छा-बुरा, सही-गलत, इन सब का विवेचन ! और उस बूढ़े के सामने बैठा हुआ था उसका जवान पुत्र, जिसके मुख पर दृढ़ता, होठों पर मुस्कराहट, आंखों में तेज और वाणी में विश्वास ! और उसने देखा कि पुत्र पिता पर शासन कर रहा है, बुद्धि भावना को संचालित कर रही है, विद्या अविद्या पर विजय पा रही है। थोड़ी देर तक उमानाथ चित्रलिखित-सा इन दोनों को देखता रहा ! उसने एक ठंडी सांस ली, "अच्छा झगड़ू काका, तो मैं चलता हूं !"

उमानाथ जब दयानाथ के बँगले में पहुँचा, पण्डित श्यामनाथ तिवारी मुँह-हाथ धोकर ड्राइंग-रूम में डटे हुए जलपान कर रहे थे। उनके सामने उस दिन का दैनिक पत्र लोडर खुला रक्खा था और वे उसे भी साथ-साथ पढ़ते जाते थे। श्यामनाथ के पास बैठते हुए उमानाथ ने कहा, "वाह काका, मेरा तो इंतजार कर लिया होता!" और उमानाथ श्यामनाथ के नाश्ते पर जुट गया।

नाश्ता कर लेने के बाद श्यामनाथ उमानाथ की ओर मुखातिब हुए, "उमा! अब अपनी भावज से बात करो जाकर! मेरी तरफ़ से उसे समझा देना कि वह दवुआ की बात भूल जाय और अपनी जिद पर न अड़ कर हमारे साथ घर चले!"

उमानाथ अपनी भावज के पास पहुँचा, "भौजीजी, काका आप को मनाने आए हैं और मध्यस्थ बनने के लिए मैं आया हूँ। इसीलिए मैं आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ!"

राजेश्वरी ने मुस्कराते हुए कहा, "अच्छा, पहिले नहा-धोकर कपड़े बदलो, फिर चाय पियो और फिर जो कहना हो, वह कहना।"

"आप इसकी चिन्ता न करें—नहा-धोकर और कपड़े बदल कर मैं उन्नाव से चला हूँ, नाश्ता मैं काका के साथ कर चुका हूँ; अब बातचीत करना बाकी है!"

"अच्छी बात है बाबूजी! तो कह डालिए क्या कहना है!"

"काका का कहना है कि आपको जिद न करना चाहिए और घर चलना चाहिए!"

"इसमें जिद की क्या बात है बाबूजी, अगर मेरा घर होता तो मैं जरूर चलती! आप काकाजी से कह दीजिए जाकर!" राजेश्वरी ने कहा।

उमानाथ ने दूसरी बात नहीं की, वह सीधे श्यामनाथ के पास पहुँचा, "भौजीजी कहती हैं कि उनका घर ही नहीं है और आप—यानी हम लोग उनके कोई नहीं हैं।"

श्यामनाथ ने कहा, "हूँ !" और वे उठ खड़े हुए । उमानाथ का हाथ पकड़कर वे आंगन में पहुँचे और उन्होंने ज़ोर से उमानाथ से कहा, "उमा ! दुल्हिन से कह दो कि बड़के भइया ने ग़लती की ! दया को घर से निकल जाने की बात उन्होंने क्रोध के आवेश में कही थी, और उसके लिए मैं बड़के भइया की ओर से माफ़ी मांग रहा हूं । अब उससे कहो कि वह चले।"

लेकिन श्यामनाथ ने जो कुछ कहा, उसे चौपट कर दिया उमानाथ ने, "काका ! मुझे पता नहीं कि दद्दुआ माफ़ी मांगने के लिए या अपनी ग़लती मंज़ूर करने को तैयार हैं या नहीं, लेकिन जहां तक मैं समझता हूं, वे नहीं हैं !"

और उसी समय राजेश्वरी की आवाज़ सुनाई दी, "बाबूजी ! बाबाजी से कह दीजिए कि जो कुछ कर सकते हैं वह वे कर सकते हैं जो कृष्ण-मन्दिर में हैं, एक उन्हीं की बात मैं मान सकती हूं !"

श्यामनाथ सर झुकाए हुए वापस चले आए । उन्हें उमानाथ पर क्रोध आ रहा था; ड्राइंग-रूम में आकर उन्होंने उमानाथ से कहा, "तुम्हें वह सब कहने की क्या ज़रूरत थी ?"

"इसलिए कि किसी को धोखा देना मैं ठीक नहीं समझता !"

"तो अब किया क्या जाय ?" बेबसी से श्यामनाथ ने पूछा । उमानाथ ने उनकी बात का कोई जवाब न दिया । और थोड़ी देर सोचने के बाद मानों उन्हें प्रकाश की एक रेखा दिखाई दी; वे कह उठे, "आ गया समझ में ! कल मैं जेल में दया से मिलूंगा !"

४

दूसरे दिन पण्डित श्यामनाथ को दयानाथ से इंटरव्यू करने के लिए रवाना करके उमानाथ कामरेड मारीसन की तलाश में निकला। कामरेड मारीसन उस समय अपने होटल में ही थे । उमानाथ ने कामरेड मारीसन का दरवाज़ा खटखटाया, क्योंकि वह अन्दर से बन्द था । भीतर से आवाज़ आई, "मुझे अभी फ़ुरसत नहीं है, फिर आना !"

इस बार उमानाथ ने दरवाज़ा खटखटाने के साथ अपने गले का भी प्रयोग किया, "कामरेड, मैं हूँ उमानाथ—दरवाज़ा खोलो।"

उनकी आवाज़ ने जादू का-सा असर किया। "ओह कामरेड तिवारी!' कहते हुए कामरेड मारीसन ने दरवाज़ा खोला, "माफ़ करना! मैं समझा कि कोई और होगा! भला मुझे क्या मालूम था कि इतनी जल्दी चले आओगे!"

उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ कमरे में घुसा। उसने देखा कि कमरे के अन्दर एक और आदमी सर से पैर तक ख़द्दर के कपड़े पहने बैठा है। सामने मेज़ पर कानपुर शहर का एक नक्शा फैला हुआ है। कामरेड मारीसन ने परिचय कराया, "कानपुर के सब से बड़े लेबर-लीडर कामरेड ब्रह्मदत्त! और इंटरनेशनल के हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि कामरेड तिवारी! कामरेड ब्रह्मदत्त! हिन्दुस्तान का आरगेनाइज़ेशन अब कामरेड तिवारी करेंगे, क्योंकि मैं इंगलैण्ड वापस जा रहा हूँ।"

कामरेड ब्रह्मदत्त ने कामरेड तिवारी को हाथ जोड़ कर हिन्दुस्तानी ढंग से अभिवादन किया।

"अभी हम लोग कानपुर के मिल-एरिया पर बातचीत कर रहे थे! कामरेड तिवारी, तुम्हारी क्या राय है? इस वक्त जब कि सत्याग्रह ज़ोरों के साथ चल रहा है, कामरेड ब्रह्मदत्त का कहना है कि मिलों में हड़तालें करा दी जायँ; और जो कुछ कारण इन्होंने दिए हैं, वे बेजा भी नहीं हैं।"

"वे कारण क्या हैं?" उमानाथ ने बैठते हुए पूछा।

"बतलाइये कामरेड ब्रह्मदत्त!" कामरेड मारीसन ने कहा।

ब्रह्मदत्त ने गला साफ़ कर के आरम्भ किया, "पहला कारण यह है कि विदेशी बहिष्कार के कारण स्वदेशी मिलों को बहुत ज्यादा फ़ायदा हो रहा है। ये मिल-मालिक हड़ताल के कारण मिलों का बन्द होना गवारा नहीं कर सकते, क्योंकि इसमें इन लोगों का बहुत बड़ा नुकसान हो जायगा। इसके अलावा बहुत से मिल-मालिक खुद कांग्रेस का साथ दे रहे हैं। हम दुनिया

को बतला सकेंगे कि ये मिल-मालिक कितने पानी में हैं—ये अव्वल-नम्बर के स्वार्थी हैं!"

उमानाथ ने गौर से ब्रह्मदत्त को देखा, उसकी तेज़ नज़र के आगे ब्रह्मदत्त थोड़ा-सा निष्प्रभ हो गया।

उमानाथ ने कहा, "मौका तो अच्छा है, लेकिन हमारे सामने सवाल यह है कि इस समय हड़ताल का असर इस मूवमेण्ट पर कैसा पड़ेगा?"

ब्रह्मदत्त ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "जी...मेरा ख्याल तो यह है कि जो कुछ भी असर हो, हमारे लिए, यानी मजदूरों के लिए, वह असर अच्छा ही होगा। और हमें तो देखना यह है कि हमारा—यानी मजदूरों का, और हमारी पार्टी का फ़ायदा किस बात में है।"

"आप ठीक कहते हैं!" उमानाथ ने बात को वहीं रोकते हुए कहा, "लेकिन इस बात पर अच्छी तरह से गौर कर लेना पड़ेगा। हां, मुझे एक बात और पूछनी है, कानपुर में आपके अलावा और कितने लेबर-लीडर हैं? मैं उन लोगों से मिल कर उन लोगों की भी राय ले लेना उचित समझूंगा।"

उमानाथ का यह रुख ब्रह्मदत्त को अच्छा नहीं लगा। कामरेड मारीसन को वह इस समय तक बहुत कुछ समझा चुका था और कामरेड मारीसन समझ भी चुके थे; इसलिए कामरेड तिवारी का बीच में फट पड़ना उसे अखर गया। उसने कहा, "जी...मेरे अलावा दो-चार आदमी और हैं, लेकिन उन पर सब मजदूरों का पूरा विश्वास नहीं और इसलिए उनकी राय का कोई मूल्य नहीं।"

"समझ गया। तो आपसे मैं फिर कभी फ़ुरसत में बात करूंगा; अभी इस समय मुझे कामरेड मारीसन से कुछ खास बातें करनी हैं। आप शाम को सात बजे यहीं मिलियेगा!" उमानाथ ने शुष्क भाव से ब्रह्मदत्त से कहा।

ब्रह्मदत्त के जाने के बाद उमानाथ ने कामरेड मारीसन से कहा, "तुम्हारा यह लेबर-लीडर काफ़ी बड़ा बदमाश भी मालूम होता है। अगर ऐसे लोगों के हाथ में हमारा आरगेनाइजेशन है, तो खैरियत नहीं!"

"क्यों? इस आदमी में खराबी क्या है? अच्छा काम करनेवाला है, दौड़-धूप के लिये हरदम तैयार रहता है और मजदूरों पर इसका पूरा तौर से प्रभाव भी है! अगर आप यह भी मान लें कि यह अक्ल में आपके मुकाबिले का नहीं है तो इसमें उसका क्या कुसूर?"

उमानाथ हंस पड़ा, "तुम गलती करते हो कामरेड मारीसन! यह आदमी अक्ल में तुमसे या मुझसे कहीं ज्यादा है, लेकिन इसके साथ मुसीबत यह है कि इसकी बुद्धि रचनात्मक न बन कर विनाशात्मक ढंग पर विश्वास करती है और इस तरह से हमारे सिद्धांत को और हमारे ध्येय को मिट्टी में मिला सकती है। मुझे अपने विरोधियों से डर नहीं है, मुझे डर है इस तरह के कार्यकर्ताओं से। खैर छोड़ो भी इन बातों को; इन लोगों के साथ मैं निपट लूंगा। हां, तुम्हारे साथ कैसी बीती?"

"क्या बतलाऊं कामरेड तिवारी! तुम तो मुझे छोड़ कर चल दिये और मैं अकेला रह गया। अब कामरेड, एक तो मेरा गोरा चमड़ा और दूसरे यहां की भाषा हिन्दुस्तानी का बहुत थोड़ा-सा ज्ञान । फिर देश में अंग्रेजों के प्रति घृणा का भाव ! शहर में जो निकला तो लोग मेरे पीछे हो लिए। मेरा तमाशा बना डाला उन लोगों ने। जैसे-तैसे कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में पहुंचा और मुझे यह ब्रह्मदत्त मिल गया। फिर क्या, मौज से दिन-रात इसके साथ घूमा करता हूं!"

"अर्दली तुमने बेजा नहीं चुना, है भी इसी काबिल कि गाइड का काम करे, इससे ज्यादा इसकी वकत नहीं। खैर, वह तो टला, अब चलो मेरे यहां; अपने चाचा से तुम्हें मिलाऊं। लेकिन एक बात बतला दूं, तुम उन पर कहीं यह न जाहिर कर देना कि तुम कम्यूनिस्ट हो। वे सुपरिण्टेण्डेंट पुलिस हैं।"

"ऐसी बात है! तुम्हारा खानदान तो बड़ा दिलचस्प मालूम होता है," कामरेड मारीसन ने कहा; "तुम्हारे यहां जरा सॅभल कर रहना होगा!"

"इसमें क्या शक है! अभी तुम मेरे पिता से नहीं मिले। अजीब तरह

के आदमी हैं। अगर उनका बस चले, तो हर एक समाजवादी की खाल खिचवा कर भुस भरवा दें।"

"तो मैं बड़े खतरनाक आदमियों के बीच में आ पड़ा हूं!" कामरेड मारीसन ने गम्भीर मुद्रा बनाते हुए कहा।

उमानाथ हंस पड़ा, "डर गए! अरे एक बात और बतला दूं! ये जितने आदमी हैं—हम लोग शुरू से लेकर आखीर तक—सब के सब बहुत बड़े कायर हैं। अगर कायर न होते तो भला ये लोग गुलामी करते होते? और इतने बड़े कायर होते हुए भी यह लोग जरा-जरा सी बात पर लड़ पड़ते हैं, हत्या कर डालते हैं, फांसी चढ़ जाते हैं।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात है कामरेड तिवारी!"

"हां! और इसका कारण सुनकर तुम्हारा ताज्जुब दूर हो जायगा। हम हिन्दुस्तानियों में पशुता पूरी तरह भरी हुई है। इसी पशुता से प्रेरित होकर हम सब यह कर डालते हैं। लेकिन जब मनुष्यता प्रदर्शित करनी होती है, जब साहस की आवश्यकता होती है तभी हम हिन्दुस्तानी अपने को बहुत गिरा हुआ पाते हैं।"

कामरेड मारीसन उठ खड़े हुए, "अच्छा चलो, तुम्हारे ही यहां चलता हूं। लेकिन कामरेड! लोगों को मैंने देखा है, उनके सम्पर्क में आया हूं; और मैं जरा भी विश्वास करने को तैयार नहीं हूं कि हिन्दुस्तानी इतने खूंखार हैं।"

"यह इसलिए कामरेड कि तुमने हिन्दुस्तान में शहर ही देखे हैं और शहरों में रहनेवाले जानवर पालतू हैं; उनके दांत और नाखून हमारी सभ्यता ने तोड़ दिये हैं!" उमानाथ ने कामरेड मारीसन के साथ चलते हुये कहा।

५

पण्डित श्यामनाथ तिवारी को दयानाथ से मुलाकात करने के लिए जरा भी तकलीफ नहीं उठानी पड़ी। जेल के अधिकारी दयानाथ को और उसके

कुल को जानते थे। दयानाथ को 'ए' क्लास मिला था; और जेलर ने दयानाथ को जेल का सबसे अच्छा कमरा और उसके साथ ही विशेष फर्नीचर तथा अन्य सुविधाएं दे रक्खी थीं। श्यामनाथ तिवारी दयानाथ के कमरे में पहुंचा दिए गए।

श्यामनाथ को देखते ही दयानाथ ने उनके चरण छुए! "अरे काका, आप!"

"हां—तुमसे मिलने चला आया!"

"आपको मेरे कारण यहां आने का कष्ट उठाना पड़ा, इसके लिए मैं क्षमा मांगता हूं। वैसे आपको यहां आने की कोई आवश्यकता तो नहीं थी।"

श्यामनाथ ने दयानाथ को देखा, मुख पर मुस्कराहट और नेत्रों में चमक। वह अपने घर के ही कपड़े पहने था। श्यामनाथ ने धीमे स्वर में कहा, "दया! मुझे तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी थीं। इसलिए आया हूं। मेरी तुमसे प्रार्थना है कि तुम.........."

श्यामनाथ की बात बीच में ही काट कर दयानाथ ने कहा, "बेकार है काका! यहां आकर अब मैं माफी मांगूंगा, या सरकार से कांग्रेस से अलग हो जाने का वादा करूंगा, इसकी कल्पना करना ही मेरे साथ, मेरी आत्मा के साथ, मेरी मनुष्यता के साथ अन्यथा करना है।"

"नहीं दया, मैं इसके लिए नहीं आया हूं। मुझे तुम्हारे घर की बाबत कुछ बात करनी है!"

"कहिये!"

"देखो, बात यह है कि बड़ी बहू कानपुर में अकेली है।"

"अकेली तो नहीं काका, राजेश और ब्रजेश उनके साथ हैं।"

"अरे मेरा मतलब उससे है जो उसकी देख-भाल कर सके।"

"इसकी आप चिन्ता न करें काका; वह स्वयम् अपनी देख-भाल करने काबिल है। फिर उसके साथ भगवान् हैं।"

"दया ! इस तरह की ऊट-पटांग बातें करने से क्या फायदा ? मेरे कहने का मतलब यह है कि बड़ी बहू कानपुर में बिल्कुल अकेली है। बड़के भइया उसे बानापुर ले चलने के लिए तुम्हारे यहां गए थे, लेकिन बड़ी बहू ने बानापुर जाने से इन्कार कर दिया !"

"दबुआ खुद आए थे—और उसने इनकार कर दिया !" आश्चर्य से दयानाथ ने कहा। कुछ देर तक वह चुपचाप सोचता रहा, फिर उसके होठों पर एक हलकी मुस्कराहट आई, "मुझे इसकी उम्मीद न थी ! भगवान् को धन्यावाद कि उसमें इतनी बुद्धि तो आ गई !" अब वह श्यामनाथ से बोला, "काका—देखिये, मैं कुल का त्याज्य हूं; मुझे बानापुर जाने का अधिकार नहीं। अब मैं आपसे पूछ रहा हूं कि आप लोगों को मेरे घर में, मेरे बीबी-बच्चों में इतनी दिलचस्पी क्यों ?"

श्यामनाथ सन्नाटे में आ गए। दयानाथ में, उस दयानाथ में, जिसमें इतना संयम था, इतनी शिष्टता थी, जो इतना शांत था, इतना गम्भीर था; उसमें इतनी कटुता कैसे आ गई ? उन्होंने कहा, दया ! तुम कैसी बातें कर रहे हो ?"

"बिल्कुल ठीक कह रहा हूं काका ! मैं गिरफ्तार हुआ, मुझे सजा हुई; लेकिन आप लोगों को मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं थी ! दबुआ चाहते हैं कि मैं उनका गुलाम बनकर रहूं ! आखिर यह क्यों ? वे हर एक आदमी को अपना गुलाम बनाकर रखना चाहते हैं। और मैं ? मैं गुलामी के खिलाफ लड़ रहा हूं। कहीं भी तो हम दोनों में समता नहीं है; न हम दोनों एक दृष्टिकोण से देख सकते हैं, न हम दोनों एक तरह से समझ सकते हैं। फिर मैं पूछ रहा हूं कि उन्हें मेरी पत्नी में और बच्चों में इतनी दिलचस्पी क्यों ? आप लोग अमीर हैं, आप लोग दूसरों को उत्पीड़ित करके, दूसरों को मिटा करके खुद मौज करने में विश्वास करते हैं। और मैं !—मैं उन लोगों में हूं, जो स्वयम् मिटने में विश्वास करते हैं।"

श्यामनाथ को अनुभव हो रहा था कि दयानाथ का दिमाग कुछ खराब

हो गया है; घबराए हुए वे अपने भतीजे को देख रहे थे, "दया ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं, तुम इस तरह की बातें मत करो।"

"तो आप क्या कहना चाहते हैं?"

"मैं बड़ी बहू के विषय में कहना चाहता हूं कि वह कानपुर में कैसे रहेगी, बिल्कुल अकेली ! राजेश और ब्रजेश का भी तो खयाल करना पड़ेगा।"

"तो आप बतलाइए कि मैं क्या करूं ? दुनिया में मेरे भी तो कोई नहीं है, और इसका मुझे दुःख नहीं—जरा भी दुःख नहीं। पशुता के बन्धन से छूट कर मुझे प्रसन्नता ही हुई।"

श्यामनाथ तिवारी तिलमिला उठे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि उनका सगा भतीजा दयानाथ उनके मुंह पर ही उन्हें पशु बना रहा है। पर श्यामनाथ तिवारी जानते थे कि दयानाथ के साथ रामनाथ तिवारी ने बहुत बड़ा अन्याय किया है; और इसलिए वे अनुभव करते थे कि दयानाथ की कटुता स्वाभाविक है। श्यामनाथ की मनुष्यता ने उनके क्रोध पर विजय पाई, उन्होंने बहुत करुण स्वर में कहा, "दया ! जितना भला-बुरा कहना चाहो, कह लो, बड़ी से बड़ी गाली सुनने को मैं तैयार हूं। इसलिए कि तुम मेरे भतीजे हो, मेरे खानदान के हो। तुम जानते हो मुझे और मेरे स्वभाव को, लेकिन क्या करूं, मैं विवश हूं। मैं जानता हूं कि तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है, और इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूं। मुझे उस अन्याय पर दुःख है और मैं तुमसे माफ़ी मांगता हूं।"

अपने काका की बात से दयानाथ लज्जित हो गया, उसका क्रोध गल गया, "नहीं काका—ऐसी बात आप न कहें, इसमें आपका कोई दोष नहीं। लेकिन आप ही बतलाइए, मैं क्या करूं ? आपकी क्या आज्ञा है ?"

"बहू का कहना है कि वह बिना तुम्हारी आज्ञा के बानापुर नहीं जा सकती। मैं चाहता हूं कि तुम उसे बानापुर जाने की इजाज़त दे दो।"

"काका ! एक बात मैं आपसे कहूंगा। फिर इस विश्वास के साथ कि आप मुझे अनुचित बात करने को न कहेंगे, आप जो कुछ कहिएगा, वही मैं

करूंगा । ददुआ ने मुझसे कहा है कि उनके जीवित रहते मैं बानापुर में पैर नहीं रख सकता । आप ददुआ को जानते हैं, उनके हठ को जानते हैं, उनके निर्णय को जानते हैं । अब सवाल यह है कि जब मैं एकदम त्याज्य हूं तो मेरी पत्नी किस प्रकार वहां स्वीकृत हो सकेगी ?"

श्यामनाथ निरुत्तर हो गए, "ठीक कहते हो ! लेकिन हो क्या ?"

"कुछ नहीं, जैसे चल रहा है, चलता रहेगा !"

श्यामनाथ निराश लौट आए ।

जिस समय श्यामनाथ घर लौटे, बारह बज चुके थे । उनके मन की थकावट उनके शरीर में व्याप्त हो गई थी—वे बहुत अधिक चिन्तित थे। ड्राइंग-रूम में वे बिजली का पंखा खोल कर बैठ गए—उन्हें कुछ अच्छा न लग रहा था । बात इतनी बढ़ सकती है—उन्होंने यह न सोचा था । आज जेल में दयानाथ से बात करके, उसकी कटुता को देख कर उनको समझ में आया कि जो कुछ हुआ, वह बहुत-असाधारण बात थी। राजेश और ब्रजेश उसी कमरे में खेल रहे थे । राजेश को उन्होंने अपनी गोद में बिठला कर पूछा, "राजेश ! तुम्हारे पिताजी कहां हैं ?"

"किशन-मन्दिल में !" गर्व के साथ ब्रजेश ने जो थोड़ी दूर पर बैठा एक किताब के पन्नों को फाड़ कर नाव बना रहा था, जवाब दिया !

"मेरे साथ चलोगे ?" श्यामनाथ ने फिर पूछा।

"हां बाबा ! आप की मोटर पर चलेंगे !" राजेश ने कहा, "जब से बाबूजी किशन-मन्दिल में गए, तब से मां ने मोटर बन्द करवा दी । कहती हैं पैसा नहीं है—और मोटर चलती है पेट्रोल से, और पेट्रोल खरीदने के लिए पैसा चाहिए । बाबा ! मां झूठ-मूठ कहती हैं। उनके पास रूपया है, लेकिन कहती हैं कि रूपया नहीं है। जब पिता जी थे, तब रोज घुमाने ले जाते थे । और अब..." राजेश कहते-कहते रुक गया ।

श्यामनाथ राजेश की बातें ध्यान से सुन रहे थे । राजेश की भोली बातों में कितनी करुणा थी, कितनी विवशता थी ! राजेश को अपनी गोद से

उतारते हुए श्यामनाथ ने कहा, "अच्छा राजेश, आज तुम मेरी मोटर पर घूमने चलना!"

"औल बाबा में—में भी चलूंदा!—ऊं—ऊं!" ब्रजेश ने वहीं से आवाज लगाई।

श्यामनाथ ने बढ़ कर ब्रजेश को गोद में उठा लिया, "हां, तुम भी! तुम भी चलोगे!"

"औल मां!—मां भी चलेंदी न!" खुश होकर ब्रजेश ने पूछा।

इसी समय उमानाथ ने कामरेड मारीसन के साथ कमरे में प्रवेश किया।

६

कामरेड मारीसन की शक्ल देखते ही राजेश और ब्रजेश कमरे से रवाना हो गए। उमानाथ ने बढ़ कर श्यामनाथ से कहा, "काका! ये मेरे दोस्त मिस्टर मारीसन हैं, बड़े विद्वान् आदमी। हमारे महान् ग्रंथ वेदों का अध्ययन करने के लिए ये हिन्दुस्तान आए हुए हैं—हिन्दू-धर्म के बहुत बड़े भक्त हैं।

श्यामनाथ ने उठ कर बहुत आदर-पूर्वक मारीसन से हाथ मिलाया, "मुझे आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। कहिए हिन्दुस्तान में आपने क्या-क्या देखा?"

कामरेड मारीसन ने एक बार बड़े आश्चर्य के साथ उमानाथ के मुख को गौर से देखा—यह जानने के लिए कि उसके इस झूठ का मतलब क्या है, लेकिन उमानाथ शान्त था। कामरेड मारीसन ने जरा बचते हुए कहा, "हिन्दुस्तान में अच्छी तरह से घूमा हूं; और देखा भी मैंने बहुत कुछ है। लेकिन एक खास बात मैंने जो देखी, वह यह है कि यहां के आदमी नेक होते हुए भी बेवकूफ़ हैं।"

"इसमें क्या शक है!" श्यामनाथ तिवारी ने मारीसन की बात की ताईद की "बेवकूफ़ तो ये लोग अव्वल नम्बर के हैं। तभी तो देखिए, आप लोग वेदों के पीछे दीवाने घूम रहे हैं, इतनी दूर विलायत से वेदों का पता

लगाने यहां आए हैं, और हम लोग अपने ही महान् ग्रंथ की परवाह नहीं करते ! तो वेदों को आपने खूब अच्छी तरह पढ़ा होगा ?"

"जी...अभी पढ़ ही रहा था। बहुत अच्छी किताब है ! आपकी क्या राय है ?"

श्यामनाथ तिवारी ज़रा संकट में पड़ गए। अपना अज्ञान वे प्रकट नहीं करना चाहते थे, पर वेद के धुरंधर विद्वान् के सामने वे दून की भी नहीं हांक सकते थे। उन्होंने कुछ सोचकर कहा, "मैं क्या बतलाऊं ! वेद तो हमारा ही ग्रंथ है न ! लेकिन इतना मानना पड़ेगा कि वेद में पूर्ण ज्ञान भरा है। वह महान् ग्रंथ है, और हम हिन्दुओं का यह विश्वास है कि स्वयम् ब्रह्मा ने उसे लिखा है।"

"जी हां ! चीज़ तो वह ऐसी ही है ! हिन्दुस्तानियों में किसी समय—इन हिन्दुस्तानियों में, जो आज परले सिरे के बेवकूफ़ समझे जाते हैं, किसी समय इतना अथाह ज्ञान था—यह देख कर मुझे दंग रह जाना पड़ता है !"

उमानाथ इन दोनों की बातचीत पर मन ही मन हंस रहा था। उसने कामरेड मारीसन से कहा, "मिस्टर मारीसन ! आज जिसे हम सोशलिज्म कहते हैं, उस पर वेद में कितना अच्छा प्रकाश डाला गया है ! मनुष्य सम है, उसने स्वयम् विषमता उत्पन्न कर ली है। उस विषमता को दूर करना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है !"

"बिल्कुल ठीक मिस्टर उमानाथ ! मुझे बड़ा ताज्जुब है कि हिन्दुस्तानी उन दिनों आज की दुनिया की रफ्तार से किस तरह वाकिफ़ हो गए थे !"

"और वेद में ही तो कहा है कि राजाओं को मार डालो, अमीरों को लूट लो, अमीरी को मिटा दो। जो कुछ अन्न पैदा हो, वह बराबर-बराबर बांट लो !" उमानाथ ने फिर कहा।

पण्डित श्यामनाथ का माथा ठनका। यद्यपि उन्होंने वेद पढ़ा नहीं था, पढ़ना तो दूर रहा, देखा तक नहीं था, पर उन्होंने वेद के विषय में सही-गलत

सुना बहुत कुछ था। आर्यसमाजी और सनातनधर्मी सभी वेद की दुहाई देते हैं। पर किसी आदमी ने कभी यह नहीं कहा था कि वेदों में राजाओं और अमीरों को लूटने-पाटने के लिए लोगों को उकसाया गया है। वह आश्चर्य से उमानाथ को देख रहे थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि उमानाथ ने भी कभी वेद नहीं पढ़ा है।

और वेद का प्रकाण्ड पण्डित बड़े जोश के साथ कह रहा था, "ठीक कहते हो मिस्टर उमानाथ, वेदों में ही कहा गया है कि मिल के मजदूरों को मिल की आमदनी पर पूरा अधिकार होना चाहिए। पूंजीपतियों को यह कभी भी अधिकार नहीं है कि वह गरीब मजदूर की खून की कमाई पर गुलछर्रे उड़ावें!"

श्यामनाथ तिवारी कह उठे, "क्या कहा?"

और श्यामनाथ के चेहरे के भाव को देख कर कामरेड मारीसन को पता लग गया कि कहीं गलती हो गई। उस समय उमानाथ ने उनकी बड़ी सहायता की। उमानाथ ने कहा, "मिस्टर, मारीसन! पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री से आप आज शाम को ही मिलिएगा न!"

"यह तो तुम जानो—जैसा तै किया हो!" मारीसन समझ गया कि वेदों का किस्सा अब खत्म होना चाहिए।

पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री कानपुर नगर के बहुत प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। लोगों का खयाल था, और स्वयम् पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री का कहना था कि उनके पास भृगु-संहिता है, और इसी सिलसिले में एक-आध बार पण्डित श्यामनाथ तिवारी शास्त्रीजी से मिले थे। पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री ने जो बातें बतलाई थीं, उनमें से पचीस प्रतिशत उनके ज्ञान को साबित करती हुई ठीक निकलीं और पचहत्तर प्रतिशत कलियुग तथा अधर्म के कारण ग्रहों के फलाफल में भेद पड़ जाने को साबित करती हुई झूठी निकलीं।

अपने काका को थोड़ा-सा और आश्वासन दिलाने के लिए उमानाथ

ने कामरेड मारीसन से कहा, "मिस्टर मारीसन ! हिन्दुस्तान में मज़ाक सिर्फ़ बराबरी वालों से और बराबरी वालों के सामने ही किया जाता है !"

मारीसन ने भी अपनी सफ़ाई देना उचित समझा, "मुझे माफ़ कीजिएगा। बात यह हुई कि कलकत्ता से आने के वक्त ट्रेन में एक करोड़पति मारवाड़ी से मुलाकात हो गई । बड़ा बना हुआ आदमी था––जब बात करता था, तब गीता और वेद का हवाला देता था। मुझसे टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में डून की हांकने लगा। उसे क्या मालूम कि मैं संस्कृत का पण्डित ! फिर उसने वेदों पर बातचीत शुरू की । अब मैंने सोचा कि उसे बनाया जाय। तो मैंने जो इस तरह की बातें सुनाईं, तो लगा बगलें झांकने, सारी सिट्टी-पिट्ठी भूल गई।"

इस पर श्यामनाथ बहुत हंसे । जो कुछ शक उन्हें हुआ था, वह पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री का नाम तथा इस मजेदार किस्से को सुनकर दूर हो गया।

श्यामनाथ ने हिन्दी में उमानाथ से वे सब बातें बतला दीं, जो उनमें और दयानाथ में हुई थीं । "अब क्या हो ?" उमानाथ ने पूछा।

"क्या बतलाऊं ? कुछ समझ में नहीं आता !"

"मैं एक बात कहूं ! अगर आप ठीक समझें तो मैं यहां कानपुर में उस समय तक यहीं रहूं, जब तक बड़के भइया जेल में हैं । अगर भौजीजी हमारे यहां नहीं जातीं तो हम लोग तो यहां आ सकते हैं । इससे हमारा मतलब पूरा हो जायगा और बड़के भइया की ज़िद भी रह जायगी।"

श्यामनाथ कुर्सी से उछल पड़े । "ठीक उमा ! यह बात तो हम लोगों को सूझी तक नहीं थी ! मैं जान गया कि विलायत हो आने से आदमी की अक्ल जरूर बढ़ जाती है। तो तुम यहां रहने को तैयार हो न ! अच्छा, चलो, आज ही मैं बड़के भइया से सब कुछ तै कर लूंगा।"

"काका––मेरा बानापुर जाना बेकार है, आप खुद दद्दुआ से सब कुछ ठीक कर लीजिएगा । हां, आप वहां से मेरा असबाब भिजवा दीजिएगा। आप जानते ही हैं कि मेरे जाने से भौजीजी यहां अकेली रह जायेंगी।"

"हां उमा—यह तुमने ठीक कहा। अच्छा, तो मैं कल सुबह बानापुर जाऊँगा। अभी मैं फतहपुर जा रहा हूं। रात के समय लौट आऊँगा।"

शाम के समय उमानाथ मार्कण्डेय के मकान पर पहुंचा। पण्डित झगड़ू मिश्र बरामदे में बैठे पुलिस की प्रतीक्षा कर रहे थे और भीतर कमरे में मार्कण्डेय कानपुर के कांग्रेसवालों के साथ बातचीत कर रहा था। मार्कण्डेय की बातचीत में बाधा डालना उमानाथ ने उचित नहीं समझा, वह सीधे झगड़ू के पास पहुंचा। झगड़ू उमानाथ को देखते ही उठ खड़े हुए, "तुम अच्छे आय गए मझले कुंवर! पुलिस तो अबहीं तक नाहीं आई; बैठो, आवत होई।"

उमानाथ मुस्कराया। सड़क पर एकत्रित भीड़ को, जो मार्कण्डेय की गिरफ्तारी पर उसे विदा देने के लिए एकत्रित हो रही थी, देखते हुए उसने कहा; "झगड़ू काका! अगर पुलिस इस समय मार्कण्डेय भइया को गिरफ्तार करने आती है तो मैं समझूंगा कि पुलिसवाले बहुत बड़े मूर्ख हैं। और इसलिए मैं तो चलूंगा, क्योंकि मुझे जरूरी काम है। वापसी में अगर हो सका तो आऊँगा।"

ठीक सात बजे उमानाथ कामरेड मारोसन के होटल में पहुंचा। ब्रह्मदत्त और कामरेड मारोसन दोनों चुप बैठे उमानाथ का इंतजार कर रहे थे। कामरेड मारोसन ने उमानाथ के कान में कहा, "कामरेड उमानाथ, मैं तो उस आदमी के साथ बैठने में घबराता हूं, तुम्हीं इसे संभालो!"

उमानाथ हँस पड़ा, "मैं अभी निपटता हूं!" और यह कह कर वह ब्रह्मदत्त की ओर घूमा।

उसने बातें आरम्भ कीं, "कहिए श्रीयुत ब्रह्मदत्त! आप यहां क्या कर रहे हैं?"

"मैं मजदूर-सभा का सेक्रेटरी हूं। कांग्रेस की वार-काउंसिल का मेम्बर भी हूं।"

"मुझे ताज्जुब हो रहा है कि मजदूरों ने आपको अपना सेक्रेटरी क्यों

बना लिया और कांग्रेसवालों ने आप को वार-काउंसिल में क्यों शामिल कर लिया। खैर, जाने दीजिए इस बात को। अब आप बतलाइए कि अगर आप इस समय मजदूरों से हड़ताल करने को कहेंगे तो क्या वे राजी हो जायंगे ?"

"इसमें क्या शक है ?" ब्रह्मदत्त ने तपाक के साथ कहा, "जहां उन्हें यह समझाया गया कि हड़ताल करने से उनकी तनख्वाहें बढ़ जायंगी. वहीं वे राजी हो जायंगे।"

"और मान लीजिए कि मजदूरों ने हड़ताल कर दी, और मिल-मालिकों ने भी उनसे लड़ने की ठान ली, तो ये मजदूर कितने दिन तक बेकार बैठे रह सकेंगे ?"

इस पहलू पर ब्रह्मदत्त ने विचार न किया था, क्योंकि विचार करने की उसने जरूरत न समझी थी। प्रत्येक हिन्दुस्तानी की भांति वह भविष्य को भगवान् के हाथ में छोड़ देने पर विश्वास करता था। इस प्रश्न को सुन कर वह सकपकाया. "इसका जवाब तो मैं अभी नहीं दे सकता। दो-एक दिन में सब बातें दरियाफ्त करके और हिसाब लगाकर बतला सकूंगा।"

"खैर, जाने दीजिए इस बात को ! हां, अब दूसरा सवाल यह है कि क्या मजदूर-सभा का कोई फंड है और अगर है तो उसमें कितना रुपया है ?"

"जी...फंड तो है, लेकिन उसमें रुपया नहीं के बराबर है?। देखिए, मजदूर बिचारे दे ही क्या सकते हैं, और जो कुछ भी हम इकट्ठा कर पाते हैं, वह कार्यकर्ताओं के वेतन, मार्ग-व्यय तथा अन्य ऐसी ही चीजों पर खर्च हो जाया करता है।"

उमानाथ का स्वर कड़ा हो गया, "फिर आप हड़ताल किस बिरते पर चलाना चाहते हैं ?"

"जी...पब्लिक से चन्दा मांग कर हम मजदूरों को महीना-पन्द्रह दिन खिला सकते हैं।"

"और इस पब्लिक के चन्दे में आपको कितना हिस्सा मिलेगा ?" उमानाथ ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक प्रश्न किया।

"मैं समझा नहीं ! क्या आप का मतलब है कि मैं मजदूरों के चन्दे में से रुपया हड़प कर जाया करता हूं ?" ब्रह्मदत्त ने तनिक उत्तेजित होकर कहा।

"आप बिल्कुल ठीक समझे ! और इसमें मुझे तब तक कोई एतराज नहीं, जब तक आप यह चन्दा अमीरों से वसूल करते हैं और अपना हिस्सा खर्च कर डालते हैं, यानी उस रुपए से जमीन-जायदाद खरीद कर खुद पूंजीपति नहीं बनते। लेकिन ब्रह्मदत्तजी, इस समय जब कि कांग्रेस की लड़ाई जोरों के साथ चल रही है, लोगों की आंखें इस लड़ाई की ओर लगी हैं। इस समय आपकी ओर कोई मुखातिब न होगा, आपको कोई रुपया न देगा—इतना आप यकीन रक्खें। ये चन्दा देनेवाले इस समय कांग्रेस को चन्दा दे रहे हैं। आपने गलत मौका चुना है।"

"क्या आपने मेरा अपमान कराने के लिए मुझे यहां बुलाया है ?" ब्रह्मदत्त ने कामरेड मारोसन की ओर मुड़ कर कहा।

कामरेड मारोसन शान्त-भाव से बैठे हुए इन दोनों को देख रहे थे और मजा ले रहे थे। उन्होंने कोई उत्तर देना उचित नहीं समझा।

कामरेड मारोसन के उस मौन से उत्तेजित होकर ब्रह्मदत्त ने फिर कहा, "आप लोग परले सिरे के धूर्त और स्वार्थी हैं। एक भले आदमी को अपने घर में बुलाकर आप उसका अपमान करते हैं:" और वह उठ खड़ा हुआ।

उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़ कर उसे बिठलाते हुए कहा, "कामरेड ब्रह्मदत्त !, इस तरह नाराज नहीं हुआ जाता; काम की बातचीत में सभी कुछ सुनना पड़ता है। और जिन बातों के सच होते हुए भी आप उन पर बुरा मान रहे हैं, मैं उन्हें कोई ऐसी बुरी भी नहीं समझता। फर्क इतना है कि मैं कुछ चुराता-छिपाता नहीं, क्योंकि मैं जो कुछ करता हूं वह विश्वास के साथ, और साथ ही साफ और खरी कहता हूं।"

ब्रह्मदत्त ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर तक कोई बात नहीं हुई। उमानाथ ने उठते हुए कामरेड मारोसन से कहा, "कामरेड, अब कल

मिलूंगा; अभी मैं मिस्टर ब्रह्मदत्त के साथ जरा शहर घूमने जा रहा हूं। रास्ते में और भी बातें होंगी।"

आठ बज चुके थे। ब्रह्मदत्त के साथ उमानाथ एक अंग्रेजी होटल में पहुंचा। उमानाथ ने दो पेग ह्विस्की का आर्डर दिया। ब्रह्मदत्त ने कहा, "मैं तो नहीं पीता!"

"अकेले या सबके सामने?"

"जी....वैसे तो इसमें कोई बुराई नहीं, लेकिन महात्मा गांधी ने इसपर धरना बिठला दिया है और मैं उन लोगों में हूं, जो शराब पर धरने को चला रहे हैं।"

"छोड़ो भी—यहां तो आपको देखनेवाला कोई नहीं है—हां अपनी गांधी टोपी उतार डालिये!" और उमानाथ ने स्वयं अपने हाथ से ब्रह्मदत्त को टोपी उतार कर जेब में रख ली।

ब्वाय दो गिलासों में सोडा और ह्विस्की दे गया। पीते हुए उमानाथ ने पूछा, "अच्छा ब्रह्मदत्तजी, एक बात बतलाइये। अगर ये मजदूर हड़ताल करने के साथ-साथ सत्याग्रह भी आरम्भ करदें तो कैसी रहे?"

"किसके खिलाफ? सरकार के खिलाफ या मिल-मालिकों के खिलाफ?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"आप किसके खिलाफ चाहते हैं? दोनों ही बदमाश हैं, किस बदमाश को आप पछाड़ना चाहेंगे?" उमानाथ ने कहा।

ब्रह्मदत्त थोड़ी देर तक चुपचाप उमानाथ की बात को समझने की कोशिश करता रहा, पर बात उसकी समझ में नहीं आई, "लेकिन हड़ताल तो मिल-मालिकों के खिलाफ होगी; ऐसी हालत में सत्याग्रह किस तरह सरकार के खिलाफ चल सकता है? अगर सत्याग्रह हो सकता है, तो मिल-मालिकों के खिलाफ!"

"हां, यह तो आपने ठीक कहा। लेकिन मान लीजिए कि इस वक्त

मिल-मालिक सरकार के साथ मिल जायें और कांग्रेस का साथ छोड़ दें तो क्या होगा ? बीच में मजदूरों का सवाल उठा कर क्या हम इस स्वाधीनता की लड़ाई में बाधा नहीं डालेंगे ? इसके अलावा मजदूर एक तरफ़ से सरकार की हमदर्दी खो देंगे, दूसरी तरफ़ से जनता की।"

ब्रह्मदत्त हँस पड़ा, "आप अभी-अभी बाहर से लौटे हैं और चीज़ों को ठीक तौर से नहीं समझ पा रहे हैं। आप ज़रा गौर करें कि यह कांग्रेस का मूवमेण्ट है क्या ? आप कहेंगे कि यह कांग्रेस और सरकार के बीच एक लड़ाई है। फिर एक सवाल और उठेगा,—यह कांग्रेस क्या बला है ? आप कहेंगे कि कांग्रेस हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए लड़नेवाली एक संस्था है। मैं मान गया ! लेकिन मैं पूछता हूँ कि देश की स्वाधीनता के लिए लड़ कौन रहा है ? ये किसान—निरक्षर और मूर्ख ! भला ये क्या लड़ सकते हैं ? ये तो यह भी नहीं जानते कि स्वाधीनता है क्या चीज़। फिर जहां तक ज़मींदारों का सवाल है, यह लड़ाई उनके खिलाफ़ पड़ती है, क्योंकि हिन्दुस्तान की आज़ादी के अर्थ होंगे ज़मींदारी-प्रथा का अन्त हो जाना। तो बाकी रह गए हमारे देश के व्यापारी। यहां यह समझ लेना पड़ेगा कि इंगलैण्ड व्यापारिक देश है, और हिन्दुस्तान की गुलामी बहुत बड़े अंश में मुख्यतः व्यापारिक तथा आर्थिक गुलामी है। इंगलैण्ड की व्यापारिक नीति के कारण हिन्दुस्तान के व्यापार को तथा व्यापारियों को बहुत बड़ा धक्का लगता है। तो कामरेड, हमारे देश के व्यापारी ही अपने हित के लिए स्वतन्त्रता पाना चाहते हैं और इसलिए ब्रिटिश सरकार से लड़ रहे हैं। यह व्यापारी कभी भी सरकार का साथ न देंगे। यह याद रखिएगा कि कांग्रेस व्यापारियों की, पूंजीपतियों की संस्था है। इस समय पूंजीपति बड़ी आसानी से दबाए जा सकते हैं।"

उमानाथ ने दूसरा पेग मंगवाया, ब्रह्मदत्त ने दूसरा पेग लेने से इनकार कर दिया। थोड़ी देर तक उमानाथ आश्चर्य से ब्रह्मदत्त को देखता रहा, इसके बाद उसने ब्रह्मदत्त के कंधे पर हाथ रख कर कहा, "यार, आदमी तुम इतने गावदी नहीं हो, जितना मैंने तुम्हें समझ रक्खा था। लेकिन तुम्हारे लाख

समझाने पर भी मेरी तबीअत नहीं होती कि मैं हड़ताल करवाऊँ। बुरा न मानना, मैं समझता हूं कि जब दो बदमाशों में लड़ाई हो रही हो, तब छोटे बदमाश के साथ मिल कर बड़े बदमाश को खत्म कर देना चाहिए। छोटे बदमाश को तो किसी भी समय आसानी के साथ समझा जा सकता है।"

"जी! मैंने तो एक सलाह भर दी, यह जरूरी नहीं है कि आप उसे मान ही लें।"

इस समय तक उमानाथ ने दूसरा पेग भी खत्म कर दिया। उठते हुए उसने कहा, "तो फिर अब घर चला जाय कामरेड! तुम अच्छे मिल गए। और अब मैं तुम्हें अपना परिचय भी दे दूं! तुम दयानाथ तिवारी को तो अच्छी तरह जानते होगे?"

"अरे! तो आप उनके भाई तो नहीं हैं?" ब्रह्मदत्त ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा।

"हां, मैं उनका भाई हूँ, और अभी दो-चार दिन हुए विलायत से वापस आया हूं। उन्हीं के बँगले में ठहरा हूं और रहूँगा भी यहीं। तो कल सुबह आना, जलपान मेरे ही यहां आकर करना।"

७

उमानाथ अपनी भावज के पास सुबह पहुँचा, "तो भौजीजी! मैंने यह तै किया है कि जब तक बड़के भइया जेल में हैं, तब तक मैं यहां कानपुर में और इसी मकान में ही रहूं। आपकी क्या राय है?"

राजेश्वरी ने उत्सुकता से उमानाथ को देखा, "इसकी क्या जरूरत थी मझले बाबू! खैर जैसी आपकी मर्जी। लेकिन आप अभी-अभी विलायत से आए हैं; मझली दुलहिन को भी लेते आइए न!"

उमानाथ ने बात टालते हुए कहा, "खैर, इस पर फिर सोचूंगा, अभी तो मैं सिर्फ़ आपसे यह बात कहने आया था।" और इस खयाल से कि कहीं बात अधिक न बढ़े, उमानाथ बाहर चला गया।

ठीक सात बजे पण्डित ब्रह्मदत्त दयानाथ के बंगले में दाखिल हुए। उमानाथ ने उठ कर ब्रह्मदत्त का स्वागत किया, और फिर दोनों कामरेड चाय और नाश्ते पर जुट गए। चाय समाप्त कर के ब्रह्मदत्त ने संतोष की गहरी डकार ली। उन्होंने कहा, "कामरेड ! आज सुबह चार बजे कानपुर के पांचवें डिक्टेटर श्रीयुत मार्कण्डेय मिश्र गिरफ्तार हो गए।—नगर में इस समय... उमानाथ ने ब्रह्मदत्त की बात बीच में ही काटते हुए कहा, "क्या कहा, मार्कण्डेय भइया गिरफ्तार हो गए—चार बजे सुबह !"

"जी हां! आप शायद उन्हें जानते होंगे। दयानाथजी के घनिष्ट मित्र थे; शायद एक ही गांव के रहनेवाले हैं। तो छठे डिक्टेटर की नियुक्ति का सवाल है।"

"हूं !" उमानाथ ने केवल इतना कहा; वह उस समय झगड़ू के सम्बन्ध में सोच रहा था।

"कामरेड—सुन रहे हो, छठा डिक्टेटर बनने को मुझसे कहा जा रहा है।"

"तो तुमने क्या तै किया ?" उमानाथ ब्रह्मदत्त की तरफ़ मुखातिब हुआ।

"जाना तो पड़ेगा ही; यह सम्भव नहीं कि मैं इनकार कर दूं, यद्यपि जाने की इच्छा तो नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूं कि मैं पूंजीपतियों की तरफ़ से लड़ रहा हूं। देखिए, मैं समाजवादी सब से पहले हूं, कांग्रेसमैन बाद में हूं। ऐसी हालत में मैं तुम्हारी सलाह ले लेना चाहता हूं।"

उमानाथ थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर उसने कहा, "मेरा ऐसा ख़याल है कामरेड, कि तुम्हें जाना ही चाहिए। लेकिन इतना ज़रूर कहूंगा कि अपना नम्बर छठे से सातवां करा लो।"

"यह तो मुश्किल काम है। एक दिन के लिए भी टलने से लोग मुझे कायर समझने लगेंगे, और बेकार ही कायर समझा जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। अगर एकदम कांग्रेस की नीति को ही छोड़ देना पड़े तो मैं इसे उचित समझूंगा, लेकिन ऐसी हालत में मुझे कोई जबरदस्त लेबर मूवमेण्ट

अपने हाथ में उठा लेना पड़ेगा । अगर मैं योंही टालता हूं, तो यह बेजा बात होगी ।"

"हां, यह तो ठीक है, लेकिन अभी कोई लेबर मूवमेण्ट उठाना मैं उचित नहीं समझता, साथ ही मैं इस बात पर भी जोर दूंगा कि इतना आगे बढ़ कर पीछे हटने से तुम्हारी और हमारे दल की बदनामी होगी । लेकिन मैं चाहता हूं कि अभी दो-चार दिन तुम जेल न जाओ । अच्छा, एक काम करो!"

"वह क्या?"

"आज तुम्हें एक सौ पांच डिग्री बुखार आना चाहिए, क्योंकि डिक्टेटर की नियुक्ति आज ही हो जायगी न! और कल सुबह अच्छे होकर तुम मुझे मिल-एरिया में घुमाना शुरू कर दो । मेरा खयाल है कि तीन-चार दिन में यह काम हो जायगा, फिर तुम बड़े मजे में जेल जा सकते हो।"

"लेकिन अगर कांग्रेसवाले जान गए कि मैंने सिर्फ़ बहाना किया है?" ब्रह्मदत्त ने पूछा ।

"इसकी जिम्मेदारी मुझ पर! मजाल है कि उन्हें शक होने पाए!"

"जैसा तुम ठीक समझो कामरेड, मैं तुम्हारे ही ऊपर सब कुछ छोड़े देता हूं।"

उमानाथ ने उसी समय टेलीफ़ोन उठाया । उसने स्थानीय दैनिक पत्र प्रताप और वर्तमान में सूचनाएं भेज दीं । ब्रह्मदत्तजी को १०५ डिग्री बुखार आ गया ।

दोनों पत्रों के प्रतिनिधि यह सूचना मिलते ही दयानाथ के बंगले में आ गए । इस बीच में उमानाथ ने ब्रह्मदत्त को सोफ़ा पर लिटा दिया था। संवाददाताओं के आने की सूचना मिलते ही उमानाथ ने ब्रह्मदत्त पर एक कम्बल डाल दिया और बिजली का पंखा बन्द कर दिया। दोनों सम्वाददाता कमरे में आ गए और आते ही उन्होंने ब्रह्मदत्त की खैर-कुशल की पूछ-ताछ आरम्भ कर दी।

प्रतिनिधि प्रताप--"बुखार कब चढ़ा ?"

प्रतिनिधि वर्तमान--"बुखार कैसे चढ़ा ?"

प्रतिनिधि प्रताप--"बुखार क्यों चढ़ा ?"

प्रतिनिधि वर्तमान--"बुखार कहां चढ़ा ?"

दोनों संवाददाता कागज-पेंसिल लिए तैयार बैठे थे। कम्बल के नीचे से पंडित ब्रह्मदत्त कराह रहे थे और उमानाथ चिंतित तथा मौन कमरे में टहल रहा था। उमानाथ ने ब्रह्मदत्त के पास जा कर उसे थोड़ा-सा पानी पिलाया, फिर वह इन संवाददाताओं की ओर मुखातिब हुआ, "बुखार आज अभी एक घंटा पहले चढ़ा, जाड़ा देकर चढ़ा, मलेरिया के जर्म इनके शरीर में प्रवेश कर गए थे, इसलिए चढ़ा और मेरे इसी कमरे में चढ़ा।

दोनों रिपोर्टरों ने उमानाथ का बयान दर्ज कर लिया।

उमानाथ ने फिर कहा, "पण्डित मार्कण्डेय मिश्र की गिरफ्तारी के बाद डिक्टेटरशिप के लिए ब्रह्मदत्तजी का नम्बर आना चाहिए। जब से इनको बुखार चढ़ा है, तब से ये बहुत चिंतित और उद्विग्न हो गए हैं। बीच-बीच में ये चिल्ला उठते हैं कि मुझे कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर में ले चलो, मुझे चार्ज लेना है!"

और उसी समय ब्रह्मदत्त चिल्लाया, "मुझे कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर में ले चलो!"

"देखा आपने!" इस प्रत्यक्ष प्रमाण का उल्लेख करते हुए उमानाथ ने कहा, "और मैं इस बात पर जोर दूंगा कि जब तक ये अच्छे न हो जायं, तब तक इन्हें जरा भी काम न करना चाहिए। मैंने यह तै कर लिया है कि तीन दिन तक मैं इन्हें इसी मकान में जबर्दस्ती रक्खूंगा और इन्हें किसी से न मिलने दूंगा। इनकी हालत इतनी खराब है कि जरा सी हलचल से भी इनका प्राणान्त हो सकता है! एक सौ पांच डिग्री बुखार कम नहीं होता। और जब आदमी बकने लगे, जैसा ब्रह्मदत्तजी कर रहे हैं। तब तो हालत और भी खराब समझिए!"

उमानाथ वक्तव्य दे रहा था, दोनों रिपोर्टर तेजी के साथ लिख रहे थे, और ब्रह्मदत्त पसीने से लथपथ था। सब कुछ लिख कर रिपोर्टरों ने कहा,

"अच्छा, तो अब आप हमें आज्ञा दीजिए ! आपने कांग्रेस कमेटी में तो इत्तिला कर ही दी होगी।"

"अरे ! यह तो मैं भूल ही गया । अगर आप लोगों को कोई विशेष कष्ट न हो तो आप लोग स्वयम् इत्तिला कर दें । इनकी हालत तो आप लोगों ने देख ही ली है । हां ! आप लोगों ने जल-पान तो न किया होगा !"

"ही ! ही !--आपकी कृपा बनी रहे, जलपान की ऐसी कोई बात नहीं। हम लोग इत्तिला कर देंगे !" दोनों रिपोर्टरों ने एक साथ उठते हुए कहा।

"अजी वाह ! अतिथि बिना जल-पान किए चला जाय--भला यह कहीं हो सकता है !" हाथ पकड़ कर उमानाथ ने दोनों रिपोर्टरों को बिठला लिया। नौकर कोई पास न था, इसलिए वह स्वयम् जलपान का प्रबन्ध करवाने भीतर चला गया।

दोनों रिपोर्टरों ने आपस में बातचीत शुरू की।

प्रतिनिधि प्रताप--"यही दयानाथजी के छोटे भाई उमानाथजी हैं; जर्मनी से पढ़ कर लौटे हैं।"

प्रतिनिधि वर्तमान--"बड़े सीधे आदमी मालूम होते हैं और साथ ही बड़े खातिरदार।"

प्रतिनिधि प्रताप--"दुनिया घूमे हैं, घाट-घाट का पानी पिए हैं। जानते हैं कि आदमी की किस तरह इज्जत की जाय; कोई बनिया-बक्काल थोड़े ही हैं!"

प्रतिनिधि वर्तमान--"इसमें क्या शक है ! ताल्लुकेदार के लड़के हैं, दिल है और हिम्मत है ! देखा पंडित ब्रह्मदत्त की कैसी सेवा-सुश्रूषा कर रहे हैं!"

उधर ये दोनों संवाददातागण उमानाथ तिवारी का गुणगान कर रहे थे, इधर पण्डित ब्रह्मदत्त के बुरे हाल थे । "गरमी में कम्बल ओढ़ कर लेटना आसान काम नहीं है !" इस विषय पर वे उमानाथ से विवाद करने को छटपटा रहे थे । उनका सारा शरीर पसीने से भीगा हुआ था।

उमानाथ के पीछे-पीछे नौकर दो तश्तरियों में मिठाई और नमकीन लिए हुए आया । दोनों सम्वाददाता जलपान पर जुट गए। उमानाथ अपनी सफलता पर मुस्करा रहा था।

जलपान करके दोनों संवाददाताओं ने संतोष की डकार ली। इसके बाद दोनों ने उमानाथ की खुशामद करना आरम्भ कर दिया।

ब्रह्मदत्त अब निराश हो गया। अभी तक तो समझता था कि ये दोनों महानुभाव काम हो जाने पर चले जाएंगे और इसी आशा से वह करीब एक घण्टा उस सड़ी गरमी में कम्बल ओढ़े लेटा रहा, लेकिन अब उसका धैर्य जाता रहा। उसकी झुंझलाहट क्रोध में बदल गई और अपने ऊपर से कम्बल फेंक कर वह उठ बैठा। चिल्ला कर उसने कहा, "ये दोनों बदमाश अभी कितनी देर यहां बैठेंगे, "ये जाते हैं या मुझे उठ कर इन्हें निकालना पड़ेगा।

उमानाथ हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ, दोनों रिपोर्टर उसके साथ हो लिए। ज़रा गम्भीर मुख बना कर और आंख मार कर ब्रह्मदत्त को मौन रहने का आदेश देते हुए उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़ा और उन दोनों रिपोर्टरों ने भी उनका हाथ पकड़ा। हाथ एकदम ठंढा था। प्रताप के सम्वाददाता ने कहा, "बुखार अब ज़रा भी नहीं है—भगवान् को धन्यवाद !" वर्तमान के सम्वाददाता ने कहा, "देखते नहीं कितना पसीना आया है—बुखार उतर गया। अब ब्रह्मदत्तजी डिक्टेटर बन सकेंगे।"

लेकिन उमानाथ जोर से चिल्ला उठा, "अरे बुखार एकबारगी उतर गया, पसीना छूट रहा है ! इस पर ये प्रलाप कर रहे हैं। सन्निपात की हालत मालूम होती है।"

सन्निपात का नाम सुनते ही दोनों रिपोर्टरों की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। उन दोनों में कोई भी ब्रह्मदत्त की अर्थी के साथ जाने को तैयार हो कर न आया था। प्रताप के सम्वाददाता ने कहा, "आप फोन कर के जल्दी ही किसी डाक्टर को बुलाइए। मैं अभी जा कर प्रताप में यह सूचना दिए देता हूं !"

"और मैं कांग्रेस-कमेटी में यह सूचना दे दूंगा, आप निश्चिन्त रहिएगा !" वर्तमान के सम्वाददाता ने कहा।

दोनों प्रतिनिधिगण ब्रह्मदत्त पर दूसरी नज़र डाले बिना ही वहां से रवाना हो गए।

नवाँ परिच्छेद

१

शाम के समय पण्डित श्यामनाथ तिवारी के साथ उमानाथ का सामान ही नहीं आया, बल्कि उसकी पत्नी महालक्ष्मी भी अपने तीन वर्ष के सुपुत्र सुरेश के साथ आ गईं। राजेश्वरीदेवी ने अपनी देवरानी का स्वागत किया और राजेश-ब्रजेश ने सुरेश का। जिस समय महालक्ष्मी कानपुर आईं, उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ शहर में चक्कर लगा रहा था।

सब लोगों को घर के अन्दर पहुंचा कर तथा असबाब को ठीक तरह से रखवा कर पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने संतोष की एक गहरी सांस ली। बाहर ही लान पर कुर्सी निकलवा कर वे बैठ गए और उमानाथ का इंतजार करने लगे। नौकर से उन्होंने कह दिया कि वे चाय उमानाथ के साथ पिएँगे।

इधर दोपहर भर बिजली के पंखे की हवा के नीचे आराम से सोने के बाद शाम के समय ब्रह्मदत्त की आंख खुली। उसने अपने चारों ओर देखा; कमरे में अँधेरा हो गया था। वह बाहर निकला और उमानाथ की प्रतीक्षा में लान पर टहलने लगा।

पण्डित श्यामनाथ तिवारी गौर से ब्रह्मदत्त को देख रहे थे। अब उनसे न रहा गया, ब्रह्मदत्त को बुला कर उन्होंने पूछा, "कहिए, किसकी तलाश में आप हैं?"

"जी! मैं पण्डित उमानाथ तिवारी का इंतजार कर रहा हूं।"

"आप का नाम?" श्यामनाथ ने ब्रह्मदत्त के खद्दर के कपड़ों को देखते हुए फिर पूछा।

"मेरा नाम ब्रह्मदत्त है और मैं लेबर लीडर हूं!"

"हूँ !" श्यामनाथ ने कहा, "तो आप की उमानाथ से दोस्ती है और आप उसका इंतजार कर रहे हैं! कब से?"

"मैं यहां सुबह से ही हूँ! आप जानते ही हैं, गरमी के दिन हैं। मैं जरा लेटा तो आंख लग गई, और इस बीच में मुझे सोता छोड़ कर वे कहीं चल दिये।"

इतने में एक कार पोर्टिको के नीचे रुकी। उस कार से कामरेड मारीसन के साथ उमानाथ उतरा। श्यामनाथ के पास ब्रह्मदत्त को बैठा देख कर उमानाथ को कुछ घबराहट हुई; वह सीधे ब्रह्मदत्त के पास पहुंचा, कामरेड मारीसन उसके पीछे-पीछे थे। बात बनाते हुए उमानाथ ने ब्रह्मदत्त से कहा, "तो ब्रह्मदत्त-जी, आपको बड़ी तकलीफ हुई। अब हम लोग आ गए हैं; बड़के भइया ने इस घर की देख-भाल करने का भार जो आप को सौंपा था, उससे आप मुक्त हो गए। हां, आपने चाय तो पी ली?"

ब्रह्मदत्त की समझ में उमानाथ की बात आ गई थी; उसने भी तपाक के साथ कहा, "कोई बात नहीं उमानाथजी—तकलीफ़ क्या, अपने मित्र की थोड़ी-सी सेवा तो मेरे लिए गौरव की बात थी। रही चाय की बात, सो मैंने नहीं पी; मैं आप का इंतजार कर रहा था। लेकिन चाय पीने की ऐसी कोई खास इच्छा नहीं है, आप मुझे आज्ञा दीजिए!"

"वाह, बिना चाय पिए आप कैसे जा सकते हैं! ये मेरे काका पण्डित श्यामनाथ तिवारी—फ़तहपुर के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं, और आप श्रीब्रह्मदत्त-जी—कांग्रेस के बहुत बड़े नेता हैं, साथ ही बड़के भइया के खास दोस्त!"

चाय का हुक्म दे कर उमानाथ श्यामनाथ की ओर घूमा, "तो काका, आप बड़ी जल्दी लौट आए! मेरा सामान तो आ गया होगा!"

"हां सब सामान आ गया!" मुस्कराते हुए श्यामनाथ ने कहा; और इसी समय राजेश और ब्रजेश के साथ खेलता हुआ सुरेश भी घर के बाहर निकल आया। सुरेश को देखते ही उमानाथ चौंक उठा, "अरे! सुरेश यहां कैसे?" क्या आप इन लोगों को भी लेते आए हैं?"

"क्या करता ? तुम्हीं बतलाओ ! मझली बहू बुरी तरह मेरे पीछे पड़ गई। बड़के भइया तो भेजने को तैयार न थे, लेकिन उमा!" श्यामनाथ तिवारी ने आंख दबा कर और मुस्करा कर इस प्रकार कहा मानों उन्होंने कोई बहुत शाबाशी का काम किया हो, "मैं तो जानता हूं कि तुम दो साल बाद विलायत से लौटे हो; तो मैं बड़के भइया से जरा भी नहीं दबा—बल्कि यों कहो कि मैं लड़ गया। ऐसी-ऐसी सुनाईं कि उन्हें भी याद होगा। जबरदस्ती मैं मझली बहू को लिवा लाया।"

लेकिन उमानाथ के मुख पर प्रसन्नता आने के स्थान पर विषाद की एक रखा घिर आई।

"क्यों क्या बात है ? तुम एकाएक उदास क्यों हो गए ?" श्यामनाथ ने पूछा।

"यों ही, कोई खास बात नहीं है। काका असल में मेरा यहां पर मन नहीं लगता, लाख कोशिश करने पर भी ! विलायत की स्वच्छन्द और चहल-पहल से भरी जिन्दगी के बाद हिन्दुस्तान कुछ अजीब तरह से सूना लगने लग गया है!"

श्यामनाथ जोर से हंस पड़े, "ओह! समझ गया! लेकिन उमा, तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम हिन्दुस्तानी हो, और साथ ही हिन्दुस्तान की एक सभ्यता है, एक संस्कृति है जो निजी विशेषता रखती है।"

उमानाथ ने श्यामनाथ की बात का कोई उत्तर नहीं दिया; उसका मन भारी था।

श्यामनाथ बातें करने के मूड में थे, वे कामरेड मारीसन की ओर घूम पड़े, "कहिए, पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री से आप की बातचीत हुई ?"

लेकिन कामरेड मारीसन बद्रीनाथ शास्त्री को न जाने कब से भूल चुके थे। आश्चर्य से उन्होंने कहा, "कौन बद्रीनाथ शास्त्री ? इस नाम के तो किसी भी आदमी को मैं नहीं जानता।

इस बार श्यामनाथ तिवारी की कामरेड मारीसन को आश्चर्य से देखने

की बारी थी। उमानाथ ने अब हस्तक्षेप करना अपना कर्तव्य समझा, "मिस्टर मारीसन! इतनी जल्दी आप भूल गए! अरे वही पण्डित जिससे आपने वेदों पर बातचीत की थी!"

"वेद!" कामरेड मारीसन अजीब उलझन में थे, लेकिन एकाएक उन्हें उस दिन की बातचीत याद हो आई, "ओह! याद आ गया। जी हां, उन्होंने मुझे कई खास बातें बतलाईं और मैंने उन्हें नोट कर लिया!"

२

चाय पीकर पण्डित ब्रह्मदत्त दूसरे दिन सुबह आने का वादा करके चले गए! पण्डित श्यामनाथ तिवारी को फ़तहपुर जाना था; उनका काम पूरा हो गया था।

श्यामनाथ के जाने के बाद दोनों कामरेड रह गए। तब तक राजेश ने आकर उमानाथ से कहा, "काका! आप को अम्मा ने बुलाया है।"

उमानाथ उठ खड़ा हुआ। वह अनुमान कर सकता था कि उसे क्यों बुलाया गया है। उसने कामरेड मारीसन से कहा, "मैं अभी आता हूँ।" और वह अन्दर चला गया।

उमानाथ को देखते ही राजेश्वरीदेवी ने व्यंग कसा, "क्यों बाबूजी! बिचारी दुलहिन कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, और तुम्हें जरा भी चिन्ता नहीं! जाओ, उससे मिल तो लो!"

उमानाथ कमरे में गया; महालक्ष्मी सर झुकाए हुए बैठी थी। वह उस समय शायद रो रही थी। उमानाथ के पैरों की आहट पाते ही उसने अपने आंचल से आंखें पोंछ डालीं और उसने दरवाजे की ओर देखा। वह उठ खड़ी हुई; पर वह आगे नहीं बढ़ी—वह प्रतीक्षा कर रही थी कि उसके स्वामी उसके पास आवें, उसे आलिंगन-पाश में कस लें, उसका चुम्बन करें; और वह अपने आराध्य देव के कंधे पर अपना सर रख कर रोवे—खूब जी भर कर रोवे!

लेकिन उमानाथ ने यह कुछ न किया, वह एक खाली कुर्सी पर बैठ गया। उसने कुछ मुलायम स्वर में कहा, "तुम्हारे यहां आने की कोई खास जरूरत तो नहीं थी; लेकिन आ गईं तो अच्छा ही किया।"

महालक्ष्मी अपने स्वामी का स्वर पहचान नहीं सकी। जो बात उसने सुनी उससे वह कांप उठी; भरे हुए गले से उसने कहा, "नाथ, मुझसे कौन-सा अपराध हो गया ?" और वह अपने को न रोक सकी। वेतहाशा, दौड़ कर वह गिर पड़ी और उमानाथ के पैरों से लिपट गई।

महालक्ष्मी के इस व्यवहार के लिए उमानाथ तैयार न था, वह सकपका गया। उसने बड़ी मुश्किल से महालक्ष्मी को अपने पैरों से छुड़ाया। उसने केवल इतना कहा, "बैठो और अपना यह वहशियाना ढंग छोड़ो। तुम मेरी बराबरी की हो, तुम गुलाम नहीं हो, जो यह सब करो।"

महालक्ष्मी की समझ में न आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। साथ ही उमानाथ का जी भी घबरा रहा था। उमानाथ उठ खड़ा हुआ, "मेरे एक दोस्त बाहर बैठे हैं—मुझे उनके पास जाना है। और हां—वे तुमसे परिचित होना चाहते हैं।"

"मुझसे," आश्चर्यचकित होकर महालक्ष्मी ने पूछा।

"हां, मेरे दोस्त अंग्रेज हैं और तुम जानती हो कि अंग्रेजों में पर्दा-प्रथा नहीं है। यह पर्दा-प्रथा जंगलीपन है। तो तुम चल सकती हो ?" उमानाथ ने कहा।

महालक्ष्मी ने दबे हुए स्वर में उत्तर दिया, "आपकी आज्ञा न मानना मेरे लिए सब से बड़ा पाप है। लेकिन बाहरी आदमी से मैं कभी मिली नहीं—और आप के दोस्त अंग्रेज हैं, उनके सामने जाने की मुझे हिम्मत नहीं पड़ती। मेरे होश-हवास सब जाते रहेंगे।"

"तुम कुछ बोलना नहीं, जल्दी ही चली आना!"

महालक्ष्मी उमानाथ के साथ चल दी। राजेश्वरीदेवी उस समय स्नान

कर रही थीं। कामरेड मारीसन महालक्ष्मी को देखते ही उठ खड़े हुए। उमानाथ ने उनसे महालक्ष्मी का परिचय कराया।

कामरेड मारीसन ने हाथ बढ़ाते हुए अंग्रेजी में कहा, "आप से मिल कर बड़ी खुशी हुई!"

महालक्ष्मी कामरेड मारीसन की बात नहीं समझी, उसने नमस्कार कर के उधर से आंखें फेर लीं।

कामरेड ने अंग्रेजी में, फिर टूटी-फूटी हिन्दी में लगातार चार-छः प्रश्न कर के महालक्ष्मी को बुलवाना चाहा, लेकिन महालक्ष्मी मौन ही रही। महालक्ष्मी का संकट देख कर उमानाथ ने उससे हिन्दी में कहा, "अच्छा, अब तुम जा सकती हो!"

महालक्ष्मी के प्राण में प्राण आए; तेजी के साथ वह अन्दर चली गई।

महालक्ष्मी के जाने के बाद कुछ देर तक दोनों दोस्त मौन रहे। उस मौन को कामरेड मारीसन ने तोड़ा, "ऐसी नेक, खूबसूरत और भोली औरत को छोड़ कर तुमने हिल्डा से विवाह किया? मुझे ताज्जुब होता है कामरेड!"

उमानाथ मुस्कराया, "हां कामरेड, खुद मुझे भी कभी-कभी ताज्जुब होने लगता है, लेकिन फिर भी यह सत्य है कि इसके रहते हुए भी मैंने हिल्डा से विवाह किया। तुम कारण जानना चाहोगे! तो सुनो! पहले हमें विवाह का मतलब समझ लेना पड़ेगा। मेरे मत के अनुसार विवाह केवल संतानोत्पत्ति के लिए नहीं है, विवाह स्त्री से गुलामी करवाने के लिए तथा उसकी सेवा के बदले में उसका भरण-पोषण करने के लिए भी नहीं है; विवाह का मंशा दो प्राणियों में अर्थात् स्त्री-पुरुष में, एक दूसरे के प्रति पूर्ण सहानुभूति, पूर्ण सामंजस्य, पूर्ण सहयोग है। और ये चीजें तभी सम्भव हैं जब स्त्री और पुरुष, दोनों ही पूर्ण-रूप से विवाहित और सुसंस्कृत हों।

"अब हमें महालक्ष्मी और हिल्डा की एक दूसरे से तुलना करनी पड़ेगी। महालक्ष्मी में सौंदर्य है, पर वह सौन्दर्य एक मोम की मूर्ति वाला सौन्दर्य है—स्पन्दन-रहित, निष्प्राण! मैं मानता हूं कि इसमें महालक्ष्मी का कोई दोष

नहीं, हमारी सामाजिक परिपाटी उसके लिए उत्तरदायी है; पर यह मौजूद तो है, अपनी तमाम भयानकता के साथ। वह अभी तुम्हारे सामने आई, लेकिन वह एक शब्द भी नहीं बोली। उसके सौन्दर्य पर मुझे गर्व नहीं हो सकता, उस निष्प्राण सौन्दर्य से मुझे कुरुचि है। आज वाला मेरा जीवन मुझ तक या मेरे बीवी-बच्चों तक ही सीमित नहीं है—वह सामाजिक जीवन है।

"और वहीं हिल्डा, उसमें लोग शारीरिक-सौन्दर्य का कुछ अभाव पा सकते हैं, पर वह मेरे मित्रों को प्रसन्न कर सकती है, उनका स्वागत कर सकती है, उन्हें बातों में लुभा सकती है। वह अपने चारों ओर एक सजीव उल्लास का वातावरण बना सकती है, जो महालक्ष्मी नहीं कर सकती। महालक्ष्मी का अस्तित्व मेरे लिए—सिर्फ उस मेरे लिए है जो समाज से बहिष्कृत, अपनेपन में डूबा हुआ हो। आप इतना तो मानेंगे ही!"

मारीसन मुस्कराया, "कहे जाओ—मैं समझ रहा हूँ!"

"अब मैं महालक्ष्मी के मेरे प्रति प्रेम की विवेचना करता हूँ। मेरे प्रति उसका प्रेम ठीक वैसा है, जैसा एक कुत्ते का प्रेम अपने स्वामी के प्रति हो सकता है। उस प्रेम में पूर्ण आत्म-समर्पण है और आत्म-समर्पण को मैं जीवन-हीनता समझता हूँ। मुझे चाहिए अपनी पत्नी में एक व्यक्तित्व, उसके स्वतंत्र विचार; मेरे व्यक्तित्व का उसके व्यक्तित्व से तथा मेरे विचारों से उसके विचारों का अनवरत संघर्ष! संघर्ष ही जीवन है कामरेड!"

मारीसन ने बातें तो गौर से सुनीं, लेकिन शायद समझ वह कुछ भी नहीं सका। उसने उठते हुए कहा, "कामरेड उमानाथ, तुमने जो कुछ कहा, उसमें कहीं जबर्दस्त गलती है—अपने तजुर्बे से मैं इतना कह सकता हूँ, यद्यपि वह गलती मैं नहीं पकड़ सकता। लेकिन अब करोगे क्या?"

"यही तो मेरी समझ में भी नहीं आता। हिन्दू ला में तलाक है नहीं, यह एक और मुसीबत की बात है। कामरेड—मैं सच कहता हूँ कि महालक्ष्मी के सामने जाने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। इतनी नेक, इतनी निरीह—इतनी भोली! मुझे उस पर दुःख होता है। वह अभी तक कुछ नहीं जानती—यह

सब बात उससे कहूँ ! लेकिन उसे बतलाना तो पड़ेगा ही !" और उमानाथ ने एक ठंडी सांस भरी।

३

रात में जब उमानाथ महालक्ष्मी के पास गया, उसका मन भारी था। आज उसे उस परिस्थिति का सामना करना था, जिसकी उसने एक हलकी-सी कल्पना तो कभी-कभी की थी, लेकिन जिसके असली रूप के प्रति उसने जबर्दस्ती अपनी आंखें बन्द कर रक्खी थीं। बौद्धिक प्राणी का उसके भावना-वाले प्राणी के साथ संघर्ष चल रहा था।

उमानाथ और महालक्ष्मी के पलंग अगल-बगल पड़े थे। महालक्ष्मी के पलंग पर सुरेश सो रहा था। उमानाथ चुप अपने पलंग पर लेट रहा। और उस समय महालक्ष्मी ने कमरे में प्रवेश किया। वह उमानाथ के पलंग पर उसके सामने बैठ गई—शायद उमानाथ के पैर दबाने के लिए। उमानाथ ने अपने पैर हटा लिए और वह उठ कर महालक्ष्मी के सामने बैठ गया। उसने आरम्भ किया, "मुझे तुमसे एक खास बात कहनी है !"

जिस स्वर में उमानाथ ने यह बात कही थी, वह कांप रहा था, उसमें एक प्रकार का खोखलापन था, और महालक्ष्मी अपने पति के उस स्वर से परिचित न थी। महालक्ष्मी के दिल को एक ठेस-सी लगी। थोड़ी देर तक मौन अपने स्वामी की ओर देख कर उसने कहा, "कहिए !"

उमानाथ की समझ में न आ रहा था कि किस प्रकार वह बात आरम्भ करे, "लेकिन तुम मुझे वचन दो कि यह बात तुम अपने ही तक रक्खोगी—किसी से इसका जिक्र न करोगी।"

"आप मेरी तरफ़ से निश्चिन्त रहें ! जो कुछ कहना हो कहिए !"

थोड़ी देर और चुप रह कर उमानाथ ने कहा, "देखो, मैंने जर्मनी में दूसरा विवाह कर लिया है !" और वह जैसे महालक्ष्मी के मुख पर अंकित भावों को पढ़ने के लिए रुक गया।

महालक्ष्मी की नज़र उमानाथ के मुख पर गड़ी थी। इस बात को सुन कर वह चौंकी नहीं, उसके मुख पर कोई शिकन नहीं आई—हां उसका मुख थोड़ा-सा पीला अवश्य पड़ गया।

पर उमानाथ महालक्ष्मी के अन्तर को न पढ़ सका। जो कुछ उमानाथ ने कहा था वह इतनी भयानक बात थी कि उससे एकबारगी ही महालक्ष्मी के सारे अस्तित्व में निर्जीवता की जड़ता व्याप गई। ऊपर से सब कुछ वैसा का वैसा बना रहा, पर उसके अन्तर में एक भयानक सूनेपन की निर्जीवता ने अधिकार जमा लिया; और उमानाथ उसके अन्तर में, जो कुछ हुआ, वह नहीं देख सका। उसने मन ही मन सोचा, "कैसी स्त्री है यह, जिसे मेरी इस बात से जरा भी सदमा नहीं हुआ।"

उमानाथ ने फिर कहा, "और मैंने जिस स्त्री से विवाह किया है, उससे मैं प्रेम करता हूं। ऐसी हालत में मैं तुम्हें धोखे में रखना उचित नहीं समझता।"

महालक्ष्मी उठ खड़ी हुई, मौन और आहत। उसके शरीर में मानों रक्त नहीं था, उसके प्राणों में चेतना नहीं थी; उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। बड़ी मुश्किल से अपने पलंग तक गई, और वहां वह गिर पड़ी—बेहोश!

उमानाथ डर गया। महालक्ष्मी की इस मुद्रा को देख कर उसकी समझ में आया कि महालक्ष्मी को कितना बड़ा सदमा पहुंचा। उसने उठ कर महालक्ष्मी को देखा, उसके शरीर को हिलाया-डुलाया। महालक्ष्मी ने आंखें खोल दीं और अपनी पथराई आंखों से उमानाथ को देखा। उमानाथ उसके सामने अपराधी की भांति मौन खड़ा था। महालक्ष्मी ने उठने की कोशिश की, पर उससे उठा न गया। पाटी पकड़ने के लिए उसने हाथ बढ़ाया ताकि वह उसके सहारे उठ सके—और उसका हाथ सोते हुए सुरेश पर पड़ा। एकाएक उसकी चेतना लौट आई; सुरेश को उसने जोर से अपने हृदय से लगा लिया। उमानाथ से उसने कहा, "आप अब सोइए—मैं अच्छी हूं! और मैं किसी से कुछ न कहूंगी!" और उसने जोर से अपनी आंखें बन्द कर लीं।

दूसरे दिन सुबह होते ही उमानाथ ब्रह्मदत्त और कामरेड मारीसन के साथ कानपुर के मिल-एरिया की तरफ़ निकल गया। वहां से वह कामरेड मारीसन के होटल गया।

ब्रह्मदत्त से उसने कहा, "कामरेड ब्रह्मदत्त ! बस इतना ही ! मैं तो कानपुर का मिल-एरिया बहुत बड़ा समझे था। मुझे अफ़सोस है कि मैंने तुम्हें जेल जाने से बेकार ही रोका।" और फिर कुछ रुक कर उसने कहा, "यहां तो बहुत ज्यादा काम करने की ज़रूरत है !"

"जो कुछ है, वह मैंने आपको दिखला दिया। कहिए तो अन्य मज़दूर-नेताओं से आपका परिचय करा दूं।" ब्रह्मदत्त ने मुस्कराते हुए कहा।

"नहीं-नहीं। इसकी कोई ज़रूरत नहीं। बात यह है कि मैं अभी कुछ दिन तक प्रकाश में नहीं आना चाहता। जब आप जेल से लौटिएगा, तभी मैं कानपुर में काम-काज आरम्भ करूंगा। तब तक मैं ज़रा बाहर का भी दौरा कर आऊं ! क्यों कामरेड मारीसन ?"

"हां, मैं भी यही ठीक समझता हूं।"

कुछ सोच कर उमानाथ ने फिर कहा, "मैं समझता हूं कि मेरा कांग्रेस के नेताओं से मिल लेना उचित होगा। जो कुछ हिन्दुस्तान में मैं देख रहा हूं, उससे मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि हिन्दुस्तान की सब से ज़बर्दस्त संस्था कांग्रेस है। और ऐसी हालत में मुझे इस बात का पता लगा लेना ज़रूरी होगा कि हम दोनों के कार्यक्रम में कहां तक समानता है और कहां विषमता है; और कहां तक हम अपने कार्यक्रम में कांग्रेस के सहयोग का फ़ायदा उठा सकते हैं।"

"इसमें क्या शक है ! और मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूं कि अगर हम लोग कांग्रेस के अन्दर रह कर काम कर सकें तो यह ज्यादा अच्छा होगा। हम लोग कांग्रेस की एकत्रित शक्ति को धीरे-धीरे अपनी निजी शक्ति

बना सकते हैं, बड़ी आसानी के साथ। इसके अलावा असलियत तो यह है कि कांग्रेस-ऐसी जबर्दस्त और सुसंगठित संस्था से अलग हो कर काम करना कांग्रेस का विरोध करना समझा जायगा, और इसमें हमारी शक्तियों का अपव्यय होगा, साथ ही सफलता मिलने में देर होगी !" ब्रह्मदत्त ने विश्वास के साथ कहा।

उमानाथ ने गौर से ब्रह्मदत्त को देखा। उसके सामने बैठा हुआ अपढ़ और असंस्कृत ब्रह्मदत्त राजनीति को बड़ी खूबी के साथ अच्छी तरह समझ सकता है—उसने यह अनुभव किया।

ब्रह्मदत्त को न उमानाथ की नज़र का पता था और न उमानाथ की आन्तरिक भावनाओं का। वह कहता जा रहा था, "कांग्रेस के अन्दर रह कर हमें जितनी सुविधाएँ मिल सकती हैं, बाहर रहने पर उतनी सुविधाओं का मिलना असम्भव है। यही नहीं, असुविधाओं के मिलने की सम्भावना अधिक है। ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति के खिलाफ़ सारा देश हमारा साथ देगा सिर्फ़ उसी समय, जब हम कांग्रेसमैन हैं। वर्ना अगर हम सिर्फ़ कम्यूनिस्ट हैं तब हमारा साथ देनेवाला कोई न मिलेगा। और अभी हम अपना पैर इस तरह नहीं जमा पाए हैं कि हम सामूहिक विरोध का सामना कर सकें।"

कामरेड मारीसन से अब न रह गया। वे कांग्रेस का साथ देने से सहमत नहीं थे। उन्होंने कहा, "नहीं कामरेड ब्रह्मदत्त ! मैं आपकी बात मानने को तैयार नहीं। आपने अभी जो बातें कही हैं, सुविधा-धर्म की वकालत की बातें हैं। लेकिन यह सुविधा-धर्म बहुत खतरनाक है। हम कम्यूनिस्टों के कांग्रेस ज्वाइन करने में एक बहुत बड़ा खतरा है; हम लोग बड़ी आसानी से अपने लक्ष्य से गिर जाएँगे, अपने ध्येय को भूल जाएँगे। कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है, और राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता में उतना ही विरोध है, जितना फासीज्म और कम्यूनिज्म में है। राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे में अन्तर्राष्ट्रीयता कभी नहीं पनप सकती—मैं इसका विश्वास दिलाता हूँ। विश्वास और सिद्धान्त—इनके निर्माण और विकास में परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है। सुविधा के लिए

अपनाया जानेवाला कोई भी रूपक धीरे-धीरे अपना अस्तित्व बन सकता है; और इसलिए हमें सुविधा-धर्म से बचना पड़ेगा। हमारा अस्तित्व सचाई, ईमानदारी और साहस पर निर्भर है। इनसे दूर हटना ही हमारा सर्वनाश है। एक समय का कम्यूनिस्ट मुसोलिनी इसी रूपक के कारण आज भयानक फ़ासिस्ट बन गया है।"

लेकिन इस वाद-विवाद में उमानाथ को दिलचस्पी न थी। वह यह सब सुन रहा था, लेकिन समझ कुछ न रहा था। एक अजीब-सी परिस्थिति पैदा हो गई थी और वह यह न जानता था कि वह क्या करे। उसकी तबीअत हो रही थी कि वह कहीं एकान्त में बैठ कर सोचे। यह सब क्या हो गया? यह सब क्या हो रहा है? उसका अस्तित्व ही उसके लिए एक भयानक भार बन रहा था। वह उठ खड़ा हुआ। कामरेड मारीसन से उसने कहा, "कामरेड! इलाहाबाद चल कर जरा कांग्रेसवालों से मिलना चाहता हूं। फिर साथ ही इलाहाबाद भारतवर्ष का सांस्कृतिक और साहित्यिक केन्द्र है—वहां प्रगतिशील लेखक-संघ भी कायम हो सकता है।"

"हां कामरेड! मैं भी यह सोच रहा हूं कि बिना साहित्यिकों को अपने साथ लिए हुए हम अधिक काम नहीं कर सकते। पहले हमें अपने सिद्धान्तों और आदर्शों का प्रचार करना चाहिए, इस प्रचार के बिना सफलता कठिन है!"

"तो फिर कल ही चलें—देर करने से कोई फ़ायदा नहीं!" उमानाथ ने उठते हुए कहा।

५

उमानाथ काफ़ी रात गए घर लौटा—उसे घर आने की हिम्मत न हो रही थी। किस प्रकार वह महालक्ष्मी का सामना करेगा—किस प्रकार वह इस विपत्ति को कुछ दिन के लिए टालेगा?

भोजन कर के जब वह अपने पलंग पर सोने के लिए पहुंचा, उस समय

ग्यारह बज चुके थे। लेकिन महालक्ष्मी उस समय भी जाग रही थी, वह उमानाथ की प्रतीक्षा कर रही थी। उमानाथ चुपचाप, बिना महालक्ष्मी से कुछ बोले, अपने पलंग पर लेट गया। महालक्ष्मी अपने पलंग से उतरी, उमानाथ के पैताने बैठते हुए उसने कहा, "नाथ—क्या आप कल मुझसे नाराज हो गए ?"

महालक्ष्मी के इस प्रश्न से उमानाथ चौंक उठा। वह उठ कर बैठ गया, "क्या कह रही हो ? मैं नाराज किस बात पर होता ? नाराज तो एक तरह से तुम हो सकती थीं।"

"फिर आप मुझसे बोलते क्यों नहीं ? दिन भर आप घर के बाहर रहे—यह क्यों ?"

"देखो—मैंने तुमसे कह दिया है न कि मैंने दूसरा विवाह कर लिया है !"

"तो इससे क्या ? कर लिया तो अच्छा किया। लेकिन आप बहिन को साथ क्यों नहीं लेते आए ? मैं बहिन का स्वागत करती—उसकी सेवा करती।"

"क्यों व्यंग कस रही हो ?"

"मैं व्यंग कसूंगी नाथ—आप पर ! मुझ पर यह पाप न लगाइये। हम हिन्दू-स्त्रियों के लिए सौत कोई नई चीज तो नहीं है, अपना दुर्भाग्य मुझे वहन करना होगा।"

उमानाथ कुछ थोड़ी देर तक महालक्ष्मी को देखता रहा। उसके सामने एक अजीब और दिलचस्प परिस्थिति पैदा हो गई थी। पाश्चात्य विचारों को वह इतनी पूर्णता के साथ अपना चुका था कि उसने इस सौत के मसले पर पहले कभी सोचा ही न था। आज उसे एक हल्का-सा प्रकाश दिखलाई दिया। लेकिन अपनी स्थिति उसके सामने स्वयम् ही साफ़ न थी; उसने कहा, "लेकिन महालक्ष्मी ! मेरी दूसरी पत्नी हिन्दू नहीं है और उसे सौत पर विश्वास नहीं।"

महालक्ष्मी सुन्न रह गई, "तो क्या आप मुझे त्याग देंगे ?" करुण स्वर में उसने पूछा।

उमानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, शायद वह कोई उत्तर दे भी नहीं सकता था। थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद महालक्ष्मी ने फिर कहा, "बोलिए ! नहीं, आप सच नहीं कहना चाहते ! आप मुझे दुखाना नहीं चाहते, लेकिन आप मुझसे घृणा करते हैं। आप मुझे त्याग चुके—बहुत पहले त्याग चुके ! है न ऐसी बात ! मैं आपकी पत्नी नहीं रही। ठीक है, लेकिन आप तो मेरे पति हैं, स्वामी हैं, सब कुछ हैं !" महालक्ष्मी पागल की तरह कह रही थी और उमानाथ सब कुछ समझते हुए, साथ ही कुछ न समझते हुए, सुन रहा था।—"मुझे उसमें सुख है, जिसमें आपको सुख है। आप सुखी रहें, आप अच्छे रहें, आप हँसे-बोलें। आप अपने घर में रहें—मैं तो आपकी दासी हूँ। आप उन्हें बुला लें। जब वह पूछें कि मैं कौन हूँ, तब आप कह दें कि मैं नौकरानी हूँ। और मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं उनकी सेवा करूंगी, उनकी पूजा करूंगी।" यह कहते-कहते महालक्ष्मी ने उमानाथ के पैर पकड़ लिए।

उमानाथ ने बड़ी मुश्किल से महालक्ष्मी से अपने पैर छुड़ाए। जो कुछ महालक्ष्मी ने कहा, उससे उमानाथ की सारी मानवता हिल उठी। उसने कहा, "महालक्ष्मी—मुझे क्षमा करो—मैं पापी हूँ ! लेकिन अभी सोओ—मुझे सोचने-विचारने का समय दो। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ।"

दूसरे दिन सुबह उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ इलाहाबाद के लिए रवाना हो गया।

दसवां परिच्छेद

१

अपनी भावज और भाई के कानपुर चले जाने के बाद प्रभानाथ अपने पिता के साथ अकेला रह गया। गिरफ्तारियां अब जोरों के साथ हो रही थीं, और पण्डित रामनाथ तिवारी कांग्रेसवालों का मुकदमा करने के लिए स्पेशल मैजिस्ट्रेट बना दिए गए थे। वे लोगों को सजाएं दे रहे थे—काफ़ी कड़ी। उन्नाव के नागरिक पंडित रामनाथ तिवारी के मुंह पर ही उनका अपमान करने लगे थे, उन्हें विश्वासघाती और देशद्रोही पुकारते थे। अपने पिता के सम्बन्ध में अपमानजनक बातें प्रभानाथ को सुननी पड़ती थीं, और वह जानता था कि यह अपमान लोग उसके पिता का ही नहीं कर रहे हैं, उसका भी कर रहे हैं, केवल इस कारण कि वह रामनाथ का पुत्र है।

और उस दिन एक ऐसी घटना हो गई जिससे प्रभानाथ का सारा अन्तर हिल उठा। कांग्रेस का जुलूस निकल रहा था और सरकार ने नगर में १४४ धारा लगा दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पुलिस ने जुलूस को रोका, उसे तितर-बितर हो जाने का हुक्म दिया। कांग्रेस के वालंटियरों ने पुलिस का हुक्म मानने से इनकार कर दिया। वे जमीन पर बैठ गए—और अधिकारियों ने लाठी-चार्ज करवाया।

प्रभानाथ उस समय क्लब जा रहा था। लाठी-चार्ज देखने के लिए उसने कुछ दूर पर अपनी कार रोक ली। उस जुलूस में स्त्रियां थीं। लाठी-चार्ज पुरुषों और स्त्रियों पर समान भाव से हुआ। जिस समय प्रभानाथ ने स्त्रियों को पिटते देखा, उसका खून खौल उठा।

प्रभानाथ कार से उतर कर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस के पास गया, "आपके सामने स्त्रियां पिट रही हैं और आप खड़े देख रहे हैं, अपने आदमियों को रोकते तक नहीं!"

सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस प्रभानाथ को अच्छी तरह जानता था। मुस्कराते हुए उसने कहा, "ये स्त्री-पुरुष—ये सब के सब पशु हैं—और पशुओं में कोई भेद-भाव नहीं होता। अगर आपको विश्वास न हो, तो आप अपने पिता से पूछ सकते हैं!" और वह हँस पड़ा।

इस उत्तर से प्रभानाथ तिलमिला उठा। पर वह कुछ बोला नहीं; तेजी से लौटकर वह कार पर बैठा और क्लब न जाकर अपने घर लौट आया।

रामनाथ तिवारी बरामदे में बैठे कागज़-पत्र उलट रहे थे। उन्होंने प्रभा-नाथ को देखते ही बुलाया, "क्यों, तुम तो क्लब गए थे, इतनी जल्दी कैसे लौट आए?"

अन्यमनस्क भाव से प्रभानाथ ने कहा, "जी कुछ तबीअत ठीक नहीं!" और वह अपने पिता के सामने से हटने लगा।

"ज़रा ठहरो! सुना है तुमने—कौशल्या गर्ल्स-स्कूल (कौशल्या प्रभा-नाथ की स्वर्गीया माता का नाम था) की हेड मिस्ट्रेस सावित्री गर्ग ने इस्तीफ़ा दे दिया है। जानते हो क्यों? उसे सूझा है कि वह नेता बने, कांग्रेस की लड़ाई लड़े। और अभी-अभी खबर मिली है कि आजवाले कांग्रेस के जुलूस में वह सब से आगे है।"

"जी हां! और मैंने उसे जुलूस के साथ लाठियों से पिटते भी देखा है!" प्रभानाथ ने रूखे स्वर में कहा।

"क्या कहा? स्त्रियों पर भी लाठियां पड़ रही हैं? यह तो बेजा बात है!" रामनाथ कहते-कहते रुक गए। कुछ सोच कर उन्होंने फिर कहा, "ठीक ही है। जो जैसा करेगा, भोगेगा! नियम और कानून में कोई भेदभाव नहीं होता।"

"पर स्त्रियों पर लाठी चलाना बबुआ! यह तो मानवता का उपहास है। हमारे लिए यह शर्म की बात है!" प्रभानाथ ने कहा।

"चुप रहो! जो कुछ हो रहा है, वह ठीक हो रहा है। सांपिन स्त्री ही

होती है, पर केवल स्त्री होने के कारण तो उसे छोड़ न देना चाहिए। अप-राधी—चाहे वह स्त्री हो, चाहे पुरुष—अपराधी ही है और उसे दण्ड-व्यवस्था स्वीकार करनी पड़ेगी।"

"पर यह तो दण्ड-व्यवस्था नहीं है, यह सरासर अत्याचार है। निहत्थे आदमियों पर लाठी चलाना, यह घोर बर्बरता है। अगर वे आज्ञा नहीं मानते तो उन्हें पकड़ो, सजा दो, जेल भेज दो। लेकिन लाठी से उनको मारना, उनके हाथ-पैर तोड़ देना, उन्हें अपाहिज बना देना—यह भयानक बर्बरता है!" प्रभानाथ यह कहते-कहते उत्तेजित हो उठा।

रामनाथ ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, उन्होंने केवल प्रभानाथ को गौर से देखा। कुछ देर तक एकटक वे उसी प्रकार प्रभानाथ को देखते रहे, फिर धीरे से उन्होंने कुछ गम्भीरता के साथ कहा, "हां प्रभा! यह बर्ब-रता है, मैं इस बात से इनकार नहीं करता। लेकिन यह भी याद रखना कि शक्ति बर्बर होती है। कोमलता स्त्री के हिस्से की चीज है, पुरुष के हिस्से की नहीं। बर्बरता के अभाव ने ही हिन्दुस्तान को गुलाम बनाया है—बर्बरता पुरुष का जन्मसिद्ध अधिकार है!"

कुछ रुक कर रामनाथ ने फिर कहा, "ये युद्ध—यह रक्तपात! यह सब बर्बरता की चीजें हैं, और यही प्राकृतिक हैं। अनादि काल से ये होते रहे हैं, अनन्त काल तक ये होते रहेंगे। और यह अहिंसा की लड़ाई—यह हमारी—हम हिन्दुस्तानियों की कायरता और नपुंसकता का ढोंग है—यह सब एक स्वांग है। याद रखना, लोहे को लोहा ही काट सकता है।"

रामनाथ मुस्कराए, "खैर छोड़ो इस बात को! सवाल मेरे सामने यह है कि स्कूल में नई हेड मिस्ट्रेस की जरूरत होगी।"

"तो फिर एक विज्ञापन निकलवा दूं?" प्रभानाथ ने पूछा।

"हां, और एक हफ्ते के अन्दर ही दूसरी हेड मिस्ट्रेस आ जानी चाहिए।"

७

प्रभानाथ जब अपने पिता के पास से अपने कमरे में गया, उसके मस्तिष्क में उसके पिता का केवल एक वाक्य था, "लोहे को लोहा ही काट सकता है !"

उसी दिन सुबह उसे वीणा का पत्र मिला था कि वह युक्त प्रान्त में आकर कुछ काम करना चाहती है। वीणा के मतानुसार क्रान्तिकारी मूवमेण्ट को देश के कोने-कोने में फैलना चाहिए। उसने भी अहिंसा के संग्राम के प्रति कांग्रेस से अपना मतभेद प्रकट किया था।

एकाएक प्रभानाथ के मन में प्रश्न उठा, "अगर स्कूल की हेड मिस्ट्रेस होकर वीणा यहां आ जाय तो कैसी रहे?"

उसी समय प्रभानाथ ने वीणा के पत्र का उत्तर लिखा। उसने उन्नाव के स्कूल की स्थिति समझाते हुए वीणा को अपनी अर्ज़ी भेजने का आदेश दिया। उसी दिन शाम के समय उसने हेड मिस्ट्रेस के लिए देश के विभिन्न पत्रों में विज्ञापन भेज दिया।

चौथे दिन वीणा की अर्ज़ी आ गई और आठवें दिन वीणा कौशल्या गर्ल्स स्कूल की प्रधानाध्यापिका होकर उन्नाव पहुंच गई।

वीणा को रिसीव करने प्रभानाथ स्टेशन गया। ट्रेन से उतरते ही वीणा ने प्रभानाथ को आदर के साथ प्रणाम किया, और मुस्कराते हुए उसने कहा, "मेरी साधना सफल हुई, मेरे आराध्य देव ने मुझे याद तो किया !"

रास्ते में प्रभानाथ ने वीणा से कहा, "तुम मेरे पिता से जरा सतर्क रहना। स्वभाव के वे कुछ कड़े हैं, अपना विरोध उन्हें सह्य नहीं। फिर भी आदमी वे नेक हैं। उनके व्यवहार से तुम प्रसन्न ही होओगी।"

"मैं भी उनको प्रसन्न रखने का प्रयत्न करूंगी, क्योंकि वे आपके पिता हैं!" वीणा ने उत्तर दिया।

जिस समय वीणा घर पर पहुँची, रामनाथ तिवारी भोजन कर के सोने वाले कमरे में लेट चुके थे। वीणा का आगमन सुन कर वे पलंग से उठ आए। उन्हें आशा थी कि वीणा एक फ़ैशनेबिल और सुन्दर स्त्री होगी, पर अपने सामने एक दुबली-पतली, अति साधारण लड़की को देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ। लेकिन अपने मनोभावों को दबाते हुए उन्होंने कहा, "इन्हें रास्ते में कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई? इन्हें मेहमानवाले घर में ठहरा दो और जब तक कोई मकान न मिल जाय, तब तक ये वहीं रहें। और देखो—इनके भोजन आदि का भी प्रबन्ध करा देना।" यह कह कर रामनाथ वापस चले गए।

"यदि आप न भी बताते तो उन्हें देख कर ही मैं बता देती कि ये आपके पिता हैं," वीणा ने हँसते हुए कहा, "शिष्ट, गम्भीर और शान्त!"

शाम के समय वीणा रामनाथ तिवारी के सामने उपस्थित हुई, प्रभानाथ भी वहां मौजूद था। रामनाथ ने पूछा, "क्या तुम्हें राजनीति से कोई रुचि है?"

प्रभानाथ ने अपना सर हिलाया और वीणा समझ गई। उसने कहा, "जी नहीं!"

"यह तो बुरी बात है! समय की हलचल के प्रति अरुचि होना मनुष्य में विकास की कमी का द्योतक हुआ करता है। फिर भी तुम स्त्री हो और स्त्री का क्षेत्र राजनीति नहीं है—होना भी नहीं चाहिए।" कुछ रुक कर रामनाथ ने फिर कहा, "तुम्हारे पहले जो हेड मिस्ट्रेस थीं, वह जेल में हैं—कांग्रेस की लड़ाई में उन्होंने सहयोग किया था और मैंने स्वयम् उन्हें तीन महीने की सजा दी। मैं कहता हूँ कि उन्होंने बहुत बड़ी बेवकूफ़ी की। राजनीति और खास तौर से कांग्रेस की राजनीति, शोहदों की चीज है। तुम सावधान रहना—भावना में बह जाना स्त्री के लिए बड़ा आसान होता है। तुम्हें कांग्रेस के प्रति कोई सहानुभूति तो नहीं है?"

"जी नहीं! मुझे कांग्रेस पर ही विश्वास नहीं है और न अहिंसा पर! अहिंसा अप्राकृतिक सिद्धान्त है।"

रामनाथ ने विजय की मुस्कराहट के साथ प्रभानाथ को देखा, "सुना प्रभा ! यह भी कह रही हैं कि अहिंसा गलत सिद्धान्त है—पागलपन का सपना है !"

प्रभानाथ मन ही मन घबरा रहा था कि कहीं यह बातचीत अधिक न बढ़े, लेकिन उसी समय मुख्तार आ गया और रामनाथ ने वीणा और प्रभानाथ को विदा किया। प्रभानाथ ने वहां से हट कर वीणा से कहा, "वीणा ! दद्दुआ से बातें करते समय तुम यह न भूल जाना कि तुम एक बहुत ही बुद्धिमान और सूक्ष्म दृष्टिवाले आदमी से बातें कर रही हो। हमारे प्रान्त में अभी क्रान्तिकारी-दल जोर पर नहीं है, नहीं तो तुम इस बात से पकड़ जातीं।"

३

वीणा ने स्कूल का चार्ज ले लिया। चौथे दिन कानपुर से दो नवयुवक वीणा से मिलने आए। इन दोनों को कलकत्ता से वीणा के उन्नाव में आ जाने की सूचना मिल गई थी।

जिस समय ये दोनों नवयुवक आए, वीणा अपने कमरे में बैठी चाय पी रही थी। उस दिन जोर की वर्षा हो गई थी और रामनाथ तिवारी घर से बाहर नहीं निकले थे। बरामदे में आरामकुर्सी पर लेटे हुए वे गीता पढ़ रहे थे। इन दोनों युवकों को देख कर उन्होंने पूछा, "आप लोग किसे ढूंढ़ रहे हैं ?"

"हम लोग श्रीवीणा मुकर्जी से मिलने आए हैं !" एक ने उत्तर दिया।

"कलकत्ता से आए अभी चार दिन भी नहीं हुए और लोगों ने चक्कर लगाना शुरू कर दिया," रामनाथ ने व्यंगात्मक मुस्कराहट के साथ कहा। फिर वे जरा सँभल कर बैठ गए। उन दोनों को गौर से देख कर उन्होंने पूछा, "आप लोग वीणा के कौन हैं ?"

वे दोनों रामनाथ के इस प्रश्न के लिए तैयार न थे। उनमें से एक ने

झल्ला कर कहा, "हम लोग कोई भी हों—लेकिन आप को ऐसे प्रश्न करने का क्या अधिकार है?"

रामनाथ इस बात को सुनते ही तन कर खड़े हो गए। "मेरा अधिकार जानना चाहते हो? बदनसिंह!"

"सरकार!" कहता हुआ एक लम्बा-तगड़ा आदमी वहां हाजिर हो गया।

"इन दोनों को फाटक के बाहर निकाल कर यह बतला दो कि यह बंगला मेरा है, और मैं कौन हूं!" और रामनाथ तिवारी ने उन दोनों युवकों की ओर मुतास्िब हो कर कहा, "आप लोग इस आदमी से सब कुछ समझ लीजियेगा।"

वे दोनों नवयुवक, इसके पहले कि बदनसिंह कोई कारंवाई करे, वहां से खुद चल दिये। फाटक पर उनकी प्रभानाथ से मुलाकात हो गई, प्रभानाथ घूम कर लौट रहा था। उन नवयुवकों में से एक ने बढ़ कर प्रभानाथ से कहा, "आप भी शायद वीणा मुकर्जी से मिलने जा रहे हैं?"

"जी हां!" प्रभानाथ ने कहा।

"जरा सावधान रहिएगा। एक खबीस बूढ़ा वहां बैठा है। हम लोगों को तो उसने निकाल बाहर किया, अब आपकी बारी है। तो हम लोग पहले ही से आपको होशियार किए देते हैं!" मुस्कराते हुए दूसरे ने कहा।

"जी—वह मेरे पिता हैं!" हंसते हुए प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "और उन्होंने जो आप का अपमान किया है, उसके लिए मैं आप लोगों से माफ़ी मांगे लेता हूं। तो वीणादेवी से आप लोगों की मुलाकात हुई?"

"नहीं! आपके पिता अनाप-शनाप सवाल करने लगे, जिन्हें करने का उन्हें कोई अधिकार न था। और हमने जब उनको उनका अधिकार समझाने की कोशिश की, तो वे बिगड़ खड़े हुए।"

"अच्छा, तो अगले रविवार को आप लोग कानपुर में दयानाथजी के बंगले पर शाम को छः बजे वीणा मुकर्जी से मिल सकते हैं!" और यह कह कर प्रभानाथ फाटक के अन्दर चला गया।

जिस समय प्रभानाथ बँगले में पहुँचा, वीणा चाय समाप्त कर के रामनाथ तिवारी से बात कर रही थी। रामनाथ कह रहे थे, "आखिर ये लोग थे कौन? मैंने उनका नाम नहीं पूछा, और नाम पूछने की मैंने कोई जरूरत नहीं समझी। पर वे लोग तुम से परिचित जरूर थे। लेकिन उनमें से कोई भी बंगाली न था।"

वीणा ने बात बनाई, "जी, मेरे भाई के कुछ दोस्त कानपुर में रहते हैं। बहुत सम्भव है, मेरे भाई ने उन्हें मुझसे मिल लेने को लिख दिया हो!"

"हो सकता है! तो वे मुझे बतला देते!" रामनाथ मुस्कराए, "देखो, मैं पुराने युग का आदमी हूँ—कम से कम लोग तो मुझे पुराने युग का ही समझते हैं। ऐसी हालत में यह स्वाभाविक ही था कि मैं उनसे पूछ-ताछ करता। पर वे लोग इतने अधिक अशिष्ट क्यों हो गए? उन्हें यह समझ लेना चाहिए था कि जिस आदमी से वे बात कर रहे हैं, वह स्वामी है—कर्ता है। मेरे ही मकान में कोई आदमी आकर मेरा अपमान करे—इसको मैं किसी भी हालत में बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

प्रभानाथ को देख कर रामनाथ ने बात का रुख बदला, "क्यों प्रभा! इनके मकान का कोई इन्तजाम हुआ?"

"अभी तो नहीं हुआ। कोई अच्छा मकान मिल ही नहीं रहा है।"

"तो फिर रहने दो। अभी ये यहां हैं—क्यों, तुम्हें यहां कोई कष्ट तो नहीं है?" रामनाथ ने वीणा की ओर देख कर कहा।

"जी नहीं! केवल भोजन मैं बनाना चाहती हूं; यहां का भोजन मुझे रुचता नहीं।"

"हां-हां—पहले ही कह दिया होता। इसका प्रबन्ध हो जायगा। देखो प्रभा! यह इतनी बड़ी कोठी पड़ी है, ये यहीं रह सकती हैं, मकान ढूंढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं!" इस बार रामनाथ ने फिर वीणा से कहा, "लेकिन एक शर्त है! तुम मुझे रोज अखबार पढ़ कर सुनाया करोगी!

मेरी आंखें कमजोर हो गई हैं, पढ़ने में तकलीफ होती है। बूढ़ा हो गया हूं न!" और रामनाथ मुस्कराए!

"जी हां—आपकी सेवा करना मैं अपना सौभाग्य समझूंगी!" वीणा ने कहा।

रामनाथ उठ खड़े हुए, "तुम्हारे स्कूल का समय हो रहा है। चलूं, मैं भी स्नान करूं चल कर!"

रामनाथ के जाने के बाद थोड़ी देर तक प्रभानाथ और वीणा मौन बैठे रहे। इस मौन को प्रभानाथ ने तोड़ा, "वीणा—इस मकान में तुम्हारा रहना ठीक न होगा—तुम्हारे मिलनेवालों से बबुआ का साक्षात्कार होना स्वाभाविक ही है!"

"लेकिन यहां मुझसे मिलनेवाला कोई नहीं है!"

"तुम गलत समझती हो—आज दो आदमी आए थे—और लोग भी आ सकते हैं!"

वीणा प्रभानाथ के मुख को एकटक देख रही थी, "मैं उन लोगों से नहीं मिलना चाहती—लेकिन—लेकिन—" उसने एक ठंडी सांस ली, "वे मेरे मिलनेवाले जरूर हैं; और मेरे मिलनेवालों की संख्या घटने की जगह बढ़ेगी ही। आप ही बतलाइए, मैं क्या करूं?"

प्रभानाथ ने कुछ सोच कर कहा, "यह तो वास्तव में बड़ी टेढ़ी समस्या है। इसका एक ही उपाय समझ में आता है—वे आप से यहां न मिलने आवें, बल्कि आप कानपुर में उनसे मिलें। फिर कार्यक्षेत्र कानपुर ही है।"

"और कानपुर यहां से दूर भी नहीं है!" वीणा ने कहा।

"हां। उन दोनों सज्जनों से मैंने कह दिया है कि रविवार के दिन वे आप से कानपुर में मिल सकते हैं। बड़के भइया वहीं रहते हैं; वे तो जेल में हैं, लेकिन बड़की भौजी, मझले भइया और मझली भौजी, ये सब वहां हैं। उनसे मिलने के लिए रविवार के दिन आप मेरे साथ चलें। वहां तै किया जायगा कि किस तरह काम आगे बढ़े।'

४

प्रभानाथ ने बाकायदे दीक्षा ले ली। जिस समय उसने दीक्षा ली थी, वीणा वहीं मौजूद थी। दीक्षा लेने के बाद जब प्रभानाथ वीणा के साथ कानपुर से वापस लौट रहा था, वीणा ने कहा, "आप का हठ पूरा हुआ, लेकिन न जाने क्यों मैं प्रसन्न नहीं हूं! मैं जानती हूं कि मेरे ही कारण आप ने यह कांटोंवाला मार्ग अपनाया है।"

शाम को प्रभानाथ क्लब चला गया, वीणा रामनाथ तिवारी को उस दिन का लीडर सुनाने लगी। अखबार समाप्त हो जाने पर रामनाथ ने वीणा से पूछा, "तो तुम कलकत्ता से आ रही हो? वहां कांग्रेस का कैसा जोर है?"

"अधिक नहीं।" दबी जबान से वीणा ने कहा।

"क्यों? बड़े ताज्जुब की बात है। जिस प्रान्त ने राजनीति को जन्म दिया, जिस प्रान्त ने आन्दोलनों को देश में आरम्भ किया, उस प्रान्त में आज इतनी शिथिलता क्यों?"

"मैं नहीं जानती!" वीणा ने इस विषय को टालने की कोशिश की।

लेकिन पण्डित रामनाथ तिवारी ने यह बात आरम्भ की थी वीणा की बात सुनने के लिए नहीं, वरन् अपनी बात कहने के लिए, "तो सुनो! भूख और बेकारी बंगाल में भी उतनी ही है, जितनी यहां पर, लेकिन एक बात वहां पर नहीं है—वह है चरित्र! और चरित्र के अभाव के कारण वहां साहस का भी अभाव है। बंगाली रो सकते हैं, चिल्ला सकते हैं, कह सकते हैं—पर कर नहीं सकते। त्याग और आत्म-बलिदान—शायद इन बातों का उनमें अभाव है।"

वीणा को बंगालियों पर यह प्रहार बहुत बुरा लगा। वह तिलमिला उठी? "वह कर सकते हैं—इतना कर सकते हैं जितना किसी भी प्रान्त का आदमी नहीं कर सकता। बंगाल के नवयुवकों के कारनामे देख कर आप वंग

रह जायेंगे। उनमें क्रान्ति की एक भावना भर गई है। गोलियां चलती हैं, कितने ही आदमी रोज मरते हैं। ब्रिटिश-सत्ता का अगर कोई मुकाबला कर रहा है तो वह हैं बंगाल के क्रान्तिकारी। अखबारों में इसका जिक्र नहीं होता—इसलिए आप यह सब जान नहीं पाते।"

रामनाथ ने हंसते हुए कहा, "शाबाश! लेकिन इन क्रान्तिकारियों के प्रति तुम्हारी सहानुभूति देख कर मुझे डर लगता है।" फिर थोड़ा-सा गम्भीर होकर उन्होंने कहा, "हां, मैंने बहुत कुछ पढ़ा है—उससे भी अधिक सुना है। पर इस तरह मरना आत्म-हत्या का दूसरा रूप ही है न! बेकार और निराश आदमी आत्महत्या करना चाहता है; रेल से न कट कर, गले में फांसी न लगा कर, नदी में न डूब कर वह पुलिस की गोली का शिकार बनता है। यहां भी चरित्र का अभाव ही है! इसके अलावा, क्रान्तिकारी युद्ध नहीं करता—वह हत्या करता—है!"

वीणा ने जबर्दस्ती अपने को इस बात का उत्तर देने से रोका। रामनाथ ने कुछ रुक कर फिर कहा, "और क्रान्तिकारियों की जितनी गिरफ्तारियां बंगाल में होती हैं, उतनी और कहीं नहीं होतीं। यहां भी चरित्र का ही अभाव है। गिरफ्तारियां होने के माने हैं भेद का खुलना। अब सवाल यह है कि यह भेद कैसे और क्यों खुलते हैं? उत्तर स्पष्ट है; उन लोगों में चरित्रहीन और बेईमान लोग घुसे हुए हैं जो पैसे के लिए सब कुछ कर सकते हैं। पैसे के लिए वे अपने को बेच सकते हैं, अपने मित्रों की हत्या करवा सकते हैं। नहीं, यह सब बड़ा गलत है, बड़ा दयनीय है!"

"फिर ठीक क्या है?" वीणा ने पूछा।

"मैं क्या बतलाऊं? शायद ठीक वही है जो कुछ हो रहा है। मैं यह कह सकता हूं कि गलती कहां है, पर ठीक क्या है, यह मैं नहीं बतला सकता। अगर यही बतला सकता तो कृष्ण, बुद्ध, ईसा—इन सब से ऊपर न उठ जाता? आखिर ये कृष्ण, बुद्ध, ईसा—यही कब बतला सके कि ठीक क्या है? इन्होंने किया क्या? सिवा इसके कि दुनिया की उलझनों पर अपना

मत प्रकट करके, अपना एक नया रास्ता और बतला कर एक उलझन और बढ़ा दी। कार्ल-मार्क्स ने लिखा और लेनिन ने किया––परिणाम? रूस में भयानक रक्तपात! और यहां गांधी ने एक मत बतलाया––और परिणाम? जेल––गिरफ्तारियां! पर वास्तव में क्या होना चाहिए, जिससे सब सुखी हो सकें, जो सब की उलझनों का हल हो? कोई नहीं बतला सका! आखिर होगा क्या?"

वीणा गौर से तिवारीजी की बातों को सुन रही थी। उसे यह खयाल न था कि देहात में रहनेवाला आदमी इतना सोच सकता है, इतना समझ सकता है! और तिवारीजी के तर्क? उनमें गम्भीरता थी, उनमें ईमानदारी थी, उनमें सार था।

रामनाथ कहते ही गए, रुके नहीं; मानों वे एक अरसे से किसी सुननेवाले को ढूंढ़ रहे थे और उस दिन उन्हें अनायास ही एक सुननेवाला मिल गया, "होगा क्या? और इसके पहले हमें यह तै कर लेना पड़ेगा कि होना क्या चाहिए! हम असन्तुष्ट हैं! क्यों? क्योंकि हमें रोटी नहीं मिलती; हमें कपड़ा नहीं मिलता, हमारे पास रहने की जगह नहीं है। हममें से हरेक अभाव से पीड़ित है! और यह अभाव क्यों? दुनिया में इतना अन्न पैदा होता है कि दुनिया की जितनी आबादी है, उससे चौगुनी आबादी भरपेट भोजन कर सकती है। इतना वस्त्र दुनिया में बनता है कि सब आदमी बड़े मजे में अपना तन ढक सकते हैं। और यह सारा धरातल हमारे रहने के लिए मौजूद है। फिर यह अभाव क्यों?" तिवारीजी ने वीणा की ओर देखा।

पर वीणा ने कोई उत्तर नहीं दिया, और उत्तर न दे कर वीणा ने ठीक ही किया, क्योंकि तिवारीजी ने यह प्रश्न वीणा से नहीं पूछा था। यह प्रश्न उन्होंने अपने से पूछा था। तिवारीजी ने उत्तर भी दिया, "यह केवल इसलिए कि विषमता ही प्रकृति का नियम है। हम सब एक प्रकार की पाशविकता लिये हुए हैं; हम सब में दूसरे को उत्पीड़ित करने की दबी हुई मनोवृत्ति है, जो समय-समय पर प्रकट होकर मानवता के विकास में भयानक बाधा बन कर

खड़ी हो जाती है। हममें हिंसा है, और इस हिंसा को हम अभी तक नहीं छोड़ सके। और क्या हम इस हिंसा को छोड़ भी सकते हैं? हमारी हिंसा-वाली मनोवृत्ति हमें दूसरों की हिंसा से बचने को प्रेरित करती रहती है। और इसीलिए हम धन इकट्ठा करते हैं, सम्पत्ति बढ़ाते हैं और इस धन-सम्पत्ति के रूप में दुनिया की सारी वस्तुओं को बांध कर हम दूसरों को उन वस्तुओं का उपभोग नहीं करने देते! है न ऐसा?"

"तो हो क्या?" वीणा ने पूछा।

तिवारीजी हँस पड़े, "तो हो क्या?" यही प्रश्न मेरे सामने भी है। और सब कुछ सोच-समझ कर मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि कुछ भी न हो। दुनिया जिस रफ्तार से चलती है, चले। लोग भूखों मरते हैं—मरें। तुम सोशलिज्म-सोशलिज्म चिल्लाते हो; पर वहां भी तो तुम लोगों की जान ही लेते हो! मनुष्य के प्राणों का मूल्य ही क्या है? एक महायुद्ध—एक महामारी! लाखों-करोड़ों आदमी मर जाते हैं। और उन मरनेवालों में कुछ ऐसे भी हो सकते हैं, जो अपने को दुनिया का कर्ता—विधाता समझते रहे हों। आखिर उनके प्राणों का मूल्य क्या है? तुम सुधार करनेवालों से पूछो तो कि क्या वे इतने रक्तपात, इतनी हत्या, इतने परिश्रम के बाद भी इस विषमता को, इस उत्पीड़न को नष्ट कर सकेंगे?"

"वे तो ऐसा ही समझते हैं!" वीणा ने कहा।

"हां, वे ऐसा ही समझते हैं, लेकिन वे गलत समझते हैं! यह उत्पीड़न तब तक कायम रहेगा, जब तक लोग उत्पीड़ित होने के लिए तैयार रहेंगे, और जन-समुदाय उत्पीड़ित होने के लिए तैयार अवश्य रहेगा। भेड़-बकरियों की तरह पीछे-पीछे चलनेवाले आदमी जब तक दुनिया में मौजूद हैं, तब तक उत्पीड़न होता ही रहेगा, वह रुकेगा नहीं।"

१

वीणा के प्रभाव में आ जाने के बाद कानपुर क्रान्तिकारियों का प्रधान केन्द्र बन गया। साहसी नवयुवक एक दल में बंध कर देश की स्वाधीनता के

लिए युद्ध करने को तैयार होने लगे । इस दल का संचालन करने के लिए बाहर से भी लोग आ जाया करते थे ।

और प्रभानाथ ने देखा कि उसके दल के सब सदस्य अजीब तरह के आदमी हैं—अपनी-अपनी विशेषता लिये हुए । उनमें से कुछ तो ऐसे थे जो अंधकार के गर्भ से निकलकर आते थे और फिर वहीं लोप हो जाते थे । न उनका पता था, न ठिकाना । प्रभानाथ ने उस दल में एक और खास बात देखी—उस दल का न कोई खास ध्येय था और न कोई खास कार्यक्रम ।

उस दिन एक बैठक हुई । कार्यक्रम का अभाव वहां एकत्रित प्रत्येक व्यक्ति को अखर रहा था । प्रभानाथ ने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि हम लोग क्या करने को इकट्ठा होते हैं । हमें ब्रिटिश-साम्राज्य से लड़ना है, हमें देश को गुलामी से मुक्त करना है, हमें अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से निकाल बाहर करना है—लेकिन किस तरह ? हमारे सामने कोई कार्यक्रम ही नहीं है । आखिर हमें करना क्या होगा ?"

सामने बैठे हुए एक युवक ने, जिसे वह केवल सरदार के नाम से जानता था, और जो उन लोगों में एक था जो अंधकार में रहते थे, लेकिन फिर भी जो कानपुर की पार्टी का मुखिया माना जाता था, कहा, "अभी जल्दी क्या है ? हमें तो अभी बहुत बड़ी तैयारी करनी है । हमें चाहिए कि हम अपनी ताकत बढ़ाते जायें। फिर एक दिन ऐसा आ जायगा, जब हम अंग्रेजों का हिन्दुस्तान में रहना असम्भव कर देंगे—जब अंग्रेज लोग विलायत से हिन्दुस्तान आने के नाम पर थर-थर कांपेंगे ।"

"लेकिन यह अंगरेजी फौज ! यह आपको यह सब करने देगी ?" प्रभानाथ ने पूछा ।

मुस्कराते हुए उस युवक ने उत्तर दिया, "अंग्रेजी फौज का सवाल ही नहीं उठता । अकेले फौज के बल पर तो ब्रिटिश-साम्राज्य हिन्दुस्तान में कायम नहीं रह सकता । फौजी शासन दो-चार दिन तक हिन्दुस्तान के दो-चार स्थानों में भले ही कायम रह जाय, लेकिन अनन्तकाल के लिए समस्त

हिन्दुस्तान पर यह फौजी शासन असम्भव है । ब्रिटिश-साम्राज्य को हिन्दुस्तान के साथ समझौता करना पड़ेगा जैसा आयर्लैंड में हुआ है ।"

"मैं यह मानता हूँ !" एक दूसरे युवक ने कहा, "लेकिन मेरा कहना है कि सब की एक हद होती है। वह जोश, वह भावना, वह बलिदान, जिसे लेकर हम लोग इस मार्ग पर अग्रसर हुए हैं—वह सब अनन्त और अक्षय तो नहीं है । मैं समझता हूँ कि हमारे लिए यही उपयुक्त समय है, जब हम अपना काम आरम्भ करें । इतना बड़ा मूवमेण्ट चल रहा है, जनता की सहानुभूति हमें मिल जायगी । लेकिन मैं देखता हूँ कि हमारी तैयारी नहीं के बराबर है—हम अपना काम ही नहीं आरम्भ कर सकते ।"

"हां—हम अपना काम ही नहीं आरम्भ कर सकते ।" सरदार ने उस युवक की बात दुहराई, "और यह इसलिए कि हम तैयार नहीं हैं। लेकिन तैयारी के लिए आवश्यकता है धन की !"

"यह धन आवे कहां से ?" वीणा ने पूछा, "दूसरी संस्थाओं को लाखों रुपयों का चन्दा मिल जाया करता है, लेकिन हम तो चन्दा भी नहीं मांग सकते ! फिर इस दल के प्रायः सभी लोग मध्य-वर्ग के हैं—वे जितना रुपया दे सकते हैं, देते हैं । पर उतना रुपया तो हमारी जरूरतों का हजारवां हिस्सा भी नहीं पूरा कर सकता ! सब कुछ करने और सोचने के बाद यही सवाल हमारे सामने रह जाता है—"यह धन आवे कहां से और कैसे ?"

"डाका डाल कर !" गम्भीरतापूर्वक सरदार ने कहा, "हमारे दल की सारी बुनियाद हिंसा और बल पर है, उसी हिंसा और बल का हमें सहारा लेना होगा । हमें जर्मनी और जापान से शस्त्रास्त्र मंगाने हैं, उनके दाम तो हमें देने ही होंगे । इसके अलावा हमारे दल के कितने ही लोग बम बनाने का काम जानते हैं और हमें बम बनाने की सामग्री खरीदनी है !"

"लेकिन यह डाका किस पर डाला जाय ?" एक और युवक ने पूछा ।

"कानपुर के धनी व्यापारियों पर !" और मैं तो इन्हें डाका भी नहीं

कहूंगा ! यह तो जबर्दस्ती चन्दा वसूल करना है। दिन-दहाड़े अपनी पिस्तौलों के बल पर हमें यह चन्दा वसूल करना होगा। और इस काम के लिए हमें ज़रूरत होगी एक अच्छी कार की, एक अच्छे ड्राइवर की, चार आदमियों की, जिनके चेहरों पर नकाबें होंगी, और चार पिस्तौलों की।"

थोड़ी देर रुक कर सरदार ने फिर कहा, "जहां तक कार का सवाल है, वह हम रास्ते में किसी की अच्छी कार को हथिया सकते हैं; नकाबें मैं साथ लेता आया हूं, पिस्तौलें हमारे पास हैं। अब चार आदमियों की और एक अच्छे ड्राइवर की आवश्यकता है।"

"हम तीस आदमी हैं—आप चार को चुन सकते हैं" एक युवक ने कहा।

"आप लोगों में से मुझे सिर्फ़ तीन आदमी चाहिए, चौथा मैं हूं।" सरदार ने उत्तर दिया।

तीस आदमियों के नाम चिट्ठी डाली गई, तीन आदमियों के नाम निकल आने पर सरदार ने कहा, "और ड्राइवर—यह टेढ़ा सवाल है !"

"मैं हूं !" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

इस "मैं हूं" को सुन कर वीणा चौंक उठी। उसने कहा, "मिस्टर प्रभानाथ, यह बहुत बड़े खतरे का काम है। बीच शहर में, भरे हुए रास्तों पर अधिक से अधिक स्पीड से आपको कार चलानी पड़ेगी ! शायद यह आपसे न हो सकेगा !"

"ज़रूर हो सकेगा ! और इसका प्रमाण मैं सफलतापूर्वक इस काम को करके दूंगा !" प्रभानाथ ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

६

कानपुर के एलफ़िन्स्टन सिनेमा के सामने जब प्रभानाथ पहुंचा, उस समय सात बज चुके थे। सिनेमा हो रहा था और बाहर माल रोड पर इक्का-

दुक्का आदमी चल रहे थे। प्रभानाथ ने मोटरकारों के झुण्ड के पास जाकर इधर-उधर देखा, कहीं कोई न था। मोटरों के ड्राइवर या तो मोटरों में पड़े सो रहे थे या टिकट लेकर वे भी सिनेमा में बैठे थे।

उन मोटरों में से प्रभानाथ ने एक चुनी। वह एक बड़ी-सी स्टूडीबेकर कार थी। प्रभानाथ ने फिर एक बार अपने चारों ओर देखा, कहीं कोई न था। वह कार पर बैठ गया। सौभाग्यवश कार में चाबी नहीं लगी थी, उसने कार स्टार्ट की और चल दिया। नहर के पुल के पास उसके चारों साथी एक पेड़ के नीचे खड़े उसका इंतजार कर रहे थे। उन लोगों को उसने कार पर बिठलाया—और फिर वह जनरलगंज पहुंचा। कार के अन्दर ही उन लोगों ने अपनी नकावें पहन लीं।

लाला नैनसुखदास का फ़र्म थोक कपड़े के व्यापार का प्रमुख फ़र्म था—और उनकी हैसियत लाखों की समझी जाती थी। उस दूकान के सामने कार रुकी। चारों आदमी कार से उतर कर दूकान में घुस गए—किसी ने इस पर ध्यान भी नहीं दिया।

दो आदमी दरवाजे पर पिस्तौल निकाल कर खड़े हो गए और दो मुनीम के पास पहुंचे। सरदार ने पिस्तौल तान कर मुनीम से कहा, "पांच हजार रुपये अभी चाहिए—एकदम!"

मुनीम उस समय रोकड़ लिख रहा था—रोकड़िया भी वहीं बैठा था। उसने सर उठा कर देखा—पिस्तौल देख कर वह सहम गया, उसकी घिग्घी बंध गई।

"जल्दी करो! नहीं तो..." सरदार ने पिस्तौल की नली मुनीम के मत्थे से लगा दी।

मुनीम ने रोकड़िए की तरफ़ देखा, वह कांप रहा था। रोकड़िए ने चाबी निकाल कर तिजोरी के पास रख दी। सरदार ने अपने साथी से कहा, "तिजोरी से पांच हजार रुपए निकालो—मैं इन लोगों को संभाले हुए हूं।" और

उसी समय उसने मुनीम तथा रोकड़िये की तरफ़ मुखातिब होकर कहा, "अगर एक आवाज भी निकाली, तो गोली मत्थे के अन्दर घुस जायगी ।"

तिजोरी खोल कर सरदार के साथी ने पांच हजार रूपए निकाल लिए। रूपया ले चुकने के बाद सरदार ने अपने साथी से कहा, "तुम कार पर चलो और इंजन स्टार्ट कर दो—मैं पीछे-पीछे आ रहा हूं । कार स्टार्ट कर के हार्न देना, तब तक मैं इन लोगों को सँभाले हूं कि शोर-गुल न करें ।"

तीनों युवक कार पर बैठ गए और प्रभानाथ ने कार स्टार्ट कर दी । हार्न सुनते ही सरदार तेजी के साथ दूकान से निकल कर कार पर बैठ गया और उसके बैठते ही कार चल दी ।

कार के चलते ही मुनीम और रोकड़िया "हाय लुट गए—डाका पड़ गया—पकड़ो !" चिल्लाते हुए दूकान के बाहर निकले । इस शोर-गुल से भीड़ इकट्ठा होने लगी । जब तक लोग सुनें कि क्या हुआ, पूरी बात समझें और सोचें कि क्या किया जाय, तब तक कार मेस्टन रोड पार कर के माल रोड पर घूम पड़ी थी ।

क्वींस पार्क के पीछे किले के तरफ़ कार रोक दी गई । पांचों आदमी कार से उतर पड़े—माल रोड की एक गली से वे घुसकर तितर-बितर हो गए। रूपया सरदार के पास रहा।

उसी दिन शाम को उन लोगों की फिर एक बैठक हुई । इस डाके से कानपुर-नगर में बड़ी सनसनी फैल गई थी, लेकिन यह निश्चित हो गया था कि उन लोगों में एक भी आदमी नहीं पहिचाना गया है । इतनी आसानी से डाका डाला जा सकता है—प्रभानाथ ने यह पहले कभी न सोचा था।

ग्यारहवां परिच्छेद

१

राजेन्द्रकुमार वर्मा इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में हिस्ट्री के लेक्चरर थे। वे नवयुवक थे, खेल-कूद तथा खेल-तमाशों के शौकीन थे। यूनीवर्सिटी का कोई भी उत्सव ऐसा न होता था, जिसमें मिस्टर राजेन्द्रकुमार का सहयोग न हो। और इसीलिए वे लोकप्रिय भी थे।

राजेन्द्रकुमार वर्मा और उमानाथ तिवारी यूनीवर्सिटी में एक साथ ही पढ़े थे और एक ही होस्टेल में रहे थे। एक तरह से दोनों अभिन्न मित्र थे। उमानाथ का राजेन्द्रकुमार के साथ जर्मनी से पत्र-व्यवहार भी होता रहा। इलाहाबाद पहुंच कर उमानाथ ने तांगा राजेन्द्रकुमार के बंगले की ओर मुड़वा दिया।

उमानाथ जब कामरेड मारीसन के साथ राजेन्द्रकुमार के बंगले में पहुंचा, राजेन्द्रकुमार यूनीवर्सिटी में था। राजेन्द्र अविवाहित था, इसलिए उसके नौकर बचई ने इन दोनों सज्जनों से फाटक पर यह कह कर "साहेब तो मरसिटी मां अहैं—आप लोग फिर आवैं" अपनी फ़र्ज़-अदाई की।

लेकिन जब उमानाथ ने उससे डांट कर कहा, "असबाब उतारो जी—और कमरा खोलो!" तब बचई की समझ में यह बात आई कि ये दोनों मेहमान बाहर से आए हैं और उसके साहेब के साथ ही ठहरने पर तुले हुए हैं।

चार बजे शाम को जब राजेन्द्र यूनीवर्सिटी से वापस लौटा, उसे ड्राइंग रूम खुला हुआ मिला। ड्राइंग-रूम में उमानाथ बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा था। उमानाथ को देखते ही वह कह उठा, "अरे! तुम कब आए—मुझे पहले से इत्तिला क्यों नहीं दी?"

"क़रीब दो घण्टे हुए आया हूं, और आना इस जल्दी में हुआ कि तुम्हें इत्तिला देने का वक्त ही न था !" उमानाथ ने हंसते हुए कहा।

"और चाय-वाय तो कुछ मिली न होगी ! बचई !"

"चाय की फ़िक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं—बैठो। मेरे दोस्त चाय तैयार कर रहे हैं !"

"तुम्हारे दोस्त ! ये कौन हैं ?" राजेन्द्रकुमार ने पूछा।

"अभी मिलाता हूं उनसे। मिल कर ख़ुश हो जाओगे—नवाब आदमी हैं। चलो, किचन में ही उनसे मुलाक़ात करवा दूं !" उमानाथ ने उठते हुए कहा।

किचन में कामरेड मारीसन पावरोटी काट कर टोस्टर में लगा रहे थे। उस समय वे आधी आस्तीन की कमीज़ और हाफ़ पैण्ट पहने थे। चाय तैयार करके वे टी-पाट में रख चुके थे।

उमानाथ ने कहा, "ये हैं मेरे दोस्त कामरेड मारीसन, और ये हमारे मेज़बान मिस्टर राजेन्द्रकुमार वर्मा।"

दोनों ने तपाक के साथ एक दूसरे से हाथ मिलाए और मिलने पर ख़ुशी ज़ाहिर की।

"लेकिन बचई कहां है ?" राजेन्द्रकुमार ने पूछा।

"कामरेड मारीसन के किचन में घुसते ही वह यहां से चल दिया—पता नहीं कहां !" उमानाथ ने बतलाया।

राजेन्द्र बचई को ढूंढ़ने निकला। बंगले के पिछवाड़े बरगद के पेड़ के नीचे बचई टांगें फैला कर तुलसीदास का पद गा रहा था। राजेन्द्रकुमार को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ।

"तुम घर से क्यों चले आए ?" राजेन्द्रकुमार ने डांट कर पूछा।

"अब न होई सरकार ! ई किरिस्तानी ब्योपार हमसे न चली। तौन अंगरेज रसोई-घर मां घुस जाय—सरकार हमार हिसाब-किताब कर दें।"

"हिसाब-किताब तो पीछे होगा, पहले पुलिस में चलना पड़ेगा, क्योंकि तुम अनजाने आदमियों को मकान में छोड़ कर घर से चल दिए!" राजेन्द्र-कुमार ने गरम होते हुए कहा।

बचई को लेने के देने पड़े, "पुलिस मां न देयं सरकार---गलती भई।"

"तो चलो, काम करो चल कर !"

"लेकिन ऊ अंग्रेज जो रसोई मां घुस गवा—नाहीं सरकार, हम अंग्रेज का जूठा न छूवब !"

"तो फिर पुलिस में जाना पड़ेगा!"

"हम हिसाब-किताब न लेब—लेकिन सरकार हमें जाय देंय!"

"नहीं---घर में चल कर काम करने से ही पुलिस से बच सकते हो—वैसे गंगा नहा लेना!"

बचई को घर आना पड़ा। किचन में पहुंच कर राजेन्द्रकुमार ने बचई से कहा, "तुम चाय तैयार कर के ड्राइंग-रूम में लाओ!" और कामरेड मारीसन तथा उमानाथ के साथ वह ड्राइंग-रूम की तरफ़ रवाना हुआ।

"आदाब अर्ज प्रोफ़ेसर साहेब ! मेरा खयाल है कि मैंने मदाखिलत बेजा नहीं की !" इन तीनों के ड्राइंग-रूम में पहुंचते ही वहां बैठे हुए एक सज्जन ने उठ कर कहा।

जिन सज्जन ने उठ कर अभिवादन किया था, वे नाटे कद के एक दुबले-पतले युवक थे। उनके बाल बड़े-बड़े और रूखे थे, दाढ़ी-मूछ छः सात दिन से न बनी थी, चूड़ीदार पाजामा-कुरता और चप्पल पहने थे। बातचीत में एक अजीव तरह की नफ़ासत से भरी लापरवाही थी---और धजा पूरी मजनू की।

राजेन्द्रकुमार ने उनसे हाथ मिलाते हुए कहा, "आप बड़े मौके से आ गए मिस्टर रामेश्वरप्रसाद ! ये हैं मेरे दोस्त मिस्टर उमानाथ तिवारी, और ये हैं कामरेड मारीसन ! और आप हैं मिस्टर रामेश्वरप्रसाद---मुझ पर अक्सर मेहरबानी कर दिया करते हैं!"

उमानाथ ने रामेश्वरप्रसाद को एक बार बहुत गौर से देखा, फिर वह मुस्कराया। उसने कहा, "आप तो शायर मालूम होते हैं!"

यद्यपि उमानाथ ने बात हिन्दी में कही थी, रामेश्वरप्रसाद ने जवाब अंग्रेजी में दिया, "जी हां, ऐसे ही कभी-कभी कुछ तुकें जोड़ लिया करता हूं, वैसे तो मैं प्लेराइटर (नाटककार) हूं।"

"क्या आप अंग्रेजी में लिखते हैं?" कामरेड मारीसन ने पूछा।

"जी हां! अंग्रेजी में भी लिखता हूं और मेरे एक प्ले की तो जार्ज बर्नर्डशा ने बड़ी तारीफ़ की है। मैंने अभी हाल में ही लिखना आरम्भ किया है!" रामेश्वरप्रसाद ने बहुत ही शान्त भाव से कहा।

लेकिन रामेश्वरप्रसाद ने बर्नर्डशा का जो हवाला दिया, उसका असर कामरेड मारीसन पर बिल्कुल नहीं पड़ा। उन्होंने पूछा, "आप अपनी भाषा में क्यों नहीं लिखते?"

"बात यह है कि मेरे विचारों को समझनेवाले लोग मेरी भाषा हिन्दी में हैं ही नहीं। फिर भी इधर मैंने दो-एक प्लेज हिन्दी में भी लिखे हैं। मेरे पहिले हिन्दी में किसी ने प्लेज नहीं लिखे!" एक मीठी मुस्कान मुंह पर लाने का प्रयत्न करते हुए रामेश्वरप्रसाद ने कहा, "और आपको यह मालूम होना चाहिए कि हिन्दी-साहित्य का अभी निर्माण ही हो रहा है; हमीं लोग तो साहित्य के निर्माता हैं। हिन्दी-साहित्य पोस्टवार क्रियेशन (१९१४-१८ के युद्ध के बाद का निर्माण) है।"

उमानाथ बड़े ध्यान से रामेश्वरप्रसाद की बातें सुन रहा था और मन ही मन आश्चर्य कर रहा था। जर्मनी जाने के पहिले उमानाथ को हिन्दी-साहित्य में कुछ दिलचस्पी थी, और उसे याद था कि उन दिनों जो कुछ लिखा जा रहा था, वह बहुत ही पुराने ढंग का था। नई धारा आने जरूर लगी थी, लेकिन उसका पूर्ण विकास न हो पाया था।

इस बार उमानाथ के बोलने की बारी थी, "आप से मिल कर बड़ी

प्रसन्नता हुई मिस्टर रामेश्वरप्रसाद। मैं आप से पूछ सकता हूं कि आपके लिखने में थीम (विषय) क्या होता है ?"

"थीम !" रामेश्वरप्रसाद ने एक व्यंगात्मक शुष्क हंसी के साथ कहा, "थीम पर मुझे विश्वास नहीं। दुनिया में कोई एक थीम थोड़े ही है। हमारे समाज के सामने कितने ही प्राब्लेम्स (समस्याएं) हैं, और प्रत्येक प्राब्लेम एक थीम है। मेरा काम है दुनिया के सामने उन प्राब्लेम्स को पेश करना, ताकि दुनिया सोचे और समझे !"

चाय आ गई थी। रामेश्वरप्रसाद इस प्रकार चाय तैयार कर रहा था, मानों वह राजेन्द्रप्रसाद का कोई आत्मीय था और इस आत्मीयता के नाते वह मेजबान का कर्तव्य अपने ऊपर ले रहा था। "कहिए मिस्टर उमानाथ—कितने चम्मच चीनी ?...आप कामरेड मारीसन ?...आप तो डेढ़ चम्मच लेते हैं मिस्टर राजेन्द्रकुमार ! जी...तो मैं कह रहा था कि मेरे पास प्राब्लेम्स हैं, और आज का साहित्य प्राब्लेम्स का साहित्य है ! शा इतना पापुलर (लोकप्रिय) क्यों है ? क्योंकि दुनिया के सामने वह दुनिया की समस्याएं पेश करता है; सोने वालों को वह हंटर मार कर उठाता है। वह कहता है, देखो तुम कहां हो ! सोचो और समझो !" और इसीलिए शा दुनिया का सब से बड़ा कलाकार है !"

"लेकिन शा तो डिस्ट्रक्टिव (विनाशात्मक) है !" दबी जबान राजेन्द्र-कुमार ने कहा।

"डिस्ट्रक्शन !" चाय का एक घूट पी कर रामेश्वरप्रसाद ने उन तीनों को देखा। उसकी आंखें छोटी-छोटी और चमकीली थीं, उन आंखों में कुछ ऐसी बात थी, जिसे वहां उपस्थित लोगों ने पसन्द नहीं किया। "लेकिन जब तक डिस्ट्रक्शन नहीं होता, तब तक कांस्ट्रक्शन (निर्माण) नहीं हो सकता। डिस्ट्रक्शन में ही जिन्दगी का डाइनेमिकफ़ोर्स है, डिस्ट्रक्शन ही सत्य है और नित्य है। मनुष्य परफ़ेक्ट (पूर्ण) बनना चाहता है, परफ़ेक्ट बनने के लिए इम्परफेक्शंस (अपूर्णताओं) को डिस्ट्राय ही करना होगा।

शा वही कर रहा है। वह क्रिटिक है; हमारे कर्मों को वह देखता है। हमारी अपूर्णताओं पर वह हंसता है, उनकी मखौल उड़ाता है। और इस प्रकार वह हमें अपना रास्ता खुद निकालने को प्रेरित करता है।"

जिस समय रामेश्वरप्रसाद यह कह रहा था, राजेन्द्रकुमार को जम्हुआई आ रही थी और कामरेड मारीसन बीच-बीच के अंग्रेज़ी शब्दों के समझ सकने के कारण उसकी खिचड़ी भाषा को समझने का विफल प्रयत्न कर रहे थे; लेकिन उमानाथ बड़े गौर से सुन रहा था। उसने पूछा, "आपने गोर्की पढ़ा है ?"

"हां, गोर्की मैंने पढ़ा है, और एप्रीशिएट भी किया है; लेकिन गोर्की के आर्ट में और मेरे आर्ट में विभिन्नता है, इसलिए गोर्की को मैं महत्त्व नहीं देता।"

राजेन्द्रकुमार शायद इस बातचीत से आजिज़ आ गया था। उसने बात बदलने की कोशिश की, "मिस्टर रामेश्वरप्रसाद, आज प्रोफ़ेसर किशोर के यहां साहित्य-गोष्ठी है—चलिएगा न ! मुझे भी उन्होंने न जाने क्यों निमन्त्रण भेज दिया है।"

"अरे हां ! मैं तो भूल ही गया था।" रामेश्वर उमानाथ की ओर घूमा, "और आप लोग भी चलिएगा—प्रोफ़ेसर किशोर अपने ही आदमी हैं। आप लोगों से मिल कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी।"

राजेन्द्रकुमार ने उमानाथ की ओर देखा, "प्रोफ़ेसर किशोर हिन्दी के सुविख्यात कवि हैं, यूनीवर्सिटी में लेक्चरर हैं। अगर अनइनवाइटेड चलने में अपना अपमान न समझो, तो चलो।

"क्या हम कम्यूनिस्टों के लिए दुनिया में मान-अपमान नाम की कोई भी चीज़ नहीं; हम तो वह हैं कि 'सौ-सौ जूते खायें, तमाशा घुस के देखें !" और हां, मेरे साथ कामरेड मारीसन भी हैं; गोकि हिन्दी यह नहीं समझते, लेकिन लोगों से मिल तो सकते हैं !" उमानाथ ने उठते हुए कहा।

२

प्रोफ़ेसर किशोर—महज इसलिए कि लेक्चरर होते हुए भी वे अपने को प्रोफ़ेसर लिखते थे, और दूसरों से आशा करते थे कि वे उन्हें प्रोफ़ेसर ही कहेंगे, यहां भी वे प्रोफ़ेसर किशोर के नाम से ही परिचित कराए जाते हैं—बरामदे में खड़े हुए अतिथियों का स्वागत कर रहे थे। वे पीले रंग के पापलेन का सूट पहिने थे—और उनका खयाल था कि लोगों को उस सूट के सिल्क का सूट होने का धोखा हो सकता है; और वह सूट किसी साधारण दूकान में सिला था, क्योंकि उनके शरीर पर अच्छी तरह फ़िट न हो रहा था। उस सूट पर वे लाल टाई बांधे थे जो काफ़ी भड़कीली थी। बटन होल में गुलाब का फूल लगा था। उनकी मूछ आधी थी। सर के बाल किसी कदर घुंघराले। गाल भरे हुए और होठों पर एक हलकी और सलोनी-सी मुस्कराहट!

प्रोफ़ेसर किशोर के साथ दो सज्जन और थे, जो उनके विशेष कृपा-पात्र थे। ये दोनों सज्जन अपनी-अपनी विशेषता रखते थे और काफ़ी दिलचस्प थे। इसलिए इनका परिचय दे देना आवश्यक है। एक सज्जन मझोले कद के गोल-मटोल आदमी थे, काले और भद्दे। उनकी तुलना अक्सर लोग तम्बाकू के पिण्डे से किया करते थे। शक्ल से बनिया दिखते थे और थे भी बनिया। उनके पिता की परचून की दूकान थी, लेकिन कुछ पढ़-लिख जाने के कारण इन्हें अपने पुश्तैनी धंधों से अरुचि हो गई थी, साथ ही तबीअत भी किसी कदर रंगीन पाई थी। इसलिए वे कवि बन गए थे। और हिन्दी का प्रत्येक कवि हिन्दी का धुरधंर विद्वान् समझा जाता है। इसीलिए इन्हें कुछ टयूशन भी मिल गए थे। ये टयूशन अधिकांश स्त्रियों के थे, क्योंकि स्त्रियों के पिता-पतियों को उनकी शक्ल-सूरत पर पूरा भरोसा था। पर स्त्रियों का टयूशन तो वे करते थे, और शायद इसी कारण इन्होंने अपना उपनाम विलासी रख लिया था और समय-समय पर अपनी विलासिता की ये चर्चा भी कर दिया करते थे। लेकिन टयूशन से तो काम चलता नहीं था, इसलिए ये किशोरजी

की खुशामद किया करते थे कि वे कहीं इन्हें किसी स्कूल में मास्टरी की नौकरी दिलवा दें।

दूसरे सज्जन नाटे कद के दुबले-पतले आदमी थे। अगर उनको नर-कंकाल कहा जाय तो अनुचित न होगा। इनके गाल पिचके हुए थे, आंखों पर चश्मा चढ़ा था और बाल कंधों पर लहरा रहे थे। ये कवि थे और साथ ही आलोचक! इनका नाम था परमसुख चौबे। एक दैनिक-पत्र में ये प्रूफ़रीडर थे, लेकिन लोगों से वे कहते थे कि वे सम्पादक हैं। इन्होंने आलोचना की दो एक किताबें लिखी थीं, जिनमें इन्होंने घोषित किया था कि प्रोफ़ेसर किशोर हिन्दी के युग-निर्माताओं में एक हैं। प्रोफ़ेसर किशोर ने इस उपकार का बदला अपने प्रभाव से इनकी किताबें छपवा कर तथा इन्हें स्कूल-कालेजों में टेक्स्ट-बुक बनवा कर दिया था।

राजेन्द्रकुमार अपने दोस्तों के साथ जब प्रोफ़ेसर किशोर के यहां पहुंचे, उस समय प्रोफ़ेसर किशोर एक महिला से, जो शायद उसी समय तांगे से उतरी थीं, बातचीत कर रहे थे, "आपने यहां आकर मुझ पर बड़ी कृपा की—यह मेरा परम सौभाग्य है।" प्रोफ़ेसर किशोर के होठों की मन्द मुस्कान कुछ अधिक प्रस्फुटित हो गई, "जिस सभा में स्त्रियां नहीं रहतीं, वहां प्रकाश का अभाव रहता है, वहां एक प्रकार की जीवनहीनता का अनुभव किया जा सकता है!"

विलासीजी, जो प्रोफ़ेसर किशोर की दाहिनी तरफ़ खड़े थे, आगे बढ़कर बोले, "जी हां, मृणालिनीजी के आ जाने से साहित्य-गोष्ठी की रौनक दूनी हो गई!"

और पण्डित परमसुख को भी अपना पार्ट अदा करना था। वे मृणालिनी जी के सामने आकर बोले, "अहाहा! सौन्दर्य! सौन्दर्य ही कला है—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक! मृणालिनीजी में सौन्दर्य की पूर्णता है!"

मृणालिनीजी को ये बातें काफ़ी अच्छी लग रही थीं, क्योंकि उनके मुख पर संतोष और प्रसन्नता की एक हल्की-सी मुस्कराहट आकर रुक गई थी

और साथ ही वे स्वयम् भीतर जाने से रुक गई थीं। यहां मृणालिनीजी का थोड़ा-सा परिचय दे देना आवश्यक है। मृणालिनीजी की उम्र करीब चालीस वर्ष की थी, यद्यपि अपने परिचितों से वे अपनी अवस्था पचीस वर्ष और तैंतीस वर्ष के बीच तक बतलाया करती थीं। नवयुवकों के समुदाय में वे पचीस वर्ष की थीं, वयस्कों के समुदाय में वे तीस वर्ष की थीं और उन लोगों के बीच में, जिन्हें उनके पुराने इतिहास का थोड़ा-बहुत ज्ञान था, वे पैंतीस वर्ष की थीं। उनके बाल सफ़ेद होने लगे थे और वे अब खिजाब लगाती थीं। एकहरे बदन की तन्दुरुस्त स्त्री थीं, कुछ थोड़ा-सा सांवला रंग और दांत बड़े-बड़े। वे अध्यापिका थीं और हिन्दी के साहित्य में उन्हें काफ़ी दिलचस्पी थी।

मृणालिनीजी ने कुछ मुस्कराते हुए, कुछ शरमाते हुए, कुछ सिकुड़ते हुए कहा, "आप लोग क्यों इतनी अतिशयोक्ति से काम ले रहे हैं!"

इतने में राजेन्द्रकुमार और उनके साथी बरामदे में आ गए। आगे-आगे श्री रामेश्वरप्रसाद और कामरेड मारीसन थे और पीछे-पीछे राजेन्द्रकुमार और उमानाथ। रामेश्वरप्रसाद गलत-सलत अंग्रेज़ी में तेज़ी के साथ कामरेड मारीसन को हिन्दी-साहित्य की प्रगति और उस प्रगति में अपनी प्रमुखता बतला रहे थे।

"नमस्कार प्रोफ़ेसर किशोर!" अपना हाथ बढ़ाते हुए रामेश्वरप्रसाद ने कहा। प्रोफ़ेसर किशोर को ज़बरदस्ती रामेश्वरप्रसाद से, जिसे उन्होंने साहित्य-गोष्ठी में सम्मिलित करने से बराबर इनकार किया था, और जो आज बिना बुलाए हुए चला आया था, हाथ मिलाना पड़ा। तब तक राजेन्द्रकुमार ने बढ़ कर कहा, "हलो किशोर! भाई मेरे दो मेहमान आ गए हैं, इन्हें भी लेता आया हूं। यह हैं मिस्टर उमानाथ तिवारी—तुमसे दो साल सीनियर थे—यूनीवर्सिटी में बड़े मशहूर आदमी थे—तुमने इन्हें देखा तो होगा।"

"भला आपको उन दिनों कौन नहीं जानता था!"

"हां, तो ये अभी हाल में ही जर्मनी से लौटे हैं। आज ही इलाहाबाद

आये। मैंने सोचा साथ लेता चलूं। और ये हैं कामरेड मारीसन, मिस्टर उमानाथ के मित्र। और ये प्रोफ़ेसर किशोर हैं जिनका ज़िक्र मैं आप लोगों से कर चुका हूं।"

"आप लोगों का मैं हृदय से स्वागत करता हूं!" सर झुका कर और अपना हाथ अपनी छाती पर रख कर प्रोफ़ेसर किशोर ने कहा, "देखिए परमसुखजी, आप और विलासोजी यहीं रहें, मैं आप लोगों को भीतर लिवा चलता हूं।"

इतना कह कर प्रोफ़ेसर किशोर वहां से चलने लगे, लेकिन एकाएक उनके कदम रुक गए। किसी ने ज़रा तेज़ी से कहा, "मेरे स्वागत का भार इन छोकड़ों पर छोड़ कर आप बड़े आदमियों की ख़ातिरदारी में चल दिए? ज़रा तमीज़ सीखिए।" और जब किशोरजी ने मुड़ कर देखा, तो उन्हें अपने सामने दीवानाजी की भव्य मूर्ति नज़र आई।

श्रीमान् दीवानाजी कुरता पहने थे और तहमत बांधे थे, नंगे सर और नंगे पैर। बाल बड़े-बड़े, दाढ़ी-मूछ साफ़। छः फुट का कसरती और सुडौल शरीर, मुख सुन्दर, चेहरे पर तेज और आंखों में चमक। स्वर में एक मीठी गम्भीरता।

"क्षमा कीजिएगा दीवानाजी! मैंने आप को देखा नहीं था। आइये, आप भी चलिए!" किशोरजी ने कहा।

"मुझे नहीं देखा! आपका दिमाग तो ठीक है? जो मुझे नहीं देख सका, वह कुछ नहीं देख सका, वह अंधा है।" और दीवानाजी अपनी बात पर खुद खिलखिला कर हंस पड़े, "अच्छा मैंने आप को माफ़ किया; चलिए, लेकिन इस बदमाश को"—परमसुख की तरफ़ इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "आप मेरे सामने न आने दीजिएगा, वरना मैं इसे मार बैठूंगा।"

३

प्रोफ़ेसर किशोर के ड्राइंग-रूम में साहित्यिकों की भीड़ एकत्रित थी, और साहित्यिक लोग दलों में विभाजित हो कर बातचीत कर रहे थे।

एक कोने में श्रीविश्वम्भर कुछ सज्जनों से घिरे बैठे थे । श्रीविश्वम्भर को देखने पर पहले लोगों को शक होता था कि वे स्त्री हैं, और आधे सज्जन तो इस बात पर शर्त बद कर बाजी तक हार चुके थे । श्रीविश्वम्भर मुक्तकण्ठ से हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि स्वीकार किए जाते थे । गोरे-से खूबसूरत आदमी, बाल कंधे तक लहराते हुए, फ्राक-नुमा कोट और पतलून पहने हुए थे । व्यक्तित्व में एक प्रकार की मोहक कोमलता थी, वाणी में एक प्रकार का संगीत था । इनके साथ दो सज्जन थे । एक श्रीरघुवंशलाल, जो हिन्दी के प्रमुख आलोचक कहे जाते थे, यद्यपि स्वयम् उन्हें इस बात पर शक था कि वे क्या हैं, और दूसरे श्रीरमेन्द्र, जो हिन्दी के उदीयमान कवियों में अपना ऊंचा स्थान रखते थे और श्रीविश्वम्भर के खास शिष्य समझे जाते थे।

दूसरे कोने में श्रीमती करुणादेवी बैठी थीं और उन्हें घेरे हुए चार साहित्यिक बड़ी भक्ति के साथ उनके वचनों का सुधापान कर रहे थे। श्रीमती करुणादेवी हिन्दी की सुविख्यात कवियित्री थीं और लोग उनकी तुलना मीरा से करते थे। कुछ लोगों का ऐसा ख्याल था कि वे मीरा से कहीं अधिक बढ़ी हुई हैं और उन्हें घेरे हुए चारों सज्जन इसी मत के थे । श्रीमती करुणा-देवी एकहरे बदन की और मझोले कद की स्त्री थीं, रंग गोरा और मुख पर सदा खेलनेवाली हंसी, जो किसी हद तक निरर्थक कही जा सकती थी । चेहरा तनिक रूखा और आभा-रहित पर आंखें बड़ी-बड़ी और उनमें आत्म-विश्वास की चमक ।

तीसरे कोने में श्रीयुत प्राणनाथ श्रीदेवीप्रसाद से राजनीति पर बातें कर रहे थे । श्रीप्राणनाथ कांग्रेस के बहुत बड़े नेता थे और कानपुर के रहने वाले थे। पर राजनीति की अपेक्षा वे साहित्य के अधिक थे, जिसे शायद उन्होंने स्वयम् कभी न महसूस किया था । वे सुविख्यात कवि थे ।

श्रीदेवीप्रसाद नाटे से आदमी थे, एकहरे बदन के । इनकी गणना हिन्दी के सफल कवियों तथा उपान्यासकारों में होती थी । पर हिन्दी के आलो-चक न इन्हें कवि मानने को तैयार थे और न उपन्यासकार।

प्रोफ़ेसर किशोर के अपने अतिथियों के साथ आते ही सब लोग उठ खड़े हुए। श्रीदीवानाजी ने बीच कमरे में खड़े हो कर कहा, "मेरा स्वागत करने के लिए आप लोगों ने कष्ट उठाया, मैं उससे बहुत खुश हूं। मेरी आज्ञा है कि अब आप लोग बैठें।" और यह कह कर वे श्रीविश्वम्भर की बगल में डट गए।

सब लोगों के बैठ जाने पर साहित्य-गोष्ठी की कार्रवाई शुरू हुई। प्रोफ़ेसर किशोर कुछ कहने को खड़े ही हुए थे कि दो सज्जनों ने और कमरे में प्रवेश किया। उनमें से एक ने, जिनका नाम ठाकुर मलकानसिंह था, कहा, "हम लोगों को, यानी मुझे और ठाकुर दिग्विजिय सिंह को, देर हो गई, इस लिए हम लोग क्षमा मांगे लेते हैं।" यह कह कर वे खाली कुर्सी पर बैठ गए।

पर ठाकुर दिग्विजयसिंह ने कहा, "मेरे मित्र ने मेरी तरफ़ से माफ़ी मांग कर गलती की, उनकी माफ़ी सिर्फ़ उनके ही लिए समझी जाय! मैं माफ़ी मांगने से कतई इनकार करता हूं, क्योंकि देर करना हम हिन्दुस्तानियों का राष्ट्रीय अधिकार है।"

इन दोनों की बात समाप्त हो जाने पर प्रोफ़ेसर किशोर ने अपना व्याख्यान अंग्रेज़ी में आरम्भ किया। वे करीब दो ही वाक्य बोले होंगे कि एक तरफ़ से आवाज आई, "जब आप शुद्ध अंग्रेज़ी नहीं बोल सकते तब आप अंग्रेज़ी में व्याख्यान व्यर्थ देते हैं। यह हिन्दी-साहित्य गोष्ठी है और इसलिए आप हिन्दी में व्याख्यान दे सकते हैं।"

सभा में गहरा सन्नाटा छा गया। जब लोगों ने, जिस ओर से आवाज़ आई थी, उस ओर देखा तो मालूम हुआ कि ठाकुर मलकानसिंह ने वह बात कही थी; महज यह साबित करने के लिए कि वे अपने मित्र ठाकुर दिग्विजयसिंह से कहीं अधिक बदतमीज़ और कटु हो सकते हैं। ठाकुर मलकान सिंह वकील थे, यद्यपि शक्ल-सूरत से वे किसान मालूम होते थे। बात ठाकुर साहेब ने ठीक कही थी, क्योंकि प्रोफ़ेसर किशोर गलत अंगरेज़ी का

प्रयोग कर गए थे। लेकिन बात अनुचित थी, सब लोगों ने यह अनुभव किया क्योंकि अंग्रेजी मातृभाषा न होने के कारण बहुत थोड़े से हिन्दुस्तानी ऐसे मिलेंगे, जो पूर्णतः शुद्ध अंग्रेजी भाषा का प्रयोग कर सकें।

प्रोफ़ेसर किशोर को यह अपमान अखर गया। वैसे तो हिन्दी के साहित्यकारों में इस तरह की बदतमीज़ी की बातचीत हो जाना बड़ी साधारण-सी बात थी, लेकिन उस दिन भरी सभा में बाहर से आए हुए अतिथियों के सामने यह अपमान हुआ था। उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने अंग्रेजी में ही कहा, "यदि ठाकुर मलकानसिंह अंग्रेजी नहीं समझ सकते तो यह उनका ही नहीं, मेरा भी दुर्भाग्य है !..."

पर ठाकुर मलकानसिंह बीच में ही बोल उठे, "मैं आपको अंगरेज़ी पढ़ा सकता हूं,, मैं ही क्यों, आठवें दर्जे का लड़का भी आपको अंगरेज़ी पढ़ा सकता है !"

ठाकुर मलकानसिंह के इस वाक्य ने अग्नि में घृत का काम किया। प्रोफ़ेसर किशोर ने कड़े स्वर में कहा, "मैं ठाकुर मलकानसिंह को यह ध्यान दिलाना चाहता हूं कि मेरे घर में ही अकारण मेरा अपमान कर रहे हैं, और मैं आशा करता हूं कि वे यहां से चले जाएंगे।"

लेकिन मालूम होता था कि ठाकुर मलकानसिंह लड़ने के लिए तुले हुए थे। उन्होंने जवाब दिया, "लेकिन यह साहित्य-गोष्ठी है जो चन्दे के रुपयों से हो रही है। मैं साहित्य-गोष्ठी का सदस्य होने की हैसियत से यहां से उठने से क़तई इनकार करता हूं।"

असहायावस्था में प्रोफेसर किशोर ने अपने चारों ओर देखा, सब लोग शान्त बैठे थे। राजेन्द्रकुमार ने उठ कर उस समय उनकी इज्जत बचाई। उन्होंने ठाकुर मलकानसिंह से कहा, "ठाकुर साहेब, मेरा खयाल है कि आपने पहले-पहल भरी सभा में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया, जो अनुचित थे। एक शरीफ़ आदमी की हैसियत से आपको उन शब्दों को वापस ले लेना चाहिए !"

ठाकुर मलकानसिंह ने तन कर कहा, "शरीफ़ तो मैंने न कभी अपने को समझा और न होने का दावा किया, लेकिन चूंकि आप मुझे शरीफ़ कहते हैं लिहाजा मैं अपने शब्द वापस लेता हूं!"

प्रोफ़ेसर किशोर ने अपना स्वागतवाला व्याख्यान नहीं दिया और चाय आरम्भ हुई। जिस मेज़ पर उमानाथ और कामरेड मारोसन बैठे थे, उसी पर श्रीविश्वम्भरजी, श्रीदीवानाजी, श्रीमती करुणादेवी, श्रीप्राणनाथजी और श्रीदेवीप्रसादजी थे। करुणादेवी ने स्वयम् अपने हाथों इन सज्जनों के लिए चाय तैयार की और श्रीप्राणनाथ ने कहा, "यदि नित्य ही इस प्रकार आपके हाथ की बनाई चाय पी सकता तो कितना सुन्दर होता।" और श्री प्राणनाथ ने गहरी सांस ली।

उमानाथ ने श्रीदेवीप्रसाद से, जो उसकी बगल में ही बैठे थे, पूछा, "ये सज्जन तो किसी कदर रसिक मालूम होते हैं!"

"रसिक क्या हैं खाक! इतनी उम्र हो गई, लेकिन शादी नहीं हुई—या यों कहिए कि शादी नहीं की। शायद कभी किसी से प्रेम किया था, उसे अभी तक निभाते चले जा रहे हैं। लेकिन बीच-बीच में जब कभी स्त्री को देख लेते हैं, तब इस प्रकार के वाक्यों में तथा इस प्रकार की ठंढी सांसों में संयम-द्वारा कुचला पुरुष फूट पड़ता है।

उमानाथ मुस्कराया, इस बार वह दीवानाजी की ओर घूमा, "मैंने आपकी बड़ी तारीफ़ सुनी है। आपकी कविताएं भी इधर-उधर पढ़ी हैं लेकिन आपकी कविताएं मेरी समझ में नहीं आईं। कारण पूछ सकता हूं?"

"आपने पहली बार साहित्य को देखा है—बस, यही कारण है!" दीवानाजी ने बहुत शान्त भाव से उत्तर दिया।

श्रीविश्वम्भरजी ने दीवानाजी की तरफ़ घूम कर कहा, "दीवानाजी, आपकी 'लोढ़ा' शीर्षक कविता बड़ी सुन्दर है; मुझे बड़ी अच्छी लगी।"

"आप उस कविता के अर्थ भी समझे?" देवीप्रसाद ने विश्वम्भरजी से पूछा।

दीवानाजी ने देवीप्रसाद को इस प्रकार देखा, मानों वे उन्हें खा जाएंगे। फिर उन्होंने धीरे से कहा, "तुम लौण्डे हो, अभी कुछ दिन पढ़ो, तब समझोगे !"

बात बदलते हुए देवीप्रसाद ने प्राणनाथ से कहा, "प्राणनाथजी, आपने करुणदेवी की कविता के जवाब में जो कविता लिखी है, उसकी इन दिनों यहां बड़ी चर्चा हो रही है। करुणादेवी ने उस पर एक टिप्पणी भी लिखी है।"

प्राणनाथ चौंक उठे, "क्या कहा? कौन-सी कविता और कैसी टिप्पणी?"

अब करुणादेवी के बोलने की बारी थी, "प्राणनाथजी! यह बड़ी बेजा बात है कि लोग स्त्रियों की कविताओं पर अपनी कविताएं जोड़ते हैं। शायद आप यह नहीं जानते कि इससे स्त्रियां कविताओं लिखने में, और अगर लिखने में नहीं तो प्रकाशित कराने में अवश्य निरुत्साहित होती हैं। आप अगर ध्यान से सोचें, तो आप स्वयम् इस निर्णय पर पहुंचेंगे कि यह प्रवृत्ति किसी अंश में दूषित है।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैंने आपकी किसी कविता पर अपनी कविता नहीं जोड़ी। अगर कहीं कोई भाव-सामंजस्य आ गया है तो यह अन-जाने में हुआ है, और इसके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूं।"

उमानाथ आश्चर्य-चकित इन साहित्यिकों को देख रहा था और इनकी बातें सुन रहा था। उसने करुणादेवी से कहा, "लेकिन मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि यदि एक अच्छा कवि किसी कवियित्री से प्रभावित होकर कोई कविता लिखे, तो उससे वह कवियित्री गौरवान्वित न होकर कुण्ठित क्यों होती है?"

और छूटते ही करुणादेवी ने उत्तर दिया, "इसका उत्तरदायित्व हमारे समाज पर है। गुलामी के बंधनों में जकड़ी हुई स्त्री—उसके लिए यही बहुत है कि वह साहित्य-क्षेत्र में आने का साहस करे! इसी में उसे समाज की कटु आलोचना बर्दाश्त करनी पड़ती है। और उस हालत में कि जब पुरुष लोग

उसकी कविताओं पर उट-पटांग पंक्तियां जोड़ें, जब वे जनता को यह समझने को उत्साहित करें कि वे कवियित्री के पीछे दीवाने हो रहे हैं, तब कवियित्री किस लांछना की भागी बन सकती है—इसको आप समझ सकते हैं!"

"लेकिन कविता प्रेम पर ही क्यों लिखी जाय? क्या हमारा जीवन महज प्रेम और शृंगार है?" उमानाथ ने मानों अपने से कहा, और वह श्रीविश्वम्भर की ओर मुड़ा, "जहां तक मैं समझता हूँ; हिन्दी-कविता में प्रगति नहीं है। क्या आपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है?"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा!" श्रीविश्वम्भर ने पूछा।

"मेरा मतलब है कि हिन्दी-कविता हमारे जीवन को छू नहीं रही है। जो कुछ लिखा जा रहा है, वह हमारे जीवन से बहुत दूर की चीज है, उसमें खोखलापन है, अपने को और दूसरों को धोखा देने की प्रवृत्ति है!"

"मैं आपसे सहमत हूँ।" श्रीविश्वम्भर ने कुछ सोच कर कहा, "हम लोगों ने अभी तक जो कुछ लिखा है, वह शब्दों का खेल है, वह बुर्जुआ मेन्टेलिटी की चीज है!"

कामरेड उमानाथ तिवारी के कान खड़े हुए; अपने काम को उन्होंने इतना आसान न समझा था, जितना वह साबित हो रहा था। हिन्दी का एक महाकवि इस दिशा में विचार कर रहा है, यह जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई।

श्रीविश्वम्भर ने फिर कहा, "हममें वास्तव में प्रगति का अभाव है, और हम समय से बहुत पिछड़े हुए हैं। हममें परिवर्तन की आवश्यकता है, हमें जीवन पर अपने दृष्टिकोण को बदलना चाहिए और इसलिए मैं तो इस नतीजे पर पहुंचा हूं, कि हमारे साहित्यकारों को मार्क्स का अध्ययन करना चाहिए। हमें जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालना चाहिए। इसमें मार्क्स हमारी कितनी अधिक सहायता कर सकता है, यह मैंने मार्क्स का अध्ययन कर के जाना है।"

"आपने इस प्रकार की कविताएं लिखी हैं?" उमानाथ ने पूछा।

"इधर जितनी कविताएं मैंने लिखी हैं, वे सब ऐसी ही हैं!"

इसी समय प्रोफ़ेसर किशोर ने घोषित किया, "देवियो और सज्जनो! चाय समाप्त हो गई, अब कविता-पाठ आरम्भ होगा।"

दूसरे दिन सुबह के समय ही रामेश्वरप्रसाद प्रोफ़ेसर राजेन्द्रकुमार के यहां हाज़िर हो गया। उस समय राजेन्द्रकुमार उमानाथ और कामरेड मारीसन के साथ बैठा चाय पी रहा था।

"लो, रामेश्वरप्रसाद अच्छे आ गए! यह आप लोगों को यहां के साहित्यिकों से मिला देंगे।" रामेश्वरप्रसाद को देखते ही राजेन्द्रकुमार ने कहा, "देखो मिस्टर रामेश्वरप्रसाद, मिस्टर तिवारी का कुछ थोड़ा-सा काम कर दो!"

"मैं जी-जान से हाज़िर हूं! कहिए, किन-किन साहित्यिकों से आप मिलना चाहते हैं?"

"यही श्रीविश्वम्भर, श्रीदीवाना, प्रोफ़ेसर किशोर वग़ैरह वग़ैरह!"

"ओह—इन लोगों से! आपने हिन्दी के चोटीवाले साहित्यिकों को चुना है!" रामेश्वरप्रसाद ने मुस्कराते हुए कहा, "लेकिन यह ज़माना चोटी कटवा देने का है। मिस्टर तिवारी, ये सब बड़े माने जानेवाले कवि हैं, यद्यपि इन लोगों में बड़ा एक भी नहीं है। कहिए, इन लोगों से क्या काम है?"

"बात यह है मिस्टर रामेश्वरप्रसाद, मैं देख रहा हूं कि हिन्दी-साहित्य बहुत पिछड़ा हुआ है। वह समय के साथ नहीं है। हमें अपने साहित्य में प्रगति की आवश्यकता है; पर जो कुछ मैंने देखा-सुना, उससे मैं इस नतीजे पर पहुंचा, कि आजकल जो कुछ लिखा जा रहा है, वह प्रतिक्रियात्मक है। मैं इन साहित्यिकों से इस सम्बन्ध में परामर्श करना चाहता हूं!"

रामेश्वर हंस पड़ा, "इनमें से एक भी आदमी परामर्श के काबिल नहीं—इन लोगों से बात करना बेकार होगा। ये सब के सब घमण्डी, बदतमीज़ और बेवकूफ़ हैं; ये लोग तथ्य की बात सुनने को तैयार नहीं। आपको चाहिए कि आप नवयुवकों से बात करें, उन्हें संगठित करने की कोशिश करें। ये युग की पुकार को सुन सकते हैं, युग की मांग दे सकते हैं।"

"बहरहाल अगर एक दफ़े इन लोगों के साथ कोशिश कर ली जाय तो बेजा न होगा!" उमानाथ ने कहा, "और मिस्टर रामेश्वर, हमें एक बात और ध्यान में रखनी पड़ेगी। हिन्दी-साहित्य का क्षेत्र अभी इन्हीं लोगों के हाथ में है, ऐसी हालत में इन्हीं लोगों पर हमें पहले असर डालना चाहिए!"

राजेन्द्रकुमार के यूनीवर्सिटी जाने के बाद उमानाथ रामेश्वरप्रसाद के साथ निकल पड़ा। कामरेड मारीसन घर पर ही रहे।

तांगा श्रीविश्वम्भर के घर के दरवाजे रुका। तांगे से उतर कर रामेश्वरप्रसाद ने श्रीविश्वम्भर को इत्तिला करवाई। नौकर ने ड्राइंग-रूम खोल कर अतिथियों को बिठलाया। उमानाथ ने एक बार ड्राइंग-रूम को गौर से देखा; काफ़ी सुरुचि के साथ सजा था। दीवारों पर अनगिनती चित्र लगे थे, एक से एक कलात्मक।

थोड़ी देर में श्रीविश्वम्भर ने कमरे में प्रवेश किया। उस समय वे एक रेशमी किमोनो पहने हुए थे। उनके लम्बे बाल उनके कंधे पर झूल रहे थे, मुख पर एक हलकी-मधुर मुस्कान थी। उनके पीछे-पीछे उनके परम-भक्त और शिष्य श्रीरमेन्द्र थे।

"नमस्कार मिस्टर तिवारी!" श्रीविश्वम्भर ने मीठे स्वर में कहा, "हम लोग अभी-अभी चाय पीकर उठे हैं। कहिए तो आप लोगों के लिए चाय बनवाऊं!"

"नहीं—हम लोग चाय पी कर आ रहे हैं।" उमानाथ ने कहा।

कुछ देर श्रीविश्वम्भर उमानाथ से उसके जर्मनी के अनुभव सुनते रहे, फिर उन्होंने पूछा, "आज के हिन्दुस्तान के बारे में आपकी क्या राय है?"

"हिन्दुस्तान संसार की गतिविधि से बहुत पिछड़ा हुआ है, और मैं समझता हूं कि इस सब का उत्तरदायित्व आप लोगों पर—यानी हिन्दी के साहित्यकारों पर है!"

"आप शायद ठीक कहते हैं! पर इस सब का उपाय क्या है?" श्रीविश्वम्भर ने पूछा।

"इसी सम्बन्ध में मैं आपसे बातें करने आया हूं!" उमानाथ ने कहा,

"देखिए किसी भी देश का विकास उस देश के साहित्य पर निर्भर है; और ऐसी हालत में साहित्यिकों का एक संगठन होना चाहिए। आज दुनिया के हर देश में, समय और युग की मांग को ध्यान में रख कर, प्रगति की आवाज उठ रही है, और प्रगतिशील लेखकों के संघ कायम हो रहे हैं। मैं समझता हूँ कि हिन्दी में भी प्रगतिशील-लेखक-संघ कायम होना चाहिए!"

"मैं आपसे सहमत हूँ!" श्रीविश्वम्भर ने कहा, "पर सवाल यह है कि प्रगतिशील-संघ का उद्देश्य क्या होगा?"

"दुनिया के एकमात्र सत्य मार्क्सवाद का प्रचार! यह निहायत जरूरी है कि मार्क्स और लेनिन का सन्देश हिन्दुस्तान के प्रत्येक घर में पहुँचाया जाय, और यह सन्देश हमारे देश के साहित्यिक ही पहुँचा सकते हैं। क्यों रमेन्द्रजी, आपका क्या ख्याल है?"

रमेन्द्रजी ने उसी साल एम० ए० पास किया था। लेकिन पालिटिक्स पढ़ने का उन्हें कभी मौका न मिला था, क्योंकि कवि होने के नाते उन्हें राजनीति में कोई रुचि न थी। और नवयुवक होने के कारण वे प्रेम के सौन्दर्य में पूर्ण-रूप से डूबे हुए थे। पर दस-पांच रोज से उनमें और उनके गुरुदेव श्रीविश्वम्भरजी में समाजवाद पर बातें जरूर चल रही थीं। और इन बातों के सिलसिले में कार्ल मार्क्स का भी जिक्र हुआ था, जिन्हें श्रीविश्वम्भर ने कुछ दिन पहले ही अपने गुरु की तरह अपनाया था। लिहाजा अपने गुरु के सम्बन्ध में अपना अज्ञान या यों कहा जाय कि अपना अल्पज्ञान प्रकट करना उन्होंने उचित न समझा। बड़े तपाक के साथ उन्होंने कहा, "इसमें क्या शक है? मार्क्स ही हमारे देश और समाज का उद्धार कर सकता है।"

इसी समय दो सज्जनों ने कमरे में प्रवेश किया, एक थे पण्डित परमसुख चौबे और दूसरे श्रीयुत कृष्णचन्द्र। श्रीकृष्णचन्द्र हिन्दी के मशहूर आलोचक, उपन्यासकार तथा कवि थे, और उनमें आत्मविश्वास यथेष्ट मात्रा में मौजूद था। ये दोनों श्री विश्वम्भर को भक्ति के साथ नमस्कार करके एक ओर बैठ गए।

उमानाथ ने कहा, "और इसीलिए मैं चाहता हूं कि हमें अपने साहित्यिकों में संगठन करना चाहिये। ये लोग बुरी तरह से गलत मार्ग पर भटक रहे हैं, ये हमारे देश और समाज के पथ-प्रदर्शक बन कर देश और समाज को रसातल की ओर लिये जा रहे हैं!"

"क्या बात है?" परमसुख ने पूछा।

उमानाथ ने परमसुख की ओर ध्यान नहीं दिया। वह कहता ही गया, "हम जिस साहित्य का सृजन कर रहे हैं, वह प्रतिक्रियावादी है। उसमें गति नहीं, उसमें शक्ति नहीं। हम कुरूप, सड़े, बदबूदार मुर्दे बना पा रहे हैं, जबकि हम स्रष्टा होने का दम भरते हैं। असीम और अनन्त! सुन्दर शब्दजाल के अन्दर अर्थरहित कल्पना! वह सोने के प्याले में घोली हुई उस अफीम की तरह है, जो कल्पना के क्षणिक स्वर्ग में पहुंचाकर हमें वास्तविक कुरूपता के प्रति अंधा बना देती है। पर जीवन तो कल्पना नहीं है—वह वास्तविकता है।"

श्रीयुत कृष्णचन्द्र आंखें बन्द किये हुए ध्यान से उमानाथ की बातें सुन रहे थे। उन्होंने अपनी आंखें खोलीं और फिर कहा, "जीवन स्वयं एक प्रकार की कल्पना है, मैं तो ऐसा समझता हूं; हमारे सुख-दुख स्वयं काल्पनिक हैं। सुख-दुख के हमारे समस्त अनुभव जीवन के प्रति हमारे एटीच्यूड '(रुख) पर अवलम्बित रहते हैं। फटे चिथड़े पहने हुए और रूखा-सूखा खाकर जीवित रहनेवाला भिखारी, जो भगवद्भजन में लीन है, उस करोड़पति से अधिक सुखी है जिसके अन्दर रुपयों की हाय घुस गई है। और इसलिए मेरी समझ में यह कहना, कि हम जो कुछ लिख रहे हैं, वह प्रतिक्रियावादी है, सरासर गलत है।"

उमानाथ कृष्णचन्द्र की ओर घूमा, "तो क्या आप समझते हैं कि भूखे रह कर भगवद्भजन करने में मानवता का कल्याण है?"

कृष्णचन्द्र ने उत्तर दिया, "मेरा मतलब यह है कि भगवद्भजन में मानवता का कल्याण है, भूखे रहना अथवा भर पेट भोजन करना, मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं।"

"क्योंकि आपका पेट भरा हुआ है!" मुस्कराते हुए श्रीविश्वम्भर ने कहा।

"पेट तो हम लोगों में से सबका भरा है; मैं तो यहां पर किसी आदमी को भूखा नहीं देखता—यहां जितने आदमी बैठे हैं, सभी अच्छा खानेवाले हैं, अच्छा पहननेवाले हैं। फिर हम लोगों को भूख की दुहाई देना शोभा नहीं देता।"

परमसुख ने कृष्णचन्द्र की बात काटी, "मुझे छोड़कर! मुझे तो कभी-कभी खाने तक को नहीं मिलता। कल रात रसगुल्ला खाने की इच्छा हुई थी, लेकिन पास में पैसा नहीं था और दूकानवाले ने उधार देने से इनकार कर दिया।"

"लेकिन रसगुल्ला खाने में और पेट भरने में अन्तर है!" कृष्णचन्द्र ने कहा।

"बिलकुल नहीं!" परमसुख ने जरा गरम होकर कहा, "दुनिया मौज करती है और मैं दुनिया को मौज करते देखकर कुढ़ता हूं। यह विषमता क्यों? उन बेवकूफ, उजड्ड, बदमाश लखपतियों को क्या अधिकार है कि वे मौज करें, गुलछर्रे उड़ावें, और मैं जरा-जरा सी चीज के लिये तरसूं!"

और कृष्णचन्द्र ने हंसते हुए उत्तर दिया, "आप जरूर रसगुल्ला खाइये परमसुखजी; और अगर नहीं मिलता तो साम्यवाद की कविताएं लिखिये, मजदूरों का गाना बनाइए।"

"क्या कहा? साम्यवाद की कविता—मजदूरों का गाना! ना भाई—इतनी कुरूप चीज मैं न लिख सकूंगा। मैं तो सौंदर्य का उपासक हूं, सौन्दर्य ही सकल विश्व का एक-मात्र सत्य है।"

उमानाथ ने एक बार परमसुख को गौर से देखा—एक भयानक कुरूपता उसके सामने बैठी हुई थी। परमसुख के पिचके गाल, जिन पर झुर्रियां पड़नी आरम्भ होगई थीं, उसका नाटा शरीर, जिसमें हाड़-मांस ही नजर आता था, उसकी गढ़े में, धंसी हुई आंखें, जिनसे कीचड़ निकल रहा था और जो

चश्मे से ढकी थीं, उसके लम्बे-लम्बे केश, जो तेल से तर थे और चमक रहे थे तथा जो परमसुख की शारीरिक कुरूपता को दयनीय न बनाकर हास्यास्पद बना रहे थे। और इस शारीरिक कुरूपता के नीचे उमानाथ ने एक और वीभत्स कुरूपता देखी, जो परमसुख के प्रति घृणा और तिरस्कार का भाव जागृत कर रही थी—और यह थी परमसुख की आत्मिक कुरूपता, जो उसके मुख को एक अजीब तरह से विकृत बनाए हुए थी।

उमानाथ ने कृष्णचन्द्र से कहा, "परमसुख ने जो कुछ कहा, आप उसकी अवहेलना नहीं कर सकते। यह विषमता क्यों ? अनादिकाल से आप लोग भगवद्-भजन करते आए हैं और भूखों मरते आए हैं; और यह भूखों मरना भी इस हालत में कि इतना अन्न इस दुनियां में पैदा होता है कि दुनियां के सब आदमियों का पेट भर जाय। नहीं कृष्णचन्द्रजी, हमें देखना पड़ेगा कि कला की कसौटी क्या है?"

"कला की कसौटी सौन्दर्य है; जो सुन्दर है, वही कला है।"

"और सुन्दरता की कसौटी?" उमानाथ ने फिर पूछा।

"जो हमें प्रसन्न कर सके।" उत्तर रमेन्द्र ने दिया।

"ठीक! आप भी शायद इसको मानते होंगे मिस्टर कृष्णचन्द्र। अब आती है हमारी प्रसन्नता की बात। शराब का नशा हमें प्रसन्न करता है, लेकिन उसकी प्रतिक्रिया बहुत अधिक भयानक होती है। ऐसी हालत में शराब के नशे को तो सुन्दर न कहेंगे!"

"नहीं।" कृष्णचन्द्र ने कहा।

"इसके माने यह हैं कि जो अहित करनेवाली चीज है, वह थोड़ी देर के लिये सुखी बनाने पर भी वास्तव में असुन्दर ही है, क्योंकि वह अकल्याणकारी है। सुंदर वही हो सकता है, जो कल्याणकारी हो।"

श्रीविश्वम्भर हंस पड़े, "आप बड़े अच्छे तार्किक हैं मिस्टर उमानाथ; मैं आपकी बात से पूरी तौर से सहमत हूं, और मैं समझता हूं कि प्रगतिशील-लेखक-संघ कायम होना चाहिए। क्यों रमेन्द्र!

"तुम साहित्यिकों की एक मीटिंग बुला लो!"

"अच्छी बात है।"

५

रानी शशिप्रभा साहित्याकाश में एक नवीन ग्रह की तरह एक दिन अचानक ही उदय हो गई थीं। वे विधवा थीं, और अपना वैधव्य-काल त्रिवेणीतट पर व्यतीत करने के लिए आई थीं। उस त्रिवेणी-तट पर उन्होंने यह तै किया था कि सब साधनाओं से उच्च साधना साहित्य की है।

और उस दिन से 'शशिप्रभा-धाम' हिन्दी के साहित्यकारों का एक प्रकार से तीर्थ बन गया था।

रानी शशिप्रभा की उम्र करीब चालीस वर्ष की थी, यद्यपि दिखती वे करीब तीस वर्ष की थीं। गोरी और खूबसूरत-सी स्त्री, उनकी बातचीत में एक प्रकार की मिठास थी, और उनकी आंखों में एक प्रकार की मोहिनी। रानी शशिप्रभा की कविताओं की उन दिनों साहित्य में धूम थी और उनके भक्त-गण की संख्या तेजी के साथ बढ़ रही थी। रोज शाम को 'शशिप्रभा-धाम' में रानी शशिप्रभा का दरबार लगता था और दरबारी होते थे ये साहित्यिक भक्तगण। इस दरबार की सफलता का एक और कारण था, दरबार में जलपान आदि का भी अच्छा-खासा प्रबन्ध रहता था।

रानी शशिप्रभा ने अपनी परिचारिका श्यामादेवी से कहा, "आज बारह-बारह तश्तरियां होनी चाहिए!"

उसी समय कमरे की घंटी बजी।

रानी शशिप्रभा ड्राइंग-रूम में आ गईं। वहां परमसुख, कृष्णचन्द्र और यमुनाशंकर मौजूद थे। नमस्कार इत्यादि के बाद सब लोग बैठ गए। फिर यमुनाशंकर ने कहा, "रानी साहेब! सौरभ कहां है?"

यमुनाशंकर प्रयाग-विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे और एम० ए० में पढ़ते

थे। उन्होंने अभी हाल में ही कविताएं लिखनी आरम्भ की थीं और वे प्रकाश में आने का प्रयत्न कर रहे थे। वे किसी रईस के कृपा-पात्र थे और इसलिए उन्हें कार इत्यादि की सुविधाएं प्राप्त थीं।

रानी शशिप्रभा ने कहा, "वह बड़ा तंग करता है, इसलिए उसे कमरे में बन्द करवा दिया है!"

"उसे यहां बुलवा दीजिए, मैं उसे खेलाऊँगा!" यमुनाशंकर ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

सौरभ रानी शशिप्रभा के कुत्ते का नाम था। रानी शशिप्रभा ने श्यामादेवी को हुक्म दिया कि सौरभ को कमरे में भेज दिया जाय।

इधर श्यामादेवी रानी साहेब का हुक्म पूरा करने अन्दर गई और उधर श्रीदीवानाजी तथा श्रीदेवीप्रसाद ड्राइंग-रूम में, दाखिल हुए। आज दीवानाजी अधिक सभ्य दिख रहे थे, क्योंकि तहमत के स्थान पर धुली हुई धोती पहने थे और रेशमी चादर कंधे पर थी। श्रीदेवीप्रसाद भी शायद अपना एकमात्र अच्छा सूट पहनकर आए थे। रानी शशिप्रभा ने उठ कर इन दोनों साहित्यिक महारथियों का स्वागत किया।

दोनों सज्जन बैठ गए। इसी समय सौरभ दौड़ता हुआ आया और देवीप्रसादजी की गोद में चढ़ गया। सौरभ की इस हरकत से देवीप्रसाद का जर्क-बर्क रेशमी सूट, जो उन्होंने उसी दिन बारह आने पैसे देकर धुलवाया था, मैला हो गया। एक बार उनकी इच्छा हुई कि कुत्ते को उठाकर वे जमीन पर पटक दें, लेकिन यह ख्याल करके कि वह रानी साहेब का लाड़ला कुत्ता है, खून का घूंट पीकर रह गए।

लेकिन सौरभ को सूझा था खिलवाड़। अब वह कूदा दीवानाजी पर। उसी समय यमुनाशंकर ने आवाज लगाई, "सौरभ—सौरभ!"

और इस आवाज पर सौरभ दीवानाजी की रेशमी चादर मुंह में दबाकर जोर के साथ उछला। सौरभ की इस हरकत से चादर फट गई।

यह रेशमी चादर दीवानाजी की नहीं थी, अपने एक मित्र से उस दिन

के लिए मांग कर ओढ़ आये थे। चादर के फटने के साथ ही उन्होंने डांट कर यमुनाशंकर से कहा, "तुम बड़े बदतमीज आदमी हो, मेरी चादर कुत्ते से फड़वा डाली। अगर तुम्हें कुत्ता खेलाना हो तो एक अपने घर में पाल लो, और अगर तुम्हें रानी साहेब का ही कुत्ता खेलाना हो तो तब खेलाया करो, जब हम लोग यहां न हों!"

रानी शशिप्रभा एक अजीब संकट में पड़ गईं। श्यामादेवी को बुलाकर उन्होंने कहा, "सौरभ को यहां से ले जाओ, और भविष्य में जब सब लोग यहां हों, इसे कभी मत खोलना।"

श्रीयमुनाशंकर दीवानाजी के रोब में आकर सुन्न से रह गए थे। लेकिन रानी शशिप्रभा का यह मर्माहत स्वर सुनकर उनकी चेतना जागृत हुई और उनका पौरुष कुछ उत्तेजित हुआ। उन्होंने कहा, "आप अपने चदरे के दाम मुझसे ले सकते हैं!"

दीवानाजी के लिए यह बहुत कड़ी बात कह दी गई थी। उन्होंने तड़प कर उत्तर दिया, "आप क्या इस चादर के दाम देंगे? रईसों के कृपा-पात्र बन कर रहने में और भिक्षा-वृत्ति में कोई अन्तर नहीं। पैसे का गर्व वह करे, जिसका निजी पैसा हो!"

रानी शशिप्रभा ने देखा कि मामला बहुत बढ़ रहा है। बड़े करुण स्वर में उन्होंने कहा, "आप लोग शान्त हों; कुसूर मेरा था, मैं माफ़ी मांगे लेती हूं!"

ठीक उसी समय रामेश्वर के साथ उमानाथ तिवारी ने रानी शशिप्रभा के ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया।

रानी शशिप्रभा की जान में जान आई, उठ कर उन्होंने अतिथियों का स्वागत किया।

रामेश्वरप्रसाद ने रानी शशिप्रभा से उमानाथ तिवारी का परिचय कराया, "कुंवर उमानाथ तिवारी—बानापुर के ताल्लुकेदार राजा रामनाथ तिवारी के सुपुत्र और रानी शशिप्रभादेवी!"

"आपका स्वागत है!" रानी शशिप्रभा ने मुस्कराते हुए कहा, "आपके पिता के सम्बन्ध में मैंने बहुत कुछ सुना है—आज आपके भी दर्शन हो गए।"

उमानाथ ने बैठते हुए उत्तर दिया, "और मैंने भी इलाहाबाद आकर आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना और आज जब रामेश्वर ने मुझसे यहां आने का प्रस्ताव किया, तो मैं अपना लोभ न संवरण कर सका।" इसके बाद उसने अन्य सज्जनों पर नजर डालते हुए कहा, "देखता हूं इस प्रयाग नाम के तीर्थ के अन्तर्गत साहित्यिकों का एक और तीर्थ है! यहां के सभी साहित्यिक आपके यहां जमा होते हैं।"

"यह मेरा सौभाग्य है कि यहां साहित्यिक लोग मेरे ऊपर कृपा कर दिया करते हैं!" यह कह कर रानी शशिप्रभा ने श्यामादेवी को बुला कर चाय और जलपान लाने का हुक्म दिया।

चाय शुरू हुई। मिठाई, नमकीन, फलों की बारह-बारह तश्तरियां हर एक मेहमान के सामने आईं। उमानाथ ने आश्चर्य से रानी शशिप्रभा को देखा; उनके मुख पर एक गर्व-भरा उल्लास था—उनकी आंखों में चमक थी, वे वास्तव में सुन्दर दिख रही थीं।

दीवानाजी ने कहा, "आप वास्तव में अन्नपूर्णा हैं, करुणामयी हैं।"

परमसुख ने दीवानाजी की बात पर अपनी बात जोड़ी, "आपकी बदौलत मुझे कभी-कभी अच्छा खाने को नसीब हो जाता है!"

देवीप्रसाद के क्रोध ने शान्त हो कर व्यंग का रूप धारण कर लिया था, "रानी साहेब! आपकी इस चाय और जलपान की खातिरदारी से लोग बुरी तरह से परच गए हैं।"

देवीप्रसाद के इस मजाक का कुछ लोगों ने बुरा माना, लेकिन रानी शशिप्रभा ने बीच में ही कहा, "तो इसमें हर्ज ही क्या है! मेरे पास जो कुछ है, वह आप लोगों की सेवा में है। आप लोगों के खाने-पीने से मुझे कितना संतोष होता है, कितनी प्रसन्नता होती है, यह मैं कह नहीं सकती।"

उमानाथ गौर से यह बातचीत सुन रहा था। उसने मौका अच्छा देखा और वह बोल उठा, "मैं आपकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता, रानी साहेब ! आप साक्षात् वह बात कर रही हैं जो मानवता का चरम ध्येय है। हम लोग केवल साम्यवाद-साम्यवाद चिल्लाया करते हैं।"

पर मालूम होता है कि देवीप्रसादजी पूरी तौर से अपने व्यंगात्मक मूड में आ गए थे। उन्होंने कहा, "मैं तो इसे साम्यवाद के अन्तर्गत जरा भी नहीं समझता। क्योंकि मेरी राय में यहां रुपए का अपव्यय हो रहा है। हमारी श्रेणी वाले लोगों को, जिनमें अधिकांश की मृत्यु तर माल खाने और ज्यादा खाने के कारण होती है, इतना खिला-खिला कर आप उनका हित नहीं, बल्कि अहित कर रही हैं। और साथ ही इस रुपए का, जिसकी जरूरत बहुत से लोगों को रूखा-सूखा खा कर पेट भर कर मृत्यु से बचने के लिए है, अपव्यय करके आप उन भूखों मरनेवालों का अहित कर रही हैं।"

"देवीप्रसादजी—यहां सभी अमीर नहीं हैं!" परमसुख ने कहा।

"हां, मैं मानता हूं, और यह उससे भी बड़ा दुर्भाग्य है। आप अपने को कहेंगे, और परमसुखजी, मैं देखता रहा हूं कि आपने बारह तश्तरियों की जगह चौबीस तश्तरियां साफ़ की हैं। आप ऐसे छोटे-से दुबले आदमी का इतना अधिक खा लेना मुझे आश्चर्य में डाल देता है, क्योंकि मेरा पेट तो एक हिस्से से ही भर गया। मैं समझता हूं कि आप असत्तु करते हैं, इसी वजह से आपकी तन्दुरुस्ती इतनी खराब है। और साथ में आपकी आदत भी बिगड़ती है, क्योंकि मिठाई न मिलने पर आप अमीरों को गालियां बकने लगते हैं।"

कृष्णचन्द्र ने महज इसलिए कि परमसुख उनके साथ आए थे, कहा, "क्या यह नितान्त आवश्यक है कि आप इतनी कटु बात कहें ही ?"

"जी हां। बिना तेजी से कहे हुए बात में असर ही नहीं पैदा होता। फिर सत्य तो कटु हुआ ही करता है!"

"लेकिन सत्य कहने का अवसर भी हुआ करता है!" दीवानाजी ने कहा।

"इससे अच्छा अवसर कब मिलेगा ? यहां खानेवाले और खिलानेवाले सभी मौजूद हैं !"

उमानाथ ने देखा कि अजीब तरह के लोगों का यह जमाव है। सब के सब अपने-अपने ढंग के अजीब-गरीब प्राणी, सब अपनी-अपनी कहने को उत्सुक और दूसरे की सुनने को कोई तैयार नहीं। उसने इस बार बात बदलने की कोशिश की, "मिस्टर देवीप्रसाद ! आप तो साहित्यिक हैं। जो बात आपने कही, वह आपने कहीं लिखी भी है ?"

देवीप्रसाद सिटपिटाए, "जी...लिखी तो नहीं; यह चीज लिखी भी जानी चाहिए, इस पर कभी ध्यान नहीं दिया !"

"यह क्यों ?" उमानाथ ने फिर पूछा, "यदि आपने जो कुछ कहा, उसे वास्तव में आप महसूस करते हैं, तो आपका उस पर न लिखना, अपने अन्तःकरण बात को जनता के सामने न पहुंचाना, अपने प्रति और अपनी कला के प्रति अपराध करना है। और यदि आप उसे नहीं महसूस करते तो इस स्थान पर उस बात को उठाना संस्कृति का अभाव प्रदर्शित करता है !"

उमानाथ ने काफ़ी बड़ी बात कह दी थी, और इस बात को सुन कर देवीप्रसाद का मुंह तमतमा उठा। वे उस बात का कोई उचित उत्तर ढूंढ़ ही रहे थे कि रानी शशिप्रभा बोल उठीं, "कुंवर साहेब ! क्या यह आवश्यक है कि जो कुछ महसूस किया जाय, वह लिखा भी जाय ? ऐसी हालत में तो साहित्य कुरूपता का भाण्डार बन जायगा, क्योंकि दुनिया में कुरूपता बहुत अधिक है—वह हर समय हमारे सामने रहती है।"

"हां, मैं तो ऐसा ही समझता हूं। हमें जीवन की, समाज की, मनुष्य की कुरूपता को प्रदर्शित करके लोगों का उस ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए, ताकि लोग उस कुरूपता को दूर करने का प्रयत्न करें।" उमानाथ ने कहा।

"लेकिन मैं आपसे असहमत हूं !" रानी शशिप्रभा बोल उठीं, "कला को मैं सृजन समझती हूं और कलाकार को सौन्दर्य का सृजन करना चाहिए। दुनिया कुरूपता से पीड़ित है, उसकी दुरवस्था उसके सामने है—नग्न और

वीभत्स ! दुनिया उसे स्वयम् देखती है; सुधारक का काम है कि वह लोगों को उकसावे, उन्हें नेक बनने को प्रेरित करे ! साहित्य का यह काम नहीं है कि वह कुरूपता के दलदल में अपने को फंसाकर दुनिया को उस दलदल में घसीटे । साहित्य का काम है मनुष्य को अपने ऊपरवाले असीम सौन्दर्य की ओर अग्रसर करना; यह याद रखिए कि इस वास्तविक कुरूप दुनिया से परे कल्पना-मय सौन्दर्य की एक दूसरी दुनिया है, जिसकी ओर पीड़ित मानव-समाज को ले जाना ही साहित्य का कर्तव्य है ।"

श्रीयमुनाशंकर से न रहा गया । वे बोल उठे, "धन्य हैं रानी साहबा ! अपने जीवन के परम सत्य को कितनी सुन्दरता के साथ हम लोगों के सामने पेश किया !"

और परमसुख चौबे न खीसें निपोरते हुए कहा, "सुन्दरता की देवी के मन्दिर में हम सुन्दरता के पुजारियों को इसी प्रकार की सुन्दरता मिलती रहे—मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूं !"

इस बात पर दीवानाजी जोर से हंस पड़े । अपने हाथ के मसल्स को फुला कर उनकी ओर गौर से देखते हुए उन्होंने कहा, "दुनिया का सारा सौन्दर्य एक स्वस्थ शरीर में है !"

उमानाथ ने पहले तो दोनों भक्तजनों को गौर से देखा और फिर वह दीवानाजी की ओर देखकर मुस्कराया । लेकिन उमानाथ का मुस्कराना दीवानाजी को अखर गया, "आप मेरी ओर इस प्रकार देख कर मुस्करा क्यों रहे हैं ? आप मेरी बात समझे ही नहीं । ये लोग जो सुन्दरता-सुन्दरता चिल्लाते हैं, ये मरियल सौन्दर्य के रहस्य को ही नहीं समझ सके । जब तक मनुष्य का शरीर स्वस्थ नहीं है, तब तक उसका मन भी स्वस्थ नहीं हो सकता; और सौन्दर्य एक मानसिक स्थिति भर है !"

यह कह कर दीवानाजी उठ पड़े और उनके साथ ही श्रीदेवीप्रसादजी ! दीवानाजी ने कहा, "रात बहुत हो चुकी है, अब हम लोग विदा लेंगे !"

वास्तव में उस समय दस बज रहे थे । अन्य अतिथियों को भी उठना

पड़ा। रानी शशिप्रभा के दूसरे दिन के लिए सार्वजनिक निमन्त्रण के साथ उनका दरबार खत्म हुआ।

६

श्रीविश्वम्भर ने अपने वचनों का पालन किया, हिन्दी के साहित्यिकों की एक बैठक उन्होंने अपने यहां बुलाई। पर उस बैठक में बहुत थोड़े से चुने हुए आदमी ही बुलाए गए थे। आनेवालों में श्रीदीवानाजी, श्रीमती करुणादेवी, श्रीमती मृणालिनीदेवी, श्रीयुत प्राणनाथ, श्रीदेवीप्रसाद, श्रीरघुवंशलाल, श्रीश्यामसलोनेजी और प्रोफ़ेसर किशोर थे। जिस समय उमानाथ ने लक्ष्मणनारायण के कमरे में प्रवेश किया, श्रीश्यामसलोने और श्रीरघुवंशलाल में रहस्यवाद पर बातें हो रही थीं और बाकी सब लोग बड़ी तन्मयता के साथ उस बातचीत को सुन रहे थे। श्रीरघुवंशलाल गोरे-से और खूबसूरत से आदमी थे, सभ्य और सुसंस्कृत। वे एक त्रैमासिक पत्रिका के संपादक थे और साहित्य से उन्हें अच्छी-खासी दिलचस्पी थी। साहित्य के अलावा उन्हें अन्य, जितनी ललित-कलाएं हैं, उन सब से प्रेम था, और इन कलाओं की समालोचना करने के कारण उन्हें प्राचीन हिन्दू कलाओं की कुछ जानकारी हासिल हो गई थी। साथ ही प्राचीन हिन्दू कलाओं को आधुनिकता का रूपक देनेवालों में कुछ न कुछ रहस्यवाद की जानकारी भी आवश्यक होती ही है। लिहाजा श्रीरघुवंशलाल रहस्यवाद पर काफ़ी अधिक और काफ़ी देर तक बातें कर सकते थे। रहस्यवाद के अलावा दुनिया के जितने भी वाद हैं, उनमें भी उन्हें कुछ न कुछ दखल था।

श्रीश्यामसलोने रहस्यवादी क्यों और कैसे बने, इस विषय पर लोगों में काफ़ी अफ़वाहें फैली थीं, और चूंकि वे अफ़वाहें भर थीं, इसलिए उन पर यहां लिखा जाना अनुचित होगा। लेकिन फिर भी उनके सम्बन्ध में वे सब बातें बतलाई जा सकती हैं, जिनका सबूत लोगों के पास था। श्रीश्यामसलोने हाईकोर्ट में वकील थे और उनके कथनानुसार उनका विवाह अभी तक न

हुआ था। विवाह न करने का कारण वे असफल प्रेम बतलाते थे। उनके असफल प्रेम की कहानी इतनी करुण हुआ करती थी कि सुननेवाले का मन सहज ही पसीज उठता था और उसकी आंखों में आंसू भर आते थे। पर एक विचित्र बात यह थी कि अपने असफल प्रेम की कहानी वे केवल उसी समय सुनाते थे, जब स्त्रियों का समूह उनके सामने होता और वे स्त्रियां युवतियां होतीं।

दुनिया में रहस्यवाद के विद्वानों की कमी नहीं, क्योंकि रहस्यवाद की विद्वत्ता ऐसी विद्वत्ता है, जिसकी अभी तक कोई कसौटी नहीं मिली है। इन रहस्यवादियों में हिन्दुस्तानी ही नहीं, बल्कि बड़े-बड़े अंग्रेज शामिल हैं; और रहस्यवादी बन जाने के नाते श्रीश्यामसलोने ने विशेष कर विदेशी रहस्य-वादियों का पत्र-व्यवहार-द्वारा परिचय प्राप्त कर लिया था। उन्होंने उन अंग्रेजी रहस्यवादियों की लम्बी-चौड़ी आलोचनाएँ लिखीं, साथ ही उनके आधार पर अपनी भी एक-आध किताब लिख डाली। इस प्रकार साहित्यिक न होते हुए भी वे रहस्यवाद की कृपा से हिन्दी के प्रमुख साहित्यिक बन बैठे थे।

उमानाथ के आते ही इन दोनों सज्जनों की बातचीत बन्द हो गई थी। उमानाथ ने बैठते हुए कहा, "आप लोग बातचीत जारी रक्खें—किस विषय पर बातचीत हो रही थी?"

श्रीरघुवंशलाल ने उत्तर दिया, "प्रश्न यह है कि अनुभूति का रंगों से कहां तक सम्बन्ध है?"

"अनुभूति और रंग?" उमानाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हां! हमें यह मानना पड़ेगा कि रंगों का जीवन पर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा करता है। सफ़ेद शान्ति का द्योतक है, लाल क्रान्ति का। हरा सम्पन्नता का द्योतक है, पीला ह्रास का और काला मृत्यु का!" रघुवंशलाल ने कहा।

"हो सकता है, पर आप तो चित्रकला की बात कर रहे हैं, उसी प्रकार जैसे कविता में भिन्न प्रकार के छन्द और शब्द-विन्यास एक भावना-विशेष

उत्पन्न करते हैं, अथवा संगीत में विशेष-प्रकार के स्वरों का उतार-चढ़ाव एक भावना-विशेष को जागृत करता है!" उमानाथ ने कहा।

श्रीश्यामसलोने ने, जो अब तक आंखें बन्द किये बैठे थे, अपनी आंखें खोलीं, "रंगों का अस्तित्व है, कला-विशेष के कहीं ऊपर, हमारे साधारण जीवन में। अभी मैं आंखें बन्द किये बैठा था और मेरी आंखों के आगे तरह-तरह के रंग आते थे और चले जाते थे, असीम में विचरण कर रहे थे!" उमानाथ की ओर देख कर श्यामसलोने ने गहरी सांस ली, "रंग और रंगों के अन्दर निहित भावनाएं! हम उनका विश्लेषण नहीं कर सकते। हम केवल उन्हें अनुभव कर सकते हैं। हमारे ऊपर इन विविध प्रकार के रंगों से भरा हुआ एक भावनामय असीम है; बुद्धि के अन्तर्गत ये जितने वाद हैं, ये जितने मत हैं, ये जितनी कलाएं हैं—यह सब मिथ्या हैं; सत्य है बुद्धि के ऊपरवाला—कहीं ऊपरवाला भावनामय सौंदर्य से भरा हुआ असीम, जहां मैं विचरा हूं। उठो, साधना करो! ये सब रहस्य तुम्हारे सामने आवेंगे!"

अपनी मुस्कराहट दबाते हुए श्रीरघुवंशलाल ने कहा, मैं समझता हूं, और मेरी यह समझ बुद्धि अथवा तर्क से प्रेरित है, कि आप ढोंगी हैं।"

श्यामसलोनेजी का मुख वैसा ही शान्त रहा, उनकी मुद्रा वैसी ही गम्भीर रही; हां उनके होठों पर एक हलकी-सी मुस्कराहट अवश्य आ गई "आप मुझे गाली दे सकते हैं! ईसा ने कहा था—'इन्हें क्षमा करो, ये जानते नहीं कि यह क्या कर रहे हैं,—और ईसा और बुद्ध दोनों ही महान् थे!"

बात बदलने के लिए रमेन्द्र ने प्राणनाथ से कहा, "प्राणनाथजी, आप की 'विरह-गान' कविता बड़ी सुन्दर थी, मैंने उसे पांच बार पढ़ा है!"

देवीप्रसाद ने इस प्रशंसा में रमेन्द्र का साथ दिया, "इसमें क्या शक है? मुझे तो ऐसा लगा, मानों उस कविता को आपने अपने आंसुओं से लिखा है।"

प्राणनाथजी को रमेन्द्र की तारीफ पर विश्वास था, लेकिन देवीप्रसाद

की बात पर उन्हें शक था कि वह वास्तव में तारीफ है या उन्हें बनाने की कोशिश है। लिहाजा उन्होंने भी उत्तर दिया, "उसे आंसुओं से नहीं, अपने दिल के खून से लिखा है! समझे!"

करुणादेवी का ख्याल था कि विरह इत्यादि विषय पर यदि किसी को सफलतापूर्वक लिखने का अधिकार है, तो स्त्रियों को, और स्त्रियों में खास तौर से उनको, लिहाजा वे बोल उठीं, "तभी उसमें एक सिसकता हुआ रुदन है!"

"सिसकना आह्लाद है—रुदन सुख है!" श्यामसलोने ने अपने आप ही कहा, "अहा—प्रेम! वासना-रहितनिश्छल प्रेम! असीम का संगीत यहीं है—यहीं!" और श्रीश्यामसलोने ने करुणादेवी की ओर एक ऐसी नजर से देखा कि करुणादेवी के चेहरे पर एक हलकी-सी लाली दौड़ गई!"

इस बात पर दीवानाजी जोर से हंस पड़े, "क्यों, प्रेम-प्रेम चिल्लाते हो! तुमने वेदांत पढ़ा है?"

"वेदांत?" चौंक कर श्यामसलोने ने दीवानाजी की ओर देखा, लेकिन दीवानाजी यह प्रश्न पूछ कर तमाखू बनाने में व्यस्त हो चुके थे।

श्रीविश्वम्भर ने, जो अभी तक मौन सब कुछ सुन रहे थे, अब बोलना अपना कर्तव्य समझा। उन्होंने आरम्भ किया, "मैं समझता हूं कि अब हम लोगों की आपसी बातचीत और वाद-विवाद का अन्त होना चाहिए। हम लोग एक विशेष कार्य के लिए इकट्ठा हुए हैं, अब मेरा प्रस्ताव है कि उसकी कार्यवाही आरम्भ हो।"

"हां-हां! जरूर! हम लोग तो नए-नए कामों की तलाश में ही रहते हैं!" देवीप्रसाद ने कहा।

श्रीविश्वम्भर ने आरम्भ किया "श्रीउमानाथजी से तो आप लोग परिचित हैं ही। आपका यह कहना है कि हिन्दी-साहित्य में प्रगति नहीं है, हिन्दी-साहित्य गलत धारा में बह रहा है। वे चाहते हैं कि हम साहित्यिक समाज और राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य-पालन करें। अब मैं श्रीउमानाथ

से प्रार्थना करूंगा कि वे साहित्य पर अपने विचार प्रकट करें, और यदि उनके पास कोई रचनात्मक कार्यक्रम है, तो पेश करें। श्रीउमानाथ अभी हाल में ही योरप से लौटे हैं और उन्होंने अपने जीवन का एक बहुत बड़ा भाग पाश्चात्य-साहित्य तथा संस्कृति के अध्ययन में व्यतीत किया है।"

सब लोग शांत तथा सतर्क बैठ गए। उमानाथ ने अपने सामने बैठे हुए विचित्रताओं से भरे समुदाय को एक बार गौर से देखा, फिर उसने अपनी बात कहानी आरम्भ की, "मैंने हिन्दी के साहित्यिकों की बातें सुनीं, मैंने इन साहित्यिकों के विचारों पर—यदि उन्हें विचार कहा जा सकता है—गौर किया, और मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि हिन्दी के साहित्यिकों का जमाव पागलों का जमाव है, जिसमें हरेक आदमी अपनी कहता है, बेमतलब और असंगत कहता है, बिना सोचे-समझे कहता है और गलत कहता है। कला की पुरानी रूढ़ियों को हम प्राणों के समान अपनाए हुए हैं, उन्हीं पर हम चल रहे हैं, वही हमारे लिए सत्य हैं और नित्य हैं। हमने बुद्धि रखते हुए भी उस बुद्धि से काम लेने से इन्कार कर दिया; हमने न सोचा, न समझा! हम छलना के इन्द्रजाल में विचरण कर रहे हैं।" कुछ रुक कर उसने फिर कहा, "आज तक हमारे देश में सत् साहित्य का सृजन नहीं हुआ, हो भी नहीं सकता था। हमारे यहां साहित्य की आवश्यकताओं को किसी ने समझा तक नहीं, हम लोग गलत आदर्श लेकर आगे बढ़े। जीवन के प्रमुख संघर्ष की ओर हमारी एक प्रकार की भयानक उपेक्षा रही, अस्तित्व की सार्थकता पर हमने ध्यान नहीं दिया। और इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान एक भी 'वास्तविक कलाकार को जन्म नहीं दे सका।"

दीवानाजी ने टोका, "कालिदास! पाश्चात्य देश के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों ने कालिदास को माना है, गेटे ने उस पर कविता तक लिखी है। आप बिलकुल अनाप-शनाप बक रहे हैं।"

और प्रोफेसर किशोर ने कहा, "कबीर—उससे बड़ा कवि न कभी हुआ है, न कभी होगा।"

प्राणनाथ ने कहा, "जीवन का आदर्श प्रेम है, और प्रेम शृंगार की भावना है। हमारा प्राचीन साहित्य शृंगार-रस से ओत-प्रोत है!"

और देवीप्रसाद ने उठते हुए तेज आवाज में कहा "क्या आप हम साहित्यिकों से रूस और उसके समाजवाद का प्रोपेगेण्डा करवाना चाहते हैं? मिस्टर उमानाथ, आप गलती करते हैं; हम साहित्यिक आपके चक्कर में जरा भी नहीं आने के!"

उमानाथ ने तिलमिला कर कहा, "कौन कहता है कि हम समाजवाद का प्रचार करना चाहते हैं? मेरा कहना केवल इतना है कि हम साहित्यिकों में प्रगति की आवश्यकता है और इसीलिए मैं चाहता था कि हिन्दी-साहित्यिकों को एक प्रगतिशील-लेखक-संघ बना कर युग की समस्याओं पर विचार करना चाहिए—उनको सुलझाने की कोशिश करनी चाहिए।"

प्राणनाथजी की महात्मा गांधी के प्रति भक्ति उस समय उमड़ पड़ी; उन्होंने कहा, "युग की समस्याएं ऐसी नहीं हैं मिस्टर उमानाथ, कि जिनको हम-आप-ऐसे आदमी सुलझा सकें। महात्मा गांधी उसे सुलझा रहे हैं—हम केवल महात्माजी के संदेश-वाहक ही बन सकते हैं।"

और दीवानाजी ने कहा, "लेकिन क्या हमने युग की समस्याओं को सुलझाने का ठीका ले रक्खा है? हम कलाकार हैं और हम युग के निर्माता हैं।" यह कह कर उन्होंने अपनी 'चमेली' शीर्षक कविता पढ़ना आरम्भ कर दिया।

७

उमानाथ वहां से निराश लौटा। उसने देखा कि हिन्दुस्तान की विचार-धारा और संस्कृति समय की रफ्तार के मुकाबिले स्थगित-सी है। उसने महसूस किया कि हिन्दी के साहित्यिक अपनी निजी और आत्म-छलना से जनित कल्पना में अपने को इतना अधिक खो चुके हैं कि वे कुरूप सत्य को देखने के लिए किसी हालत में तैयार नहीं। और उसे आश्चर्य हो रहा था कि एक

उगता हुआ राष्ट्र किस प्रकार जीवन की अवहेलना कर सकता है; किस प्रकार वह बिना साहित्य की सहायता के आगे बढ़ सकता है ।

दूसरे दिन रामेश्वरप्रसाद ने उमानाथ से पूछा, "कहिए कामरेड तिवारी, आपका कुछ काम बना?"

उमानाथ ने एक गहरी सांस ली, "नहीं ! तुम ठीक कहते थे मिस्टर रामेश्वर ! तुम्हारे हिन्दी के जितने साहित्यिक हैं, वे सब के सब मूर्ख और घमण्डी हैं । उन लोगों से मेरा काम नहीं चल सकता।"

कुछ देर तक उमानाथ सोचता रहा। उसने फिर कहा, "लेकिन क्या यह सम्भव नहीं है कि हिन्दुस्तान में कुछ थोड़े-से समझदार और ईमानदार लेखक मिल जायें?"

"जरूर मिल सकते हैं, अगर आप उनसे मिलना चाहें । आप तो नाम और ख्याति के पीछे दौड़ते हैं । आप अगर कहें तो मैं उन्हें यहां लेता आऊं। और मैं विश्वास दिलाता हूं कि उन लोगों से मिल कर आप निराश न होंगे, बल्कि आपको प्रसन्नता ही होगी ।"

"अच्छा ! तो आप उन्हें कब यहां ला सकते हैं?"

"अगर आप चाहें तो आज शाम को ही ।"

"हां, आज शाम को ठीक रहेगा । मैं आपका इंतजार करूंगा।"

रामेश्वर के चले जाने के बाद उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ इलाहाबाद के साम्यवादियों से मिलने चला । कामरेड मारीसन ने इस सभा की आयोजना कामरेड अहमद-द्वारा करवा ली थी।

कामरेड अहमद नवयुवक थे और इलाहाबाद के प्रमुख कांग्रेस-कार्यकर्ता थे । कामरेड अहमद गोरे और खूबसूरत आदमी थे, बहुत ही आला खान्दान के और कामरेड अहमद ने योरप में शिक्षा पाई थी । लेकिन दुर्भाग्यवश वे योरप में कोई भी परीक्षा न पास कर सके, और अन्त में वे समाजवादी बन कर हिन्दुस्तान लौट आए, या यों कहिए कि हिन्दुस्तान लौट कर समाजवादी बन गए ।

डाक्टर अहमद के अभिन्न मित्र डाक्टर सिनहा काले-से, बदशकल-से और नाटे-से आदमी थे। डाक्टर सिनहा समाजवाद के आचार्य माने जाते थे। जिस समय कामरेड मारीसन और कामरेड तिवारी कामरेड अहमद के यहां पहुंचे, डाक्टर सिनहा और डाक्टर भास्कर में समाजवाद में स्त्रियों के स्थान पर बहस हो रही थी। डाक्टर भास्कर लम्बे-से और दुबले-से आदमी थे, और योरप घूमे हुए थे। कांग्रेस-कमेटी के वे एक अधिकारी थे।

उस बहस में डाक्टर सिनहा की तेज आवाज से यह पता चलता था कि डाक्टर भास्कर का पलड़ा भारी पड़ रहा है। डाक्टर सिनहा कह रहे थे, "कम्यूनिज्म में सेक्स मोराल्टी का कोई स्थान नहीं। आप जिस समय सेक्स-मोराल्टी की दुहाई देते हैं, उस समय आप कम्यूनिज्म के बुनियादी सिद्धान्तों पर ही प्रहार करते हैं। आपको यह याद रखना चाहिए कि रूस ने विवाह का अन्त कर दिया है!"

डाक्टर भास्कर ने उत्तर दिया, "आप कैसी बे-सिर-पैर की बात कर रहे हैं डाक्टर सिनहा? रूस में विवाह का अन्त कहां हुआ है? केवल विवाह का रूप बदल गया है। विवाह का धार्मिक-रूप खत्म कर दिया गया है, क्योंकि वहां धर्म का ही खात्मा हो चुका है; अब विवाह का केवल सामाजिक रूप रह गया है, मनुष्यों की सुविधाओं पर अवलम्बित; क्योंकि तलाक के नियम बहुत ढीले कर दिए गए हैं। और आप यह क्यों भूले जाते हैं कि कम्यूनिज्म तो मोराल्टी का किला है, जहां स्वेच्छा नाम की किसी भी चीज का अस्तित्व नहीं है।"

विवाद को रोकने के लिए उमानाथ ने डाक्टर भास्कर का समर्थन किया, "हां, आप ठीक कहते हैं। सेक्स मोराल्टी भी सामाजिक मोराल्टी के अन्तर्गत ही आती है। पर-स्त्री-गमन करनेवाला व्यक्ति अपराधी है ठीक किसी चोर-डाकू की भांति, क्योंकि वह दूसरे की सम्पत्ति हरण करता है।"

"लेकिन स्त्री तो सम्पत्ति नहीं है!" डाक्टर सिनहा ने कहा।

"हां, सम्पत्ति नहीं है, लेकिन वह समाज की एक इकाई तो अवश्य है, जिसका समाज में एक स्थान है, जिसके जिम्मे कुछ कर्तव्य हैं।"

कामरेड अहमद इस बहस से ऊब गए थे, क्योंकि यह बहस करीब एक घण्टे से चल रही थी। उन्होंने झुंझला कर कहा, "छोड़िए भी इस बात को; काम की बातें करनी हैं, और मेरे पास अधिक समय नहीं है।"

सब लोग शान्त बैठ गए। कामरेड मारीसन ने बात आरम्भ की, "कामरेड! मैं आप लोगों से कामरेड तिवारी का परिचय कराता हूँ; ये अभी हाल में रूस से आए हैं। हिन्दुस्तान में जो हमारा काम-काज हो रहा है, वह इनकी देख-भाल में होगा।"

कामरेड अहमद ने उत्तर दिया, "हम लोग कामरेड तिवारी का स्वागत करते हैं।"

अब उमानाथ के बोलने की बारी थी। उमानाथ ने आरम्भ किया, "कामरेड्स! मुझे आए हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ है, और मैं अभी ज्यादा घूम भी नहीं पाया हूँ। लेकिन इस बीच में मैंने दो स्थान देखे—कलकत्ता और कानपुर। ये दोनों स्थान हमारे प्रमुख केन्द्र हैं और इन स्थानों की हालत देख कर मुझे एक प्रकार की निराशा हुई। मैंने देखा कि हमारा कोई संगठन नहीं। मजदूरों में हमारा कोई प्रोपेगेण्डा नहीं। मजदूरों को समाजवाद के सिद्धान्तों में कोई दिलचस्पी नहीं है, और उन्हें दिलचस्पी हो भी कैसे सकती है, जब उनमें समाजवाद के सिद्धान्तों का प्रचार ही नहीं हुआ है। मैंने देखा है कि हमारे देश के मजदूर भेड़-बकरियों से भी गए-बीते हैं। ऐसी हालत में यह लोग क्रान्ति क्या कर सकते हैं? हिन्दुस्तान में हम लोगों का काम नहीं के बराबर हुआ है। मैं देखता हूँ कि हमारे संगठन में एक भयानक शिथिलता है। और मैं पूछता हूँ कि इस शिथिलता का उत्तरदायित्व किस पर है? उत्तर स्पष्ट है! इस शिथिलता का सारा उत्तरदायित्व हम समाजवादी नेताओं पर है। हमारे देश के कम्यूनिस्ट नेता अकर्मण्य बैठे हैं। उनमें लगन नहीं, उनमें उत्साह नहीं।"।

डाक्टर सिनहा बोल उठे, "कामरेड तिवारी, जब तक आप हमारे काम को देखें और समझें न, तब तक आपका हम लोगों पर इस तरह के लांछन

लगाना उचित नहीं। अपने सम्बन्ध में मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने समाजवाद पर एक दर्जन से अधिक महत्त्वपूर्ण लेख लिखे हैं और वे सब के सब भारतवर्ष के प्रमुख अंगरेजी पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। उन लेखों ने देश में तहलका-सा मचा दिया है।"

"और मैं हर दूसरे-तीसरे महीने मजदूरों को मीटिंग में तकरीर किया करता हूँ। साथ ही मैं इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के तुलबा में कम्यूनिज्म का प्रचार कर रहा हूँ!" कामरेड अहमद ने अपनी सफ़ाई दी।

"लेकिन जहां तक मैं समझता हूँ, ये दोनों बातें गलत हैं।" उमानाथ ने कहा, "हमारे सामने सवाल यह है कि उन अंग्रेजी के लेखों को कितने मजदूरों ने पढ़ा? जो लोग आपके अंग्रेजी अखबार पढ़ते हैं, वही लोग समाजवाद पर लिखी हुई अच्छी से अच्छी किताबें पढ़ सकते हैं। इसके अलावा इन अंगरेजी पढ़े-लिखे लोगों में अधिकांश बुर्जुआ मेन्टेलिटी के लोग हैं। हमें चाहिए कि हम जन-साधारण की भाषा में जन-साधारण के सामने अपना सन्देश ले जायें। हमें चाहिए कि हम अपनी बातें देश के मजदूरों से कहें, उन मजदूरों को उनके अधिकार समझावें, उनको क्रान्ति के लिए तैयार करें। और आपका भी कार्यक्रम गलत है, कामरेड अहमद! ये यूनीवर्सिटी के विद्यार्थी, जो ऊंची नौकरी पाने के लिए ऊंची शिक्षा पा रहे हैं, इनमें आपका समाजवाद तभी तक पनप सकता है, जब तक ये विद्यार्थी हैं। क्योंकि इनमें जवानी का जोश है, जीवन की कठिनाइयों से दूर होने के कारण इनमें भी आदर्शवाद है, और इसी कारण इनके उत्साह को देख कर आप समझने लगते हैं कि आप बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। लेकिन इतना याद रखिएगा कि इन विद्यार्थियों का प्रमुख लक्ष्य है गुलामी और लम्बी तनख्वाह! जैसे ही ये जीवन के संघर्ष में पड़े, ये बड़ी आसानी से प्रलोभनों के शिकार बन जाएंगे। यही लोग, जो आज समता-समता के नारे लगाते हैं, भयानक उत्पीड़क बन जाएंगे।"

"आप ठीक कहते हैं, कामरेड तिवारी!" डाक्टर भास्कर ने कहा, "हिन्दुस्तान में जो कुछ हो रहा है, वह गलत हो रहा है। यहां तक कि यह मजदूरों

का संगठन भी गलत है। हिन्दुस्तान में मजदूरों की समस्या है कहां? हिन्दुस्तान इंडस्ट्रियल मुल्क है ही नहीं, यह तो कृषि-प्रधान देश है। और हिन्दुस्तान के किसानों की हालत इतनी गिरी हुई है कि यहां का हरेक किसान मजदूर बनने को तैयार है। जब कि मजदूर की तनख्वाह दस रुपए महीने से लेकर तीस रुपए महीने तक है, वहीं किसान की आय तो कहीं-कहीं दो रुपए प्रति-मास भी नहीं पड़ती। हमें मजदूरों के संगठन की आवश्यकता नहीं है कामरेड तिवारी, हमें किसानों का संगठन चाहिए!"

"क्या आप सुधारक हैं, कामरेड भास्कर!" उमानाथ ने पूछा।

"मैं समझा नहीं!"

"आपने अभी जो बात कही, उससे तो मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि आप कोरी भावुकता के फेर में पड़ कर बुनियादी चीजों की उपेक्षा कर रहे हैं। आप भूखों मरनेवाले किसानों की दशा देख कर उनकी हालत संभालने दौड़ पड़ते हैं और अपने आदर्श को, अपने कार्यक्रम को भुला देते हैं। आप भूखों मरने-वाले किसानों को समाजवादी नहीं बना सकते, क्योंकि उसके पास जमीन है और जमीन सम्पत्ति है। वह मूर्ख किसान अपनी उस दो बीघे जमीन से चिपका हुआ भूखों मरेगा, लेकिन वह आपका साथ न देगा। कामरेड भास्कर! हम सुधारक बन कर हिन्दुस्तान में सर्व-कल्याणकारी क्रान्ति नहीं करा सकते, और इसलिए हमें इन किसानों को छोड़ देना पड़ेगा। हमें बिना सम्पत्तिवाले मज-दूर का ही सहारा लेना पड़ेगा, वही इस क्रान्ति को सफल बना सकता है।"

डाक्टर भास्कर हंस पड़े, "कामरेड उमानाथ! आप हिन्दुस्तान के बाहर रह कर अपने हिन्दुस्तान को एक तरह से भूल ही गए। आपसे किसने कह दिया कि जमीन किसानों की है? यहां आपके पिता ताल्लुकेदार हैं, आप उनसे तो पूछिए। जमीन जमींदार की है, किसान तो केवल उसे जोतता-बोता है। किसान मजदूर से भी गया-बीता है। हिन्दुस्तान की हालत में और रूस की हालत में बड़ा अन्तर है कामरेड उमानाथ!"

डाक्टर भास्कर की हंसी उमानाथ को बुरी लगी। उसने कहा, "कामरेड

भास्कर, मैं हिन्दुस्तान को नहीं भूला, भूले हैं आप! यह जमींदारी-प्रथा पूरे हिन्दुस्तान में नहीं है, यह तो आप जानते ही हैं। और जमींदारी-प्रथा के अन्तर्गत भी जमींदार को केवल इतना अधिकार है कि वह लगान न मिलने पर किसान को बेदखल कर सकता है..."

"ठीक उसी तरह, जैसे मकान का किराया न मिलने पर मकान-मालिक किराएदार को मकान के बाहर निकाल सकता है——यही आप कहना चाहते हैं न!" कामरेड भास्कर ने बीच में ही उमानाथ की बात काटी। "और कामरेड उमानाथ, जमींदारी-प्रथा हिन्दुस्तान के अधिकांश भाग में है?"

डाक्टर सिनहा ने इस विवाद का अन्त करने का प्रयत्न किया, "साधन भिन्न हो सकते हैं, लेकिन आदर्श तो हमारा एक ही है। बिना सम्पत्तिवाले लोगों को इकट्ठा कर के एक क्रान्ति को संचालित करना और पूंजीवाद को नष्ट करना। अब सवाल यह है कि हम लोग किस प्रकार यह सब कर सकते हैं?"

"क्या आपको यह सवाल उठाने का कोई अधिकार है? हमारा मार्ग निर्धारित हो चुका है, उसी मार्ग पर, बिना इधर-उधर देखे, बिना कुछ सोचे-समझे, हमें चलना है। इस प्रकार के सवाल उठा कर आप केवल विकास की गति-विधि में बाधक ही बन सकते हैं!" कामरेड मारोसन ने कहा।

"तो क्या आप लोग हमारी व्यक्तिगत स्वाधीनता का भी अपहरण करना चाहते हैं?" डाक्टर सिनहा ने पूछा।

"समाजवाद में व्यक्तिगत स्वाधीनता नाम की कोई चीज़ नहीं। व्यक्तित्व की भावना समाज से पार्थक्य की द्योतक है, और इसलिए इस व्यक्तित्वमय अहम् को हमें नष्ट करना है!" कामरेड मारोसन ने उत्तर दिया।

"मैं मानता हूं। लेकिन यह नियम हमारे कर्मों पर लागू होना चाहिए, हमारे विचारों पर नहीं। इस नियम को विचारों पर लागू करने से तो मनुष्यता का विकास ही रुक जायगा!" डाक्टर भास्कर ने कहा।

"हां, आप ठीक कहते हैं, यह नियम कर्म पर ही लागू होना चाहिए। पर इस समय यह नियम अपने विचारों पर लागू करना पड़ेगा। यह संक्रान्ति

का काल है, यह असाधारण परिस्थिति का मुकाबिला है, यह हम लोगों के युद्ध का श्रीगणेश है। और युद्ध के समय हमें युद्ध के नियम भी मानने पड़ेंगे। सैनिक सोचता-विचारता नहीं, वह केवल आज्ञा-पालन करता है। कामरेड्स ! आज दुनिया में समाजवाद शिथिल पड़ रहा है, समाजवादी दबाए जा रहे हैं—यह क्यों ? यह इसलिए कि समाजवाद के सैनिक युद्ध के नियमों का पालन नहीं कर रहे हैं, वे सब के सब कार्यकर्ता न होकर विचारक हैं। और इसका नतीजा यह है कि हमारे समाजवादी साथी आपस में ही विचारों के युद्ध में संलग्न हैं; उनमें एका नहीं है। और वर्गवाद अथवा पूंजीवाद उन्हें नष्ट किए देता है।" उमानाथ ने फिर रुक कर कहा, "आपस में इस तरह के बहस-मुबाहिसे हम लोगों को इस समय शोभा नहीं देते, हम केवल अपनी शक्तियों का अपव्यय ही कर रहे हैं। हमें काम करना है—काम !"

कामरेड अहमद ने कहा, "तो फिर आप ही बतलाइए कि काम करने का सही तरीका क्या है ?"

"हमारे नेताओं को मजदूरों के साथ रहना चाहिए, मजदूरों का जीवन व्यतीत करना चाहिए। हमें उनकी चेतना को जगाना होगा और उन पर यह स्पष्ट करना होगा कि वे पददलित हैं, पीड़ित हैं। उन्हें पशुता से ऊपर उठाकर ही आप उन्हें इतना शक्तिशाली बना सकते हैं कि वे हमारी क्रान्ति के स्तम्भ बन सकें। मैं देश के साम्यवादी और समाजवादी नेताओं से मिला, वे सब के सब विचारक हैं, बातूनी हैं; लेकिन उनमें काम कोई नहीं करता। और जो लोग मजदूरों में काम कर रहे हैं, वे इतने अधिक स्वार्थी हैं कि वे मजदूरों का भला करने के स्थान में अपना भला कर रहे हैं। हमें मजदूरों का विश्वासपात्र बनकर काम करना होगा।"

८

शाम के समय कुछ थोड़े से यूनीवर्सिटी के विद्यार्थी रामेश्वरप्रसाद के साथ राजेन्द्रकुमार के ड्राइंग-रूम में एकत्रित हुए। इन लोगों में प्रमुख थे

जीवनकृष्ण, उदयशंकर, नमाज़अहमद और सादिकअली। जीवनकृष्ण और नमाज़अहमद एम० ए० फ़ाइनल के विद्यार्थी थे और अक्सर पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिख दिया करते थे। उदयशंकर एम० ए० प्रीवियस में थे और कवि थे तथा सादिकअली बी० ए० में थे और उर्दू के अच्छे विद्यार्थी थे।

चाय समाप्त हो जाने के बाद उमानाथ ने अतिथियों से बातचीत आरम्भ की, "आप लोगों से मिस्टर रामेश्वरप्रसाद ने तो बतला ही दिया होगा कि हम लोग किसलिए इकट्ठा हुए हैं।"

"जी हां!" जीवनकृष्ण ने कहा, "और आज से नहीं, मैं तो चार साल से कहता आ रहा हूं कि हिन्दुस्तानी लिखी जानी चाहिए और हिन्दुस्तानी की लिपि रोमन ही हो सकती है।"

जीवनकृष्ण की बात काटते हुए उदयशंकर ने कहा, "मैं इसका विरोध करता हूं। मैं यह मानता हूं कि हिन्दुस्तानी अवश्य लिखी जानी चाहिए, लेकिन हमारे सामने देवनागरी लिपि मौजूद है और वह परफ़ेक्ट लिपि है। ऐसी हालत में देवनागरी लिपि का ही प्रयोग होना चाहिए—रोमन लिपि की कोई आवश्यकता नहीं।"

उमानाथ की समझ में यह बातचीत नहीं आई। उसने आश्चर्य से इन दोनों महानुभावों को देखा। तब तक सादिकअली बोल उठे, "जनाब उदय-शंकर साहेब, आपको यह वाज़े हो कि हम मुसलमान नागरी की मुख़ालिफ़त करते हैं, और इस हिन्दुस्तानी ज़बान की स्क्रिप्ट नागरी किसी हालत में नहीं हो सकती। हम फ़ारसी छोड़ें और आप संसकीरत छोड़िए, और हम दोनों अपनाएँ रोमन! इसी तरह मेल कायम रह सकता है और यह मसला हल हो सकता है।

"जी हां! हम हिन्दू-धर्म छोड़ें और आप मुसलमान-धर्म छोड़ें। और हो जायें दोनों ईसाई। बस हिन्दू-मुसलिम प्राब्लेम हल हो गया!" उदयशंकर ने तीखे स्वर में कहा।

नमाजअहमद ने उत्तर दिया, "उदयशंकर साहेब, हम लोगों के सामने कौमियत का झगड़ा नहीं है और मैं भाई सादिक के वजूहात से मुत्तफ़िक नहीं। मेरा कहना तो महज इतना है कि रोमन स्क्रिप्ट नागरी स्क्रिप्ट से ज्यादा बेहतरीन है। वह जल्दी लिखी जाती है, आसानी से छप सकती है और चूंकि हम लोग दिनों दिन दुनिया की रफ्तार के साथ चलने की कोशिश कर रहे हैं, और दुनिया के ज्यादहतर मुल्कों में रोमन स्क्रिप्ट का रिवाज है, लिहाजा हमें भी रोमन स्क्रिप्ट अपना लेना चाहिए। क्यों मिस्टर जीवनकिशन साहेब, गालिबन आप भी यही कहना चाहते थे न!"

इसके पहले कि जीवनकृष्ण मय अपने वजूहात के अपने विचार प्रकट करें, उमानाथ ने कहा, "मेरा खयाल है कि आप लोगों ने मेरा मंशा किसी कदर गलत समझा है। हम लोग स्क्रिप्ट का झगड़ा सुलझाने नहीं इकट्ठा [illegible] हैं।"

अब रामेश्वर के बोलने की बारी थी, "नहीं मिस्टर उमानाथ, हम लोग आपका मंशा बिलकुल ठीक समझे हैं और यहां आने के पहले ही मैंने अपने दोस्तों को आपका इरादा बतला दिया था। मेरे सब दोस्त इस बात से सहमत हैं, और इस बात को यहां उठाना बेकार है। असल सवाल हमारे सामने अपने विचारों को प्रकट करने के माध्यम का है।"

"जी हां!" जीवनकृष्ण ने कहा, "माध्यम का सवाल सबसे पहले उठता है। हम जो चीज मासेज के लिए लिखें, वह हम मासेज की जुबान में भी लिखें, और मास न संस्कृताइज्ड हिन्दी समझती है और न पर्शियनाइज्ड उर्दू समझती है। लोग समझते हैं हिन्दुस्तानी। अब सवाल यह आता है कि हिन्दुस्तानी किस स्क्रिप्ट में लिखी जाय। और हम लोगों में अधिकांश का मत है कि इसके लिए रोमन लिपि ही सब से अच्छी लिपि रहेगी।"

"मैं रोमन लिपि और हिन्दुस्तानी—इन दोनों का विरोध करता हूं।" उदयशंकर ने कहा। "आपकी यह हिन्दुस्तानी है क्या बला? जरा ग्रामों में जाइए और देखिए कि वहां के लोग किस भाषा का प्रयोग करते हैं! उनकी भाषा हिन्दी है—विशुद्ध हिन्दी। यह उर्दू के शब्दों से लदी हुई हिन्दुस्तानी—

इसे शहरों के अदालत-पेशावाले कुछ थोड़े-से इने-गिने आदमी ही बोलते हैं और समझते हैं!"

"वल्लाह, आप कितनी लगी बात कर रहे हैं उदयशंकर साहेब! शहरों का हरेक इंसान उर्दू बोलता है—खालिस उर्दू! चाहिए तो जबान उर्दू क्योंकि वह शुरफ़ा की जुबान है, लेकिन मैं हिन्दुस्तानी पर समझौता करने को तैयार हूं, इस शर्त पर कि वह रोमन स्क्रिप्ट में लिखी जाय। अगर यह नहीं होता तो मैं ही क्या, हम सब के सब मुल्क के मुसलमान आप का साथ नहीं देंगे।" सादिकअली ने तैश में आकर कहा।

इस वाद-विवाद से उमानाथ आजिज़ आ गया था। उसने उठते हुए कहा, "और मेरी समझ में यह आ गया कि आप लोगों से मेरा काम न चलेगा। आप लोगों के सामने ऐसे मसले हैं, जिनकी मैंने कभी कल्पना न की थी।"

रामेश्वरप्रसाद सिटपिटाए, "मिस्टर तिवारी—इस बात पर आप ध्यान न दें—हम लोग प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन बनाने के लिए आए हैं और हम सीधे उसी सबजेक्ट पर बात करेंगे।"

"बहुत अच्छा, तो आप लोग यह एसोसिएशन बनाइये, मेरे सर में दर्द हो रहा है। तो मैं जरा घूमने जा रहा हूं!"

दूसरे दिन सुबह कामरेड मारीसन ने उठते ही उमानाथ से कहा, "कामरेड उमानाथ! अब मैं यहां से चलूंगा। आपने अपना काम-काज तो समझ ही लिया है, और जो कुछ नहीं समझा है, उससे ज्यादा आप मेरे बिना समझ लेंगे। इसलिए बेकार यहां रुकना मुझे अखर रहा है। कल सुबह मेल से मैं बम्बई जा रहा हूं। वहां से बोट लूंगा।"

"अरे कामरेड—इतनी जल्दी!"

"हां कामरेड! और इतनी जल्दी जाने का एक कारण और है। मैंने हिन्दुस्तान के इस रूप को पहले कभी न देखा था जो तुम्हारे साथ देख रहा हूं। मेरा तो सर चक्कर खाने लगता है!" और कामरेड मारीसन ज़ोर से हंस पड़े।

दूसरा खण्ड

पहिला परिच्छेद

१

"कितने जोरों की सर्दी है--हाथ-पैर ठिठुरे जाते हैं ! प्रभानाथ--कितना बजा है ?"

"एक बज कर पन्द्रह मिनट !" टार्च के प्रकाश में हाथवाली घड़ी को देखते हुए प्रभानाथ ने कहा, "सिर्फ़ एक बज कर पन्द्रह मिनट, और गाड़ी आती है तीन बजे ! दानव-सी काली, डरावनी और लम्बी रात, और उस पर यह पाले की हवा !" प्रभानाथ हँस पड़ा, "लेकिन—लेकिन, शायद इस सब का भी जिन्दगी में एक विशेष स्थान है, एक विशेष महत्ता है !"

"हो सकता है. लेकिन मुझे अगर इस महता की जगह इस वक्त एक प्याला गरम चाय मिल सकती तो ज्यादा अच्छा होता । आखिर इन अकड़े हुए हाथ-पैरों को तो ठीक करना पड़ेगा !" सरदार ने मुस्कराते हुए कहा।

"हां, और इस समय हम लोगों के हाथ-पैर का काम है; विचारों का काम समाप्त हो चुका !" और इतना कह कर वीणा ने थरमास फ्लास्कवाली चाय का आधा-आधा प्याला वहां एकत्रित पांचों आदमियों को दिया।

ये पांचों व्यक्ति रायबरेली से चौदह मील की दूरी पर रेलवे लाइन के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे हुए थे । इक्कीस दिसम्बर १६३० की काली रात—चारों ओर गहरा अन्धकार छाया हुआ था। इन पांचों के पास पिस्तौलें थीं और ये अपने मुंह पर नकाबें डाले हुए थे । कुछ दूर पर एक कार खड़ी थी, जिस पर ये लोग आए थे।

इन पांच आदमियों में प्रभानाथ और वीणा के अलावा तीन आदमी और थे, जिनका थोड़ा-सा परिचय इस जगह आवश्यक है । पहले थे सरदार। सरदार का नाम था विजयसिंह और वह इस दल का मुखिया था। विजयसिंह की अवस्था लगभग तीस वर्ष की थी और वह कानपुर में मोटर इंजीनियर था ।

चौथे का नाम था मार्तण्ड और वह लखनऊ यूनीवर्सिटी में डिमांस्ट्रेटर था । उसकी अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष की थी । पांचवें का नाम था मनमोहन और मनमोहन के सम्बन्ध में सरदार को छोड़ कर और किसी को कोई ज्ञान न था । मनमोहन कौन है, कहां रहता है, क्या करता है—यह सब का सब उसके परिचितों के लिए एक रहस्य था ।

मार्तण्ड चाय पी रहा था और कहता जा रहा था, "नहीं वीणाजी, विचारों का काम न कभी खत्म हुआ है और न कभी खत्म होगा । हमारे—यानी हरएक मनुष्य के हर काम की तह में एक विचार है ?"

मनमोहन हँस पड़ा, "हां! हरएक मनुष्य के हर काम के तह में एक विचार है; लेकिन हरएक आदमी मनुष्य है कहां? फिर हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, कभी-कभी उस पर गौर से सोचने पर यह मालूम होता है कि वह चीज मनुष्यता से परे है!"

प्रभानाथ ने ध्यान से मनमोहन को देखा, मनमोहन सर झुकाए बैठा था । लेकिन उसे शायद प्रभानाथ की उस कौतूहल से भरी दृष्टि का पता था । उसने कहा, "आप इस तरह मुझे देख क्यों रहे हैं? मैंने यह तो नहीं कहा कि वह चीज मनुष्यता से गिरी हुई है, मैं शायद उसे मनुष्यता से ऊपर की चीज भी कहना चाहूंगा । आप ही सोचिए—हम जो कुछ कर रहे हैं, क्या उसका श्रेय हमें कभी मिलेगा ? इतनी भयानक रात; हाथ-पैर ठिठुर रहे हैं; और हम यहां, इस एकांत जंगल में बैठे हैं । हम लोग इस समय बड़े मजे में लिहाफ़ के भीतर पैर फैलाए मीठी नींद सो सकते थे। और मैं पूछता हूं कि आखिर यह सब किस लिए ? ट्रेन को रोक कर खजाना लूटने के लिए न! उस

खजाने के साथ राइफ़िलें लिये हुये पुलिसमैन होंगे। खजाना बचाने के लिए बहुत सम्भव है, वे हमारा मुकाबला करें और गोलियां चलावें। कौन जानता है कि हममें से किसको वह गोली लगे। और अब सवाल यह है कि हम यह खजाना क्यों लूट रहे हैं? इसलिए न कि हमें अस्त्र-शस्त्र मँगाने के लिए रूपया चाहिए। यह रूपया हमारे निजी उपयोग में नहीं आएगा, यह रूपया हम देश के काम के लिए लूट रहे हैं। और इस सब के बदले हमें मिलता क्या है? हम खुले आम चलने से डरते हैं, हम अपना नाम नहीं जाहिर कर सकते, हम आपस में एक-दूसरे से खुल कर नहीं मिल सकते। हर समय हमें एक कृत्रिम जीवन बनाए रखना है; हमें एक आवरण के नीचे रहना है, और उस आवरण को हटा कर सांस लेने का भी तो हमारे पास समय नहीं।"

मनमोहन कहते-कहते अचानक रुक गया, विजयसिंह एक गाना गुनगुना रहा था।

"उर की लाली से मुख की कालिख धो लो—

सर आज हथेली पर है बोली बोलो।"

मनमोहन गौर से इस गाने को सुनने लगा। कितना मीठा स्वर था। विजयसिंह की आवाज थोड़ी-सी कांप रही थी। मनमोहन ही नहीं, सभी लोग मन्त्र-मुग्ध की भांति उस गाने को सुन रहे थे। विजयसिंह रुक गया, उसने एक ठंढी सांस ली, फिर उसने मनमोहन की ओर देखा, "क्यों, अपनी बात कहते-कहते रुक क्यों गए?"

मनमोहन ने झुंझला कर कहा, "बात किससे करूं? तुम लोग सब के सब एक अजीब तरह की मस्ती में गर्क हो; भगवान् जाने इस मस्ती का अन्त क्या होगा? लेकिन मैं कहता हूं कि मैं इस कृत्रिम जीवन से ऊब गया हूं। भेदों को छिपाते-छिपाते मैं आजिज आ गया हूं। मैं किसी पर विश्वास नहीं कर सकता, किसी से खुल कर मिल नहीं सकता। और इस सब का असर यह हुआ कि मेरी आत्मा संकुचित हो गई है। और रही वीरता......वहां भी..." मनमोहन ने न जाने क्यों यह वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

"वहां भी ?..." जरा कड़े स्वर में विजयसिंह ने पूछा ।

"जाने भी दो, वह बात न कहूंगा । उसको सुन कर हममें से हरएक को धक्का-सा लगेगा।"

"नहीं मनमोहन , बात उठी है तो कही डालो!" मार्तण्ड ने कहा।

"अच्छी बात है। अगर कटु सत्य सुनना ही चाहते हो तो कहता हूं। हम सब समझते हैं कि हम वीर हैं—है न ? और मैं समझता हूं कि हम सब कायर हैं। हम सब वीर थे, ऐसे वीर कि किसी भी देश को हमारी वीरता पर गर्व हो सकता था, और उसी वीरता के कारण हम सब प्राणों की बाजी लगाकर निकल पड़े हैं । लेकिन अब हम सब घोर कायर बन गए हैं। जिस तरह हम रहते हैं, जिस तरह हम काम करते हैं, उससे हमारी वीरता तिल-तिल घुट कर मर गई । अब हमारे समान कायर कोई नहीं है!"

"मैं इसका सबूत चाहता हूं !" खड़े होकर और छाती फुला कर विजयसिंह ने कहा।

"सबूत !...हा-हा-हा !" एक व्यंगात्मक हंसी हंसते हुए मनमोहन ने कहा, "हमारी हरएक हरकत में इसका सबूत है। आखिर हमारी यह कृत्रिम जिन्दगी क्यों ? हम जो कुछ करते हैं, वह चुरा-छिपा कर क्यों करते हैं ? यह सब केवल इसलिए कि हम डरते हैं, हममें एक प्रकार का भय भर गया है; और यह भय ही कायरता है!"

विजयसिंह बैठ गया, "नहीं मनमोहन, यह भय नहीं है, यह बुद्धिमानी है । हम लोग जानते हैं कि जो कुछ हम करते हैं, उसका दण्ड मृत्यु है, लेकिन फिर भी हम वही सब करते हैं । मृत्यु से हमें डर नहीं, लेकिन बेकार के लिए हम मृत्यु को अपनाना नहीं चाहते । आत्म-रक्षा को तुम भले ही कायरता कहो, मैं तो उसे सिर्फ़ बुद्धिमानी कहूंगा।"

मनमोहन ने विजयसिंह को देखा—उसकी भौंहें सिकुड़ी हुई थीं, उसके मत्थे पर बल पड़े थे—ऐसा मालूम होता था कि विजयसिंह ने उसके मन की बात कह दी हो। उसने एक ठंडी सांस ली, "यही उत्तर मैं भी अपने अन्दर-

वाले तर्क को दे दिया करता हूं, और इसी उत्तर से अपने कामों को ठीक साबित करने की कोशिश करता रहता हूं। लेकिन विजयसिंह—संतोष नहीं होता, जरा भी संतोष नहीं होता। पीछे से हमला करना, अंधेरे में काम करना, अज्ञात में रहना! हमारी जिन्दगी सच्ची नहीं, सीधी नहीं। हमारा अस्तित्व एक भयानक झूठ है। माना कि एक बहुत बड़े काम के लिए हमें यह सब करना पड़ता है, लेकिन एक बड़े काम के लिए अपनी मनुष्यता को इतना गिरा लेना, जीवन के श्रेष्ठ आदर्शों से इतना अलग हो जाना—यह कहां तक उचित है ?"

मनमोहन चुप हो गया। गहरा सन्नाटा छाया था और हर एक आदमी सोच रहा था। मनमोहन ने जो बात कह दी थी, वह ऐसी नहीं थी कि उसकी उपेक्षा की जा सके; उसकी बात उस पाले की रात से अधिक ठंडी थी—मनमोहन ने स्वयं इसका अनुभव किया, फिर उसने धीरे से कहा, मानों वह यह बात अपने से ही कह रहा हो, "बात कहां तक उचित है—यह प्रश्न ही क्यों ? हमारे आदर्श ही क्या हैं ? यही नहीं, हमारा जीवन ही क्या है ? हममें से हर एक वह काम करता है, जिसमें उसे सुख मिलता है; और वह अपने काम के औचित्य को सिद्ध करने के लिए एक आदर्श गढ़ लेता है। हममें हिंसा है, और हमें उस हिंसा को तुष्ट करना है। हम मरते हैं इसलिए कि हमें मरना है। रोग और बेकारी से न मर कर हम दूसरों का हित करने के लिए मरते हैं। हम मारते हैं—और जिसे हम मारते हैं, वह आज नहीं, तो कल जरूर मरेगा। लेकिन उसके आज मरने से देश का कल्याण है, उसके हमारे हाथ से मरने से देश का कल्याण है, और इसीलिए हम मारते हैं..." मनमोहन कहते-कहते उठ खड़ा हुआ, "और हम ठीक करते हैं। हम बचने की कोशिश करते हैं, हम छिप कर काम करते हैं, हम पीछे से प्रहार करते हैं—यह सब अपने लिए नहीं, अपने आदर्श के लिए। हम में से हरएक के जीवित रहने ही से हमारा आदर्श पनप सकता है, हमारा काम बन सकता है।"

विजयसिंह ने कड़े और गम्भीर स्वर में कहा, "मनमोहन! चुप रहो! गाड़ी आने का वक्त हो रहा है!"

और दूर से ट्रेन की आवाज सुनाई पड़ी, रात के गहरे सन्नाटे को चीरती हुई। सब लोग उठ खड़े हुए। उस समय उन लोगों में एक अजीब तरह की स्फूर्ति आ गई थी। सब लोग रेलवे लाइन के आस-पास खड़े हो गए। इंजन की सर्चलाइट उस अंधकार के कुछ थोड़े-से भाग को प्रकाशमय बना कर अंधकार की भयानकता को और भी भयानक बना रही थी। ये पांचों आदमी दरख्तों की आड़ में छिपे थे। गाड़ी आई और तेजी से निकल गई---रुकी नहीं।

विजयसिंह ने कहा, "अरे! यह क्या हुआ?"

"चुप रहो!" मनमोहन बोल उठा, "और मुझे सोचने दो। गाड़ी रुकी क्यों नहीं? क्या वे लोग जगह भूल गए? क्या वे लोग सो गए? क्या वे लोग उस गाड़ी में थे भी? मामला क्या है?" और वह प्रभानाथ की ओर घूमा, "प्रभानाथ, हमें रायबरेली चलना होगा!"

"हां! हमें रायबरेली चलना होगा!" विजयसिंह ने समर्थन किया।

"लेकिन रायबरेली चलने से फायदा?" मार्तण्ड ने पूछा, "इस रात के समय एक कार का स्टेशन पर रुकना और फिर वहां से चल देना! लोगों में शक हो सकता है। नहीं, हमें लखनऊ चलना चाहिए; वहीं पता लग सकता है।"

प्रभानाथ

सब लोग कार पर बैठ गए; ~~उमानाथ~~ ड्राइव कर रहा था। विजयसिंह, मार्तण्ड, मनमोहन—ये तीनों पीछे थे, वीणा और प्रभानाथ आगे। कार चल रही थी और मनमोहन बोल रहा था—अपने से, "गाड़ी निकल गई—और अच्छा ही हुआ। लेकिन मुझे ताज्जुब हो रहा है कि मुझमें यह भावना क्यों उठ रही है! खतरे से यह झिझक, संघर्ष के प्रति यह उदासीनता—आखिर यह सब क्यों? क्या हम सब लोगों में यही भावना थी—क्या हम सब लोगों को गाड़ी निकल जाने से एक खुशी-सी हुई?"

"नहीं!" विजयसिंह ने कहा, "गाड़ी निकल जाने से मुझे अफसोस हुआ!"

"हूं! देखता हूं कि मेरी नर्व्ज़ (nerves) कुछ कमजोर हो रही हैं। जाने भी दो। अब लखनऊ चल कर उन लोगों से दरियाफ्त करना है कि यह सब क्यों हुआ। प्रभानाथ, क्या हम लोग ट्रेन पहुंचने से पहले लखनऊ पहुंच जायंगे?"

"करीब एक घंटा पहले!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"एक घंटा तो बहुत समय होता है! यह एक घंटा प्रगाढ़ निद्रा में डूबे हुए लखनऊ शहर में न बिता कर अगर हम यहीं, इस सड़क पर बितावें तो ज्यादा अच्छा होगा। वीणाजी! क्या थोड़ी-सी चाय है?"

"हां! अभी थरमास की दूसरी बोतल भरी हुई है!" वीणा ने कहा।

"तो प्रभानाथ, कार रोक दो। हम लोग एक-एक प्याला चाय और पी लें!"

प्रभानाथ ने कार रोक दी। वीणा ने थरमास से निकाल कर सब को एक-एक प्याला चाय दी।

इसी समय कार के पास आकर एक इक्का रुका। थानेदार रामप्रकाश अपने इलाके के सबसे बड़े जमीन्दार की दावत खाकर इक्के में बैठे घर लौट रहे थे। सड़क के बगल में एक मोटर कार को खड़ी देख कर थानेदार साहब को शक हुआ। कांस्टेबिल भोला को उन्होंने यह पता लगाने को भेजा कि कार में बैठे हुए लोग कौन हैं और क्या कर रहे हैं।

भोला ने आकर प्रभानाथ से कहा, "क्या आप लोगों की मोटर खराब हो गई है? थानेदार साहब का इक्का है—वहां! कहिए तो वह आप लोगों को रायबरेली तक पहुंचा दें!"

"नहीं, हमारी मोटर बिल्कुल अच्छी है। हम लोग जरा चाय-वाय पी रहे हैं।"

भोला ने लौट कर रामप्रकाश से कहा, "दारोगाजी, मोटर तो ठीक है। चार-पांच आदमी हैं और साथ में एक औरत भी है। और वे लोग कुछ पी रहे हैं।"

"समझ गया ! साले बदमाश हैं। मालूम होता है किसी औरत को कहीं से भगाए लिए जा रहे हैं !" यह कह कर रामप्रकाश इक्के से उतर पड़े और कार की तरफ बढ़े।

प्रभानाथ ने जरा घबराहट के साथ कहा, "यह पुलिस-इंसपेक्टर तो बुरा हमारे पीछे पड़ा। अब क्या करना चाहिए ?"

"आने भी दो—देखो क्या होता है !" मनमोहन ने अपनी पिस्तौल संभालते हुए उत्तर दिया।

रामप्रकाश कार के नजदीक आ गए। उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "क्या मैं जान सकता हूं कि आप लोग कौन हैं, कहां से आ रहे हैं, कहां जा रहे हैं और यहां क्या कर रहे हैं ?"

उत्तर में विजयसिंह ने कहा, "पहले हम यह जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं और आपको क्या हक है कि आप हम लोगों से यह सवाल करें ?"

"मैं सब इंसपेक्टर हूं, इस इलाके का इंचार्ज हूं।"

"आप बहुरूपिये हैं !" मनमोहन ने कहा और हंस पड़ा, "जाइये थानेदार साहेब, अपना काम देखिये।"

"भोला !' रामप्रकाश ने आवाज दी, "जरा दियासलाई तो लाना, इन लोगों की शक्ल देखूं।" और भोला ने जो वहीं खड़ा था दियासलाई जलाई। थानेदार रामप्रकाश सहमकर दो कदम पीछे हटे, "अच्छा तो आप लोग नकाबपोश हैं यानी बदमाश हैं। आप लोगों को थाने पर चलना होगा।" अपना रिवाल्वर निकालते हुए उन्होंने कहा।

"बेवकूफ कहीं का। ख्वामख्वाह जान देने आया है, तो ले !" और इसके पहले रामप्रकाश अपना सर्विस रिवाल्वर तानें, मनमोहन के पिस्तोल की गोली रामप्रकाश के मत्थे में घुस गई। "मार डाला सालों ने !" कहते हुए रामप्रकाश वहीं गिर पड़े।

भोला रामप्रकाश की चीख सुनकर भागा, लेकिन विजयसिंह ने कड़क कर

कहा, "खबरदार जो भागे—हम तुम्हें मारेंगे नहीं !" भोला रुक गया। सब लोगों ने उतर कर भोला को पेड़ से बांध दिया। इसके बाद मनमोहन ने रामप्रकाश का रिवाल्वर अपने कब्जे में किया। इक्कावाला गुम-सुम बेहोश-सा बैठा था। उन लोगों ने उसके हाथ-पैर बांधकर उसे इक्के में ही डाल दिया। फिर कार लखनऊ की तरफ़ रवाना हो गई।

जैसे ही कार स्टेशन के पास रुकी, वैसे ही इलाहाबादवाली गाड़ी आ गई। दो क्रान्तिकारी गाड़ी से उतरे, इन लोगों के हाथ यह काम सिपुर्द किया गया था कि वे जंजीर खींचकर निर्दिष्ट स्थान पर गाड़ी रोक दें।

मनमोहन ने एक से पूछा, क्या हुआ जो तुमने गाड़ी नहीं रोकी ?"

अगले डब्बे की ओर इशारा करते हुए उसने उत्तर दिया, "देखते हो ?"

मनमोहन ने देखा कि गोरी फ़ौज की एक कम्पनी उस डब्बे से उतर रही है।

"हां, समझ गया। अच्छा, अब एक महीने के लिए हमें गायब होना है। हम लोगों को जरा सावधान रहना पड़ेगा।"

२

सब लोग चले गए; कार पर केवल तीन व्यक्ति रह गए, प्रभानाथ, वीणा और मनमोहन। मनमोहन आंखें बन्द किए हुए पिछली सीट पर बैठा था। प्रभानाथ ने मनमोहन से कहा, "कहिए, अब आप कहां जाइएगा ?"

मनमोहन ने चौंककर आंखें खोल दीं। उसने अपने चारों ओर देखा, मानों वह उस जगह को पहचानने की कोशिश कर रहा हो, जहां वह है। फिर उसने धीरे से कहा, "मैं खुद नहीं जानता कि मैं कहां जाऊंगा !" और उसने मुस्करा दिया। गाड़ी से उतरते हुए उसने कहा, "मैंने सोचा नहीं था कि कहां जाना होगा। मेरा घर-बार कुछ भी नहीं है। सोचा था लखनऊ में कुछ दिन रहूंगा, लेकिन देखता हूं कि मुझे यहां से चल ही देना चाहिए।"

प्रभानाथ आश्चर्य-चकित मनमोहन को देख रहा था। उसकी बातें अजीब तरह की थीं, उसे कौतूहल हुआ। उसने कहा, "अगर आप इतने ही फ़ालतू हैं, जितना आपने अपने को इस समय प्रदर्शित किया है, तब तो आपको मेरे यहां कुछ दिन रहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए!"

"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं—आप ही ने मुझसे कार से उतरने को कहा था!" मनमोहन हंस पड़ा और वह कार में फिर से बैठ गया।

जिस समय ये लोग उन्नाव पहुंचे, पण्डित रामनाथ तिवारी पूजा समाप्त करके उठे थे। वीणा अपने कमरे में चली गई, प्रभानाथ मनमोहन को साथ लेकर अपने पिता के पास गया। "यह मेरे मित्र मनमोहन हैं। मेरे क्लास-फ़ेलो थे, आज सुबह आए हैं।" प्रभानाथ ने अपने पिता से मनमोहन का परिचय कराया।

"मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई!" मनमोहन के नमस्कार का उत्तर देते हुए रामनाथ ने कहा, "इनका असबाब वगैरह रखवाओ!"

प्रभानाथ ने कहा, "सिर्फ़ दिन भर के लिए ये कानपुर से आए हैं।"

रामनाथ तिवारी से कुछ थोड़ी-सी बातें करके दोनों अन्दर गए। पीछे-वाले बरामदे में वीणा चाय और नाश्ता लिए बैठी इन दोनों का इन्तजार कर रही थी। तीनों ने बैठकर चाय पी।

"अब क्या हो?" नाश्ता समाप्त करके मनमोहन ने पूछा।

"अब सोया जाय!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"आप लोग सोइए, मुझे तो स्कूल जाना है। अगर सम्भव हुआ तो स्कूल में थोड़ा-सा सो लूंगी।"

प्रभानाथ मनमोहन को अपने कमरे में ले गया। मनमोहन को लिटाकर प्रभानाथ जब लौटा, वीणा बरामदे में मौन बैठी कुछ सोच रही थी। वह अपने विचारों में इतनी खोई हुई थी कि उसे प्रभानाथ के आने का पता तक न लगा।

प्रभानाथ वीणा की कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया। वीणा के कंधे पर हाथ रखते हुए उसने कहा, "कहो, क्या सोच रही हो?"

वीणा वैसी ही बैठी रही, उसने केवल अपना सर उठा दिया। प्रभानाथ की आंखों से अपनी आंखें मिलाते हुए उसने कहा "प्रभा ! मैं सोच रही थी कि जो कुछ हो रहा है, वह गलत हो रहा है। और मनमोहन को यहां ठहरा कर तुमने अच्छा नहीं किया।"

"क्यों ?"

"मेरा ऐसा खयाल है कि मनमोहन का नाम मनमोहन नहीं है---उसका नाम प्रभाकर है।"

प्रभानाथ चौंक उठा। 'प्रभाकर' नाम से वह परिचित था; वही नहीं, सारी दुनिया उस नाम से परिचित थी। प्रभाकर के नाम करीब पन्द्रह वारंट थे, और वह लापता था।

प्रभानाथ कुछ सोचता रहा, फिर उसने कहा, "लेकिन वह प्रभाकर नहीं हो सकता। जिस तरह की बातें वह करता रहा है, उस तरह की बातें प्रभाकर के मुख से सुनने की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता।"

वीणा उठ खड़ी हुई। प्रभानाथ के पास, बहुत पास आकर उसने कहा, "नहीं प्रभा ! जिस तरह की बातें मनमोहन ने कीं, उस तरह की बातें एक ऐसा ही आदमी कर सकता है, जिसने सिद्धान्त और कर्म के साथ अपना जीवन तन्मय कर दिया हो। और तुमने देखा—उस सब इंसपेक्टर को गोली मारनेवाला आदमी कोई अनाड़ी नहीं हो सकता।"

दोनों एक दूसरे को थोड़ी देर तक मौन देखते रहे। वीणा ने फिर कहा, "प्रभा ! क्या तुम पीछे नहीं लौट सकते ? यह सब गलत है---एकदम गलत है। न जाने क्यों मेरे अन्दर एक भय समा गया है; ऐसा भय, जिसका मैंने पहले कभी अनुभव न किया था।"

प्रभानाथ एकाएक जोर से हंस पड़ा, "नहीं, भय करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें मरना है—एक न एक दिन अवश्य, फिर चिन्ता क्यों ?" और प्रभानाथ ने वीणा को आलिगन-पाश में कस लिया।

उस समय वीणा का सारा शरीर पुलक से ढीला पड़ गया था। दोनों के

अधर मिले—और एकाएक उन्हें एक अजीब तरह की कराह सुनाई दी। दोनों ने चौंककर एक-दूसरे को छोड़ दिया।

प्रभानाथ ने अपने चारों ओर देखा, कहीं कोई न था। मनमोहन के कमरे का दरवाजा बन्द था। प्रभानाथ ने कहा, "यह कराह किसकी थी?"

"मैं नहीं जानती—नहीं जानती!" वीणा ने प्रभानाथ के कंधे पर अपना सर रख दिया। और प्रभानाथ ने देखा कि वीणा कांप रही है, उसकी आंखों में आंसू भर आए हैं।

३

शाम के समय जब प्रभानाथ मनमोहन के कमरे में गया, उसने देखा कि मनमोहन पलंग पर आंखें बन्द किए हुए लेटा है। प्रभानाथ के पैरों की आहट पाते ही उसने आंखें खोल दीं, और मुस्कराते हुए उसने कहा, "बड़ी अच्छी नींद आई। तबीअत एकदम हलकी होगई। तुम भी सो लिए न!"

प्रभानाथ ने सामने का दरवाजा खोल दिया, उस समय आसमान में बादल घिरे हुए थे। उत्तरी हवा का एक ठंढा झोंका कमरे में आया, और मनमोहन उठ बैठा। प्रभानाथ ने एक कुर्सी उठा कर पलंग के पास डाल ली और वह उस कुर्सी पर बैठ गया। मनमोहन ने कहा, "तुम्हारा बंगला कितना अच्छा है, कितना शान्त है। क्यों प्रभानाथ, इस सुख और वैभव को छोड़ कर तुम हम लोगों के कीचड़ में कैसे फंस गए?"

प्रभानाथ ने कुछ सोच कर जवाब दिया, "मैं नहीं जानता। शायद अपने भीतर से मुझे एक प्रेरणा मिली!"

"अपने भीतर से एक प्रेरणा मिली!" मनमोहन खिलखिला कर हंस पड़ा, "भीतर से प्रेरणा मिलती है—आज पहली बार ऐसी मजेदार बात सुन रहा हूं। नहीं मिस्टर प्रभानाथ, इस तरह की बात से मुझे धोखा देने की कोशिश करना बेकार है।"

प्रभानाथ का चेहरा तमतमा उठा; उसने कहा, "आप मुझे झूठा कह कर मेरा अपमान कर रहे हैं, मिस्टर मनमोहन!"

"देखो, नाराज़ होने की कोई बात नहीं; मैंने तुम्हें झूठा तो नहीं कहा, बहुत सम्भव है कि तुम सच ही कह रहे हो। ऐसी हालत में तुम खुद अपने को धोखा दे रहे हो। खैर जाने भी दो इस बात को, अब एक सवाल और है—वीणा का और तुम्हारा कैसा सम्बन्ध है? क्या यह बात ठीक है कि तुम्हें इस दल में लाने का श्रेय वीणा मुकर्जी को है?"

प्रभानाथ खड़ा हो गया, तन कर। "आप मेरे अतिथि हैं, मिस्टर मनमोहन, लेकिन इसके ये अर्थ नहीं कि आप इस तरह की अनाप-शनाप बातें करके मेरा और वीणा का अपमान करें। व्यक्तिगत मामलों में इस तरह दिलचस्पी लेना मनुष्य में संस्कृति का अभाव प्रदर्शित करता है। अगर आप अब आगे इस तरह की बातें करेंगे तो मुझे भी अशिष्ट होना पड़ेगा।"

मनमोहन ने प्रभानाथ का हाथ पकड़ कर जबरदस्ती बिठलाते हुए कहा, "यह व्यक्तिगत मामला नहीं है, मिस्टर प्रभानाथ; क्रान्तिकारी के पास व्यक्तिगत जीवन के नाम की कोई चीज़ नहीं होती, यह आप हमेशा याद रखिएगा; इस तलवार की धार-वाले रास्ते पर आने के बहुत पहिले ही आपको यह समझ लेना चाहिए था कि आप व्यक्तिगत-रूप से मर चुके। आप एक संस्था के अंग-मात्र रह गए हैं, जिस पर संस्था का पूर्ण अधिकार है। अगर आपको आज संस्था से यह आदेश मिले कि आप वीणा को गोली मार दें तो आपको वीणा के प्रति आपका प्रेम कभी भी उस आदेश का पालन करने से नहीं रोक सकता। और इसीलिए, इस संस्था के प्रमुख प्रतिनिधि होने के नाते मुझे आपसे यह सब पूछने का पूर्ण अधिकार है!"

प्रभानाथ निष्प्रभ हो गया और उसने अपना सर झुका लिया। इस हालत में वह कुछ देर बैठा रहा, फिर उसने धीरे से कहा, "शायद आप ठीक कहते हैं, मिस्टर मनमोहन, लेकिन इसके पहिले कि मैं आपको अपनी कैफ़ियत दूं, मुझे यह भी जान लेना चाहिए कि आप कौन हैं।"

"मैं कौन हूं?" मनमोहन चौंक उठा, "क्यों, यह प्रश्न कैसे उठा ?"

"इस तरह कि आपका नाम मनमोहन नहीं है, और हम लोगों में कोई भी, सरदार को छोड़कर, आपको जानता भी नहीं है। जब तक मैं यह न जान लूं कि मुझसे इस प्रकार के प्रश्न करनेवाला कौन है, तब तक..." प्रभानाथ कहते-कहते रुक गया। उसी समय वीणा ने कमरे में प्रवेश किया। वह स्कूल से पढ़ा कर लौटी थी।

वीणा ने आते ही कहा, "कहिए ! आप लोगों में क्या बातें हो रही थीं जो आप लोग इतने गम्भीर हैं ?"

उत्तर मनमोहन ने दिया, "जो बातें हो चुकी हैं, उन्हें दोहराना बेकार है; मिस्टर प्रभानाथ से आपको वे बातें मालूम हो ही जाएंगी और इसीलिए वे बातें जारी भी रहेंगी, क्योंकि मैं जो बातें प्रभानाथ से करूंगा वे आपसे छिपी न रहेंगी !"

इस बार मनमोहन प्रभानाथ की ओर मुड़ा, "हां ! तो आप जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूं? और मैं आपको बतलाता हूं, इसलिए कि मेरी वजह से आप लोग कुछ थोड़े-से खतरे में हैं !" मनमोहन मुस्कराया, "इसीलिए बतलाता हूं, ताकि आप उस खतरे से आगाह हो जायें और फिर आप निर्णय करें कि मैं आप लोगों का आतिथ्य स्वीकार करूं या नहीं। आप लोगों ने प्रभाकर का नाम तो सुना ही होगा, उसी प्रभाकर का नाम जिसके पीछे पुलिस बुरी तरह पड़ी है। तो मैं वही प्रभाकर हूं, मिस्टर प्रभानाथ ! और जहां तक तुम्हारी बात है, उसे पूछ कर मैंने गलती की, वह इतनी स्पष्ट है कि उसके सम्बन्ध में तुमसे पूछना मुझमें कल्पना का अभाव ही प्रदर्शित करेगा !"

कुछ थोड़ी देर तक तीनों मौन रहे। मनमोहन ने फिर कहा, "मैंने तुम्हें अपना पूरा परिचय दे दिया; अब इस बात का निर्णय तुम्हारे हाथ में है कि मैं यहां अधिक ठहरूं या नहीं। इतना मैं जानता हूं कि लोग 'प्रभाकर' नाम को ही जानते हैं, प्रभाकर को नहीं जानते। प्रभाकर एक छाया-सा आता है और धुआं-सा गायब हो जाता है, उसे सहज ही पकड़ना कठिन काम है।

फिर भी एक सुरक्षित स्थान तो उस बेचारे के पास होना ही चाहिए। तुम्हारे पिता ताल्लुकेदार हैं, आनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं, सरकार के भक्त हैं; यहां, इस बंगले में प्रभाकर हो सकता है, इसकी कोई कल्पना तक नहीं करेगा, और इसी से मैं तुम्हारे साथ चला आया हूं। इरादा था कि चार-छः दिन यहां रुकूंगा, पर अब वह इरादा भी बदल रहा हूं। लम्बी दुनिया मेरे सामने पड़ी है, और उस दुनिया में स्थान की कमी नहीं है—निरापद और निर्विघ्न; सिर्फ इंसान के पास आंखें होनी चाहिएं !"

प्रभानाथ ने कहा, "लेकिन आप से जाने को कौन कह रहा है, मैं तो यह कहता हूं कि आप यहां जरूर ठहरें, दस दिन, पन्द्रह दिन—जब तक आपका जी चाहे।"

इसी समय बाहर से आवाज आई, "प्रभा !"

आवाज रामनाथ तिवारी की थी।

"जी, आया !" और प्रभानाथ चला गया। अब वीणा और मनमोहन रह गए !

थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे, एक-दूसरे की ओर एकटक देखते हुये। अन्त में वीणा ने उस मौन को तोड़ा, "मिस्टर मनमोहन—आप कौन हैं, इसका अनुमान मैंने पहले ही कर लिया था। अब एक सवाल मैं आपसे कर रही हूं, ठीक-ठीक उत्तर दीजिएगा ?"

मनमोहन हंस पड़ा, "मैं आपका सवाल जानता हूं। आप यह पूछना चाहती हैं कि मैं यहां क्यों ठहर रहा हूं; है न ऐसा ? और यहां पर मेरा रुकना आपको पसन्द नहीं।"

"आप शायद ठीक कहते हैं !" वीणा ने धीरे से कहा।

"और मैं यह भी बतला दूं कि मेरा यहां रुकना आप को पसन्द क्यों नहीं है। आपको प्रभानाथ के हिताहित का इतना ख्याल नहीं है जितना आपको अपने सुख और अपनी तुष्टि का ख्याल है। आप प्रभानाथ से प्रेम करती हैं,

और आप प्रभानाथ को अकेले ले कर अपने सपनों की दुनिया में रहना चाहती हैं। उस दुनिया में दूसरों का आना आप को पसन्द नहीं!"

वीणा ने जरा प्रखर स्वर में कहा, "आप चुप रहिए! यह सब कहने का आपको कोई अधिकार नहीं!"

"मुझे पूरा अधिकार है, वीणाजी! मुझे तो यहां तक अधिकार है कि मैं आप लोगों से प्रेम करने को मना कर दूं। लेकिन नहीं—यह सब करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं!" एकाएक मनमोहन का स्वर जो शिशिर ऋतु की उत्तरीय हवा की भांति रूखा और कठोर था, मलय-समीर की भांति कोमल हो गया। उसकी पथराई आंखों में एक अजीब तरह की चमक आ गई, "नहीं, वीणाजी—यह सब करना एक भयानक पाप होगा। मैं जानता हूं कि वह आदमी, जिसका सुख छिन चुका है, जिसके प्रेम की भावना तिल-तिल घुट कर मर चुकी है—वह अपनी प्रतिहिंसा में इतना नीचे गिर सकता है, वह दूसरों के सुख; दूसरों के प्रेम को नष्ट करने में ही सुख समझे; और कभी-कभी मुझ पर यह कुत्सित भावना अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करती है। लेकिन नहीं—मैं अपने को रोक सकता हूं। आपका प्रेम फले-फूले, मुझे आप के प्रेम से ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए, बल्कि एक तरह का संतोष होना चाहिए। पर आप भी एक बात याद रखिए। अपने प्रेम में आप अपने को खो न-दीजिएगा। आप यह न भूल जाइएगा कि दुनिया को सुखी बनाने के लिए आपने अपने को शैतान के हाथ बेच दिया है। दुनिया को आसमान पर उठाने के लिए आप स्वयम् रसातल में पहुंच चुकी हैं, जहां मनुष्यता नाम की चीज का कोई अस्तित्व नहीं है। यह सारी भावनाएं, यह ममता, यह प्रेम, यह सपने—ये सब के सब आपके साथ तभी तक हैं, जब तक ये आपके एकमात्र सिद्धान्त के संघर्ष में नहीं आते। ये सब के सब जीवन में एक क्षण के लिए आकर निकल जाने-वाले, झूठ हैं—सत्य है केवल एक सिद्धान्त, देश के हित के लिए अपने को मिटा देनेवाला एक सिद्धान्त!"

मनमोहन कह रहा था और वीणा का मुख पीला पड़ता जा रहा था, उसका सारा शरीर अवसन्न-सा पड़ गया था, उसकी आत्मा में एक असह-

भयानक अन्धकार भर गया था। मनमोहन को सम्भवतः वीणा की इस मानसिक स्थिति का पता था। कुछ देर तक वह वीणा की तरफ़ कौतूहल के साथ देखता रहा, फिर एकाएक वह उठ खड़ा हुआ; "अब भी समय है, वीणा-जी! हमारा मार्ग निराशा का मार्ग है और निराशों का मार्ग है! हम सब अन्दर से यह जानते हैं, खुल कर कहने की इच्छा नहीं होती। और हमें उन लोगों से बहुत बड़ा खतरा है, जिनके अन्दर जीवन की सुनहली किरणें खेल रही हैं। हम सब संयत आत्महत्या के पथ पर हैं। जिन्हें जीवन के प्रति मोह है, उनके लिए हमारे दल में कोई स्थान नहीं।" और मनमोहन जोर से हँस पड़ा।

मनमोहन की उस हँसी से वीणा सर से पैर तक सिहर उठी।

४

रात के समय रामनाथ तिवारी के पास प्रभानाथ, वीणा और मनमोहन बैठे। रामनाथ तिवारी कुछ थके हुए थे, उस दिन उन्होंने अदालत में कुछ कांग्रेसवालों को सजायें दी थीं। रामनाथ ने प्रभानाथ से कहा, "समझ में नहीं आता; ये सब के सब खुद आते हैं। गवर्नमेण्ट का कहना है कि समझा-बुझाकर इनसे माफ़ी मँगवा कर इन्हें छोड़ दूं। लेकिन माफ़ी मांगना तो दूर रहा, ये मुकदमे की पैरवी तक नहीं करते और जेल चले जाते हैं। आखिर यह क्यों?"

मनमोहन हँस पड़ा, "ये युद्ध कर रहे हैं और इनके युद्ध करने का यही तरीका है!"

रामनाथ ने कहा, "जानता हूँ, और हँसता हूँ इस तरीके पर। लेकिन न जाने क्यों, आज इस तरीके पर हँसने की तबीअत नहीं होती। इस युद्ध से ब्रिटिश-सरकार हैरान है—इतना मैं जानता हूँ। और ये बदमाश ऐसी कोई हरकत भी तो नहीं करते, जिससे इनकी अक्ल दुरुस्त की जा सके। मैं जानता हूँ कि एक दफ़े मशीनगन लगा दी जाय, एक दफ़े ये गोली से भून दिए जायें; और मामला एकदम खत्म हो जाय। लेकिन गोली चलाई किस पर जाय, मशीनगन से भूने कौन जायें? ये अहिंसा पर चलनेवाले आदमी हिंसा का अवसर भी तो नहीं देते!"

रामनाथ कुछ थोड़ी देर मौन रहे और फिर बोले, "मैं देखता हूं कि इस लड़ाई से अंगरेज परेशान हैं। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या किया जाय ! लोग हंसते हुए जेल जाते हैं, जेल की कठिनाइयां बर्दाश्त करते हैं। और अब तो इतने आदमी जेलों में भर गए हैं कि वहां भी जगह नहीं। यह अशान्ति जो खड़ी हो गई है—उसको किस तरह दूर किया जाय ? मुख्य प्रश्न यह है !"

वीणा बोल उठी, "तो ददुआ, क्या आप समझते हैं कि यह अहिंसा की लड़ाई सफल हो सकती है ?"

"लड़ाई—लड़ाई ! कैसी लड़ाई ? क्या इसी को लड़ाई कहते हैं ? लोग जेल जाते हैं—जाएं ! इससे सरकार का क्या बिगड़ने का ? लेकिन इस सबके पहले एक सवाल और उठता है—यह अहिंसा कब तक कायम रह सकती है ? इतना जब्त—इतना त्याग, जो कुछ महात्मा गांधी सिखलाते हैं, यह देवताओं की चीजें हैं; मनुष्य के बस की बात नहीं है। मैं जानता हूं कि महात्मा गांधी महान् हैं, वे तपस्वी हैं। कभी-कभी तो मुझे यह शक होने लगता है कि कहीं वे अवतार न हों। और मैं इतना भी मानता हूं कि उनमें इतनी साधना है कि वे अहिंसा पर कायम रह सकें। लेकिन बाकी आदमी ? यह लोग अहिंसा पर कब तक कायम रहेंगे ?" रामनाथ मुस्कराए, "और एक बार इन्हें हिंसा अपनाने दो, फिर देखना ! वहीं यह कांग्रेस बुरी तरह कुचल दी जायगी।"

मनमोहन बड़े गौर से रामनाथ की बातें सुन रहा था। उसने पूछा, "और अगर लोग सामूहिक हिंसा पर आमादा हो जायें तो ये इतने थोड़े से अंगरेज कितने दिन तक टिक सकेंगे ?"

"ये थोड़े से अंगरेज ?" रामनाथ ने मनमोहन को एक तीव्र दृष्टि से देखा "ये थोड़े से अंगरेज—मैंने माना ! लेकिन इनके पास है भयानक पैशाचिक हिंसा ! एक से एक विनाशकारी अस्त्र-शस्त्र से ये सुसज्जित हैं। और हम कायर गुलामों की हिंसा नपुंसकत्व से भरी हुई है—हम हिन्दुस्तानी इनकी भयानक हिंसा का मुकाबला कैसे कर सकेंगे ? इसके सबूत के लिए तुम्हें दूर नहीं

जाना है—सन् १८५७ का गदर ले लो। उन दिनों लोग सशस्त्र थे और अँगरेजों की फौज यहां नहीं के बराबर थी। फिर उन दिनों न हवाई जहाज बने थे, न मशीनगनें बनी थीं। इतना सब होते हुए भी क्या हुआ? हिन्दुस्तानियों ने हिन्दुस्तानियों को मारा—उन्होंने अकेले युद्ध ही नहीं किया, उन्होंने हत्याएं भी कीं। हजारों आदमियों को, जो बिल्कुल निर्दोष थे, उन्होंने फांसी पर लटकाया और हँसते हुए तमाशा देखा।"

कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "नहीं, हिंसा की बात ही नहीं उठती। असल में सवाल मेरे सामने यह है कि यह अहिंसा की लड़ाई है क्या बला? इतने दिन हो गए और यह लड़ाई बराबर चलती आ रही है। हम हिंसा का जवाब उससे भी भयानक हिंसा से देकर उसे हरदम के लिए कुचल सकते हैं पर इस अहिंसा का जवाब हो हमारे पास नहीं है।"

रामनाथ ने पान खाया, इसके बाद वह मुस्कराए, "मैं सच कहता हूं, प्रभा! लाख सैद्धान्तिक विरोध होते हुए भी मुझे इस गांधी के व्यक्तित्व के आगे झुकना पड़ता है। इन अपाहिजों में, इन नपुंसकों में, इन अकर्मण्य कायरों में कौन-सी जान इसने फूंक दी है, कौन-सा जादू इसने भर दिया है? समझ में नहीं आता!"

प्रभानाथ ने कहा, "ददुआ! तो क्या आप समझते हैं कि यह अहिंसा का सिद्धान्त सही है?" और उसने अपने पिता पर एक अर्थ-भरी दृष्टि डाली।

रामनाथ ने प्रभानाथ की दृष्टि का मतलब समझ लिया। उन्होंने बहुत गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "प्रभा! दया को घर से अलग कर देनेवाले में स्वराज्य, स्वतन्त्रता नाम की किसी भी चीज के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है, इतना समझ लेना। न मैं कांग्रेस पर विश्वास करता हूं, न अहिंसा पर। मैं जानता हूं कि अहिंसा का सिद्धान्त गलत है, क्योंकि वह असम्भव है, ठीक उसी तरह जैसे संसृति का एकमात्र नियम विषमता होने के कारण समता का सिद्धान्त असम्भव है। पर मैं इतना जरूर कह सकता हूं कि सब-कुछ देखते हुए भी मैं कभी-कभी सोचने लगता हूं कि अगर अहिंसा का सिद्धान्त सम्भव हो

सकता, तो वह मानवता के लिए अवश्य हितकर होता। 'तुम जो कुछ बोओगे वही काटोगे, !' अंगरेज़ी की यह कहावत हमारे जीवन पर पूरी तौर से लागू होती है। हिंसा का उत्तर हिंसा है, और अहिंसा का उत्तर अहिंसा ही हो सकता है। मनुष्य में बुराई-भलाई दोनों ही हैं। तुम बुराई करके मनुष्य की बुराई को ही भड़का सकते हो और भलाई करके दूसरों की भलाई को विकसित कर सकते हो।"

मनमोहन एकाएक उठ खड़ा हुआ। उस समय उसका मुख कुछ अजीब तरह से विकृत हो गया था। उसने कड़े स्वर में कहा, "यह एकदम गलत बात है—एकदम गलत। मैं इस पर ज़रा भी विश्वास नहीं करता।" और वह वहां से उठकर चल दिया।

मनमोहन के इस बर्ताव से रामनाथ चौंक उठे। कुछ देर तक वह उस ओर, जिधर मनमोहन गया था, आश्चर्य से देखते रहे, फिर उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "तुम्हारे साथी या तो बदतमीज हैं या पागल हैं। यह हैं कौन ?"

प्रभानाथ ने बात बनाई, "दद्दुआ! यह फ़िलासफ़र हैं और इसलिए यह सनकी हैं। इनकी बात का आप बुरा न मानिएगा।"

५

मनमोहन जब घूम कर लौटा, रात हो गई थी। मनमोहन की चारपाई प्रभानाथ की चारपाई के बगल में ही पड़ी थी, और प्रभानाथ उस समय कुछ थका-सा बिस्तर पर लेटा था। मनमोहन को देखते ही वह उठ बैठा, "क्यों आप चले कहां गए थे ? आप का खाना रक्खा है!"

अपनी चारपाई पर बैठते हुए मनमोहन ने कहा, "मैं आज खाना नहीं खाऊंगा, मुझे भूख नहीं!" कुछ रुक कर उसने फिर कहा, "प्रभा! तुम्हारे पिता की बातें सुनकर मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि वे इतने गिरे हुए नहीं हैं जितना लोगों ने उन्हें समझ रक्खा है!"

प्रभानाथ मुस्कराया, "और न इतने बेवक़ूफ़ हैं, जितना तुमने उन्हें समझ

रक्खा है । आज तुमने जो कुछ किया, उसकी पुनरावृत्ति न होनी चाहिए । तुम उन्हें जानते नहीं ! आखिर तुम उस समय इस तरह चल क्यों दिए थे ?"

"चल क्यों दिया था ? प्रभा ! तुम विश्वास न करोगे, लेकिन मैं सच कहता हूं मैं तुम्हारे पिता से डरने लगा हूं ! उस आदमी ने यह सब कहां सीखा, कब सोचा, कैसे समझा ? एक-एक बात जो उसने कही, कितनी तीव्र थी, कितनी कटु थी और साथ-साथ..." मनमोहन के मत्थे पर बल पड़ गए, "और अगर गलत भी थी तो ऐसी कि गलती आसानी से पकड़ी नहीं जा सकती । उस आदमी के सामने जाने में, उससे बातें करने में मुझे भय लगता है !"

"लेकिन मुझ पर तो उनकी बातों का असर नहीं पड़ता !" प्रभानाथ ने कहा।

"इसलिए कि तुम उनकी बातें सुनते ही नहीं। तुम उनके इतने निकट हो कि तुम्हारे अन्दरवाले भय ने उपेक्षा का रूप धारण कर लिया है। प्रभा ! मैं कल सुबह यहां से चल दूंगा !"

"यह क्यों ?"

"मैं भाग रहा हूं ! कायर की भांति; पर भागने में ही मेरा कल्याण है। इस हालत में अधिक अपने सिद्धान्तों के प्रति मुझमें एक हलका-सा अविश्वास पैदा हो चुका है, मैं नहीं चाहता कि उन सिद्धान्तों पर कोई बाहरी गहरा धक्का लगे । अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ा से बढ़कर और कोई पीड़ा नहीं, और इसीलिए अन्तर्द्वन्द्व से मैं बचना चाहता हूं !"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से मनमोहन की ओर देखा और मनमोहन हंस पड़ा, "यह सब मेरी नर्व्स (nerves) की वजह से है । तुम सोचते होगे कि मैं इस तरह की बहकी-बहकी बातें क्यों करता हूं !" और मनमोहन एका-एक बहुत अधिक गम्भीर हो गया, "सुनो प्रभानाथ ! मैं थक गया हूं—बहुत अधिक थक गया हूं । आखिर मैं मनुष्य हूं; मेरी शक्तियां सीमित हैं। अपने को एक हद तक ही दबाया जा सकता है। मैं कहता हूं कि मेरा अस्तित्व एक

भयानक झूठ है। मेरे सिद्धान्त में सत्य है, इसका निर्णय भी तो मैं नहीं कर सकता ! मेरे सिद्धान्त पर लोग प्रहार करते हैं, मैं उस प्रहार का उत्तर भी तो नहीं दे सकता। और इस सब का परिणाम भयानक होता है। अपने सिद्धान्त पर वाद-विवाद करके, उसके पक्ष में बार-बार तर्क देकर मनुष्य को उस सिद्धान्त पर दृढ़ रहने को जो बल मिलता है, मुझे तो वह भी नसीब नहीं !"

प्रभानाथ ने दबी जबान कहा, "लेकिन मनमोहन ! हमें दूसरों से तर्क करने की क्या आवश्यकता ? हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम अपने विश्वासों पर दृढ़ रह कर कर्म करें। तर्क विश्वास का विरोधी है, तर्क का अन्त है अविश्वास !"

मनमोहन मुस्कराया, "यही तो मुसीबत है प्रभानाथ ! मैं जानता हूँ कि तर्क का अन्त है अविश्वास, केवल उस समय जब वह तर्क अपने अन्दर उठ खड़ा हो। हम स्वयम् अपने से जो तर्क करते हैं, वह सत्य को ढूंढ़ने के लिए करते हैं, और सत्य है अविश्वास से भरा हुआ एक भयानक अन्धकार। विश्वास पर कायम रहने के लिए यह जरूरी है कि हम अपने से तर्क न करें बल्कि हम दूसरों से तर्क करें। दूसरे से हम तर्क करते हैं, सत्य को पाने के लिए नहीं, बल्कि दूसरे को अर्थात् अपने विपक्षी को तर्क में पराजित करके उस पर अपना व्यक्तित्व हावी करने के लिए, उसे अपना अनुयायी बनाने के लिए। दूसरे से तर्क करने के समय हममें अपने विश्वास की मादकता रहती है, हम अपने सिद्धान्त के अन्धविश्वासी पुजारी की कट्टरता को लेकर मैदान में आते हैं। नहीं प्रभानाथ ! मेरी मुसीबत यह है कि मुझे दूसरों से तर्क करने का मौका न मिलने के कारण अपने से ही तर्क करना पड़ता है !"

मनमोहन बिस्तर पर लेट गया। उसने फिर कहा, "और प्रभानाथ, मैं एक बात तुमसे भी कहूँगा, तुमने इस मार्ग में आकर गलती की, इस जीवन को अपनाने में तुमने जल्दबाजी की। तुममें पुरुषत्व है—मैं मानता हूँ; तुम मृत्यु से खेल सकते हो। साथ ही यौवन की उमंग और विश्वास के पागलपन से तुम भरे हुए हो। लेकिन मैं पूछ रहा हूँ कि यह सब कब तक ? खेल एक खेल ही है—थोड़े से समय के लिए। खेल का कौतूहल तभी तक कायम रह सकता

है, जब तक उसे तुम केवल खेल समझो। पर जब वह खेल जिन्दगी ही बन जाय, तब उसका सारा कौतूहल जाता रहता है, तब उसमें एक प्रकार की भयानक मनोटनी (Monotony) घुस आती है। मृत्यु जीवन का अन्त है—यह स्पष्ट है, लेकिन उस मृत्यु से समस्त जीवन को विषाक्त बना लेना जीवन का उपहास है। जरा इस पर विचार कर लो प्रभानाथ—अपने अन्दर इस पर अच्छी तरह तर्क कर लो और फिर आगे बढ़ो! अभी समय है!"

और मनमोहन ने देखा कि प्रभानाथ सो रहा है। उसने जो कुछ कहा, वह एक गाफ़िल आदमी से कहा। दांत किटकिटाते हुए उसने कहा, "मूर्ख! मूर्ख! मूर्ख!" और उसने जबर्दस्ती अपनी आंखें मूंद लीं।

६

सुबह जब प्रभानाथ की आंख खुली, मनमोहन सो रहा था। प्रभानाथ उठ कर बाग में टहलने चला गया, वीणा वहां मौजूद थी। रोज़ सुबह रामनाथ की पूजा के लिए फूल तोड़ना उसका नियम-सा हो गया था। वीणा ने प्रभानाथ से पूछा, "मनमोहन कहां है?"

"वह अभी सो रहा है!" प्रभानाथ मुस्कराया, "और वीणा—मेरी समझ में नहीं आता कि उसके अन्दर कौन-सी उथल-पुथल, कौन-सी हलचल भरी हुई है। कभी-कभी तो वह अजीब तरह की बातें करने लगता है। मुझे तो उससे डर लगता है!"

"तुमसे ज्यादा मुझे!" वीणा ने प्रभानाथ के निकट आते हुए कहा, "प्रभा! एक बात मैं तुमसे कहूं? मनमोहन को यहां ठहरा कर तुमने अच्छा नहीं किया। जानते हो, उसने जो बातें मुझसे कहीं, और जिस ढंग से वे बातें कहीं, वह सब का सब मुझे अच्छा नहीं लगा। वह कब तक रुकेगा?"

"मैं क्या जानूं? उस आदमी का क्या ठिकाना? और यह मुझसे होगा नहीं कि अपने अतिथि से मैं जाने को कहूं। अभी जब मैं सो कर उठा तो मैंने देखा कि वह सो रहा है—शान्त और निश्चिन्त! भगवान् जाने

कितने युग के बाद उसे ऐसी सुख की नींद नसीब हुई। और—वीणा—वह आदमी मुझे तबीअत का बहुत नेक लगा। किस तरह मैं उसे यहां से जाने को कहूं!"

वीणा फूल तोड़ चुकी थी। उसने कहा, "मैंने यह कब कहा कि आप उन्हें यहां से चले जाने को कहें? अच्छा! ददुआ के पूजा-गृह में फूल रख कर आती हूं, तब चाय वगैरह का इंतजाम करूंगी। तब तक तुम मनमोहन को जगा रक्खो!" और वह चली गई।

प्रभानाथ जब कमरे में वापस लौटा, मनमोहन लिहाफ़ के नीचे इधर-उधर करवटें बदल रहा था।

प्रभानाथ ने मनमोहन को हिलाया-डुलाया और फिर उसने मनमोहन के ऊपर से लिहाफ़ खींच लिया। एक जम्हुआई लेकर मनमोहन उठ बैठा, "कितनी अच्छी नींद आई! आज बरसों बाद इतनी निश्चिन्तता के साथ सोया हूं! अरे! अभी तो सात भी नहीं बजे!" मनमोहन ने दीवार पर लगी हुई घड़ी को देखते हुए कहा। कुछ रुक कर वह फिर बोला, "तुम लोग बहुत जल्दी सोकर उठते हो! तुम तो, मालूम होता है, नहा भी चुके!"

"जी हां! तुमने मुझे और मेरे कुल को समझ क्या रक्खा है? हम लोग ब्राह्मण हैं, उस पर कनौजिया, फिर उसके ऊपर बीस बिस्वा! पूरे ऋषि-संतान!" और प्रभानाथ जोर से हंस पड़ा, "ददुआ को तुमने देखा ही है, कितने बूढ़े हैं। और वे इस समय देव-गृह में नंगे-बदन पूजा कर रहे हैं।"

"लेकिन मुझे तो गरम पानी की जरूरत पड़ेगी—समझे!" मनमोहन ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "और अगर इसका प्रबन्ध न हो सके तो मैं स्नान करना टाल भी सकता हूं!"

पूजा समाप्त करके रामनाथ तिवारी बरामदे में बैठ गए। उस समय आसमान में कुहरा छाया हुआ था और हवा काटती हुई चल रही थी। वीणा ने चाय तैयार करके रामनाथ के सामने रक्खी। रामनाथ ने पूछा, "प्रभा और उसके दोस्त कहां हैं?"

"आ रहे हैं !" और वीणा ने चाय का प्याला अपने होंठों से लगाया। चाय का एक प्याला समाप्त करके वीणा ने कहा, "ददुआ ! यहां इतनी तेज सर्दी पड़ती होगी—मैंने इसकी कल्पना तक न की थी। और इतनी सर्दी में भी आप इतना सबेरे उठ कर ठंढे पानी से स्नान करते हैं !"

रामनाथ गर्व से तन गए, "हां बेटी, शुरू से ही हम लोगों में यह आदत डाली गई है। हम लोग ब्राह्मण हैं, व्रती हैं। अब तो हम ब्राह्मण अपने पथ से भ्रष्ट हो गए, नहीं तो पहले हम लोग अधिक वस्त्र भी नहीं पहनते थे। केवल एक धोती और कंधे पर एक दुपट्टा।"

रामनाथ ने थोड़ी देर तक अपने सामनेवाले बाग को देखा, फिर वे बोले, "आज बड़ा दिन है ! कई लोगों से मिलने जाना है !" और वे मुस्कराए, "वीणा ! एक बात मेरी समझ में नहीं आती ! लोग 'बड़ा दिन' का त्योहार मना कर क्या ईसा का उपहास नहीं करते ?"

"ईसा का उपहास ? मैं समझी नहीं," वीणा ने कहा।

उसी समय मनमोहन के साथ प्रभानाथ आ गया। वीणा ने इन दोनों के लिए चाय बनाई। उसके बाद रामनाथ तिवारी प्रभानाथ की ओर घूमे, "प्रभा ! मैं इस समय सोच रहा था कि बड़े दिन का यह सारा हर्ष—सारा उत्सव क्या मानवता का उपहास नहीं है ?"

मनमोहन ने उत्तर दिया, "उपहास क्यों ? यह दुनिया की एक बहुत बड़ी आत्मा के जन्म-दिन का उत्सव है—इतनी बड़ी आत्मा, आज की सारी सभ्य दुनिया जिसकी अनुयायी है !"

रामनाथ मुस्कराए, "यही तो सारी मुसीबत है ! सवाल मेरे सामने यह है कि क्या ईसा एक भी अनुयायी बना सके ? जहां तक इतिहास बतलाता है, ईसा बुरी तरह असफल रहे। ईसा प्रेम का संदेश लाए थे, दया और त्याग का उन्होंने उपदेश दिया। और आज वे लोग, जो अपने को ईसा का अनुयायी कहते हैं, घृणा के उपासक हैं, क्रूरता और उत्पीड़न की सभ्यता को विकसित कर रहे हैं—सब से बड़े हिंसावादी हैं।"

रामनाथ शायद आगे कुछ और कहते, पर एकाएक उनकी नजर फाटक में आते हुए इक्के पर पड़ी जिस पर झगड़ू मिश्र बैठे थे। बरसाती के नीचे इक्का रुका, और झगड़ू मिश्र इक्के से उतर कर बरामदे में चढ़ते हुए बोले, "नमस्कार, तिवारीजी !"

प्रभानाथ ने उठ कर झगड़ू के पैर छुए और रामनाथ ने वैसे ही बैठे-बैठे कहा, "नमस्कार, मिसिरजी ! कहो कहां से आ रहे हो ? अच्छी तरह तो रहे ?"

एक खाली कुर्सी पर बैठते हुए झगड़ू ने कहा, "हां, बड़ी अच्छी तरह हन ! और अबहिने कानपुर से आय रहे हन ! सो तिवारीजी, गांव जाय रहे हन। तौन सोचा कि आपका बतलावत चली कि बड़के कुंवर काल जेल से छूट आए।" और इतना कह कर झगड़ू अपने बटुवे से तमाखू निकाल कर सुरती तैयार करने लगे।

रामनाथ कुछ देर तक मौन बैठे रहे। वे अपने सामने आकाश पर छाए हुए कुहासे को देख रहे थे जो धीरे-धीरे फट रहा था। फिर वे झगड़ू की ओर घूमे। उन्होंने धीरे से कहा, "और मार्कण्डेय ?"

तमाखू बना कर फांकते हुए झगड़ू ने उत्तर दिया, "अरे का बताई। मारकण्डेय न जाने का कीन्हिन कि उन्हें पूरी सजा भुगतन का पड़ी। तौन उनके छूटै मां अबहीं पन्द्रह दिन का विलम्ब है !" इसके बाद झगड़ू ने वहां बैठे हुए लोगों पर एक नजर डाली।

वीणा की ओर झगड़ू के गौर से देखने पर रामनाथ को हंसी-सी आ गई। "यह हमारे स्कूल की नई प्रधानाध्यापिका हैं—मिसिरजी !"

"काहे ?—का कौसल्यादेवी छोड़ दीन्हिन ?"

"एक तरह से ! वे जेल चली गई थीं, और फिर उसके बाद उनके स्थान पर एक प्रधानाध्यापिका की तो जरूरत थी ही !"

"लेकिन उनके जेल से छूटै पर ?" झगड़ू ने जरा चिन्तित होकर पूछा।

रामनाथ हँस पड़े, "उसके जेल से लौटने पर कांग्रेस उसे नौकरी देगी।"

झगड़ू ने थोड़ी देर तक रामनाथ की ओर आश्चर्य से देखा, फिर उन्होंने बहुत शान्त भाव से कहा, "तिवारीजी, हम जानत हन कि आप बुद्धिमान आव! लेकिन कबहूँ-कबहूँ हमरे मन मा संका होन लागत है कि आप को बुद्धि दया और धर्म का तिलांजलि दै चुकी है, वह आप का मनुष्यता से नीचे गिराय दीन्हिस है!"

लेकिन झगड़ू के इस कहने का असर मानों तिवारीजी पर ज़रा भी नहीं पड़ा। उन्होंने भी उसी प्रकार शान्त भाव से मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "दया और धर्म मैं समझता नहीं मिसिरजी! दया और धर्म आप-जैसे मनुष्यों के लिए हम-जैसे मनुष्यों ने बनाया है! और रही मनुष्यता से नीचे गिरने की बात—वहाँ भी मैं इतना मानता हूँ कि मैं आप लोगों की मनुष्यता छोड़ चुका हूँ! आप समझते हैं कि मैं नीचे गिरा हूँ, और मैं समझता हूँ कि मैं ऊपर उठा हूँ।"

झगड़ू एकाएक भड़क उठे, "तो आप अपने का देवता समझन लाग हो, तिवारीजी! और हम कहत हन कि आप सैतान आव—सैतान! अपने लड़का का घर से निकाल दीन्हेंव और चेहरे पर सिकन नहीं आई! ...राम-राम!"

इस बात को मानों रामनाथ तिवारी ने सुना ही नहीं; उन्होंने झगड़ू से केवल इतना पूछा, "अच्छा मिसिरजी! आपने मार्कण्डेय को जेल जाने से क्यों नहीं रोका?"

"हम काहे का रोकित? कौनो चोरी करके, डांका मार के, सेंध लगाय के तो जेल गा नाहीं—देस के काम के लिए जेल गा है। तौन भला हम ऊका रोक के काहे के लिए पाप के भागी बनित!"

मनमोहन ने इस बार झगड़ू को ध्यान से देखा—उसके सामने दो बूढ़े बैठे थे रामनाथ और झगड़ू। दोनों ही बीते हुए युग के आदमी—जीवन के संघर्षों से खेले हुए, और दोनों के ही अनुभव अलग-अलग, विचार अलग-अलग!

कुछ रुक कर झगड़ू ने फिर कहा, मानों वे झगड़ा करने पर तुले हुए थे,

"तौन तिवारीजी, एक बात हम तुम से बहुत दिना से कहा चाहत रहेन, लेकिन औसर नाहीं मिला। सो हम सोच रहे हन कि आज कह देन ! भला यह सब तुम काहे का कर रहे हो ? ई जमींदारी और धन का मोह का तुम्हें अपनी संतान से बढ़ के है ? अब बूढ़े हुइ गए हो, दुनिया की तृष्णा छोड़िके भगवत-भजन करो, और छोड़ देव सब कुछ दया पर । ऊ चाहै राखै, चाहे बहावै !"

रामनाथ तिवारी एकाएक उठ पड़े, वे तन कर खड़े हो गए । उनकी आंखों में एक अजीब तरह की चमक आ गई थी, उनके मुख पर एक प्रकार की आभा खेल रही थी । छाती फुलाए हुए और अपना मस्तक ऊंचा किए हुए वे कुछ देर तक खड़े रहे—एक पाषाण-मूर्ति की भांति, फिर उन्होंने बहुत गम्भीर स्वर में कहा, "मिसिरजी ! आप गलती करते हैं । मुझे केवल एक बात का मोह है, वह है अपना, अपनी आत्मा का, अपने सिद्धान्त का और अपने विश्वास का ! जो कुछ मैं करता हूं, वही ठीक है; जो कुछ मैं सोचता हूं, वही सत्य है ! जब तक मैं जीवित हूं, मैं स्वामी हूं, उतना ही बड़ा-जितना बड़ा वह, जिसकी पूजा करने का आप मुझे आदेश दे रहे हैं। जो कुछ आपको कहना था, वह नई बात नहीं। अधिकांश लोग मुझसे यही बात कहना चाहेंगे, लेकिन कहने की हिम्मत नहीं पड़ती । लेकिन उसका असर न मुझ पर पड़ा है, न कभी पड़ेगा । इसलिए आप स्नान-आदि कीजिए, थके हुए आ रहे हैं !" और इतना कह कर रामनाथ वहां से चले गए।

थोड़ी देर तक वहां गहरा सन्नाटा छाया रहा । अपने पिता के उस रूप को प्रभानाथ ने पहले कभी नहीं देखा था । वीणा ने बहुत धीरे से कहा, "यह मनुष्य है या दानव !"

और मनमोहन बोल उठा, "काश कि हरएक आदमी ऐसा ही बन सकता !" और उसने एक ठंडी सांस ली।

७

चौके में खिचड़ी चढ़ा कर झगड़ू मिश्र फिर मनमोहन, प्रभानाथ और वीणा के पास आ बैठे। आते ही उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "कहो हो, छोटे कुंवर! अबकी दफ़ा गांव नाहीं गयेव! सिकार-सिकार का कुछ इरादा नाहीं है?"

"क्या बताऊँ, झगड़ू काका! शिकार की तबीअत तो थी, लेकिन दद्दुआ यहीं हैं और गांव में कोई भी नहीं है। वहां जाकर क्या करूंगा?"

"वाह, हम तो चल रहे हन! तीन आजकल सबन गिर रहे हैं।"

मनमोहन से न रहा गया। उसने कहा, "तो, मिश्रजी, क्या आप मांस खाते हैं?"

'काहे नाहीं! हम आन कनौजिया; सो भला हम काहे न मांस खाई; लेकिन अपने हाथ से पकाय के खाइत है।" झगड़ू हँस पड़े, "आप नहीं जानत हो, हम पियाज-लहसुन कुछ नाहीं खात हन; तबहूं हम जो मांस पकाय देई कि आप खाय के उंगली चाटत रह जाव!"

मनमोहन ने प्रभानाथ की ओर देखा, "क्यों प्रभानाथ! अगर अपने गांव चलो तो थोड़े दिन शिकार-विकार हो रहे, कुछ गांव की हवा खा लूं!"

"हां-हां! यह तो अच्छी सलाह दी! क्यों, झगड़ू काका! अबकी गंगा में एकाध मगर दिखलाई दिया?"

"नाहीं! मगर तो नाहीं दिखाई दीन, लेकिन पता लगाइबे! आस-पास कहूं हुइहैं जरूर!"

प्रभानाथ ने इस बार वीणा की ओर देखा, "क्यों वीणा! तुम्हारी भी तो इन दिनों छुट्टी है! तुमने कभी हमारा गांव नहीं देखा—हमारे देहात बेजा नहीं होते! चलो युक्त-प्रान्त के गांवों की भी हवा खा लो!"

"लेकिन दद्दुआ! दद्दुआ क्या अकेले रहेंगे? मेरे बिना उन्हें तकलीफ़ न

होगी ! न, प्रभा ! मैं न जा सकूंगी !" वीणा ने थोड़ा रुक कर फिर दबी जबान कहा, "और प्रभा, कल तुम्हारे काका आने वाले हैं, तुम कैसे जा सकोगे ?"

"अरे हां ! मैं तो भूल ही गया था ! ना, झगड़ू काका ! मैं न जा सकूंगा !"

"लेकिन मैं चलूंगा, मिसिरजी ! आप मुझे अपने घर में ठहरा सकेंगे न ! मैं जरा कुछ दिनों के लिए गांवों की सैर करना चाहता हूं, शहरों से मेरी तबीअत ऊब गई है !"

प्रभानाथ बोल उठा, "मेरी कोठी तो है—वहीं ठहरना !"

लेकिन झगड़ू आतिथ्य-सत्कार के नियम जानते ही नहीं थे, उनका पालन करने में भी विश्वास करते थे, "वाह, ऐसनो कबहूं हुई सकत है ! आप हमरे साथ ठहरो—जो रूखा-सूखा होय, वह आपो खाव—और हम आपका अपने साथ घुमाइब, सिकार कराइब !"

थोड़ी देर तक सब लोग चुप बैठे रहे, फिर मनमोहन ने कहा, "क्यों, मिश्रजी ! आपके गांव में सत्याग्रह का कैसा जोर है ?"

"आपै चलि के देख लीन्हेंव । हां, एक बात हम बताय देई, हम विहाती सिद्धान्त-विद्धान्त तो कुछ जानित नाहीं और न हम यू जानत हन कि स्वराज कौन बलाय आय । लेकिन एक बात हम जानत हन कि हम सब जो तोड़ के मेहनत करत हन तबहूं पेट भर के खांय का नाहीं मिलत है। तौन गांधी बाबा हमरे खांय-पियन का प्रबन्ध कराय सकिहैं ई बात पर बहुत लोगन का सहज मां विश्वास नाहीं होत है । तौन ऐस जोश तो गांव मां न मिली जैस आप सहरन मां देख रहे हो !"

थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा; झगड़ू ने फिर कहा, "लेकिन एक बात आप निश्चय करि के समझ राखो ! यू सहर का जोश देस की स्वाधीनता की लड़ाई मां काम न देई । सहर वाले लोग देखत हैं तमाशा—देखतै नाहीं हैं, तमाशा करत हैं। उनका खाय-पियन की कमी तो आय नहीं, पेट भरा है,

मौज की जिन्दगी बितावत हैं । आज एक खेल से तबियत ऊबी, काल दूसर खेल रच दीन्हिन । तौन ई सब जोश जो आप सहर मां देख रहे हो, ईका हम लोग एक खेलै समझत आन जो जादा दिन नाहीं चलन का । वास्तविक काम तबही होई जब ई गांव वाले मनई अपने हाथ मां ले हैं ।"

मनमोहन ने झगड़ू को आश्चर्य से देखा । उसके सामने बैठा हुआ बूढ़ा और ठेठ देहाती, जिसे आधुनिक संस्कृति और विचार-धारा छू तक नहीं गई थी, जिसे अँगरेजी पढ़े-लिखे, अँग्रेजी सभ्यता में रँगे हुए और हर एक अँगरेजी चीज की छाया में ही देश का कल्याण देखनेवाले लोग गँवार और असभ्य तक कहेंगे, बात कुछ सुलझी हुई-सी कह रहा था ।

एकाएक झगड़ू को अपनी खिचड़ी की याद हो आई। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, "हम आप लोगन की बातन मां अपनी खिचड़ी तो भूलै गएन ! सौन जो जीवन का प्रथम सिद्धान्त है—भोजन ! ऊकी उपेक्षा नाहीं कीन जाय सकत है !" और झगड़ू चल दिए ।

शाम के समय मनमोहन झगड़ू के साथ बानापुर के लिए रवाना हो गया ।

दूसरा परिच्छेद

१

जिस समय दयानाथ जेल से छूटा, उसका वजन करीब पन्द्रह पौण्ड कम हो गया था। जेल के फाटक पर उमानाथ, राजेश्वरी और दयानाथ के दोनों लड़के मौजूद थे। इसके साथ-साथ कांग्रेसमैनों की भी एक बड़ी भीड़ उसका स्वागत करने को इकट्ठा हो गई थी।

दयानाथ के मुख पर मुस्कराहट थी, उसका मस्तक उन्नत था। जनता खड़ी हुई दयानाथ की जय-जयकार बोल रही थी। कानपुर के नागरिकों ने दयानाथ का जुलूस निकालने का प्रबन्ध कर रक्खा था। दयानाथ की आरती उतारी गई, उसको फूलों की मालाएं पहिनाई गईं।

दयानाथ उमानाथ और राजेश्वरी से बातें कर ही रहा था कि डाक्टर हीरालाल ने आकर कहा, "चलिए, दयानाथ साहेब! जुलूस का समय हो गया है। जुलूस से वापस आकर आप अपने घरवालों से घर पर जितना चाहिए, बातचीत कीजिएगा।

डाक्टर हीरालाल की यह बात उमानाथ को अच्छी नहीं लगी, वह कुछ कहना ही चाहता था कि दयानाथ ने उसके मुख पर अंकित भाव पढ़ लिए। मुस्कराते हुए उसने उमानाथ का हाथ पकड़ते हुए कहा, "उमा! यह डाक्टर हीरालाल हैं, मेरे बहुत बड़े दोस्त! अच्छा तुम अपनी भौजी के साथ घर चलो, मैं करीब दो घंटे में घर पहुंच जाऊंगा।"

और डाक्टर हीरालाल ने खीसें निपोरते हुए कहा, "आप लोग इतमीनान रखिए। इनको घर पहुंचा देना—यह मेरी जिम्मेदारी है।"

डाक्टर हीरालाल की इस मुद्रा से उमानाथ भड़क उठा, उसने दयानाथ से कहा, "भइया! यह जुलूस—यह स्वागत—यह सब ढोंग है। आपके घर-

वाले, आपकी पत्नी, आपके बच्चे--जिन्होंने आपके जेल के जीवन का एक-एक दिन एक-एक वर्ष की भांति बिताया है, इन लोगों की ममता, इन लोगों की भावना से आपके लिए डाक्टर हीरालाल या इन कांग्रेस के नेताओं की भावना अधिक प्रिय हो गई—जो जुलूस केवल इसलिए निकालते हैं कि एक प्रकार की सनसनी फैले और उन्हें इस सनसनी से एक प्रकार की तुष्टि मिले !"

उमानाथ की बात सुनते ही दयानाथ के मुखवाली मुस्कराहट गायब हो गई। उसने देखा कि उसके दोनों बच्चे उसके पैरों से लिपटे खड़े हैं, उसने देखा कि उसकी पत्नी की आंखें तरल हैं, उसने देखा कि उसके भाई के मुख पर एक उल्लास का भाव है। और उसने उसी समय अपने पास खड़े हुए कांग्रेस-नेताओं पर दृष्टि डाली, और उसने वहां देखा—कुछ नहीं—बिल्कुल कुछ नहीं। एक कृत्रिम मुस्कराहट के नीचे भावनारहित पथराए-से चेहरे ! दयानाथ सिहर उठा। और उसी समय डाक्टर हीरालाल ने फिर कहा, "चलिए, दयानाथ साहब ! इतने लोग आपका स्वागत करने आए हैं—इन्हें निराश मत कीजिए !"

दयानाथ ने फिर उस तरफ़ देखा, एक बहुत बड़ी भीड़ खड़ी थी। दयानाथ के उधर देखते ही एक ज़ोर की आवाज़ उठी, "दयानाथ की जय !"

और साथ ही राजेश्वरी ने भी उस भीड़ को देखा। गर्व से उसकी छाती फूल उठी। इतने आदमी उसके पति का स्वागत करने आए हैं, उसके पति की जयजयकार कर रहे हैं। उसने कहा, "जाइए—आपको बिना साथ ले जाए ये लोग नहीं मानेंगे। हम लोग भी जुलूस के साथ चलेंगे।

जुलूस समाप्त हुआ दयानाथ के घर पर। लेकिन जुलूस के समाप्त होने पर भी दयानाथ घर पर अकेला न रह सका, कांग्रेस के प्रमुख नेता आवश्यक परामर्श के लिए रुक गए। दयानाथ को घेर कर सब लोग ड्राइंग-रूम में बैठ गए और मूवमेण्ट की बातें होने लगीं। जब एक घंटा भूमिका में ही समाप्त हो गया, तब उमानाथ से न रहा गया। उसने झल्लाकर कहा, "अगर आप लोग भाई साहब के वास्तव में मित्र हैं, तो आप लोग इन पर थोड़ी-सी दया

करें। इन्हें इतना समय दें कि ये स्नान-भोजन करके कुछ थोड़ी देर आराम कर लें।"

"ओहो ! मैं तो भूल ही गया था—भोजन मैंने भी नहीं किया है!" डाक्टर हीरालाल ने कहा, "क्या बतलाऊँ, रास्ता ही हम लोगों ने ऐसा अपनाया है कि एक मिनट की भी फ़ुरसत नहीं मिलती। अच्छा, हम लोग शाम के समय फिर इकट्ठा होंगे।" और कांग्रेस-नेता उठ खड़े हुए।

दयानाथ ने अघा कर सांस ली। उस समय बारह बज रहे थे। राजेश्वरी ने अपने हाथों आज रसोई तैयार की थी। वह बाहर आई—दयानाथ उस समय उमानाथ से बातें कर रहा था। राजेश्वरी के आते ही उमानाथ उठ खड़ा हुआ; मुस्कराते हुए उसने कहा, "भौजी ! मैं तो भइया को भीतर ला ही रहा था। बड़ी मुश्किल से मैंने उन कांग्रेस के नेताओं से भइया का पीछा छुड़ाया। क्या मज़ाक, कि आज ही जेल से बाहर आए और आज ही वे लोग इनकी जान खाने लगे, मानों सिवा इस स्वराज्य की लड़ाई के, भइया के लिए कोई दूसरा काम ही नहीं है।"

राजेश्वरी ने दयानाथ की कुर्सी के हत्थे पर बैठते हुए कहा, "मझले बाबूजी, आप ही इन्हें समझाइए !"

दयानाथ हँस पड़ा, "यह उमा मुझे क्या समझाएगा ? देखो, मैंने जिस समय यह रास्ता अपनाया था, एक पवित्र सिद्धान्त पर, एक पवित्र कार्य के वास्ते मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया था। वही कार्य, वही सेवा, वही त्याग, वही सिद्धान्त मेरा एकमात्र अस्तित्व है। मैं जेल से छूटा हूँ, आराम करने के लिये नहीं, काम करने के लिये !"

"और हम लोग—मैं, तुम्हारे दोनों बच्चे—क्या हम लोगों का तुम पर कोई अधिकार नहीं? हमारे लिए क्या तुम्हारे पास ज़रा-सा भी समय नहीं है ?" राजेश्वरी ने करुण स्वर में पूछा।

दयानाथ ने राजेश्वरी की पीठ पर हाथ रख दिया, "तुम ! क्या कहती हो ? मुझसे अलग तुम्हारा अस्तित्व ही कहां है ? तुम मुझसे अलग कब हो ?

जिस समय मैंने अपना जीवन अर्पित किया था, उस समय मैंने तुम्हारा भी जीवन अर्पित कर दिया था! अच्छा ! तुमने कितना सूत काता है, इन छः महीनों में ?"

राजेश्वरी एकदम पिघल गई । उसने कहा, "बहुत-सा, बहुत-सा सूत काता है, मेरे देवता ! मैं जानती थी कि तुम मुझसे यह प्रश्न करोगे ! मैं जानती थी कि तुम अपना वह काम, जो मैं कर सकती हूँ, मुझे सौंप गए हो। और मैंने उस काम को पूरा किया है।"

उमानाथ ने आश्चर्य से अपने भाई और अपनी भावज को देखा । उसके सामने एक अजीब मजाक-सा हो रहा था । एकाएक वह जोर से हँस पड़ा, "वाह भौजी ! तुम तो बड़ी जल्दी पिघल गईं । भइया ने तुम्हें दो ही बातों में काबू में कर लिया!"

राजेश्वरी उठ खड़ी हुई—तन कर । उसने उमानाथ से कहा, "मझले बाबू—तुम्हारे भइया की एक नजर काफ़ी है, दो बातें तो बहुत होती हैं!" और उसने दयानाथ को हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा, "अच्छा, चलिए, स्नान कर लीजिए चलकर; भोजन तैयार हो गया है।"

२

दयानाथ के पुराने साथी सब के सब जेल में थे, एक डाक्टर हीरालाल को छोड़ कर । इस बीच में नए काम करनेवालों का एक बहुत बड़ा दल तैयार हो गया था और काम तेजी के साथ चल रहा था । शाम के समय कांग्रेस के सब कार्यकर्ता दयानाथ के बंगले पर एकत्रित हुए। अनुभवहीन नवयुवकों का एक समूह अपने अनुभवी नेता से परामर्श करने को एकत्रित हुआ था। इन लोगों के आते ही उमानाथ शहर घूमने को निकल पड़ा।

मूवमेण्ट इस समय तेजी के साथ चल रहा था; देश की सभी राष्ट्रीय संस्थाएं गैरकानूनी करार दी गई थीं। उस समय कानपुर-नगर-कांग्रेस-कमेटी का काम कौन चलाता है, कैसे चलाता है—किसी को इसका पता न

था। अभी बातचीत शुरू ही हुई थी कि नौकर ने इत्तिला दी कि लाला रामकिशोर की कार बाहर खड़ी है। दयानाथ उठकर बाहर गया और लाला रामकिशोर के साथ वापस लौटा।

सब लोग बैठ गए। दयानाथ ने कानपुर के वर्तमान डिक्टेटर श्रीरामभरोसे से पूछा, "स्थिति मैंने, जहां तक हो सका है, समझ ली। अब सवाल आता है कल के जुलूस का। जहां तक मैं समझता हूं, कल के जुलूस में लाठी-चार्ज होगा, और हमें इस बात का खयाल रखना पड़ेगा कि लाठी-चार्ज के समय हमारे आदमी साहस से काम लें।"

कुछ रुक कर दयानाथ ने फिर पूछा, "और रामभरोसेजी, आप बतला सकते हैं कि इस समय गिरफ्तार होने के लिए कितने आदमी आपके पास हैं?"

गर्व से छाती फुला कर रामभरोसे ने कहा, "गिरफ्तार होने के लिए आदमियों की कमी नहीं है, हजार दो हजार, जितने आदमी चाहें, गिरफ्तार होने के लिए तैयार हैं। लेकिन गिरफ्तारियां आजकल बन्द हैं।"

"इतने स्वयंसेवक आपको मिल गए—ताज्जुब की बात है!" आश्चर्य से दयानाथ ने कहा।

अब लाला रामकिशोर के बोलने की बारी थी, "इसमें ताज्जुब की क्या बात है? हिन्दुस्तान में गरीबों और बेकारों की कमी नहीं, उनको रुपए दो और स्वयंसेवक बनाओ!"

"लेकिन रुपया?" दयानाथ ने फिर पूछा।

"रुपए की कमी नहीं! बाजार में आनेवाले माल की प्रति गाड़ी पर एक पैसा बंधा हुआ है, और यह धर्म-खाते—कांग्रेस का काम धर्म का काम है न!" और लाला रामकिशोर हंस पड़े।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा, इसके बाद रामभरोसे ने फिर कहा, "लाठी-चार्ज होगा अवश्य—हर जगह से लाठी-चार्ज होने की खबरें आ रही हैं। अब हमारे स्वयंसेवकों को चाहिए कि लाठी खायें और हटें नहीं।"

"हूँ ! यह समस्या मेरी नजर में भी है !" दयानाथ ने कहा, "लेकिन नेताओं में कितने लोग लाठी खाने को सम्मिलित रहेंगे ?" दयानाथ ने अपने इर्द-गिर्द बैठे नेताओं पर नजर डाली।

और दयानाथ ने देखा कि सब लोग मौन हैं। थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा के बाद दयानाथ ने रामभरोसे से कहा, "क्यों रामभरोसेजी—स्वयंसेवक लोग यही कहेंगे न कि लाठी खाने के लिए स्वयंसेवक और यश लूटने के लिए नेता ! और मेरा कहना है कि अगर स्वयंसेवकों के साथ इस परीक्षा के समय उनके नेता नहीं रहते तो किस प्रकार उनमें साहस आवेगा ? किस प्रकार वे अहिंसा पर कायम रह सकेंगे ? बिना नायक के सेना किस प्रकार लड़ सकती है ? नहीं रामभरोसेजी, नेता का साथ में होना और साथ में ही नहीं, बल्कि सब के आगे होना बहुत जरूरी है !"

"आप शायद ठीक कहते हैं !" दबी जबान रामभरोसे ने कहा।

"तो फिर आपको जुलूस के आगे रहना चाहिए ! आप डिक्टेटर हैं !"

दूसरे दिन शहर में सनसनी फैली थी। श्रद्धानन्द-पार्क में कानपुर की जनता एकत्रित हो रही थी, वहीं से जुलूस निकलने वाला था। लोगों में उत्साह था और उमंग थी।

दयानाथ भी जुलूस में शामिल होने को तैयार हुआ। राजेश्वरी ने कहा, "मैं भी चलूंगी !"

उमानाथ दयानाथ के पास खड़ा था; उसने कहा, "अगर आप गिरफ्तार हो गईं, भौजीजी, तो लड़कों को कौन संभालेगा ?" और वह मुस्कराया।

राजेश्वरी ने भी मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "वह तो है, बाबूजी !"

उमानाथ हँस पड़ा, "अच्छा, भौजीजी, तो आपकी गिरफ्तारी देखने के लिए मैं भी चलूंगा !"

जिस समय वे तीनों श्रद्धानन्द पार्क में पहुंचे, तीन बज रहे थे। जुलूस साढ़े तीन बजे उठनेवाला था, और उस समय पार्क खचाखच भर गया था।

ठीक साढ़े तीन बजे जुलूस रवाना हुआ। सब के आगे कानपुर के डिक्टेटर श्री रामभरोसे थे और उनके पीछे करीब सौ स्वयंसेवक। इन सब के हाथ में तिरंगा झण्डा था। इनके पीछे महिलाएँ थीं, इनकी संख्या भी करीब पचास थी। महिलाओं के पीछे सैकड़ों लड़के—और उनके पीछे कानपुर का जन-समुदाय!

३

मालरोड के चौराहे पर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस लट्ठबन्द पुलिस का दस्ता लिये खड़े थे। जिस समय जुलूस मेस्टन रोड से मालरोड पर पहुँचा, पुलिस-वालों ने जुलूस को रोक दिया। सुपरिन्टेन्डेन्ट-पुलिस ने रामभरोसे से कहा, "मेरी आज्ञा है कि जलूस मालरोड पर नहीं जा सकता, उसे वापस ले जाइए नहीं तो मुझे इस जुलूस को जबरदस्ती भंग करना पड़ेगा।"

रामभरोसे ने उत्तर दिया, "आपकी आज्ञा हम मानने को तैयार नहीं, आप जिस सरकार के प्रतिनिधि हैं, हम उसे स्वीकार नहीं करते।"

सुपरिन्टेन्डेन्ट ने अबकी बार ज़ोर से कहा, "मैं इस जुलूस को गैरकानूनी करार देता हूँ। मैं दो मिनट का समय देता हूँ कि जुलूस तितर-बितर हो जाय, नहीं तो वह लाठी-चार्ज से तितर-बितर किया जायगा।"

दोनों ओर एक गहरा सन्नाटा छाया था, दोनों दल मौन खड़े थे। और इसी समय रामभरोसे ने नारा लगाया, "बोलो महात्मा गांधी की जय! बोलो भारत-माता की जय!" इन नारों को सारे जलूस ने एक साथ दुहराया।

दो मिनट बीत गए और जुलूस वैसा का वैसा खड़ा रहा। पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट ने रामभरोसे को गिरफ्तार कर लिया, इसके बाद उसने जुलूस पर लाठी-चार्ज की आज्ञा दी।

पुलिसवालों ने स्वयंसेवकों को लाठी से मारना शुरू कर दिया। पहले प्रहार के समय स्वयंसेवकों में कुछ शिथिलता-सी दिखाई दी, उनमें से दो-चार एक-आध कदम पीछे हटे, लेकिन शीघ्र ही वह शिथिलता जाती रही

और स्वयंसेवक जमीन पर बैठ गए। स्वयंसेवकों पर लाठियां बरस रही थीं, और वे 'भारत-माता की जय !' 'महात्मा गांधी की जय !' 'वन्देमातरम् !' के नारे लगा रहे थे। ज्यादा मार खाने पर वे बेहोश भी हो जाते थे।

इस समय कुछ स्त्रियां भी पीछे से आगे बढ़ीं और पुलिसवाले उन स्त्रियों को देख कर झिझके। सुपरिन्टेन्डेन्ट-पुलिस ने उन स्त्रियों को तथा उन स्वयंसेवकों को, जो अभी तक होश में थे, गिरफ्तार करने का आर्डर दे दिया। ये लोग गिरफ्तार करके पुलिस की लारियों में भर दिए गए।

दयानाथ, उमानाथ तथा दो-चार अन्य कांग्रेस कार्यकर्ताओं को छोड़ कर, जो दर्शक-रूप में जुलूस के साथ थे, बाकी सब लोग तितर-बितर हो गए थे। पुलिस के जाने के बाद इन लोगों ने घायल और बेहोश स्वयंसेवकों को उठाया तथा इनकी सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध किया। इस सब में इन लोगों को आठ बज गए।

जब दयानाथ और उमानाथ घर लौटे कि महालक्ष्मी, राजेश, ब्रजेश, सुरेश और घर के नौकरों से घिरी हुई राजेश्वरीदेवी बरामदे में बैठी हुं और व्याख्यान दे रही हैं। दयानाथ ने आश्चर्य से कहा, "अरे ! मैं तो समझा था कि तुम जेल में होंगी, लेकिन तुम यहां मौजूद हो !"

मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए राजेश्वरी ने कहा, "हां, अभी जाजमऊ से पैदल आ रही हूं !"

"जाजमऊ से और पैदल !" उमानाथ ने आश्चर्य से कहा। जाजमऊ दयानाथ के बंगले से करीब पांच मील की दूरी पर था।

"क्या बतलाऊं बाबूजी ! लारी पर बिठला कर हम लोगों को पुलिस-वालों ने जाजमऊ में छोड़ दिया। अरे बाप रे—कितनी दूर है। यह तो कहो कि हम लोग बीस थीं, नहीं तो डर के मारे हमारे प्राण निकल जाते। और फिर हम बीसों वहां से गाना गाते हुए वापस लौटीं। रास्ते में दो औरतें बेहोश हो गईं। यह कहो कि एक इक्का मिल गया, उसी में उन दोनों को

चढ़ाकर उनके घर पहुंचाया; नहीं तो भगवान् जानें हम लोगों की क्या दुर्दशा होती !"

४

इसी समय तीन-चार आदमियों के साथ दो स्त्रियां रोती हुई, बंगले में आईं। उनमें एक बुढ़िया थी और दूसरी यद्यपि जवान थी, पर बुढ़िया-सी ही लगती थी। दोनों औरतें बुरी तरह रो रही थीं और चिल्ला रही थीं। बुढ़िया बीच-बीच में बकने लगती थी, "आग लगे ई कांग्रेस मां, मर जायें गांधी ! हमरे बेटवा का खाय लीन्हिन ! हाय राम ! हाय दई !"

दयानाथ ने आगे बढ़ कर साथवाले आदमियों से पूछा, "क्या बात है ?"

दयानाथ को देखते ही बुढ़िया उनके पैरों पर गिर पड़ी, "मालिक ! हम लोग लुट गईं; हमार लाल हमसे छिन गा ! हाय राम हम का करब ?" और बुढ़िया ने ज़मीन पर अपना सर पटक दिया।

उमानाथ ने, जो अलग खड़ा हुआ सब कुछ देख रहा था, देखा कि दूसरी औरत एक निर्जीव-पेड़ की तरह गिरने वाली है; बढ़ कर उसने उस औरत को संभाला, जो बेहोश हो गई थी।

जिस आदमी से दयानाथ ने सवाल किया था, उसने कहा, "जीवन का अस्पताल में प्राणान्त हो गया !"

दयानाथ थोड़ी देर तक चुप खड़ा सोचता रहा। दूसरा आदमी कह रहा था, "यह बुढ़िया इसकी मां है और यह औरत, जो अभी बेहोश हो गई, उसकी मेहरारू है। इसकी दो लड़कियां हैं। घर में कोई मर्द नहीं, जीवन अकेला था। अब इन लोगों का क्या होगा—भगवान् जानें !"

दयानाथ ने अपना सर उठाया, उसने उमानाथ से कहा, "उमा ! तुम लोग बैठो, मुझे जाना पड़ेगा। उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध करना है न !"

"मैं भी आप के साथ चलूंगा !" उमानाथ ने कहा।

इस समय तक जीवन की पत्नी जँदेई होश में आ गई थी। दयानाथ ने साथ के आदमियों से कहा, "एक आदमी मेरे साथ अस्पताल चले, बाकी लोग इन औरतों को लेकर घर चलें। मैं अस्पताल से लाश लेकर आता हूं।"

उन सब को रवाना करके एक आदमी के साथ दयानाथ और उमानाथ अस्पताल पहुंचे। लाश बरामदे में रक्खी थी। डाक्टर ने दयानाथ से कहा, "मुझे बड़ा अफ़सोस है मिस्टर दयानाथ, मैं इसे नहीं बचा सका। सर में फ्रैक्चर हो गया था। अच्छा ही हुआ कि यह मर गया; अगर बच जाता तो यह आदमी पागल हो जाता।"

लाश को गाड़ी में लाद कर सब लोग जीवन के घर पहुंचे।

एक तंग गली के अन्दर एक टूटे-फूटे मकान का नीचे का हिस्सा, जिसमें दो कोठरियां थीं और एक अंधेरा आंगन—यह जीवन का मकान था। जीवन एक प्रेस में कम्पोज़ीटर था और बाईस रुपया महीना पाता था। पांच रुपया महीना घर का किराया था, बाकी सत्रह रुपए में वह अपनी गृहस्थी चलाता था।

एक कोठरी में तेल की एक कुप्पी टिमटिमा रही थी, और उसके अन्दर चार प्राणी तड़प रहे थे। उनके पास-पड़ोस से हमदर्दी के लिए आई हुई स्त्रियां भी थीं। पड़ोस के लोग मकान के बाहर खड़े एक दूसरे से कानाफूसी कर रहे थे।

जैसे जीवन की लाश मकान के सामने पहुंची, लोगों की कानाफूसी बन्द हो गई। जीवन की बुढ़िया मां और उसकी पत्नी दोनों ही मकान के अन्दर से दौड़ कर आईं और जीवन की लाश से चिपट गईं। उमानाथ ने उधर से अपना मुंह फेर लिया—यह दृश्य उसकी बर्दाश्त के बाहर था।

लोग एकत्रित हो रहे थे। "एक स्वयंसेवक की लाठी-चार्ज से मृत्यु हो गई!" बिजली की तरह यह खबर शहर में फैल गई थी। दयानाथ ने कुछ स्वयंसेवकों को रुपए देकर अन्त्येष्टि-क्रिया का सामान लाने भेज दिया और वह आकर उमानाथ के पास खड़ा हो गया।

उस मकान के आगे एक नाला था, और उस नाले के किनारे लोग बैठे थे। उस नाले से सड़ी बदबू आ रही थी, लेकिन फिर भी लोग वहां बैठे जीवन के घरवालों के भविष्य पर इस प्रकार टीका-टिप्पणी कर रहे थे, मानो उनके लिए उस नाले का कोई अस्तित्व ही नहीं। उमानाथ ने यह सब देखा और वह सर से पैर तक सिहर उठा। "तो यह आदमी इस बदबू में ही रहने को विवश था! उसके घरवाले इस बदबू में ही पले हैं!" उसने अपने से कहा, उसने अपने से ही उत्तर दिया, "चलो! अच्छा ही हुआ! इस जिन्दगी से तो मौत अच्छी है!"

घण्टे भर के अन्दर ही स्वयंसेवक सब सामान लेकर वापस आ गए। उस समय तक करीब एक हजार आदमियों की भीड़ गली में तथा सड़क पर एकत्रित हो गई थी।

जीवन की अर्थी कांग्रेस की जयजयकारों के साथ उठी—वह देश के एक शहीद की अर्थी थी। उन जयजयकारों से जीवन की बुढ़िया मां तथा जवान पत्नी तक प्रभावित थे, दोनों अर्थी के साथ श्मशान-भूमि की ओर रवाना हुईं। उस समय वे रो न रही थीं, उनमें एकाएक न जाने क्यों अपने जीवन की इस गति पर एक प्रकार का गर्व भर गया था! करीब बारह बजे रात को लाश श्मशान में पहुंची।

चिता में आग लग जाने पर भीड़ तितर-बितर हो गई। दयानाथ, उमानाथ, बुढ़िया मां और जीवन की पत्नी के अलावा दो-चार स्वयंसेवक और रह गए थे। उमानाथ ने उस समय मरघट का दृश्य देखा; एक भयानक मृत्यु का सन्नाटा चारों ओर छाया था। और फिर उसने अपने भाई की तरफ़ एक दृष्टि डाली—दयानाथ जलती हुई चिता के पास खड़ा हुआ कुछ सोच रहा था—और अपने सामने वाले शून्य को चीर कर कुछ देखने का प्रयत्न कर रहा था। चिता की लपटों का प्रकाश दयानाथ के मुख पर पड़ रहा था और उमानाथ ने देखा कि दयानाथ के मुख पर कुछ अजीब-सी आभा से भरी गम्भीरता है—चिन्तन है। और फिर उसकी नजर उन दो

औरतों पर पड़ी—जो पत्थर की मूर्ति की तरह अपने निजी को राख होते देख रही थीं।

एकाएक वह चौंक पड़ा, उसने देखा कि एक स्त्री उठी और वह जलती हुई चिता की ओर लपकी। वह चिल्ला उठा, "अरे!"

उसके चिल्लाते ही दयानाथ ने उधर देखा; उस समय तक जयदेवी (जीवन की पत्नी) चिता में फांद पड़ी थी। दयानाथ ने दौड़ कर जयदेवी को चिता से खींचा, वे चारों स्वयंसेवक भी वहां आ गए थे। जयदेवी के कपड़ों में आग लग गई थी, बड़ी मुश्किल से उन लोगों ने जयदेवी के कपड़ों की आग बुझाई। जयदेवी का शरीर कुछ झुलस गया था।

और बुढ़िया बड़बड़ा रही थी, "हाय राम! तू हू हमें छोड़ के जाय रही है! लड़कन का को संभाली? हाय दई—यह क्या हुइ रहा है?"

जयदेवी ज्यादा न जली थी। दयानाथ ने कहा, "बहिन, इस तरह न करना चाहिए था! धीरज रक्खो!"

लेकिन जयदेवी ने उत्तर दिया, "धीरज? कैसा धीरज? अब हमारे वास्ते है क्या? कौन ममता और कौन मोह? भूखन मरन का है, और लड़कन का भूखन मारन का। यही लिए जिन्दा रही?"

दयानाथ ने इस बार गौर से जयदेवी को देखा। उसने देखा कि जयदेवी एकदम बूढ़ी हो गई है। कोई भी यह न कह सकता था कि वह बाईस वर्ष की एक युवती है। उसके गाल गढ़े में धंस गए थे, उसकी आंखों की चमक मर चुकी थी, उसकी पीठ झुकने लगी थी। दरिद्रता और उत्पीड़न के अनवरत संघर्ष ने उसे बुरी तरह कुचल दिया था। और उसी समय जयदेवी ने फिर कहा, "जिन्दगी की एक आसा—एक सहारा! वही साथ छोड़िगा! हाय राम, हमें मौत देव!" और उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

"नहीं बहिन—हम लोग तुम्हारा प्रबन्ध कर देंगे, इतनी अधीर मत होओ!" दयानाथ ने उसे ढाढ़स बंधवाया।

जिस समय दोनों भाई घर लौटे, सुबह हो रही थी। रास्ते भर दोनों मौन

रहे। घर पर सब लोग सो रहे थे। इन दोनों के आते ही राजेश्वरी और महालक्ष्मी दोनों जाग पड़ीं।

उमानाथ ने आते ही कहा, "भौजी ! एक प्याला गरम चाय चाहिए, हाथ पैर ठिठुर गए हैं।"

लेकिन दयानाथ मौन सोफ़ा पर बैठ गया; उसने राजेश्वरी पर एक करुण दृष्टि डाली और फिर उसने एक ठंढी सांस ली।

मार्कण्डेय जेल के फाटक के बाहर निकला; उस समय सुबह के नौ बजे थे। मार्कण्डेय को उसी समय बतलाया गया था कि उसकी सजा की अवधि पूरी हो गई है और वह मुक्त कर दिया गया है। जब वह बाहर आया, फाटक पर सन्नाटा छाया था। बाहर निकल कर मार्कण्डेय ने अघा कर एक सांस ली। उसने अपने चारों ओर देखा, इक्का-दुक्का लोग स्वच्छन्दतापूर्वक इधर-उधर जा रहे थे, लेकिन उसकी ओर किसी ने देखा तक नहीं। वह मुस्कराया। जब और लोग छूटते थे, जेल के फाटक पर लोगों की भीड़ लगी रहती थी। अपनी कोठरी से वह स्वागत करनेवालों के जयजयकार के नारे सुना करता था। लेकिन उसका स्वागत करने कोई नहीं आया था—आता भी कैसे ? उसके छूटने का तो किसी को पता तक न था।

वह पैदल ही अपने घर की तरफ़ चल पड़ा। कचहरी पार करके जब वह शहर की ओर चला, तो उसे उमानाथ दिखलाई पड़ा। उमानाथ शहर से लौट रहा था। मार्कण्डेय को देखते ही उसने अपनी कार रोक दी, "अरे मार्कण्डेय भइया ! आप कब छूटे ?"

"अभी सीधा जेल से चला आ रहा हूं ! मुझ तक को पता न था कि मैं आज छूटूंगा।"

"चलिए—हमारे यहां ! झगड़ू काका तो यहां हैं नहीं, गांव चले गए।

बड़के भइया आपको देखते ही चौंक उठेंगे।" हाथ पकड़कर मार्कण्डेय को कार में बिठलाते हुए उमानाथ ने कहा।

जिस समय ये दोनों दयानाथ के यहां पहुंचे, दयानाथ के ड्राइंग-रूम में कांग्रेस के कार्यकर्ता एकत्रित थे और वे दयानाथ से मूवमेण्ट पर परामर्श कर रहे थे। मार्कण्डेय को देखते ही सब लोग चौंककर उठ खड़े हुए; दयानाथ ने उठकर मार्कण्डेय को गले लगाते हुए कहा, "अरे मार्कण्डेय! मालूम होता है, सीधे छूटे हुए चले आ रहे हो!"

"हां, सीधा!" मार्कण्डेय ने गद्देदार कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "उफ़! आखिर में छूट ही गया। मैं तो समझता था कि अभी एक महीना और सरकार की मेहमानदारी करनी पड़ेगी, लेकिन न जाने क्यों बिना पूछे-बतलाए उन लोगों ने मुझे आज सुबह ही जेल से निकाल बाहर किया।"

इसके बाद मार्कण्डेय ने वहां पर एकत्रित अन्य लोगों पर नजर डाली, फिर उसने कहा, "अच्छा! तो आप लोग वही पुराना चर्खा लिए बैठे हैं? क्या किया जाय—कैसे किया जाय! ना बाबा! मैं अभी इस पचड़े में नहीं पड़ने का!" वह उमानाथ की ओर घूमा, "कहो जी उमा—कहां घसीट लाए! अपने घर पहुंच कर पैर फैलाकर आराम करता! यहां तो वही मूव-मेण्ट, वही गिरफ्तारी, वही जेल का किस्सा चल रहा है!" और मार्कण्डेय उठ खड़ा हुआ।

उमानाथ हंस पड़ा, "मैंने तो समझा था कि घर में अकेले आपका मन ऊबेगा, इसके अलावा यहां इतने कांग्रेसमैनों से मिलकर आपको परिस्थिति की जानकारी हासिल हो जाएगी! लेकिन देखता हूं कि आप बड़के भइया के मुकाबिले किसी कदर ज्यादा सुलझे हुए हैं। अच्छा, दूसरे कमरे में चलिए, वहां स्नान करके सोइए!"

"अरे बैठो भी मार्कण्डेय!" दयानाथ ने कहा, "जरा काम की बातें हो रही हैं और हम लोग कुछ उलझन में पड़े हैं। मैंने तो सोचा कि तुम अच्छे आ गए, तुमसे इस उलझन को सुलझाने में कुछ मदद ही मिल जायगी।"

"वह उलझन क्या है ?" बैठते हुए मार्कण्डेय ने पूछा ।

"बात यह है कि विलायती कपड़ों की दूकानों पर धरना दिया जा रहा है—इतना तो तुम जानते ही हो । और शहर की करीब-करीब सब दूकानों के माल पर मुहर लगा दी गई है; इनी-गिनी कुछ थोड़ी-सी बची हैं। इन्हीं दूकानों पर धरने का जोर है। और धरना देनेवालों में स्त्रियां भी हैं। तो परसों एक बड़ी कुरूप घटना घटित हो गई । एक स्त्री एक दूकान पर धरना दे रही थी। दूकानदार एक नौजवान लड़का है, लेकिन जरा बिगड़ा हुआ और शोहदे-किस्म का । इसके अलावा वह धरना देनेवाली स्त्री सुन्दर थी। दूकानदार ने उस स्त्री के प्रति कुछ बड़े अपमानजनक और अश्लील शब्दों का प्रयोग किया। वह स्त्री उसी समय दूकान से चली आई, और उसने उस घटना का जिक्र अन्य स्वयंसेवकों से किया । परिणाम यह हुआ कि स्वयंसेवक उत्तेजित हो उठे और स्वयंसेवकों से यह चर्चा सुनकर जनता भी उत्तेजित हो गई। खैरियत यह हुई कि दूकानदार को कुछ आशंका हो गई और वह उसी समय दूकान बन्द करके घर चला गया, नहीं तो वह जन-समुदाय, जो एक घंटे बाद उस दूकान पर पहुंचा, न जाने क्या करता !"

"तो फिर इसमें उलझन क्या है ?" मार्कण्डेय ने पूछा ।

"इसमें उलझन यह है कि कुछ लोग,——उन लोगों में कुछ कांग्रेसमैन हैं बाकी सब कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवाले हैं—लगातार उस दूकानदार के मकान के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहे हैं । उनका कहना है कि वे बिना दूकानदार की नाक काटे नहीं मानेंगे । वह बेचारा दूकानदार एक तरह से अपने घर में कैद है।"

"हां ! यह तो बेजा बात है !" मार्कण्डेय ने कहा, "मेरा ऐसा खयाल है कि उस दूकानदार ने जो कुछ किया, वह करने का उसे पूरा अधिकार था, क्योंकि वह हिंसा का उपासक है । लेकिन हमारे स्वयंसेवक या कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवाले लोग जो कर रहे हैं या करना चाहते हैं, वह गलत है क्योंकि वह हिंसा है, और हम हिंसा के विरोधी हैं।"

उमानाथ बोल उठा, "आप हिंसा के विरोधी हैं! लेकिन यह आपका धरना! क्या यह हिंसा नहीं है? किसी को हानि पहुंचाना, यह कब से अहिंसा हुआ? आप दूकानदार को अपना माल नहीं बेचने देते; यह किस तरह से अहिंसा है?"

दयानाथ ने सर उठाया, "उमा! एक बात समझ लो! धरने का मतलब दूकानदार को माल न बेचने देने का नहीं है, वह खरीदार से माल न खरीदने का आग्रह है। हम दूकानदार को समझाते हैं, जब दूकानदार नहीं समझता, तब हम ग्राहक को समझाते हैं। विलायती माल खरीदने से देश की हानि है, विलायती माल की खपत से देश अपनी स्वतंत्रता को न पा सकेगा। और इसलिए हम धरना देते हैं। इसमें हिंसा कहां से आई? अगर हम मारने-पीटने पर आमादा हो जायँ, तब तुम कह सकते हो कि हम हिंसा के पाप के भागी हैं।"

"भइया! तब आप हिंसा के केवल बाह्य-रूप को देखते हैं। जिस समय आपका स्वयंसेवक जमीन पर लेट कर ग्राहक से कहता है कि वह उसकी छाती पर पैर रखकर जाय, तब आपका वह स्वयंसेवक स्पष्ट रूप से दुराग्रह पर उतर आता है; आप उसे सत्याग्रह भले ही कहें।"

इस बार मार्कण्डेय की बारी थी, "उमा! तुम उसे दुराग्रह कैसे कहते हो? नैतिक बल किसमें है? छाती खोलकर जमीन पर लेट जानेवाले में या छाती पर पैर रखकर दूकान तक न पहुंचकर पीछे हट आनेवाले ग्राहक में? और नैतिक बल सत्य में ही होता है, मिथ्या में नहीं। हमारा दुराग्रह तब होता, जब ग्राहक से यह कहते कि अगर तुम विलायती कपड़ा खरीदोगे तो हम सर फोड़ देंगे!"

"मैं तो समझता हूं कि किसी तरह का दबाव डालना, व्यक्तिगत स्वाधीनता में किसी तरह बाधक होना, किसी को किसी तरह विवश करना—यह हिंसा है!" उमानाथ ने कहा।

मार्कण्डेय मुस्कराया, "पर हम दबाव कहां डालते हैं? हम तो मनुष्य

की आत्मा के सत्य तथा उसकी सुन्दरता को जाग्रत करके उनके द्वारा उसके भीतरवाले असत्य और कुरूपता को नष्ट कराते हैं। हम सत्याग्रह-द्वारा मनुष्य की कल्याणकारी और मानवीय भावनाओं से अपील करते हैं; और मनुष्य की कल्याणकारी तथा मानवीय भावना उस समय हमारी आत्मा के सत्य के बल की सहायता पाकर अपने अन्दरवाली पशुता पर विजय पाती है।"

दयानाथ ने कहा, "अच्छा छोड़ो इस बात को ! अब सवाल यह है कि क्या किया जाय !"

मार्कण्डेय ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, "हम लोगों को उस दूकानदार के घर चलना चाहिए, उससे अपने आदमियों की हरकत पर क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए। अपनी संरक्षता में उसे लाकर उसकी दूकान पर बिठलाना चाहिए और हमारे स्वयंसेवकों को, जो उसकी दूकान पर धरना दें, उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेना चाहिए।"

"बिलकुल ठीक !" दयानाथ कह उठा, "अच्छा, अब तुम स्नान करो और भोजन करो। इसके बाद अगर चाहो तो कुछ विश्राम भी कर लो। शाम के समय हमें उस दूकानदार के यहां चलना है !"

६

शाम के समय दयानाथ, मार्कण्डेय, उमानाथ तथा कांग्रेस के अन्य नेतागण उस दूकानदार के यहां पहुंचे। उस दूकानदार का नाम पुरुषोत्तम था, गोरा और खूबसूरत-सा आदमी, कुछ थोड़ा-सा लापरवाह। पुरुषोत्तम साधारण हैसियत का आदमी था और उसका मकान एक गली के अन्दर था। मकान भीतर से बन्द था। इन लोगों के आवाज़ देने पर उसने भीतर से झांका, और जब उसे विश्वास हो गया कि उसके दरवाज़े आने वाले आदमी उसपर प्रहार नहीं करेंगे, तब उसने उतर कर दरवाज़ा खोला। सब लोगों के अन्दर आ जाने पर जब वह फिर से दरवाज़ा बन्द करने लगा तो

दयानाथ ने कहा, "कोई जरूरत नहीं; हम लोग तुम्हारे साथ हैं—तुम्हें कोई कुछ भी नुकसान नहीं पहुंचा सकता। अपने भय को दूर करो!"

ऊपर कमरे में एक साफ़-सुथरा फ़र्श बिछा था, जिसपर सब लोग बैठ गए। बात दयानाथ ने आरम्भ की, "हम लोग, जो कुछ कष्ट तुम्हें मिला है, उसके लिए क्षमा मांगने आए हैं। तुम अपनी दूकान पर चलकर बैठो, हम अपने ऊपर यह जिम्मेदारी लेते हैं कि तुम्हारा कोई भी अनिष्ट न होने पाएगा। और अभी तक जो कुछ हुआ है, उसे भूल जाओ!"

पुरुषोत्तम सर झुकाए बैठा था। बिना अपना सर उठाए उसने उत्तर दिया, "हां, मुझसे गलती जरूर हो गई; लेकिन उस गलती के कारणों को मैं आप लोगों के सामने एक बार जाहिर कर दूं, फिर आप लोग जो उचित समझें, वह दंड मुझे दें और मैं उसे स्वीकार करूंगा। देखिए, मेरी एक छोटी-सी दूकान है; मेरे घर में चार प्राणी हैं, उनका पेट मुझे भरना है। फिर मेरी सब की सब पूंजी उस दूकान में लगी है। और उस दूकान में सब का सब विलायती कपड़ा है। अब जब आप लोग मेरी दूकान पर धरना देते हैं, तब आप हमारी आजीविका हरण करते हैं। मैं सब कष्ट बर्दाश्त करने को तैयार हूँ, लेकिन लड़कों-बच्चों का कष्ट मुझसे नहीं देखा जाता! मेरे पास ज्यादा पूंजी नहीं, जो मैं देसी कपड़ा खरीदकर दूकान में बेंच सकूं। ऐसी हालत में अगर मेरा दिमाग बिगड़ गया और मैं कुछ अनुचित बात कह बैठा, तो उसमें मेरा क्या दोष?"

थोड़ी देर तक सब चुप रहे। फिर दयानाथ ने उत्तर दिया, "हां, हम लोग तुम्हारी मुसीबत समझते हैं, लेकिन जरा तुम भी तो हमारी मुसीबत समझो! देश के इतने आदमी भूखों मर रहे हैं—करोड़ों आदमियों को एक समय भोजन तक नहीं मिलता। हमारी यह स्वतंत्रता की लड़ाई उन भूखों और पद-दलितों के उद्धार की लड़ाई है। और तुम! तुम भी तो उत्पीड़ित हो! आज तुम्हारी यह हालत विदेशी सरकार के कारण ही तो है। पुरुषोत्तम! यह युद्ध है; और इस युद्ध में प्रत्येक भारतवासी को अपना हिस्सा

लेना है। थोड़ा-सा कष्ट तुम्हें भी बर्दाश्त करना होगा। हम तुमसे जेल जाने को नहीं कहते, लाठी खाने को नहीं कहते। तुम जानते ही हो कि अधिकांश जेल जानेवालों के घर की हालत कितनी खराब है! एकमात्र उपार्जन करने, वाले के जेल चले जाने से उन लोगों को भूखे रहना पड़ता है। लेकिन वे तो उफ़ तक नहीं करते। मैंने देखा है लाठी खाकर मर जानेवाले के घर में न जाने कितने बच्चे अनाथ हो जाते हैं—निराश्रित विधवा और अन्य कुटुम्बी हाहाकार करते हैं। इतने बड़े महायज्ञ में अगर हमारा देश आहुति नहीं दे सकता, तो हमारा त्राण नहीं। तुम समर्थ हो! तुम कोई दूसरा काम करो! बाज़ार में तुम्हारी साख है, देसी कपड़ा तुम उधार लेकर बेच सकते हो। खैर, छोड़ो इस बात को! अब तुम अपनी दूकान पर चलकर बैठो। और तुम्हारे लोगों के सामने आ जाने के बाद फिर लोग तुम्हें कोई भी क्षति न पहुंचाएंगे। इसकी जिम्मेदारी मुझ पर!"

पुरुषोत्तम ने दयानाथ की ओर विनय से देखते हुए उत्तर दिया, "अच्छी बात है! मैं कल दूकान खोलूंगा! आप मुझे अपने साथ ले चलिएगा।"

सब लोग वहां से चले। वे लोग जनरलगंज से जा रहे थे कि एक आदमी ने खबर दी, "अनवरगंज की शराब की दूकान पर कुछ गुंडों ने कांग्रेस के स्वयंसेवकों को मारा-पीटा है। भीड़ उत्तेजित हो रही है!"

उसी समय सब लोग अनवरगंज की तरफ़ चल दिए।

शराब की दूकान के सामने जनता उत्तेजित खड़ी थी, और कुछ स्वयंसेवक जनता को शान्त कर रहे थे। बारह स्वयंसेवक दूकान के सामने जमीन पर बैठे थे, और दूकान के सामने एक आदमी जो नशे में चूर था, खड़ा हुआ चिल्ला रहा था, "ह-ट-जा-ओ! आज-खू-न-होगा—ला-शें गिरेंगी—एक-एक—बल्लम—सब को...हम...समझ—लेंगे!"

इतने में करीब चार आदमी हाथों में लट्ठ और जेबों में शराब की बोतलें लिये हुए दूकान से बाहर निकले। स्वयंसेवक छाती खोल कर जमीन पर

लेट गए; एक स्वयंसेवक ने कहा, "हमारी छाती पर पैर रख कर ही तुम यहां से शराब की बोतलें ले जा सकते हो, ऐसे नहीं।"

आगेवाला आदमी ठिठक कर खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही उसके अन्य साथी भी रुक गए। इतने में दूकान का मालिक भीतर से निकला। उसने सब से आगे वाले स्वयंसेवक का हाथ पकड़ कर उठाना चाहा, लेकिन वह असफल रहा। झल्ला कर उसने अपने हाथवाली शराब की बोतल उस स्वयंसेवक के सर पर पटक दी। बोतल फूटी और लाल शराब बह चली; स्वयंसेवक का सर फूटा और लाल खून बह चला। स्वयंसेवक ने जोर से कहा, "भारत-माता की जय!" और वह उसी समय बेहोश हो गया।

खून देख कर दूकान के मालिक को होश आया, वह एक कदम पीछे हटा। पर उन चार आदमियों में सब से आगेवाले आदमी ने उसे रोक लिया, "काहे हो! चले कहां?" और इस वाक्य के साथ उसका लट्ठ दूकान के छूट दयानाथ भीड़ को चीर कर आगे पहुंचा। दूकान का मालिक लट्ठ के प्रहार से गिर पड़ा था और इस वक़्त चारों आदमियों ने अपने-अपने लट्ठ तान लिये थे कि दयानाथ ने आगेवाले आदमी का हाथ पकड़ लिया, "यह क्या? तुम अपने ही आदमी को मार रहे हो।"

उस आदमी ने कहा, "यह हमारा आदमी नहीं है, यह हमारा दुश्मन है। यह हमसे पाप कराने को हमें बहका लाया था! हमें छोड़िए, हम इसे यहीं ख़त्म कर दें! हत्यारा कहीं का!"

उसी समय पुलिस आ गई। दयानाथ ने कहा, "पुलिस आ गई है। तुमने जो कुछ किया, वह बुरा किया। अब उसे यहीं खत्म करो! भगवान् तुमको सुबुद्धि दे!"

उसने शान्तिपूर्वक दयानाथ को प्रणाम करके कहा, "मुझे आप लोग माफ़ करें। जो पाप मैंने किया था, उसकी सज़ा मुझे मिल गई!" और फिर

उसने जोर से आवाज लगाई, "भारत-माता की जय!" इसके बाद उसने पुलिस को आत्म-समर्पण कर दिया।

पुलिस ने घायल स्वयंसेवक को और मालिक-दूकान को अपस्ताल भिजवाया। नौकरों ने यह सब देख कर दूकान बन्द कर दी। दूकान के बन्द होते ही भीड़ तितर-बितर हो गई।

जिस समय दयानाथ, उमानाथ और मार्कण्डेय घर पहुँचे, रात हो गई थी। खाना खा कर तीनों ड्राइंग-रूम में बैठे। बातचीत के सिलसिले में मार्कण्डेय ने उमानाथ से पूछा, "उमा! तुम्हारे वह दोस्त कामरेड मारीसन कहां हैं?"

"वह तो इंगलैण्ड चले गए। क्या बतलाऊं, अब अकेला ही रह गया हूँ; मन नहीं लगता! हां मार्कण्डेय भइया, कामरेड ब्रह्मदत्त का क्या हाल है? उनकी मुझे बड़ी जरूरत है!"

मार्कण्डेय हँस पड़ा, "कामरेड ब्रह्मदत्त आजकल सालीटेरी-सेल में निवास कर रहे हैं! भाई आदमी जीवट का है—मैं मान गया!"

"क्यों, क्या हुआ?" उमानाथ ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"बात यों हुई कि ब्रह्मदत्त को 'बी'-क्लास मिला और मुझे 'ए'-क्लास मिला था। कानपुर के डिक्टेटर की हैसियत से मैं भी गया था और ब्रह्मदत्त भी गए थे इससे यह भेद-भाव उन्हें अखर गया। सुपरिन्टेन्डेन्ट-जेल से उन्होंने लिखा-पढ़ी की। इसका नतीजा यह हुआ कि इनक्वाइरी हुई और यह समझा जाता था कि उन्हें भी 'ए'-क्लास मिल जायगा। लेकिन इस बीच में एक दिन वे सुपरिन्टेन्डेन्ट-जेल से अनायास ही उलझ पड़े।"

"सो कैसे?"

"वह ऐसे कि ब्रह्मदत्त उलझने पर ही तुले बैठे थे। सुपरिन्टेन्डेन्ट उस दिन राउण्ड लगा रहा था; ब्रह्मदत्त उसके सामने पहुँचे; तेजी के साथ उन्होंने कहा, इतने दिन हो गए और आप लोगों ने अभी तक कुछ नहीं किया। याद

रखना, अगर मुझे 'ए'-क्लास नहीं मिला तो कांग्रेस गवर्नमेन्ट होने पर मैं तुम्हें बर्खास्त कर दूंगा ! ब्रह्मदत्त की बात सुन कर सुपरिन्टेन्डेन्ट ज़ोर से हंस पड़ा, और अगर मैं तुम्हें 'सी'-क्लास दे दूं तो तुम मुझे फांसी चढ़वा दोगे ! और बर्खास्त होने से मैं मर जाना ज्यादा पसन्द करूंगा । इसलिए मैं तुम्हें 'सी'-क्लास देता हूं !"

उमानाथ खिलखिला कर हंस पड़ा, "मज़ेदार बात कह गया—तारीफ़ करता हूं उसकी ! फिर क्या हुआ ?"

"अब हमारे ब्रह्मदत्त साहेब को मिला 'सी'-क्लास । उसी दिन उन्होंने जनेऊ हाथ में लेकर कसम खाई कि वे सुपरिन्टेन्डेन्ट को नाकों चने चबवा देंगे । फिर क्या था, उन्होंने 'सी'-क्लास के कैदियों का एक यूनियन स्टार्ट किया। दो-चार दिन में ही वे जेल के एक-छत्र शासक बन बैठे । अब किसी भी कैदी को कोई हुक्म मिले, मजाल है कि बिना पण्डित ब्रह्मदत्त की मंज़ूरी के वह हुक्म पूरा हो जाय । नतीजा यह हुआ कि कामरेड ब्रह्मदत्त को डण्डा-बेड़ी मिली, उन पर मार पड़ी, तोबड़ा चढ़ाया गया । लेकिन हालत सुधरने की जगह दिनोंदिन बिगड़ती ही गई । जिस दिन मैं छूटा, उसके दो दिन पहले वे सालीटरी सेल में भेज दिए गए थे । लेकिन 'सी'-क्लास के कैदियों ने बाक़ायदा सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था और यह सत्याग्रह था कि काम न करेंगे, चाहे उनकी बोटी-बोटी काट डाली जाय ।"

"तब तो शायद उनकी सज़ा बढ़ा दी जाय !" उमानाथ ने चिन्तित भाव से कहा।

मार्कण्डेय ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "मेरा खयाल है कि जितने तरह के रिसोर्सेस हो सकते हैं, वे सब के सब उनके हक में बरते जाएंगे और अगर दो-चार दिन के अन्दर ही पण्डित ब्रह्मदत्त तुम्हें आकर सलाम करें तो इसमें मुझे ज़रा भी आश्चर्य न होगा ।" इसके बाद मार्कण्डेय दयानाथ की ओर घूमा, "दया ! कल मैं गांव जाने की सोच रहा हूं । दो-चार दिन गांव में रह कर आराम कर लूं, तब फिर यहां का काम-काज देखूं-भालूंगा !"

"मैं भी आपके साथ चलूँगा, मार्कण्डेय भइया !" उमानाथ ने कहा।

दयानाथ ने दोनों को देखा, फिर उसने मार्कण्डेय से कहा, "अच्छी बात है ! लेकिन कल सुबह उस दूकानदार के मसले को हल करके जाना !"

सुबह दस बजे सब लोग पुरुषोत्तम के मकान पर पहुँचे । उसे साथ लेकर वे लोग उसकी दूकान पर आए—जनता की एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी, लेकिन सब लोग शान्त थे । पुरुषोत्तम ने अपनी दूकान खोली और बैठ गया; उसके पास ही अन्य लोग भी बैठ गए।

उसी समय वह स्वयंसेविका, जिसका उस दिन पुरुषोत्तम ने अपमान किया था, झण्डा लेकर दूकान के सामने खड़ी हो गई । स्वयंसेविका के दूकान के सामने खड़ी होते ही पुरुषोत्तम ने दूकान से उतर कर उस स्वयंसेविका के चरण छुए । जनता ने उस समय नारा लगाया, "भारत-माता की जय !"

पुरुषोत्तम ने फिर दूकान पर खड़े होकर कहा, "भाइयो और बहनो ! मैंने जो पाप किया था, आज मैं उसका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ ! आज ही मैं अपने माल पर कांग्रेस की मुहर लगाए देता हूँ और आगे के लिए मैं अपने को कांग्रेस का एक तुच्छ कार्यकर्ता घोषित करता हूँ।"

चारों ओर एक हर्ष-ध्वनि गूंज उठी।

जब सब लोग वापस हुए, उमानाथ ने मार्कण्डेय से कहा, "मार्कण्डेय भइया ! आप लोग खूब तमाशा करते हैं—मैं मान गया ! लेकिन यह सब क्यों ? एक गलत सिद्धान्त पर लोगों को चला कर आप उनका कितना अधिक अहित कर रहे हैं—यह आप नहीं जानते !"

मार्कण्डेय ने उमानाथ की ओर आश्चर्य से देखा, "क्या कहा ? गलत सिद्धान्त ? तुम्हारे पास क्या सबूत है कि यह गलत सिद्धान्त है ?"

"इसका सबूत यह है कि आपका सिद्धान्त प्रकृति के विरुद्ध है !"

"और मैं कहता हूँ कि यह प्राकृतिक है !" मार्कण्डेय ने कहा, "तुमने

कल शराबखाने का दृश्य देखा और आज यह दृश्य देखा ! इस पर भी तुम कहते हो कि हमारा सिद्धान्त प्रकृति की अवहेलना करता है !"

एक व्यंगात्मक मुस्कराहट के साथ उमानाथ ने कहा, "मार्कण्डेय भइया ! उस स्थिति में जहां भावना थोड़ी देर के लिए क्षणिक उन्माद का रूप धारण कर लेती है, अगर एक बात हो जाय तो उसे हम प्राकृतिक नहीं कह सकते। आपका यह मास-मूवमेण्ट (Mass-movement) और 'मास-अपील' सत्य और नित्य नहीं है। आज और कल जो कुछ हुआ, उसे हम भावना का पागलपन ही कह सकते हैं, स्वाभाविक और प्राकृतिक घटनाएँ नहीं कह सकते !"

उस समय तक दोनों मार्कण्डेय के मकान तक पहुँच चुके थे। मार्कण्डेय ने कहा, "उसका उत्तर मैं तुम्हें गांव चल कर दूंगा, अभी मुझे चलने का प्रबन्ध करना है !"

तीसरा परिच्छेद

१

रात के समय जब मनमोहन शाम को शिकार में मारे हुए दो सवनों को पका रहा था तो झगड़ू ने पूछा, "काहे हो मनमोहन ! तुम कौन जात हो ?"

मनमोहन चौंक पड़ा, फिर जरा-सा सँभल कर उसने उत्तर दिया, "शायद ब्राह्मण !"

इस बार झगड़ू के चौंकने की बारी थी, "यू 'सायद' काहे ?"

मनमोहन ने बहुत ही गम्भीरतापूर्वक कहा, " 'शायद' इसलिए कि मुझे किसी भी चीज पर विश्वास नहीं रह गया। ब्राह्मण के कुल में मैंने जन्म अवश्य पाया है, पर न मेरे कर्म ब्राह्मण के हैं, न संस्कार ! मुझे ईश्वर पर विश्वास नहीं, मुझे अपने ऊपर तक विश्वास नहीं। ऐसी हालत में मैं अपने को निश्चयपूर्वक ब्राह्मण कैसे कह सकता हूँ।" कुछ रुककर मनमोहन ने फिर कहा, "लेकिन, मिसिरजी ! आपने इस समय मेरी जाति क्यों पूछी थी ?"

"बात यू आय कि मांस तुम पकाय रहे हो और खांय की इच्छा हमरी हूँ हुइ आई ! तौन हम यू निहचै कर लीन चाहा कि तुम ब्राह्मण आव कि नाहीं !"

"और अगर मैं ब्राह्मण न होता ?" मनमोहन ने पूछा।

"तो फिर आज हम निरामिष भोजन करित !"

एकाएक मनमोहन उठ खड़ा हुआ। उसका स्वर तनिक कर्कश हो उठा, "तो मिसिरजी ! आप वह नहीं हैं जो मैंने आपको समझ रक्खा था; आप भी समाज की रूढ़ियों से बँधे हुए उतने ही कायर आदमी हैं, जितना आज का हर एक हिन्दुस्तानी है !"

"का कह्यो ? हम कायर आन ?" कड़े स्वर में झगड़ू ने पूछा।

"हां, आप कायर हैं !" मनमोहन का स्वर और भी उत्तेजित हो उठा। मनुष्यों में छुआछूत का इतना विचार रखनेवाले आप पशु-पक्षियों को छू ही नहीं सकते हैं, वरन् उनका भक्षण कर सकते हैं ! आपने कभी इस पर सोचा है ? और सोचने की आवश्यकता ही क्या है—यह बात इतनी स्पष्ट है ! नतीजा साफ़ है—आपके अन्दरवाली कायरता आपको मजबूर करती है कि आप इन रूढ़ियों में बंधे रहें ।"

झगड़ू कुछ देर मौन बैठे हुए मनमोहन की बात पर सोचते रहे, फिर उन्होंने सर उठाया, "सायद तुम ठीकै कह्यो, मनमोहन ! हम अवस्य कायर आन ! लेकिन ई तो मानै का पड़ी कि कायरता कबौं-कबौं हितकरी होत है। हम सब छुटकवा मनई कायर आन !"

"सो कैसे ?" इस बार मनमोहन के प्रश्न करने की बारी थी।

"सो ई तरा कि दुनिया मां सफल मनई वहै आय जो वीर आय । और वीरता का एक रूप आय अपराध, अपनपन के पीछे लोकमत की उपेक्षा । सो प्रत्येक लोकमत की उपेक्षा करै वाला मनई अपराधी आय ! है न !"

"लोक-दृष्टि में—अपनी दृष्टि में नहीं।" मनमोहन ने कहा।

"माना, किन्तु लोक से पृथक हमारा अस्तित्व कब आय ? अब जब हम अपनपन का लोकमत के ऊपर उठाय लेइत हन तब हम वीर बन जात हन काहे सेनी कि हम ऊ समय अपने अन्दर वाली पुकार से प्रेरित हुइ के लोकमत का चुनौती देन पर तैयार हुइ जात हन !"

मनमोहन हंस पड़ा, "मिसिरजी ! यह लोकमत बनता कैसे है ? हम सब लोक के एक भाग हैं कि नहीं ? जो बात ठीक है, उसे करने में हिचक क्यों ? आज का लोकमत यदि गलत है, तो उसे सुधारनेवाला कौन है ? हमी लोग न ? हमी लोगों के जिम्मे यह काम है कि हम लोकमत को बदलें ! बिना इस बलिदान के हमारा जीवन निरर्थक है, हमारा अस्तित्व शून्य है !"

झगड़ू उठ खड़े हुए। कुछ देर तक एकटक वे रात के गहरे अन्धकार को देखते रहे, फिर एक ठंडी सांस ले कर उन्होंने कहा, "तुम ठीक कहि रहे हौ, मुला ई पै सोचन का पड़ी। तौन इतना तो हमहू कबौं-कबौं अनुभव करन लागत आन कि हमार जिन्दगी निरर्थक बीत रही है। अब सार्थक कैसे बने--यू हमका कबहूं नाहीं सूझा!"

कुछ रुक कर झगड़ू ने फिर कहा, "और सूझतौ कैसे? हम पंचे अपढ़ मनई, बैल की तरा काम-काज मां जुते रहेन, कबौं दम मारन की फुरसत नाहीं मिली!"

उस रात झगड़ू और मनमोहन में फिर कोई बात नहीं हुई। दूसरे दिन सुबह छः बजे ही दोनों शिकार पर निकल पड़े।

गंगा के किनारे-किनारे दोनों चले जा रहे थे, सूर्योदय हो रहा था। एकाएक झगड़ू रुक गए, उनके सामने करीब दो सौ गज़ की दूरी पर हिरनों का एक झुण्ड बैठा था। मनमोहन के कंधे पर हाथ रख कर उन्होंने कहा, "देखत हौ! बीच मां वह काला बइठ है! कैसे बड़े-बड़े सींग हैं!"

"तो उसी को लेता हूँ!" यह कह कर मनमोहन ने बन्दूक का निशाना लिया। मनमोहन बन्दूक का घोड़ा दबाने ही वाला था कि झगड़ू ने उसे रोक दिया, "नहीं मनमोहन, छोड़ो! चलो आगे बढ़ो!"

"क्यों?" मनमोहन ने पूछा।

झगड़ू मुस्कराए, "ऐसने! मजे मां किलोलें करत हैं--कैस सुखी हैं! तौन उनकेर सुख हर लेन की तबीअत नाहीं होत है!"

उस समय तक सारा ग्राम प्रान्त मधुर कलरव से भर गया था। मनमोहन ने झगड़ू की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, वह गंगा के किनारे खड़ा हुआ गंगा के प्रवाह को देख रहा था। उसके सामने गंगा की अथाह जल-राशि थी, जिसके साथ सूर्य की सुनहली किरणें अठखेलियां कर रही थीं। वह प्राकृतिक सौन्दर्य उसने युगों के बाद देखा था, और वह सोच रहा था। उसने एक ठंडी सांस भर कर झगड़ू से कहा, "मिसिरजी! मैं इस सब से कितनी

दूर हट गया हूं ! दुनिया में इतना अधिक सौन्दर्य है, इतना अधिक उल्लास है, इतना अधिक सुख है—पर इन सबों से मैं कितना दूर हो गया हूं !"

पर झगड़ू की आंखों के आगे न सौन्दर्य था और न सुख था। उनकी आंखों के आगे एक भयानक सूनापन था, उनकी सारी जिन्दगी उनकी आंखों में अपना खोखलापन भर चुकी थी। एक निरर्थक-सी करुण मुस्कराहट के साथ झगड़ू ने कहा, "हुइ सकत है ! तुम अबहीं-अबहीं सहर से आय रहे हो !"

मनमोहन ने एक ठंढी सांस भरी। बन्दूक उसने अपने कंधे पर लटका ली और दोनों चल पड़े।

दोनों चल रहे थे और दोनों सोच रहे थे। कुछ थोड़ी देर तक चलते रहने के बाद मनमोहन ने झगड़ू से पूछा, "मिसिरजी ! आपने अभी मुझे हिरन पर गोली चलाने से रोका था, यह कह कर कि वे सुखी हैं—उनके सुख को न छीनना चाहिए ! अब आप बतलाइए कि फिर हम लोग शिकार खेलना बन्द क्यों नहीं कर देते !"

झगड़ू ने कुछ सोचकर कहा, "लेकिन, मनमोहन ! ई हिरन खेती का कितना नुकसान करत हैं ! ई जितने सिकार आयें, उनकी तह मां एक सिद्धान्त है। हम उनही जानवरन का मारत हन या सिकार करत हन, जौन हमार नुकसान करत हैं !"

"हूं !" मनमोहन ने सर हिलाया, "शायद आप ठीक कहते हैं !"

अब वे दोनों एक ऐसे ऊंचे टीले पर आ गए थे, जहां से इर्द-गिर्द बहुत दूर का दृश्य दिखलाई देता था। दोनों उस टीले पर खड़े हो गए, और मनमोहन ने अपने चारों ओर देखा। उसकी दृष्टि दूर पर बानापुर के राजा साहेब के महल पर रुक गई; कुछ देर तक वह उस ओर देखता रहा। फिर उसने बहुत गम्भीरतापूर्वक झगड़ू से कहा, "मिसिरजी ! क्या आपने कभी मनुष्य का शिकार किया है ?"

इस प्रश्न से झगड़ू चौंक पड़े। उन्होंने मनमोहन को बड़े ध्यान से देखा, "मनई का सिकार ? काहे हो मनमोहन—तुम कबहूं कीन्हे हौ का ?"

मनमोहन के मुख पर हलकी-सी मुस्कराहट आई, "नाहीं, मिसिरजी ! बात यह थी कि आपने अभी कहा था कि हम लोग उन्हीं जानवरों का शिकार करते हैं जो हमारा नुकसान करते हैं। शिकार को इस कसौटी पर कसने के बाद मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि हम लोग मनुष्य का शिकार करने लगें तो मानव-समाज का बड़ा कल्याण हो। है न ऐसा !"

झगड़ू अजीब चक्कर में पड़ गए। उन्होंने अनेक प्रकार के विचित्र मनुष्य देखे थे, पर आज उनके सामने उन सब से अधिक विचित्र मनुष्य खड़ा था। उसने बात ऐसी कही थी जो भयानक होते हुए भी सारहीन न थी। उन्होंने उत्तर दिया, "हां, मनई तो सब से ज्यादा नुकसान करत है, और ऊके कर्मन का दण्ड भी मिल जात है। यह राज-काज, न्यायालय—सब यही तो कर रहे हैं—हमार काम यू थोड़ो आय !"

मनमोहन ने उसी तरह शान्त भाव से कहा, "लेकिन ये न्यायालय न्याय कब करते हैं ? न्याय का रूप समर्थ के वास्ते कुछ है और असमर्थ के वास्ते कुछ। धनी आदमी हत्या करके मजा कर सकता है और उसके बदले में एक निर्धन निरपराध को दण्ड मिल सकता है !"

"ई तो ठीक है ! लेकिन ई सब का देखनवाला भगवानौ तो है। न्याय-अन्याय का लेखा-डयोढ़ा जन्म-जन्मान्तर मां बराबर हुइ जात है !"

२

करीब ग्यारह बजे दोनों वापस लौटे। उस दिन उन्हें कोई शिकार नहीं मिला, या यों कहें कि उस दिन उन्होंने शिकार नहीं किया। जब वे लोग गांव पहुंचे तो उन्होंने देखा कि झगड़ू के दरवाजे एक भीड़ खड़ी थी। झगड़ू ने आते ही पूछा, "कहो—क्या मामला है !"

एक नवयुवक ने बढ़कर कहा, "झगड़ू काका ! अब तो बड़ी ज्यादती हो रही है । आज मैनेजर साहेब ने रामाधीन को बुरी तरह पिटवाया—बिचारे को अधमरा करके छोड़ा ।"

"यू काहे ?" झगड़ू ने पूछा !

"बकाया-लगान की चुकौती में जिलेदार साहेब रामाधीन के बैल छीने लिये जा रहे थे । सो रामाधीन से न रहा गया, उसने बढ़ के रोका । बस, इसी पर बात बढ़ गई। इस पर मैनेजर साहेब खुद आए और उन्होंने यह सब काण्ड किया।"

"और तुम लोग सब के सब मरि गै रहयो जौन खड़े-खड़े देखत रहयो ?" झगड़ू ने गरज कर कहा, "ठाकुर रामसिंह रामाधीन का अधमरा करके जिंदा चले गए ! डूब मरो चिल्लू भर पानी मां !"

उस नवयुवक ने, जिसका नाम मोहनलाल था, कहा, "झगड़ू काका, आप ही तो हम लोगों को अहिंसा पर चलने का उपदेश देते रहते हैं और आज आप हम लोगों पर नाराज हो रहे हैं !"

पर झगड़ू का पारा चढ़ चुका था, इस समय वे हिंसा-अहिंसा के मसले पर वाद-विवाद करने को या सोचने-समझने को ज़रा भी तैयार न थे। उन्होंने कहा, "हम ई कुछ नहीं जानित ! तौन ठाकुर रामसिंह से यू सँदेशा कहाय देव कि अब उइ गांव मां पैर न रक्खैं नहीं तो उनको वहै गति होई जो उइ रामाधीन की कीन्हिन हैं । अच्छा रामाधीन कहां हैं ?"

"घर में पड़े हैं, मरहम-पट्टी हो रही है !"

"हम चल के देखित हन !" झगड़ू मनमोहन की ओर घूमे, "तौन ज़रा तुम बैठो, हम रामाधीन का देख आई !"

रामाधीन की मरहम-पट्टी करके झगड़ू करीब दो बजे लौटे । मनमोहन तब तक पढ़ता रहा। झगड़ू के वापस आने पर दोनों ने भोजन किया। भोजन करके दोनों लेट गए।

शाम के समय अलाव के सामने झगड़ू के पड़ोसी इकट्ठा हो गए। झगड़ू और मनमोहन—दोनों वहां आकर बैठ गए और बातचीत रामाधीन पर उठ पड़ी। एक आदमी ने कहा, "मिसिरजी ! रामाधीन की जो हालत हुई है, उससे गांव भर में आतंक फैल गया है। जिलेदार कह रहे हैं कि जो आदमी मैनेजर साहब के हुक्म की उपेक्षा करेगा, उसकी वही गति होगी ।"

झगड़ू ने मनमोहन की ओर देखा, "सुनेव, मनमोहन ! यू अत्याचार दिनोंदिन बढ़त जात है। अब हमरे सामने सवाल यू है कि ई सबका उत्तर कौनी तरह दीन जाय। तौन महात्मा गांधी 'अहिंसा-अहिंसा' चिल्लाय रहे हैं, और हम कहित हैं कि अहिंसा कायरता आय !"

मनमोहन ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, "लेकिन, मिसिरजी ! आप कर ही क्या सकते हैं ? इस अत्याचार को दो तरह से ही दबाया जा सकता है, या तो अत्याचारी को मिटाकर या स्वयं मिटकर ! अभी तक आप मिटे हुए थे, आप गुलाम थे, इसलिए आप पर अत्याचार कम होते थे। लेकिन जब आपने करवट ली, तब आप पर अत्याचार बढ़े। अब अगर इस अत्याचार को मिटाना चाहते हैं, तो आपके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आप अत्याचारी को मिटावें। और इसलिए यह सवाल महत्व का है कि क्या हिंसा-द्वारा आप उस अत्याचारी को मिटा सकते हैं ?"

"काहे नाहीं !" झगड़ू ने तनकर कहा, "ई मनीजर, सरवराकार, जिलेदार, पियादा—इनकेर हस्ती का है ? हम कहित है कि ठाकुर रामसिंह जरा गांव मां पैर रखि के तो देख लेंय !" और इस बार वे अपने आस-पास बैठे लोगों की ओर मुड़े, "काहे हो भइया ! हम ठीक कहित है न !"

विश्वम्भर नाम के एक अधेड़ आदमी ने कहा, "नहीं मिसिरजी ! अभी दो-चार दिन तो वह नहीं आ सकते, लेकिन इसके बाद जब सब लोगों का जोश ठंढा पड़ जायगा, तब की बात मैं नहीं कह सकता।"

अलाव जोरों के साथ सुलग रहा था और चारों ओर गहरा अन्धकार फैला था। लकड़ी के एक बड़े-से कुन्दे की आग का लाल प्रकाश मनमोहन

के चेहरे पर पड़ रहा था और झगड़ू ने मनमोहन के लम्बे-से सुन्दर मुख पर एक हलकी-सी मुस्कराहट देखी। और उन्होंने देखा कि उस मुस्कराहट से मनमोहन का चेहरा एकाएक बहुत भयानक रूप से विकृत हो गया है; मनमोहन की उस महाकुरूप मुस्कराहट से झगड़ू सिहर-से उठे। घबराकर उन्होंने उधर से अपनी आंखें फेर लीं। विश्वम्भर से उन्होंने कहा "तो तुम्हार खयाल है कि ई गांव के मनई दुइये-चार दिना मां दबि जइहैं ?"

विश्वम्भर ने कुछ सकपकाते हुए कहा, "मिसिरजी, आप यह तो जानते ही हैं कि हम लोगों के बीच में एका नहीं है। आज जब आप रामाधीन के यहां गए थे, उस समय दो आदमी मैनेजर के यहां पहुंचे और मेरा ऐसा खयाल है, उन्होंने एक-एक की पांच-पांच जड़ी होगी। जब तक हम लोगों में ऐसे विश्वासघाती मौजूद हैं, तब तक कोई बात निश्चित रूप से कैसे कही जा सकती है !"

"उइ दुइ मनई कौन आंय—जरा हमहू तौ जानी !" झगड़ू ने पूछा।

"नाम आप मुझसे न पूछें, मिसिरजी ! मैंने आपको केवल आगाह भर किया था !"

झगड़ू चुपचाप सोचने लगे—आगे-पीछे पर; फिर उन्होंने कहा, "बिसम्भर ! काल सुबा गांव के सब मनई इहां इकट्ठा कीन जइहैं ! अब तो या झगड़ू मिसिर हैं या फिर ठाकुर रामसिंह हैं।" और झगड़ू उठ खड़े हुए, वे कुछ तन गए, "रामसिंह का अबहीं बम्हनन-ठाकुरन से पाला नाहीं पड़ा, अहिर-गड़रियन पर रोब दिखावत रहे हैं। यू याद राखैं कि अगर जिन्दा अपनी मरजी से उइ ई गांव से नाहीं गए तो फिर हमरी मरजी से उनका मुरदा हुइ के जांय का पड़ी।"

मनमोहन ने हाथ पकड़कर झगड़ू को बिठला लिया, "मिसिरजी ! आप होश में नहीं हैं। बैठिए !"

झगड़ू बैठ गए—लेकिन वे आवेश से कांप रहे थे।

थोड़ी देर तक झगड़ू के शान्त हो जाने की प्रतीक्षा करने के बाद मन-मोहन ने पूछा, "मिसिरजी ! आप अकेले मैनेजर से मोरचा लेंगे या आपके साथ और भी आदमी होंगे ?"

"सारा गांव हमार साथ देई !" सब लोगों की ओर देखते हुए झगड़ू ने कहा, "और अगर ई लोग साथ न देंय तबहूं हमें ई की चिन्ता नाहीं। हम अकेले काफी आन !"

"नहीं ! आप अकेले तो काफ़ी नहीं हैं ! और गांववाले आपका साथ देंगे—इसपर मुझे शक है । लेकिन अगर मैं यह मान भी लूं कि वे लोग आपका साथ देंगे तो मेरे खयाल से वे गलती करेंगे !"

इसी समय एक आदमी ने कहा, "मालूम होता है, बहुत-से आदमी आ रहे हैं मिसिरजी !" और बात बन्द हो गई । सामने कुछ आदमी आ रहे थे। आगे-आगे एक आदमी लालटेन लिये हुए था और उसके पीछे दस-बारह आदमी लट्ठ लिये हुए थे । यह गिरोह झगड़ू के दरवाजे आकर रुका । उस गिरोह में से एक आदमी ने बढ़कर कहा, "मिसिरजी ! पांव लागी !"

जिस आदमी ने यह कहा था उसके हाथ में लाठी के स्थान पर एक बन्दूक थी । वह ओवरकोट पहिने था और उसके चेहरे से रोब टपकता था। झगड़ू ने बैठे ही बैठे उत्तर दिया, "आसीर्वाद ठाकर रामसिंह ! कहो कैसे कष्ट कीन्हेव ?"

मुस्कराते हुए रामसिंह ने कहा, "मिसिरजी ! हमने आज सुना कि आप हम पर नाराज़ हो गए हैं ! इसीलिए हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं ! हमने आपका ऐसा कौन-सा अपराध किया ?"

झगड़ू इस परिस्थिति के लिए तैयार न थे; उन्हें यह न सूझ पड़ रहा था कि किस तरह बातचीत की जाय; फिर भी उन्होंने कहा, "मनीजर साहेब ! रामाधीन के हाथ-पैर आपै की आज्ञा से तोड़े गए है न !"

रामसिंह ने उत्तर दिया, "हां मिसिरजी ! यह सब हमारे ही हुक्म से हुआ है । लेकिन इतना हम आपको बतला दें कि हम तो केवल एक माध्यम

हैं, जिसके द्वारा राजा साहेब का हुक्म चलता है। उनका हुक्म है कि राज्य की आज्ञा का विरोध करनेवाले को कड़ा से कड़ा दण्ड दिया जाय!"

"ऐस बात है!" झगड़ू ने केवल इतना ही कहा।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा, इसके बाद रामसिंह ने कहा, "और मिसिरजी, आपने हमें जो संदेश भिजवाया कि हम गांव में कदम न रक्खें, वह संदेश हमें मिल गया। उसी के उत्तर में हम यहां आए हैं--आप हमें देख रहे हैं न!"

रामसिंह के पहले उत्तर से झगड़ू कुछ शान्त हो गए थे, लेकिन उनकी दूसरी बात ने बुझती हुई आग पर घृत का काम किया। वे उठ कर खड़े हो गए, "तो फिर ठाकुर रामसिंह, हम यूं समझी कि तुम हमें चुनौती देन आए हो!"

एक व्यंग की हंसी हंसते हुए रामसिंह ने कहा, "चुनौती तो हमें आपने दी थी, हम उसे राजा साहब की तरफ़ से मंजूर करते हैं। आपने कहलाया था कि हमारी वही गति होगी जो हमने रामाधीन की की थी। हम यहां खड़े हैं, अब जिसकी हिम्मत हो, वह हमारी वह गति बनावे!"

"तो फिर लेव!" झगड़ू ने अपने बगल में रक्खी हुई लाठी को तानते हुए कहा। पर झगड़ू के लाठी तानते ही मनमोहन ने उन्हें पकड़ लिया, "नहीं मिसिरजी! इस तरह आवेश में आकर काम नहीं किया जाता!" और उस समय झगड़ू ने देखा कि रामसिंह के छः आदमी लट्ठ ताने हुए उन्हें घेरे खड़े हैं। मनमोहन इस बार रामसिंह की ओर घूमा, "जाइए मैनेजर साहेब! आप समर्थ हैं। लेकिन यदि मिसिरजी के प्रति आप आदर दिखलाते तो अधिक अच्छा होता!"

मैनेजर साहेब हंस पड़े, "आदर! मिसिरजी का हम आदर करते हैं! राजा साहेब की बराबरी वाले हैं। हमने तो न उनका अपमान किया, न उन्हें बुरा-भला कहा। हम सिर्फ़ इतना कहने आए थे कि हम राजा साहेब के प्रति-

निधि हैं—राजा साहेब के मैनेजर को चुनौती देना असल में राजा साहेब को चुनौती देना है !" और यह कह कर ठाकुर रामसिंह अपने साथियों के साथ चले गए।

३

रात भर झगड़ू को नींद नहीं आई। उनके घर के सामने बानापुर का मैनेजर उनका अपमान करके चला गया—आज तक झगड़ू को इस स्थिति का सामना न करना पड़ा था। घटनास्थल से मैनेजर के जाते ही वे वहां से उठ आए थे; चलते समय उन्होंने न किसी से एक शब्द कहा और न किसी ने उनसे कोई बात की। झगड़ू जानते थे कि वे पराजित हुए, गांववाले यह जानते थे कि झगड़ू पराजित हुए। रात भर वे करवटें बदलते रहे, सुबह चार बजे के करीब उनकी आंख लगी, और जब वे सोकर उठे, तब धूप काफ़ी चढ़ आई थी।

मनमोहन सुबह तड़के ही घूमने चला गया था। झगड़ू जब घर के बाहर निकले, गांव के आदमी वहां इकट्ठा थे। एक आदमी ने कहा, "मिसिरजी ! रात में मुरली के मकान में आग लग गई। ऐसा खयाल किया जाता है कि यह करतूत रियासतवालों की है।"

झगड़ू ने चुपचाप यह खबर सुनी, वे कुछ बोले नहीं। उस समय वे तेजी के साथ सोच रहे थे। चीजें बहुत बड़ी रफ्तार से बढ़ रही थीं और झगड़ू को ऐसा लग रहा था कि जल्दी ही उन्हें कुछ न कुछ करना पड़ेगा। वे चुपचाप बैठ गए; गांववाले अब भी इकट्ठा हो रहे थे। आज सारा वातावरण गम्भीर और आतंक से भरा हुआ था। लोग निर्णय करने आए थे और उन्हें अपना निर्णय देना था अपने जीवन-मरण के प्रश्न पर। लेकिन शायद झगड़ू के सामने उस समय गांववालों का प्रश्न उतना न था, जितना उनका व्यक्ति-गत प्रश्न था। रात में कई आदमियों के सामने ठाकुर रामसिंह उनका अपमान कर गए थे—किस प्रकार उस अपमान का बदला लिया जाय—वे उस समय यही सोच रहे थे।

विश्वम्भर ने कहा, "मिसिरजी , हम लोगों ने कल रात की घटना की बाबत सुना । राम ! राम ! ठाकुर रामसिंह की अब यह हिम्मत हो गई है ! अब आपका क्या विचार है ?" और विश्वम्भर ने यहां उपस्थित अन्य लोगों की ओर देखा, "सो मैं तो यह जानता हूं कि मिसिरजी हमारे पूज्य हैं, उनका अपमान हम सब लोगों का अपमान है ! अब यह मिसिरजी के ऊपर है कि वे किस प्रकार उस अपमान का बदला लेना चाहते हैं !"

झगड़ू अभी तक चुप थे, अब उन्होंने अपनी नजर उठाई । उन्होंने वहां उपस्थित लोगों को एक बार गौर से देखा, फिर शान्त और गम्भीर स्वर में कहा, "आप लोग इतना अधिक उद्विग्न न होंय ! यदि हमार अपमान भा है तो हम अपने अपमान का बदला लै सकत हन । सवाल आप लोगन के सामने यू आय कि यह अत्याचार कौनो तरह रोका जाय। हम अबही सोचत रहेन कि तिवारीजी से मिल के उन्हें सब कुछ बताय देन और अगर तिवारीजी हू कुछ न सुनैं तो फिर हम सब काम करी । आप लोगन केर का विचार है ?"

"क्या आपका अनुमान है कि इस मामले में तिवारीजी हम लोगों का पक्ष लेंगे ?" एक नवयुवक ने कहा, "और मिसिरजी, आप तिवारीजी को इतना अधिक जानते हुए भी यह अनुमान कर लेते हैं—इस पर मुझे आश्चर्य होता है । फिर अपने अधिकारों की हम दूसरों से भिक्षा क्यों मांगें ? स्वयम् अपने अधिकारों को अपने हाथ में लेकर हमें काम करना चाहिए । राज्य के नौकर-चाकर लोकमत की उपेक्षा नहीं कर सकते, समय पड़ने पर वे सब हमारा साथ देंगे—इतना मैं जानता हूं । अब अगर हम लोग काम करने से डरते हैं तो यह हमारी कायरता है।"

झगड़ू ने उस नवयुवक से पूछा, "तो तुम काम करा चाहत हो ? अच्छा, अब हमें यह बताओ कि का काम करा चाहत हो ?"

नवयुवक निरुत्तर-सा हो गया । उसने केवल इतना कहा, "आप लोग सब इकट्ठा हुए हैं—इसका निर्णय तो आपही लोग करेंगे !"

झगड़ू मुस्कराए, "बात कहि देब आसान आय, लेकिन काम करब बड़ा कठिन आय ! जोश मां आय के कहि डाले मां और उचित ढंग से काम करै मां बड़ा अन्तर आय । अच्छा परमेसुर ! निर्णय तो हम सब लोग करबे—तुम उपाय तो बताओ !"

उस नवयुवक ने, जिसका नाम परमेश्वर था, जरा हिचकिचाते हुए कहा, "बता तो सकता हूं, लेकिन आप सब लोग उसे मानेंगे नहीं।"

"नहीं कह डालो—मानें या न मानें—इसमें हर्ज क्या है।" विश्वम्भर ने कहा।

"तो कल रात मुरली की झोपड़ी में आग लगी है, चोरी-छिपे; आज रात मैनेजर साहेब के घर में आग लगे ऐलान कर के !" परमेश्वर ने तन कर कहा।

सभा में एक गहरा सन्नाटा छा गया। जो कुछ परमेश्वर ने कहा, वह उस सभा में बैठे कई आदमियों के मन में था, लेकिन कहने की हिम्मत किसी को न हो रही थी। थोड़ी देर तक सब चुप बैठे रहे, फिर उस मौन को झगड़ू ने तोड़ा, "आग लगाबब अपराध आय, दण्डनीय आय। मुरली की झुपड़िया मां आग लगावनवाले का पता नहीं है सो ऊका दण्ड नाहीं मिल सकत। किन्तु मनीजर के मकान मां आग लगावन वाले हम सब दण्ड के भागी बनब। ऐस कृत्य से हम आपन हित की अपेक्षा अहित कर लेब।"

इस समय मनमोहन घूम कर लौट आया और वह चुपके से एक कोने में बैठ गया। झगड़ू मनमोहन की ओर घूमे, "तो और सुन्यो मनमोहन ! कल रात कौनो मुरली की झुपड़िया मां आग लगाय दीन्हिस ! मुरली और जिलेदार मां इधर कुछ दिनन से तनातनी हुइ गई रहै, और जिलेदार मुरली का यू धमकी हू दीन्हिन रहैं कि उइ मुरली का तबाह कर देहैं। अब हम लोगन के सामने प्रश्न यू आय कि ई अत्याचार का मुकाबिला कैसे कीन जाय।"

मनमोहन मुस्कराया और झगड़ू को एकाएक मनमोहन की पिछली रात

वाली मुस्कराहट याद हो आई। ठीक वैसी ही कुरूप मुस्कराहट थी, रात में अलाव के लाल प्रकाश में वह बहुत भयानक दिखी थी, इस समय उसकी भयानकता किसी हद तक दबी हुई थी। मनमोहन ने कहा, "मिसिरजी ! मैंने कल रात आपसे कहा था न कि इस अत्याचार को स्वयम् मिटाकर या अत्याचारी को मिटाकर ही बचाया जा सकता है। पर मुसीबत यह है कि आपके सामनेवाला अत्याचारी असली अत्याचारी नहीं है, वह तो अत्याचार की एक बहुत बड़ी मशीन का एक साधारण-सा पुरजा है। इस अत्याचारी को मिटाने की कोशिश करके आप पूरी अत्याचार की मशीन को अपने खिलाफ चालू कर लेंगे। इस मैनेजर के ऊपर हैं ताल्लुकेदार, ताल्लुकेदार के ऊपर है ब्रिटिश सरकार, जिसकी पुलिस हमेशा ताल्लुकेदार की रक्षा करती रहती है, और पुलिस की रक्षा करने के लिए है एक बहुत बड़ी फौज। तो मिसिरजी, इस लम्बे चक्कर में पड़कर आप बहुत बुरी तरह पिस जाइयेगा। इस पर आप पहले सोच लीजिए !"

मनमोहन की बात का उस सभा में एकत्रित सब व्यक्तियों पर गहरा असर पड़ा। उसने ऐसी बात कही थी जिससे कोई इनकार न कर सकता था। परमेश्वर ने कुछ सोचकर दबी जबान कहा, "तो फिर इसके माने ये हैं कि हम मिटते रहें ?"

"जरूर !" मनमोहन कह उठा, "इसलिए कि तुम निर्बल हो और वे लोग सबल हैं। सबल और निर्बल की लड़ाई एक हास्यास्पद चीज है; सबल से निर्बल कभी भी पार न पा सकेगा। सबल और निर्बल की लड़ाई केवल एक तरह सम्भव है—निर्बल सबल पर जब वार करे तब पीछे से, छिपकर। जब तक सबल निर्बल को देख नहीं सकता, तब तक उसे नष्ट नहीं कर सकता। केवल इसी तरह यह लड़ाई सम्भव है !"

झगड़ू ने जरा सँभल कर कहा, "लेकिन मनमोहन, पीछे से चोरी-छिपे वार करब कायरता आय !"

मनमोहन हँस पड़ा, "जहां वीरता अवश्यम्भावी मृत्यु है, वहां वह आत्म-

हत्या की मूर्खता है। कायरता उत्पीड़न को सहन करना है, उत्पीड़न का सही-सही उत्तर देते हुए सबल के वार को बचाते रहना कायरता नहीं है, बुद्धिमानी है !"

"नाहीं—हमार जी तो नाहीं भरत है !" झगड़ू ने कहा और वे अन्य लोगों की ओर घूमे, "अच्छा, हम जरा तिवारीजी से ई सम्बन्ध मां बात-चीत कर लेई, तब ऊके बाद 'का कीन जाय' ई पै निर्णय कीन जाई। आज सन्ध्या के समय हम उन्नाव जाब !"

४

उस दिन शाम के समय झगड़ू का उन्नाव जाना न हो सका। जैसे ही कपड़े पहनकर वे उन्नाव चलने के लिए घर के बाहर निकले, वैसे ही मार्कण्डेय ने उनके चरण छुए। मार्कण्डेय को अपने सामने देख कर झगड़ू को आश्चर्य हुआ, "अरे ! तुम छुटि आएव ! हम तो समझे रहे कि अबहीं तुम्हरे छुटैं मां कुछ बिलम्ब है !"

"जी हां, उन्होंने मुझे कल बिना कुछ कहे-सुने छोड़ दिया। सोचा, दो चार दिन के लिए गांव हो आऊं, उसके बाद फिर से काम-काज शुरू करूं !" मार्कण्डेय ने कहा, "और बप्पा, क्या आप कहीं जा रहे हैं ?"

"हां, तिवारीजी से बातें करैं का है। तीन गांव मां बड़ा अन्धेर मचा भवा है, मनीजर और जिलेदार बुरी तरा से लोगन का सताय रहे हैं। अब उनकी ऐंस हिम्मत बढ़ गई है कि सब मनइन के सामने मनीजर काल रात हमार अपमान कर गए।"

"तो फिर इसमें जल्दी क्या है ? आज न जा कर कल चले जाइयेगा। मेरे साथ उमानाथ भी आए हैं, मैं जरा इस सम्बन्ध में उनसे भी बात कर लूं।" मार्कण्डेय ने झगड़ू को मकान के अन्दर ले चलते हुए कहा।

बाहरवाले कमरे में मनमोहन लेटा हुआ गीता पढ़ रहा था, झगड़ू और

मार्कण्डेय को आते हुए देख कर वह उठ बैठा, "क्यों मिसिरजी। आप गए नहीं ?" और मनमोहन उठ खड़ा हुआ।

"हां ! जाय की पूरी तैयारी करि लीन रहै, मुला ई बीच मां मारकण्डे आय गए—काले जेल से छूट के आए हैं।"

मनमोहन और मार्कण्डेय—दोनों ने एक दूसरे को देखा, दोनों एक दूसरे के सामने खड़े थे। मार्कण्डेय ने मनमोहन से कहा, "आपका परिचय, बप्पा ?"

"का तुम इन्हें नाहीं जानत हो ? इनका नाम आय मनमोहन, प्रभा के मित्र आंय। तौन सिकार खेलैं के लिए गांव मां आए हैं ! और मारकण्डे, हम इनसे बातचीत करि के ई निर्णय पर पहुंचेन कि ई बहुत विद्वान् मनई आयं !" झगड़ू ने सहज भाव से कहा, फिर उसने मनमोहन से कहा, "और ई मारकण्डे कानपुर मां वकालत करत रहैं, तौन कांग्रेस के पीछे आपन वकालत-सकालत छोड़ि-छाड़ि के जेल चले गए। तौन अब छूटि के अपने बप्पा के दरसन करन चले आए हैं !" और झगड़ू खिलखिला कर हंस पड़े।

मनमोहन ने मार्कण्डेय को नमस्कार किया और मार्कण्डेय ने नमस्कार का उत्तर दिया।

एक घण्टे बाद उमानाथ मार्कण्डेय से मिलने आया। उमानाथ की आवाज सुनते ही झगड़ू घर के बाहर निकल आए, "गुड ईवनिंग, झगड़ू काका !" उमानाथ ने हंसते हुए कहा, "कहिए कुछ शिकार-विकार हो रहा है ?"

"हां मझले कुंवर, सिकार-विकार तो अबहीं तक होत रहा, मुला इधर दुइ-एक दिना से बन्द है !"

"यह क्यों ?" उमानाथ ने पूछा।

"पसु-पछी का सिकार करि के जी ऊबिगा—अब मनई के सिकार की तैयारी हुई रही है !" कुछ रुककर झगड़ू ने फिर कहा, "तुम आय गयो, तौन बड़ा नीक भा ! बहुत सम्भव है ई व्यर्थ का खून-खराबा बच जाय !"

"क्या बात है, झगड़ू काका ! साफ़-साफ़ कहिए !" उमानाथ ने पूछा।

"तौन मारकण्डे से सुन लीन्हेव !" झगड़ू ने उत्तर दिया, "यही तुम्हें अच्छी तरह से समझाय सकत हैं। और ई मनमोहन—इहौ तुम्हारी हमजोली के आयं, सब बातें देखिन-सुनिन हैं और साथ मां छुटके कुंवर के मित्र आयं, तौन इनसे सब बातें ठीक-ठीक मालूम हुइ जइहैं !"

मार्कण्डेय कपड़े पहन कर बाहर आ गया था। उसने मनमोहन से कहा, "चलिए, आप असल में तो उमानाथ के मेहमान हैं, इसलिए उन्हीं के यहां इस वक्त का नाश्ता हो और गप-शप जमे ! क्यों उमा !"

और मार्कण्डेय ने उमानाथ से मनमोहन का परिचय कराया।

जिस समय ये तीनों आदमी बानापुर के राजा साहेब के महल में पहुंचे, बानापुर राज्य के करीब-करीब सब कर्मचारी मझले कुंवर को सलाम करने के लिए एकत्रित हो गए थे। इन तीनों के आते ही सब लोग उठ खड़े हुए, और इनके बैठने के बाद सब लोग फ़र्श पर बैठ गए। उमानाथ ने रामसिंह से पूछा, "कहिए मैनेजर साहेब ! सब कुछ कुशलपूर्वक तो चल रहा है !"

रामसिंह ने जरा मुंह बनाते हुए कहा, "कहां, मझले सरकार ! इस जमाने में कुशल कैसी ? एक ओर राजा साहेब का हुक्म कि सख्ती करो, और दूसरी तरफ़ कांग्रेस की बगावत। मैं तो अजीब परीशानी में हूं। उधर अगर राजा साहेब की आज्ञा न मानूं तो हुक्म-उदूली और नमकहरामी होती है, और इधर अगर सख्ती करता हूं तो गांववालों से दुश्मनी बढ़ती है। अब तो मेरी जान भी खतरे में है !"

मार्कण्डेय चौंक उठा, "जान का खतरा ? कांग्रेस तो अहिंसा का सिद्धान्त लेकर चल रही है, मैनेजर साहेब ! यह जान का खतरा कैसा ?"

एक रूखी मुस्कराहट के साथ रामसिंह ने उत्तर दिया, "सरकार ! हिंसा-अहिंसा—ये सब बड़े आदमियों की बातें हैं; यहां तो हमसे यह कहलाया गया है कि अगर मैं गांव में पैर रक्खूंगा तो मेरी जान की खैर नहीं। और कह-

लाने वाले लोग केवल बातूनी नहीं हैं, वे, जो कुछ कहते हैं, उसे कर गुजरने वाले लोग हैं।"

"जरा उनका नाम तो सुनूं!" मार्कण्डेय ने कहा।

इस बार सरबराहकार जयनारायण के बोलने की बारी थी, "संदेशा कह-लाया है आपके पिताजी ने, और दुनिया इस बात को जानती है कि आपके पिताजी अपने हठ के पक्के हैं। मैनेजर साहेब बिना दस-पांच आदमी साथ लिए घर के बाहर कदम नहीं रख सकते!"

"लेकिन कल रात आप मेरे पिताजी के यहां गए थे न!" मार्कण्डेय ने पूछा।

मैनेजर रामसिंह ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "जी हां, मिसिरजी को सारी स्थिति स्पष्ट करने के लिए मुझे वहां जाने को मजबूर होना पड़ा था; लेकिन बात बनने की जगह बिगड़ ही गई। उनका क्रोध भयानक होता है—उसे मैं तो शान्त नहीं कर सकता!"

"और आप स्थिति स्पष्ट करने के लिए दल-बल के साथ गए थे, इस तरह तो समझौते की बातें नहीं होतीं।" मार्कण्डेय ने उत्तर दिया।

"अगर मैं अपने शरीर-रक्षकों के साथ न गया होता तो मैं न वापस आता, मेरी लाश वापस आती! इतने आदमियों के होते हुए भी उन्होंने लाठी तान ली थी।"

"और मैंने उनको रोका था, मैनेजर साहेब, इसलिए नहीं कि आपकी जान का खतरा था, बल्कि इसलिए कि उनकी जान का खतरा था। चारों तरफ़ अपने लट्ठबन्दों से उन्हें घिरवा कर आपने उनका अपमान किया था, उनके क्रोध को जानते हुए। उसका परिणाम प्राकृतिक रूप से यही होता कि वे आप पर प्रहार करते, और उनके प्रहार करने के पहले आपके आदमी उन पर प्रहार करते! है न ऐसी बात?" मनमोहन ने कहा।

"अच्छा! तो आप ही ने उन्हें रोका था!" गौर से मनमोहन को देखते

हुए रामसिंह ने कहा, "तो फिर आप सच्ची घटना के साक्षी-रूप यहां पर मौजूद ही हैं। आप ही बतलाइए कि मैंने उनका क्या अपमान किया था ? मैंने तो केवल इतना कहा था कि मैं राजा साहेब का प्रतिनिधि हूं। राज्य के मैनेजर को जो चुनौती दी जाती है, वह रामसिंह को नहीं दी जाती, बल्कि राज्य के स्वामी राजा साहेब को दी जाती है ! है न ?"

"कहा तो आपने यही था," मनमोहन को स्वीकार करना पड़ा, "लेकिन कहने का ढंग गलत था !"

"हम लोग तो साहेब दिहाती आदमी हैं और हमें यही ढंग आता है !" रूखे स्वर में रामसिंह ने उत्तर दिया।

मैनेजर का रूखा जवाब मार्कण्डेय को अखर गया। उसने गौर से मैनेजर को देखा, फिर धीरे-से कहा, "और शायद आप दूसरा ढंग समझने की जरूरत भी नहीं समझते ! यही सारी मुसीबत है, मैनेजर साहेब ! फिर भी मैं बप्पा से बातें करके सब-कुछ ठीक करा देने की कोशिश करूंगा। चीजों को बहुत आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए; इस समय, जब हमें विदेशी सरकार से लड़ना है। क्यों ? मैं तो कहता हूं कि हर समय, हर काल सदिच्छा और सद्भावना से हमें काम लेना चाहिए !"

"यही तो मैं भी चाहता हूं, मिसिरजी !" रामसिंह ने कहा, "मुझे कब यह पसन्द है कि मुझे अशान्ति की शरण लेनी पड़े, आत्म-रक्षा के रूप में भी ! अपने लिए तो मैं यह कह सकता हूं कि मुझे जो कुछ करना पड़ता है, वह मैं अपनी इच्छा से नहीं करता, वह मैं राजा साहेब की आज्ञा से करता हूं। फिर अगर ऐसा न किया जाय तो काम भी तो न चले !"

५

मार्कण्डेय और मनमोहन के साथ उमानाथ लाइब्रेरी के कमरे में चला गया, हाल में राज्य के कर्मचारी रह गए। वहां का वातावरण एक अनि-

-श्चित-सा, आशंका से भरा हुआ था। ठाकुर रामसिंह ने ज़िलेदार विन्ध्येश्वरी-प्रसाद से कहा, "तो ज़िलेदार साहेब! इस वक्त गांववालों के क्या हाल हैं?"

"सरकार! लक्षण तो अच्छे नहीं दिख रहे, पूरी फ़ौजदारी ठनी हुई है। आज सुबह यह भी सुझाव पेश किया गया था कि रात में सरकार के मकान में आग लगा दी जाय, लेकिन पण्डित झगड़ू मिश्र ने इसे रोक दिया!"

"इतनी हिम्मत!" रामसिंह ने कुछ सोचा, फिर वे सरबराहकार जयनारायण की ओर घूमे, "सुना सराबराहकार साहेब! अच्छा, अपने पास कुल कितने आदमी हैं?"

"करीब बीस लठैत हैं और छः बन्दूकें हैं—आप कोई चिन्ता न करें!" सरबराहकार जयनारायण ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने धीरे से कहा, "लेकिन मैनेजर साहेब, अगर आप इतनी सख्ती न करें तो कुछ हर्ज है? ज़माना बड़ा नाज़ुक है, और मुझे कभी-कभी अपने आदमियों पर ही शक होने लगता है!"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा," रामसिंह ने कहा।

"मेरा मतलब यह है कि रिआया के बाग़ी होने से हमें फ़ायदा नहीं होगा, नुकसान ही होगा। मान लीजिए कि हम लोग मज़बूत हैं और हर तरह से रिआया को कुचल सकते हैं; लेकिन अगर लड़ाई हुई तो हम लोगों पर बिना आंच आए रहेगी नहीं। और अगर यह वैर जड़ पकड़ गया तो फिर हम लोगों का यहां रहना असम्भव हो जायगा।"

रामसिंह हँस पड़े, "आप आज कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं, पण्डित जयनारायण जी? यह आप क्यों भूले जाते हैं कि हम रिआया पर हुकूमत तभी कर सकते हैं जब रिआया के दिल में हमारा खौफ़ समा जाय?"

"लेकिन मैं तो यह देख रहा हूं कि रिआया पर इस वक्त हुकूमत कर रहे हैं, झगड़ू मिश्र; और झगड़ू मिश्र की हुकूमत प्यार की हुकूमत है, जबरदस्ती की नहीं!"

कुछ चुप रह कर रामसिंह ने कहा, "हां, इस वक्त रिआया पर हुकूमत

कर रहे हैं पण्डित झगड़ू मिश्र, लेकिन जिस तरह की हुकूमत वे कर रहे हैं, उस तरह की हुकूमत हर एक आदमी कर सकता है। पण्डित झगड़ू मिश्र से रिआया का कोई रुपये-पैसे का ताल्लुक नहीं है, वे लोगों को बड़ी आसानी से बरगला सकते हैं। लेकिन यह गांववाले पण्डित झगड़ू मिश्र की तो रिआया नहीं हैं—ये हमारी रिआया हैं। ऐसी हालत में पण्डित झगड़ू मिश्र का जिक्र चलाना बेकार है।"

"जैसी आप की इच्छा !" सरबराहकार जयनारायण ने कहा, "मेरी अर्ज तो केवल इतनी थी कि मनुष्य को सिर्फ़ वहां तक दबाना चाहिए, जहां तक वह दब सके। छोटी-सी जिन्दगी है—उसके बाद भगवान् के सामने अपने कर्मों का लेखा-ड्योढ़ा देना है; इस छोटी-सी जिन्दगी में नेकी और बदी में होड़ लगी है; नेकी व बदी अपना बदला नेकी व बदी में ही देती हैं।"

रामसिंह के मत्थे पर बल पड़ गए, "तो, पण्डित जयनारायण, मैं यह समझूं कि आपके अन्दरवाला देवता हमारी दानवता से घृणा करता है! अच्छी बात है, मैं राजा साहेब से इसका जिक्र कर दूंगा ! आप-ऐसे मुलाजिमों के रहते हुए राज्य में राजा साहेब की हुकूमत की जड़ नहीं पनप सकती !" और रामसिंह उठ खड़े हुए।

पण्डित जयनारायण भी उठ खड़े हुए, "जैसी आपकी इच्छा, मैनेजर साहेब ! लेकिन यहां देवत्व और दानवता का तो सवाल मैंने नहीं उठाया, मैंने सिर्फ़ एक सलाह भर दी थी !"

पण्डित जयनारायण चले गए। रामसिंह ने जिलेदार विन्ध्येश्वरीप्रसाद से कहा, "जिलेदार साहेब ! कुछ ऐसा दिखता है कि आगे चल कर बहुत बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। इलाके से कुछ और लठंत बुला लेने चाहिए। आप कल सुबह मेरे यहां आ जाइएगा, मैं दीगर जिलों को हुक्मनामा लिख दूंगा। और इस बीच आप जरा मझले कुंवर की कार्रवाइयों को गौर से देखते रहिएगा।"

उमानाथ उस समय लाइब्रेरी में बैठा हुआ मार्कण्डेय और मनमोहन से

गांव की वर्तमान परिस्थिति पर बात कर रहा था। विन्ध्येश्वरीप्रसाद लाइब्रेरी के सामनेवाले बरामदे में दरवाजे से कान लगा कर खड़ा हो गया। उसने सुना—"मार्कण्डेय भइया, सारी मुसीबत तो इस अहिंसात्मक विरोध से उठ खड़ी होती है। अगर विपक्षी यह जान जाय कि इसके लात का जवाब हमारे जूते से मिलेगा तो वह लात मारने के पहले एक बार अच्छी तरह सोचे-समझेगा। इतने अधिक गांववाले और इतने थोड़े-से राज्य के कर्मचारी! मेरी समझ में नहीं आता कि अगर गांववाले मरने-मारने पर तुल जायें तो किस तरह राज्य के कर्मचारी उन्हें उत्पीड़ित कर सकते हैं!" और उमानाथ हंस पड़ा।

इसका उत्तर मनमोहन ने दिया, "मिस्टर उमानाथ! आपने यह तो कह दिया कि राज्य के कर्मचारी थोड़े-से हैं, लेकिन यह कहने के समय आप राज्य को भूल गये। बानापुर ताल्लुका एक बहुत बड़े राज्य का एक छोटा-सा हिस्सा है। अगर आप गौर से देखें तो आपको स्पष्ट हो जायगा कि बानापुर ताल्लुका की रक्षा करने के लिए, उसके उत्पीड़न को सार्थक और सफल बनाने के लिए, एक बहुत बड़े साम्राज्य की बहुत बड़ी सेना मौजूद है।"

"तो आपका मतलब है कि जब तक यह साम्राज्य कायम रहेगा, तब तक यह विषमता मौजूद रहेगी, और इस विषमता को मिटाने के पहले साम्राज्य को मिटाना जरूरी है!" उमानाथ ने कहा।

"जी हां, आप मेरा मतलब ठीक समझे!"

"और मैं आपसे असहमत हूं!" उमानाथ ने उत्तर दिया, "आप एक बात भूल जाते हैं मिस्टर मनमोहन! साम्राज्य विषमता का परिणाम है, कारण नहीं है। यह साम्राज्य तभी बन सका है, जब दुनिया में विषमता मौजूद थी। आज मान लीजिए कि आप इस साम्राज्य को मिटा भी दें, लेकिन इन श्रेणियों को कायम रक्खें तो कल यही श्रेणियां साम्राज्य के मुकाबले की या इस साम्राज्य से भी कहीं अधिक भयानक और शक्तिशाली किसी दूसरी चीज को जन्म दे देंगी। मिस्टर मनमोहन, परिणाम को मिटाने के पहले हमें उस परिणाम के मूल कारणों को ढूंढ़ कर मिटाना पड़ेगा। इसी में हमारा कल्याण

हैं। और मैं कहता हूँ कि मूल कारण हम में श्रेणी-भेद है। ये थोड़े-से अंगरेज इस विशाल देश हिन्दुस्तान पर इसलिए शासन करते हैं कि उत्पीड़न करने वाली श्रेणियां इस उत्पीड़न में अंगरेजों की मदद करती हैं। इसलिए अगर देश का बुर्जुआ क्लास मिट जाय तो फिर क्या मजाल कि अंगरेज यहां जरा-सा भी टिक सकें।"

"लेकिन उसके बाद ?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"उसके बाद क्या ?" उमानाथ मार्कण्डेय की ओर घूमा।

"इन बुर्जुआ लोगों को मिटाने के बाद मिटानेवाले लोग शोषक बन जाएँगे और मिटनेवाले उत्पीड़ित बन जाएँगे, मनोविज्ञान तो यह कहता है। आखिर उत्पीड़न है क्या ? सबल का निर्बल से बेजा फ़ायदा उठाने की कोशिश करना ! मारने वाला सबल है, मारा जाने वाला निर्बल है !"

उमानाथ हँस पड़ा, "आप कैसी भद्दी दलील दे रहे हैं मार्कण्डेय भइया ! वास्तव में सबल बहुमत है—वह समुदाय है जो भूखों मरता है। केवल यह बहुमत अपनी शक्ति को जानता नहीं, उसका उपयोग नहीं कर सकता। और यहां एक और मनोवैज्ञानिक सत्य लागू होता है, शक्तिमय बहुमत का नियम है विकसित होना—असीमता की ओर, शक्तिमय अल्पमत का नियम है संकुचित होना—इकाई की ओर। इसी से राजा का जन्म होता है।"

इस बार मार्कण्डेय के हँसने की बारी थी, "तुम्हारी दलील मैं स्वीकार करता हूँ उमा। और तुम्हारी दलील ही तुम्हारी बात का खंडन करती है। तुम अपने बहुमत का रूप ठीक-ठीक नहीं देख पा रहे हो। तुम्हारा दृष्टिकोण विकृत है। तुम्हारा यह बहुमत वास्तव में अल्पमत है, क्योंकि यह बहुमत केवल साधन है, कर्ता नहीं है। कर्ता कुछ थोड़े-से इने-गिने लोग हैं, जिन्हें 'नेता' कहा जाता है। बहुमत इन्हीं थोड़े-से नेताओं के इशारों पर भेड़-बकरियों की तरह चलता है। और तुम्हारा यह कहना कि शक्तिमय अल्पमत का नियम है संकुचित होना—इकाई की तरफ़ !—यह भी ठीक है। आज रूस का डिक्टेटर स्तालिन राजा का रूपान्तर भर है।"

उमानाथ ने बड़े ध्यान से मार्कण्डेय की बातें सुनी थीं। उसने कहा, "आप बड़ा गलत समझ रहे हैं, मार्कण्डेय भइया! आप यह कहते हैं कि रूस में अल्पमत का आधिपत्य है, यह मैं माने लेता हूं, लेकिन उस अल्पमत का सिद्धान्त बहुमत के कल्याण का सिद्धान्त है, वह अल्पमत बहुमत का प्रतिनिधि भर है—वह कोई विशेष श्रेणी नहीं है। और इसलिए उस अल्पमत की आवाज सारी दुनिया की आवाज है। आज जो कुछ आप रूस में देख-सुन रहे हैं, वही सत्य और नित्य नहीं है। वह विकास के क्रम का एक आवश्यक अंग भर है। समाजवाद एक सम्पूर्ण सुगठित समाज में विश्वास करता है, और प्रत्येक व्यक्ति उस सुगठित समाज का एक पुरजा है, जिसे अपना काम ठीक तरह से करना है। आरम्भ में जब एक तरह की अस्थिरता, एक तरह का अज्ञान लोगों में रहता है, तब उस समाज को ठीक तौर से संचालित करने के लिए समाज को इकाई की शरण लेनी पड़ती है। पर वह इकाई ऐसी होनी चाहिए, जिस पर सब लोगों का पूर्ण विश्वास हो, जो समाज को संचालित करने के योग्य हो। और ऐसा आदमी डिक्टेटर कहलाता है। पर मार्कण्डेय भइया, उस डिक्टेटर का हित, उसका निजी हित नहीं होता। वह समस्त समाज का हित होता है। आपने स्टालिन की बात उठाई है, तो मैं उसी को लेता हूं। आप कह सकते हैं कि स्टालिन अपने ऊपर कितना खर्च करता है। जब दुनिया के बड़े-बड़े नरेश अपने ऐश-आराम पर करोड़ों रुपये खर्च कर देते हैं, तब स्टालिन केवल कुछ सौ रुपयों पर अपना जीवन निर्वाह करता है।"

"हां! यह मैं मानता हूं कि स्टालिन बहुत कम रुपया लेता है!" मार्कण्डेय ने कहा, "लेकिन यह तो कोई नई बात नहीं है। हिन्दुस्तान में औरंगजेब भी तो अपने ऊपर कम से कम खर्च करता था। ऐसे अनेक राजाओं की चर्चा इतिहास में आती है जिन्होंने अपने ऊपर कम से कम खर्च किया है। ऐसी हालत में अगर स्टालिन अपने ऊपर बहुत कम खर्च करता है तो यह कोई बड़ी बात नहीं। यह याद रखना कि स्टालिन के पास भयानक शक्ति का भयानक नशा है, बनाना और मिटाना उसके हाथ में है। उसे रुपयों की जरूरत

ही क्या ? उमा ! हमारे देश में एक ऐसा जमाना था जब ब्राह्मण त्यागी होते थे, जंगलों में रहते थे। उनके पास कोई सम्पत्ति नहीं होती थी । और उन्होंने खुद यह सब परित्याग किया था, जानते हो क्यों ? इसलिए कि वे शासक थे, वे समर्थ थे । राजा उठकर उनका स्वागत करता था, उन्हें उच्च आसन देता था, उनके खाने-ठहरने का उत्तम से उत्तम प्रबन्ध करता था । सारे संसार का धन उनकी सेवा में था । यही नहीं, मन्दिरों में देवदासियां उनकी काम-वासना तुष्ट करने के लिए रहती थीं, जनता उन्हें कन्यादान करती थी। शक्ति भयानक चीज है उमा। और अगर बिना पैसे के शक्ति-द्वारा सब कुछ मिल सके तो पैसे की क्या जरूरत है ?"

"और गांधी के पास भी तो वही शक्ति है ?" मनमोहन ने कहा, "आपके कहने के मुताबिक मैं फिर गांधी में और स्टालिन में कोई अन्तर नहीं देखता। गांधी भी तो डिक्टेटर हैं !"

"वेल सेड ! वेल सेड !" उमानाथ ने ताली पीटते हुए मार्कण्डेय को देखा ।

पर मानों मार्कण्डेय इस प्रश्न के लिये तैयार बैठा था। उसने कहा, "हां, गांधी भी डिक्टेटर हैं—मैं यह मानता हूं। पर वह प्रेम और विश्वास से डिक्टेटर हैं। स्टालिन के पीछे एक बहुत बड़ी सेना की ताकत है, वह लोगों पर शासन करता है अस्त्र-शस्त्र के जोर से ! और गांधी ! गांधी के पीछे सारी ताकत है भावना की, प्रेम की, विश्वास की । आप जब चाहें, गांधी को डिक्टेटरशिप से हटा सकते हैं। लेकिन स्टालिन को नहीं । एक विदेशी सरकार की बड़ी से बड़ी शक्तियां भी अपने सम्पूर्ण विरोध-द्वारा गांधी पर जनता के प्रेम और विश्वास को नहीं कम कर सकीं । वे डिक्टेटर हैं, केवल इसलिए कि देश को उनकी जरूरत है। उन्होंने अपने को जनता के मस्तक पर जबर्दस्ती नहीं लादा, बल्कि जनता ने आग्रहपूर्वक उन्हें अपने मस्तक पर बिठलाया !"

"जैसा जनता ने गांधी को अपने मस्तक पर बिठलाया, वह हम खूब

जानते हैं !" उमानाथ ने मुंह बनाते हुए कहा, "गांधी का हथियार है फ़रेब और छल—गुलामों के पास यही हथियार हुआ भी करता है। झूठे वादे, झूठी कल्पना, झूठा प्रोग्राम ! चारों ओर एक भयानक झूठ; और उसी झूठ से प्रभावित होकर हिन्दुस्तान की मूर्ख जनता, जो सदियों से झूठे भगवान् की, झूठे धर्म की, झूठे महात्माओं और महन्तों की गुलामी करती आ रही है, इस महात्मा को भी सर पर बिठलाए हुए है। लेकिन मार्कण्डेय भइया, यह ज्ञान और तर्क का युग है, यह महात्मापन का परदा ज्यादा दिन तक नहीं चल सकता। और फिर या तो इस महात्मा को अपना तख्त खाली करना पड़ेगा, या फिर अपने तख्त को कायम रखने के लिए बल का प्रयोग करना पड़ेगा।"

गांधी के व्यक्तित्व तथा ईमानदारी पर यह हमला मार्कण्डेय को अच्छा नहीं लगा; लेकिन वह उत्तेजित नहीं हुआ। उसने शान्त भाव से कहा, "उमा ! क्या यह आवश्यक है कि तुम इतने बड़े महापुरुष को इतनी खराब गालियां दो ! मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा कि तुम गांधी को समझने की कोशिश करो ! व्यक्ति को समझने के लिए उसके सिद्धान्तों को समझना बहुत जरूरी होता है। यह हमारे देश का ही नहीं, वरन् समस्त मानवता का दुर्भाग्य है कि वह बिना सिद्धान्त समझे हुए बाहरी बातों से प्रभावित हो जाता है। उमा ! तुम दुनिया को बदलना चाहते हो, बिना खुद बदले हुए, और यही तुम्हारी असफलता का बीज है। गांधी दुनिया को बदलना चाहते हैं, स्वयम् अपने को बदल कर। और अपने को बदलने के प्रयत्न को तुम झूठ और आडम्बर कहते हो ! तुम हिंसा के उपासक हो, और अपने अन्दरवाली हिंसा से प्रभावित होकर तुम अहिंसा को केवल झूठा ढोंग ही समझ सकते हो ! इस बात पर मुझे दुःख होता है। जब तक तुम अपने अन्दरवाली हिंसा से भरी पशुता को दूर करने का प्रयत्न न करोगे, तब तक गांधी को समझ सकना तुम्हारे लिए असम्भव ही है।" और मार्कण्डेय उठ खड़ा हुआ।

६

दूसरे दिन सुबह उमानाथ ने झगड़ू को बुलवाया। मैनेजर रामसिंह वहीं मौजूद थे। उस समय झगड़ू का पारा काफ़ी चढ़ा हुआ था; तड़के ही उन्हें यह सूचना मिली थी कि रात के वक्त परमेश्वर नाम के एक नवयुवक को जिले के आदमियों ने घेर कर मारा, और परमेश्वर ने उस समय तक अन्न न ग्रहण करने का प्रण किया है, जब तक मैनेजर से बदला न ले लिया जाय।

झगड़ू ने आते ही रामसिंह से कहा, "काहे हो मनीजर साहब, अब तो आपके आदमी बहुत अधिक अत्याचार करन लग गए हैं।"

"क्यों, क्या बात है, मिसिरजी ? कौन-सा अपराध हो गया है उनसे ?" बड़ी नम्रता के साथ रामसिंह ने पूछा।

मैनेजर की इस विनम्रता से झगड़ू का क्रोध और भी भड़क उठा, "जैसे तुम कुछ जनते नहीं हो ! अरे भगवान् से तो डरो ! परमेसुर तुम लोगन का का बिगाड़ रहे जो ऊका अकेले पाय के तुम्हारे इलाके के आदमी बुरी तरह पीटिन !"

"कौन परमेश्वर ?—वह छोकरा ?" रामसिंह ने कुछ सोचने की मुद्रा बनाकर कहा, "वही न जो बड़ा तेज है। तो मिसिरजी, मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम ! लेकिन इतना जरूर कह सकता हूं कि वह लौंडा इतना बदजबान और अक्खड़ है कि उसका हमारे आदमियों से हक-नाहक उलझ पड़ना स्वाभाविक है। और ऐसी हालत में परिणाम तो आप समझ ही सकते हैं।"

इस बार उमानाथ ने अपना सर उठाया। वह चीजों के वास्तविक रूप को समझ सकता था—और वह यह भी जानता था कि घटनाओं का क्रम निश्चित रूप से अकल्याणकारी है। लेकिन उसे राज्य के मामले में बोलने का कोई अधिकार नहीं है—अपनी इस सीमा का भी उसे ज्ञान था। उसने

धीरे से कहा, "मैनेजर साहेब ! मैं जानता हूं कि राज-काज में दस्तन्दाजी करने का मुझे कोई अधिकार नहीं । लेकिन एक बार मैं भी अपनी बात कह देना चाहता हूं । आप जो कुछ कर रहे हैं, आप उसे राज्य की भलाई के लिए भले ही कहें, लेकिन मैं समझता हूं कि वह सब आप अपनेपन से, अपनी अहम्मन्यता से प्रेरित होकर कर रहे हैं; उसमें राज्य का फ़ायदा नहीं, नुकसान है; और इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि आप अपने आदमियों से शान्त हो जाने को कह दें ।"

हाथ जोड़कर रामसिंह ने कहा, "मझले सरकार ! आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं । मैं आपको किस तरह विश्वास दिलाऊं कि जो कुछ मैं कर रहा हूं, वह अपनी तरफ़ से नहीं कर रहा हूं बल्कि राजासाहेब के हुक्म की तामील कर रहा हूं । इसके अलावा मैंने अपने आदमियों से हमेशा शान्त रहने को कहा है, लेकिन यह गांववाले हमारे आदमियों को शान्त होकर बैठने कब देते हैं !"

रामसिंह के इस कथन से उमानाथ निरुत्तर हो गया । कुछ देर तक सब लोग मौन बैठे रहे, फिर उमानाथ ने कहा, "यह तो सुना, लेकिन सवाल मेरे सामने यह है कि आखिर हो क्या ? जो कुछ अभी हो रहा है, उसमें किसी का कल्याण नहीं।"

मालूम होता है कि इतनी देर में ठाकुर रामसिंह ने उत्तर सोच रक्खा था। उन्होंने कहा, "अब एक ही तरीका है, मझले सरकार ! वह यह कि मैं इस्तीफा दे दूं । मिसिरजी के कहने के मुताबिक बिनाए-मुखासिमत मैं हूं, और शायद मेरे हटने से झगड़ा शान्त हो जाय।"

झगड़ू ने कड़ी निगाह से रामसिंह को देखते हुए कहा, "और तुम्हार ऐस खयाल है कि तुम्हरे रहत भए सान्ती नाहीं हुइ सकत !"

"मैंने तो यह नहीं कहा । मेरा कहना सिर्फ़ इतना है कि मेरे यहां रहते हुए गांववाले नहीं चुप होने को । उस दिन आप ही ने तो संदेसा भिजवाया था कि अगर मैंने गांव में पैर रक्खा तो मेरे हाथ-पैर तोड़ दिए जाएंगे !"

उमानाथ ने झगड़ू की ओर देखा और झगड़ू ने उत्तर दिया, "हां, मनीजर साहेब ठीक कहि रहे हैं। तौन मनीजर साहेब रामाधीन का ऐस पिटवाइन कि वह अधमरा हुइगा। तौन आज तक वह चारपाई सेंक रहा है।"

"खैर छोड़िए इस बात को! अब अगर मामला यहीं रोक दिया जाय तो कैसा रहे?" उमानाथ ने कहा।

"लेकिन परमेश्वर अन्न-जल छोड़े पड़ा है। ऊ अन्न-जल तबै ग्रहण करी जब मनीजर से बदला लीन जाई! अब ई का उपाय क्या है?"

उमानाथ ने कुछ सोचा, "अच्छा! मैं मैनेजर को यहां से दद्दुआ को बुलाने भेज रहा हूं—जब दद्दुआ आएंगे, तब सब कुछ तै हो जायगा। तब तक मैनेजर साहब के यहां से दूर रहने से परमेश्वर के अन्न-जल ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए!

"हमें मंजूर!" झगड़ू ने उत्तर दिया।

"सरकार का हुक्म मेरे सिर-आंखों!" रामसिंह ने कहा।

७

जिस समय झगड़ू घर लौटे, उनका मन भारी था। वह समझौता कर आए थे, पर वह समझौता था कैसा? उसका रूप क्या था? यही न कि उन्होंने इस बात का वादा कर लिया था कि गांववाले रामसिंह ने जो ज्यादतियां की थीं, उनके खिलाफ़ कोई कारंवाई न करेंगे! और रामसिंह का क्या होगा, यह अनिश्चित था। झगड़ू के अन्दर से कोई बार-बार कहता था कि उस समझौते में झगड़ू की पराजय हुई।

गांववाले झगड़ू के दरवाजे इकट्ठा थे, वे झगड़ू की राह देख रहे थे। झगड़ू के आते ही सब लोग उठ खड़े हुए। झगड़ू बिना कुछ बोले थके हुए से बैठ गए।

किसी ने झगड़ू से कुछ न कहा, सब यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि झगड़ू बात आरम्भ करें। जब बहुत देर तक झगड़ू ने कुछ नहीं कहा, तब एक ने पूछा, "काहे हो मिसिरजी, कुशल है न!"

शुष्क भाव से झगड़ू ने उत्तर दिया, "हां, कुसलै समझो। तौन मझले कुंवर हमसे कहिन कि अब ई लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दीन जाय!"

"और मैनेजर यहीं रहेंगे?" दूसरे ने पूछा।

लड़खड़ाते हुए स्वर में झगड़ू ने कहा, "मनीजर आज उन्नाव चले जइहैं, और राजा साहेब के साथ वापस अइहैं। तौन मनीजर की बर्खास्तगी की बात तो राजा साहेब के सामने उठ सकत है। और हमहू सोचा कि राजा साहेब के आवै तक हम लोग शान्त रही, ई लड़ाई-झगड़ा से नुकसानै तो आय! साथै परमेसुरो अब अन्न-जल ग्रहण कर सकत हैं!"

इस पर एक नवयुवक हँस पड़ा, "तो झगड़ू काका, इस लड़ाई के आरम्भ करने के पहले ही आपने यह क्यों नहीं सोच लिया था! अब इस अवसर पर शान्त हो जाना अपनी पराजय है—मैं तो यह जानता हूं!"

उस नवयुवक ने जो बात कही थी, उससे झगड़ू नाराज नहीं हुए। उन्होंने केवल अपना सर झुका लिया। चारों ओर एक गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। इस पर एक वृद्ध आदमी ने कहा, "जाने भी दो, लड़ाई बन्द करने में हमारा हित ही है। विजय-पराजय के चक्कर में पड़कर दो-चार आदमियों के मरने से क्या तुम लोगों को संतोष हो जायगा? मिसिरजी ने समझौता करके ठीक ही किया!"

सब लोग चले गए, पर संतुष्ट कोई न था। झगड़ू चुप बैठ गए; न उन्होंने स्नान किया और न भोजन। वे उस समय घर में अकेले थे, मन-मोहन को साथ लेकर मार्कण्डेय एक नजदीकवाले गांव में कांग्रेस का काम-काज देखने चला गया था। दोपहर में जब वे दोनों लौटे, झगड़ू उसी तरह उदास बैठे कुछ सोच रहे थे।

मार्कण्डेय ने झगड़ू से कहा, "अरे बप्पा! आपने तो स्नान-भोजन कुछ

भी नहीं किया ? हम लोगों को देर हो गई, लेकिन आपको तो कर लेना चाहिए था ।"

"ऐसने अलसाय गएन ।" झगड़ू ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो अब उठिए !"

अपने पुत्र के आग्रह को झगड़ू ने नहीं टाला । स्नान-भोजन के बाद जब तीनों बैठे, तब झगड़ू ने बात आरम्भ की, "सुनेव हो मारकण्डे , आज सुबह मझले कुंवर हमें बुलाइन रहें।"

"क्यों ?"

"बात यू भई कि रात मां मनीजर के आदमी परमेसुर का मारिन ! तौन परमेसुर यू सपथ लै लीन्हिस कि जब तक मनीजर से बदला न लीन जाई, तब तक वह अन्न-जल न ग्रहण करी । तौन जब हम मझले कुंवर के यहां गएन तो मझले कुंवर कहिन कि उइ मनीजर का उन्नाव भेजि रहे हैं, और इहां लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दीन जाय । उन्नाव से तिवारीजी का साथ लै के मनीजर वापस अइहैं तब निपटारा हुइ जाई । और मनीजर के इहां से चले जायें के बाद परमेसुर अन्न-जल ग्रहन करैं ।"

मार्कण्डेय ने कहा, "यह तो ठीक बात है। समझौता हर हालत में अच्छा है ।"

लेकिन मनमोहन ने सिर हिलाया, "हो सकता है । मैं तो यह जानता हूं कि अच्छा तब होगा, जब परमेश्वर को संतोष हो जाय ।"

"हां ! यू ठीक कहेव !" झगड़ू चौंक से उठे, "तौन परमेसुर के यहां जाब तो हम भूलै गएन !" यह कह कर झगड़ू उठ खड़े हुए । मार्कण्डेय और मनमोहन भी उनके साथ हो लिये ।

८

परमेश्वर लेटा था और उसकी बूढ़ी मां उसके सिरहाने बैठी थी। परमेश्वर के हाथों और पैरों में पट्टियां चढ़ी थीं। झगड़ू के आते ही परमेश्वर की

मां ने घूंघट खींच लिया और आगन्तुकों के बैठने के लिए ज़मीन पर एक फट्टा डाल दिया। उस फट्टे पर मार्कण्डेय और मनमोहन बैठ गए, झगड़ू खड़े ही रहे। उन्होंने परमेसुर से कहा, "अच्छा परमेसुर, अब अन्न-जल ग्रहण करो। मनीजर का मझले कुंवर आज उन्नाव भेज दीन्हिन!"

परमेश्वर ने झगड़ू की ओर देखा और कुछ देर तक देखता रहा, इसके बाद उसने आंखें बन्द कर लीं और पीड़ा से कराह उठा।

झगड़ू को अपनी बात दुहराने की हिम्मत नहीं हुई; उनके दिल का भारीपन और भी बढ़ गया।

परमेश्वर ने फिर आंखें खोलीं, क्षीण स्वर में उसने कहा, "काका! बैठ जाओ!"

"नाहीं परमेसुर—हम खड़े हन, यहै ठीक आय। अब हम तुमसे प्रार्थना करन आए हन कि तुम अन्न-जल ग्रहन करौ।!"

"लेकिन बदला तो नहीं लिया गया!"

"बदलै समझो! मनीजर अबहीं तो बानापुर से हटाय दीन गए हैं, राजा साहेब के आवैं पर बर्खास्त कर दीन जइहैं।"

"और अगर राजा साहेब ने उन्हें न बर्खास्त किया?" परमेश्वर ने पूछा, "और मैं जानता हूं कि राजा साहेब उन्हें न बर्खास्त करेंगे। तब फिर बदला कैसा?"

"काहे न बर्खास्त करिहैं—करैं का पड़ी।" झगड़ू ने तैश में आकर कहा।

परमेश्वर मुस्कराया, "झगड़ू काका! इसकी ज़िम्मेदारी आप ले रहे हैं!"

"हां, ईकी ज़िम्मेदारी हमरे ऊपर!" झगड़ू ने आवेश में कह दिया।

"तो झगड़ू काका, मैं जल ग्रहण किये लेता हूं—अन्न तो तभी ग्रहण करूंगा, जब काम पूरा हो जायगा!" परमेश्वर ने कह कर आंखें बन्द कर लीं।

सब लोग चले आए। लेकिन आवेश के दूर होते ही झगड़ू को यह अनुभव हुआ कि उन्होंने जो कुछ किया, वह गलत किया। वे रामनाथ को अच्छी तरह जानते थे और इसलिए उनके मन में भी रह-रह कर यही प्रश्न उठता था कि अगर पण्डित रामनाथ तिवारी ने मैनेजर को न बर्खास्त किया तो?

अपने मन के प्रश्न को वे लाख प्रयत्न करने पर भी न दबा सके। घर पर भोजन करने के बाद जब झगड़ू, मार्कण्डेय और मनमोहन बैठे तब झगड़ू ने कही डाला, "काहे हो मारकण्डे! तिवारीजी से तो हमें आसा नहीं कि उइ मनीजर का बर्खास्त करिहैं। तौन मझले कुंवर से नाहीं कुछ करवाय सकत हो?"

मार्कण्डेय कुछ देर तक मौन सोचता रहा, फिर उसने कहा, "बप्पा! मुझे यह आशा कम ही है कि उमा की बात का तिवारीजी पर कुछ असर पड़ेगा। फिर भी मैं कोशिश जरूर करूंगा!"

"और अगर हम सब असफल भएन तब?" झगड़ू ने फिर पूछा।

मार्कण्डेय मानों इस प्रश्न के लिए तैयार ही बैठा था, "तब सत्याग्रह करना चाहिए!"

इस बात से झगड़ू चौंक उठे, "सत्याग्रह! सत्याग्रह तो सरकार के साथ कीन जात है, मनई के साथ कैसा सत्याग्रह?"

"क्यों नहीं? गांववाले लगान देना बन्द कर दें!"

"और जो जबर्दस्ती होई, बेदखली होई, कुरकी होई—ऊका कौन उपाय है?" झगड़ू ने पूछा।

"जबर्दस्ती बर्दाश्त की जाय, कुर्की में कोई माल न खरीदे, बेदखली के बाद उस जमीन को कोई न ले!"

इस बार मनमोहन बोला, "आप क्या कह रहे हैं, मार्कण्डेयजी? लोग मार खायें और सब कुछ खो दें। कुर्की में खरीदनेवाले मिल जायेंगे और अगर न भी मिले तो कुर्क हुई चीजें हल, बैल, जमीन, मकान—कम से कम

दाम में खुद तिवारीजी खरीद लेंगे। और बेदखली के माने होंगे तिवारीजी के लिए कुछ सौ रुपयों का नुकसान, जिसे वे आसानी से बर्दाश्त कर लेंगे, लेकिन किसानों के लिए बेदखली के अर्थ होंगे भूखों मरना, जिसे वे लोग बर्दाश्त न कर सकेंगे।"

"सुनेव मारकण्डे—मनमोहन का कहिन ! सोला आना ठीक बात आय। नाहीं, सत्याग्रह ई मामला मां सम्भव नाहीं।" झगड़ू ने कहा।

"सब सम्भव है, लेकिन आत्मबल चाहिए, बप्पा ! ये किसान वैसे ही कब भूखों नहीं मरते ? एक बार उनकी समझ में यह बात आ जाय कि इस पशुता की जिन्दगी से मृत्यु अच्छी है, तो सब कुछ सम्भव हो जायगा। और साथ ही मैं तो यह कहता हूँ कि सत्य और अहिंसा में इतना बल है, कि वह बड़े से बड़े अत्याचार को दबा सकती है, केवल मनुष्य में इस सत्य और अहिंसा पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए। तिवारीजी मनुष्य ही तो हैं, उनके पास भी हृदय है, दया है, करुणा है। ऐसी हालत में आप यह कैसे समझते हैं कि इस सत्य और अहिंसा का असर उन पर न पड़ेगा !"

इस बात को सुनकर मनमोहन जोर से हँस पड़ा। मनमोहन की इस हँसी से पिता-पुत्र दोनों ही चौंक उठे। उस हँसी में सरसता न थी, माधुर्य न था। उस हँसी में रूखापन से भरा एक भयानक व्यंग था, उपेक्षा थी। वह हँसी एक धर्मांध की हँसी थी, जिसके अन्दर भयानक प्रतिहिंसा भरी हो। मार्कण्डेय ने आश्चर्य से मनमोहन को देखा, लेकिन मनमोहन हँसता ही रहा। अन्त में मार्कण्डेय को पूछना पड़ा, "क्यों, क्या बात है, मनमोहन ?"

"कुछ नहीं; आप अपना प्रयोग करें। समय बतला देगा कि कौन गलती कर रहा है !" मनमोहन ने सिर्फ़ इतना ही कहा।

६

दूसरे ही दिन शाम के समय तिवारीजी को साथ लेकर मैनेजर रामसिंह बानापुर में उपस्थित हो गए। जिस समय उनकी कार महल के सामने रुकी,

मार्कण्डेय, उमानाथ और मनमोहन चाय पीकर टहलने जानेवाले थे। उमानाथ ने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए, मार्कण्डेय और मनमोहन तिवारीजी को प्रणाम करके एक ओर खड़े हो गए। कार से उतरते हुए रामनाथ ने मुस्करा कर उमानाथ से कहा, "देखता हूं 'वह मुसीबत, जिससे मैं बचना चाहता था, मेरे ऊपर आ ही पड़ी!"

रामनाथ तिवारी की व्यंगात्मक मुस्कराहट से ही उमानाथ ने समझ लिया कि उसके पिता निर्णय करके घर से चले हैं, और उन्होंने अपना मार्ग निर्धारित कर लिया है। उस निर्णय से उन्हें डिगाने के लिए उमानाथ को भी मुस्करा कर कहना पड़ा, "मुसीबत स्वयम् नहीं आती, वह तो लोगों द्वारा आमन्त्रित की जाती है। दोष इसमें मैनेजर साहब का है, यह मैं कह सकता हूं।"

उमानाथ ने साफ़ देख लिया कि उसका यह वार खाली गया। उसकी बात का रामनाथ पर कोई असर नहीं पड़ा, क्योंकि उसकी बात का रामनाथ ने ज़रा भी बुरा नहीं माना। "हां, हो सकता है। लेकिन मैं तो इतना जानता हूं कि रार्मासह मेरे इलाके में एक अरसे से मैनेजर हैं, और आज के पहले रार्मासह के कारण हमें इस परिस्थिति का कभी सामना नहीं करना पड़ा था।" कमरे की ओर बढ़ते हुए रामनाथ ने कहा।

वे चलते जाते थे और कहते जाते थे, "मैंने सारी परिस्थिति समझ ली है बिना रार्मासह की पूरी बात सुने हुए; परिस्थिति समझ लेना ऐसा कोई मुश्किल काम भी तो न था। रार्मासह कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे कि उन्होंने कोई ज्यादती की; मैं भी उसे अपना अधिकार और फलस्वरूप रार्मासह का अधिकार मानकर कहूंगा कि उन्होंने कोई ज्यादती नहीं की। साथ ही मैं यह स्वीकार करने से नहीं हिचकता कि आज मेरे उस अधिकार को ही लोग ज्यादती कहने लगे हैं। उसे मार्कण्डेय ज्यादती कहेंगे, उसे दया ज्यादती कहेगा, उसे तुम भी ज्यादती कहोगे। और चूंकि तुम लोग उसे ज्यादती कहते हो, लिहाजा मेरी रिआया भी उसे ज्यादती समझने लगी है। लोगों ने मेरी

रिआया को समझाया है कि वह ज्यादती है, मैं अपनी रिआया को समझाने आया हूँ कि वह मेरा अधिकार है ।"

"तो क्या आप अपनी रिआया को समझा सकेंगे ?" मार्कण्डेय ने पूछा ।

"जरूर ! बड़ी अच्छी तरह समझा सकूंगा, लेकिन समझाने का तरीका कुछ और होगा और मेरे हिसाब से सही होगा ।" रामनाथ इस बार हंस पड़े, "अधिकारी वही हो सकता है, जो समर्थ होता है, और समर्थ वह है, जो बली है, शक्तिशाली है । लिहाजा अपने अधिकार को अपनी शक्ति-द्वारा ही सफलतापूर्वक समझाया जा सकता है !"

मार्कण्डेय ने कहा, "और मनुष्यता ?—क्या जीवन में मनुष्यता का कोई स्थान नहीं ?"

रामनाथ ने रूखा-सा उत्तर दिया, "मार्कण्डेय ! मैं तुम्हें समझाने नहीं आया हूं और इसलिए मैं तुमसे तर्क न करूंगा । मैं अपने साथ एक दूसरी तरह का तर्क लेकर आया हूं, ऐसा तर्क जो मुझे अपनी प्रजा के साथ करना चाहिए । और इसलिए तुम्हारे साथ तर्क करके मैं इस समयवाले अपने तर्क को भूलना नहीं चाहता।"

इस समय तक सब लोग बड़े कमरे में पहुंच गए थे । तख्त पर रामनाथ बैठ गए और खिदमतगार उनके जूते खोलने लगा । उमानाथ वगैरह फ़र्श पर बैठ गए । रामसिंह एक तरफ़ खड़े थे । तिवारीजी ने रामसिंह को देखा, "और तुम उमा के कहने से उन्नाव गए थे न !"

"सरकार, सभी लोगों की ऐसी राय थी तो मझले कुंवर ने भी कह दिया । और इस बढ़ते हुए उपद्रव को देख कर मैंने भी यह मुनासिब समझा कि उसकी इत्तिला सरकार को कर दी जाय।"

इतने में झगड़ू मिसिर भी वहां पहुंच गए । पण्डित रामनाथ तिवारी के आने की इत्तिला बिजली की तरह गांव भर में फैल गई थी, और लोगों ने झगड़ू को रामनाथ तिवारी से मिल कर सारी स्थिति स्पष्ट कर देने को भेजा था ।

झगड़ू को देखते ही रामनाथ उठ खड़े हुए और उन्होंने झगड़ू के प्रणाम का उत्तर देते हुए कहा, "आइए, मिसिरजी ! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा था !" यह कह कर उन्होंने झगड़ू का हाथ पकड़ कर अपने साथ तख्त पर बिठलाने की कोशिश की।

लेकिन झगड़ू तख्त पर नहीं बैठे। इन्होंने कहा, "नहीं, तिवारीजी ! आज हम फ़रियादी की हैसियत से राजा साहेब के सन्मुख उपस्थित भए हन, तौन हमार स्थान यू फरस आय !" और झगड़ू फ़र्श पर बैठ गए।

रामनाथ ने झगड़ू को एक बार गौर से देखा, और उनका मुख गम्भीर हो गया तथा उनके मत्थे पर बल पड़ गए। उन्होंने कहा, "अच्छा, मिसिर-जी ! आप के साथ न्याय ही होगा, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, अब आपको जो कुछ कहना हो कह डालिए।"

रामनाथ की इस मुद्रा से उमानाथ को प्रसन्नता हुई, उमानाथ ने देखा कि रामनाथ के अन्दर तर्क की कमजोरी पैदा हो गई है। झगड़ू ने गला साफ़ करके कहा, "बात यू है, तिवारीजी, कि मनोजर साहेब आजकल बहुत ज्या-दती करब शुरू कर दीन्हिन हैं। लोगन का पिटवाइन, उनकी खेती उजाड़ दीन्हिन, उनके घर मां आग लगवाय दीन्हिन। आखिर लोगन का जियन देहैं कि नाहीं। हमार जो कुछ अपमान कीन्हिन ऊकी तो हमें चिन्ता न आय, लेकिन परमेसुर नाम के एक लड़का केर काल हाथ-पैर तुड़वाय दीन्हिन !"

"आपका अपमान भी हुआ है ?" आश्चर्य से रामनाथ ने पूछा, फिर उन्होंने रामसिंह से कहा, "क्यों रामसिंह, मिसिरजी का कहना है कि तुमने उनका अपमान किया है। क्या बात है ?"

"जी !..." सकपकाते हुए रामसिंह ने कहा, "बात यों हुई कि किसी असामी को जो मैंने सजा दिलवाई, तो मिसिरजी ने मुझसे कहलाया कि मैं गांव में कदम न रक्खूं, वरना मेरी भी हालत वही होगी जो उस असामी की हुई थी। और सरकार, मैंने मिसिरजी की वह चुनौती इस नाचीज के

खिलाफ़ नहीं समझी, बल्कि राजा साहेब के खिलाफ़ समझी, क्योंकि यहां तो मेरी हस्ती सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से है ।"

"फिर तुमने क्या किया ?" रामनाथ ने पूछा ।

"जी, करता क्या ! अपने दस-बारह आदमियों के साथ में उसी दिन रात के समय मिसिरजी की सेवा में हाज़िर हो गया, मिसिरजी को समझाने के लिए कि मैंने जो कुछ किया, वह ज़ाती नहीं था बल्कि सरकार के हुक्म की तामीली के रूप में था और उन्होंने मुझे जो चुनौती दी थी वह मुझे नहीं दी थी बल्कि राज को दी थी ।"

"तो तुम फ़ौजदारी करने गए थे मिसिरजी से, मिसिरजी की आदत जानते हुए ? तुमने समझा था कि जो बात क्षणिक आवेश में आकर मिसिर-जी ने कह दी उसका बदला अपने को कानून की गिरफ्त से बचा कर ले लिया जाय । तो मिसिर जी ने तुम्हें चले आने दिया ? क्यों मिसिरजी ! यकीन नहीं होता, आपको जानते हुए। उस समय तो फ़ौजदारी होनी ही चाहिए थी !"

अब मनमोहन के बोलने की बारी थी, "जी, मिसिरजी ने लाठी तान ली थी, लेकिन मैंने देखा कि वे अकेले हैं और आप के आदमी उनकी हत्या करने पर तुल कर गए हैं । लिहाज़ा मैंने मिसिरजी का हाथ पकड़ लिया था ।"

रामनाथ चुप बैठे थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे, इसके बाद उन्होंने कहा, "फिर आगे !"

"अब हम का बताई !" झगड़ू ने उत्तर दिया, "तीन आप के आदमी मिल के परमेसुर का ऐस बुरी तरा मारिन कि कुछ न पूछो ! और परमेसुरी जिद पकड़ गा कि जब तक मनोहर से बदला न लै लीन जाई, तब तक वह अन्न-जल न ग्रहण करी ।"

रामनाथ ने कहा, "परमेश्वर के खिलाफ़ दो बातें हैं—एक तो वह अपना लगान देने से इनकार करता है, दूसरे रिआया को बरगलाता है कि वह भी लगान न दे । मिसिरजी, ये बातें कहां तक ठीक हैं ?"

झगड़ू को कहना पड़ा, "हां, ईसे तो इनकार नाहीं कीन जाय सकत है। लेकिन ई सब का कारन आपके मनीजर का दुर्व्यवहार है। तौन परसेसुरी का नया खून आय । सो ऐसी बातन पर ध्यान न देन चाही ।"

रामनाथ हँस पड़े, "और ऐसी बातों पर ध्यान न देकर अपने को नष्ट कर लेना चाहिए !—आप यही कहना चाहते हैं, मिसिरजी ? तो आप गलती करते हैं । अच्छा, मिसिरजी ! अब मैं अपना निर्णय दे रहा हूँ । रामसिंह को मैं बर्खास्त कर रहा हूँ, इस बात पर कि उन्होंने आपका अपमान करके एक तरह से मेरा अपमान किया है । लेकिन रामसिंह अभी दो महीने तक इस राज्य के मैनेजर रहेंगे, यह साबित करने के लिए कि उनकी अन्य बातों से मैं सहमत हूँ और मैं दूसरों को जरा भी परवाह नहीं करता ।"

इस निर्णय को सुन कर वहां सब लोग अवाक् रह गए । झगड़ू कुछ चुप रह कर बोले, "तिवारीजी, हमार आप से यह प्रार्थना आय कि हमरे कारन रामसिंह का कोनो दण्ड न दीन जाय, केवल ई लिए कि परमेसुर की बात पूरी हुई जाय, आप अबहीं रामसिंह का कोनो हलका-सा दण्ड दै देंय ।"

रामनाथ तिवारी ने झगड़ू की आंखों से आंखें मिलाते हुए कहा, "और इस तरह मैं अपनी रिआया पर यह जाहिर करूँ कि मैं कमज़ोर हूँ, मैं उससे दबता हूँ ! मिसिरजी ! आज के पहले तो यह परिस्थिति नहीं उत्पन्न हुई थी। यही रिआया थी, यही मैनेजर थे, और यही मैं था । आप शायद कहेंगे कि आज के दिन लोग अपना अधिकार जान गए हैं । आप ही क्यों, आज सभी पढ़े-लिखे लोग यह कह रहे हैं। लेकिन जहां अधिकार की बात उठती है, वहां मैं भी अपना अधिकार जानता हूँ । सबल अधिकारी है, यह नियम अनादि काल से लागू रहा है, अनन्त काल तक लागू रहेगा । मैं इस इलाके का मालिक हूँ, जो कुछ मैं कहूँगा, इस इलाके में बसनेवालों को वही करना पड़ेगा । जो वह नहीं करना चाहता, जो मेरे कहने का विरोध करेगा, वह इस इलाके में नहीं रह सकता । जिस तरह होगा, उसे दण्ड दिया जायगा।"

तिवारीजी की इस बात से झगड़ू तिलमिला उठे, "तिवारीजी, यू याद राखो कि आपके ऊपर कानून है !"

"कानून !" तिवारीजी हँस पड़े, "शब्द-शब्द-शब्द ! कानून शब्दों का एक जंजाल है । कानून बनता है कायरों के लिए, असमर्थों के लिए, निर्बलों के लिए । कानून हमने बनाए हैं, हम समर्थों ने अपनी सुविधा के लिए, और अपनी सुविधा के लिए हमीं उन्हें बदल सकते हैं, तोड़-मरोड़ सकते हैं, उन्हें दूसरे अर्थ पहना सकते हैं । मैं कहता हूँ, तुम सब पुलिस के पास जाओ, डिप्टी कलेक्टर के पास जाओ, कलेक्टर के पास जाओ ! तुम्हें कोई रोकता नहीं, रास्ता साफ़ खुला है । मिसिरजी, मैं फिर कहता हूँ कि मैं सबल हूँ, मैं कानून हूँ !"

झगड़ू उठ खड़े हुए, उनका चेहरा तमतमा उठा, "तो फिर, तिवारीजी, चलत-चलत हमहू एक बात आप से कहि देई; आप मनुष्यता के उपासक न आओ, आप दानवता के उपासक आओ; तौन आप का झुकाय दानवतै सकत है ! अच्छा प्रनाम !" और झगड़ू वहां से चले गए ।

थोड़ी देर तक वहां गहरा सन्नाटा रहा, फिर तिवारी जी मुस्करा पड़े, "मुझे दानवता ही झुका सकती है ! रामसिंह—यहां कितने लठैत हैं ?"

"सरकार चालीस ! हालत खराब देख कर मैंने बुलवा लिये थे ।"

न्दूकें !"

१०

जी ने मुस्कराते हुए कहा, "मुझे दानवता

र बात है !"

ले, मनमोहन ने रामसिंह से कहा, "जरा

"कहिए !" और मनमोहन और रामसिंह एक किनारे हो गए ।

"आपको पण्डित रामनाथ तिवारी ने बर्खास्त कर दिया है। अगर आप दो महीने बाद न जाकर आज ही यहां से चले जायें तो क्या कोई हर्ज है ?"

रामसिंह के मत्थे पर बल पड़ गए, "क्यों, मेरे जाने से क्या होगा ?"

"परमेश्वर की जान बच जायगी, और साथ ही शायद एक बहुत बड़ा खून-खराबा बच जाय !" मनमोहन ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"हूं ! ऐसी बात है ! अच्छा, इस पर गौर करूंगा !"

"इसमें गौर करने की क्या बात है ?"

रामसिंह एकाएक तन कर खड़े हो गए—उनके मुख से उनकी शिष्टता का आवरण हट गया, "तो मैं आपसे साफ़-साफ़ कह दूं ! मेरी यहां से जाने की सम्भावना नहीं के बराबर है । जिन झगड़ों के कारण मुझे बर्खास्त होना पड़ा है, उन झगड़ों में कितना दम-खम है—एक दफ़े मैं यह देख लेना चाहता हूं !"

मनमोहन ने रामसिंह को गौर से देखा, एक अजीब तरह की दृढ़ता से भरी कठोरता रामसिंह के चेहरे पर थी । और अनायास ही मनमोहन का मुख कुछ विकृत हो गया, "हूं ! तो एक बात मैं भी आपसे कह देना चाहता हूं । मालूम होता है आप दूसरों को मिटाने पर ही तुल गए [illegible] के मिटाने के प्रयत्न में कहीं आप खुद न मिट [illegible] लीजिएगा ।"

"तो क्या मैं इसे धमकी समझूं ?" रामसिंह [illegible]

"आप इसे मेरी आखरी बात समझिए !" [illegible] की प्रतीक्षा किए मनमोहन वहां से चल पड़ा ।

मनमोहन जब घर पहुंचा, गांववाले [illegible] कह रहे थे, "रामसिंह को दण्ड तो मिल च[illegible] भए, तैसे आज !"

"लेकिन परमेश्वर तो प्राण देने पर तुला है !" एक ने कहा, "उसका कहना है कि रामसिंह को दण्ड नहीं मिला है, कमसे कम उसके साथ अन्याय करने पर !"

और इसी समय एक आदमी ने आकर बतलाया कि परमेश्वर ने जल पीना भी छोड़ दिया है। झगड़ू ने उठते हुए कहा, "तो फिर भगवान् की इहै इच्छा है कि खून-खराबा होय !"

मनमोहन के साथ झगड़ू परमेश्वर के यहां पहुंचे; परमेश्वर बेहोश-सा पड़ा था । झगड़ू के आने पर उसने बड़े प्रयत्न से आंखें खोलीं, हाथ में जनेऊ लेकर उसने कहा, "मिसिरजी, इस जनेऊ की शपथ ली है । ब्राह्मण होकर मैं शपथ नहीं तोड़ सकता !"

झगड़ू निराश वापस लौटे । उनके अन्दर भयानक उथल-पुथल मचा था । परमेश्वर इतना अधिक कमजोर हो गया था कि दो-एक दिन से अधिक उसका चलना असम्भव था । वह रात एक दुश्चिन्ता से भरी हुई थी, एक अजीब निराशा चारों ओर छाई थी । झगड़ू की चौपाल में लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी । बहुमत यह था कि रात में ही महल पर चढ़ाई की जाय और जम कर युद्ध हो ।

पूरी बात सुन कर झगड़ू ने अपना निर्णय दिया, "तो फिर आज फैसला हुई जाय ! मृत्यु कबौं न कबौं तो अवस्य आई तो फिर कायरता-पूर्वक जिन्दा रहन से कौन लाभ ?"

और झगड़ू की बात सुन कर सब लोग उठ खड़े हुए।

पर मनमोहन ने झगड़ू का हाथ पकड़ लिया, "मिसिरजी ! आप क्या कर रहे हैं ? आप सब लोग मृत्यु के मुख में जा रहे हैं—क्या आप जानते हैं ?"

झगड़ू ने कहा, "हां, पर ई से क्या ?"

"इससे यह है कि आप युद्ध करने या लड़ने नहीं जा रहे हैं बल्कि आप मरने जा रहे हैं । वहां चालीस लठैत हैं, दस बन्दूकें हैं, और आप लोगों को पशुओं की तरह मार डालने का पूरा प्रबन्ध है !"

झगड़ू ठिठक गए, और उनके साथ अन्य लोग भी। उसी समय मार्कण्डेय तिवारीजी के यहां से वापस लौटा। उसने जो यह भीड़ देखी तो अपने पिता के पास आकर पूछा, "क्या बात है, बप्पा!"

झगड़ू ने कोई उत्तर न दिया, लेकिन मार्कण्डेय सारी स्थिति समझ गया। उसने कहा, "लेकिन बप्पा! यह सब कितना गलत है—आप लोग हिंसा की शरण ले रहे हैं! क्या यह आपको शोभा देता है? आप एकाएक अपना कर्तव्य क्यों भूल गए?"

झगड़ू ने झुंझला कर कहा, "लेकिन तुम्हार अहिंसा तिवारीजी ऐसे मनइन के लिए नाहीं है। यहां तो परमेसुर के प्रानन का प्रश्न आय!"

"मैंने तिवारीजी से बातें की हैं, कल वह परमेश्वर के यहां जाएंगे और वहां सब बातें पूछ कर वे अपना निर्णय देंगे!"

उस रात सब लोग चले गए। सुबह के समय रामनाथ तिवारी परमेश्वर के यहां पहुंचे। गांव के अन्य लोग वहां पहले से ही इकट्ठा होकर तिवारी जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। तिवारीजी ने परमेश्वर से कहा, "अच्छा, तुम अपना अनशन तोड़ दो। जब ताकत आ जाय, तब मुझसे सब बातें बतलाना। मैं इतना विश्वास दिलाता हूं कि मैं न्याय करूंगा!"

लेकिन परमेश्वर ने फिर जनेऊ हाथ में लेकर कहा, "मेरा न्याय तो यह है! मैंने शपथ ली है, राजा साहेब! और शपथ पूरी करके अपने ब्राह्मणत्व का पालन करूंगा!"

"तो तुम्हें मेरे न्याय पर विश्वास नहीं है?" ज़रा कड़े स्वर में रामनाथ ने कहा।

परमेश्वर के मुख पर एक रूखी मुस्कराहट आई, "आपका न्याय तो नित्य हुआ करता है!"

रामनाथ तिवारी घूम पड़े। सब लोग स्तब्ध खड़े थे। घर के बाहर रामनाथ तिवारी रुके, उनके सामने गांववाले खड़े थे। रामनाथ ने गम्भीरता-

पूर्वक कहा, "जिसे मेरे न्याय पर विश्वास नहीं, उसे मेरी मनुष्यता पर विश्वास नहीं; और इसलिए वह आदमी मरता है या जीता है, इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं !" और रामनाथ तिवारी अपनी कोठी को लौट गए।

११

परमेश्वर की तबीअत दोपहर से ही गिरने लगी और रात में उसकी मृत्यु हो गई । गांव भर में परमेश्वर की मृत्यु की खबर फैल गई । सुबह उसकी अर्थी निकली ।

परमेश्वर की अन्त्येष्टि क्रिया करके गांव वाले शाम के समय लौटे । सारे गांव में मुर्दनी छाई हुई थी । मनमोहन भी अर्थी के साथ श्मशान गया था; वहां से लौट कर उसने झगड़ू से कहा, "मिसिरजी ! अब मैं चलूंगा । मैंने इस गांव में बहुत-कुछ देखा ! इतना देखा कि जी भर गया ।"

झगड़ू की आंखों में आंसू आ गए । अपराधी की भांति सर झुका कर उन्होंने कहा, "जाओ मनमोहन ! कौन मुंह लैके हम तुम्हें रोकी । हम सब पसु आन ! परमेसुर दुनिया से चला गा, और रामसिंह ई गांव से नाहीं गए ! न जाने भगवान् की का इच्छा है !"

मनमोहन ने झगड़ू की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया । उसका मुख भयानक रूप से विकृत हो गया था । उसने दरवाजे से निकलते हुए केवल इतना कहा, "मिसिरजी ! भगवान् कुछ नहीं है, भगवान् हमारी अकर्मण्यता से भरी कायरता भर है । अच्छा, मैं उमानाथ और तिवारीजी से मिल कर चला जाऊंगा । तिवारीजी मुझे स्टेशन भिजवाने का प्रबन्ध करा देंगे ! प्रणाम !"

जिस समय मनमोहन बानापुर के महल में पहुँचा, उसने देखा कि तिवारीजी अकेले बैठे कुछ सोच रहे हैं । बाहर रामसिंह तथा इलाके के अन्य कार्यकर्ता खड़े थे । वहां का सारा वातावरण दुश्चिन्ता से भरा था । मनमोहन सीधा कमरे में चला गया।

रामनाथ ने सर उठाया। मनमोहन ने कहा, "तिवारीजी ! मैं जा रहा हूँ। आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।"

रामनाथ ने मनमोहन के मुख पर से आंखें हटा लीं; कुछ देर तक उन्होंने शून्य की ओर देखा, फिर कहा, "मनमोहन ! मुझे इस बात का दुःख है कि यह सब हो गया। मैं नहीं जानता कि आगे क्या होगा, पर मैं इतना अनुभव करता हूँ कि आगे जो कुछ होगा, बहुत सम्भव है, वह इससे भी अधिक बुरा हो, भयानक हो ! लेकिन इसमें मेरा क्या दोष है ?"

रुखाई के साथ मनमोहन ने उत्तर दिया, "इस सम्बन्ध में मैं क्या राय दे सकता हूँ, राजा साहेब ! यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है।

रामनाथ ने मानों मनमोहन के स्वर की रुखाई को अनुभव ही नहीं किया; उन्होंने फिर कहा, "मैं कहता हूँ कि पहले कभी यह सब क्यों नहीं हुआ ? मैं पूछता हूँ कि आज की परिस्थिति की जिम्मेदारी मुझ पर कैसे आ सकती है ? यह इलाका वही है, मैं वही हूँ, मेरे मुलाजिम वही हैं और मेरी नीति वही है--फिर यह सब क्यों ?"

मनमोहन इस बात पर मौन रहा।

रामनाथ स्वयं ही बोल उठे, "हां समय बदल रहा है और समय के साथ दुनिया बदल रही है। लेकिन मैं कहता हूँ कि दुनिया गलत तरीके पर बदल रही है। यह अराजकता, यह एक दूसरे पर अविश्वास, यह दुराग्रह !--इस सबसे हमारा कल्याण नहीं हो सकता--कभी नहीं हो सकता। जहां हिंसा का सवाल है, वहां विजयी वही होगा, जिसके पास बल है, पाशविकता है। इस हिंसा का मुकाबला करने के लिए, यही प्राकृतिक है कि हम भी अपनी हिंसा को पाशविकता की सीमा तक विकसित करें...!" और रामनाथ अपनी बात कहते-कहते रुक गए।

वे उठ खड़े हुए, "तो तुम जा रहे हो ! अच्छा, मेरी कार तुम्हें स्टेशन तक पहुंचा देगी !" यह कहकर रामनाथ ने खिदमतगार को आवाज दी।

"देखो—उमा को बुलाकर कह दो...वह मनमोहन को स्टेशन पहुंचा आवे !" तिवारीजी ने खिदमतगार से कहा।

उमानाथ ने मनमोहन का टिकट खरीदकर उसे गाड़ी पर बिठला दिया। उस समय छः बजे थे। गाड़ी चल दी।

अगले स्टेशन पर मनमोहन गाड़ी से उतर पड़ा। उस समय रात हो गई थी, और गहरा अन्धकार छाया था। रेल की पटरी-पटरी वह बानापुर की तरफ़ वापस लौटा।

जिस समय उसने बानापुर में प्रवेश किया, दस बज चुके थे। गांव में सन्नाटा छाया था। दबे पांव वह मैनेजर रामसिंह के घर पहुंचा।

रामसिंह के घर के सामने दो सिपाहियों का पहरा था। ये दोनों सिपाही आग के सामने बैठे हुए दम लगा रहे थे। उनकी नज़र बचाकर मनमोहन फाटक के अन्दर घुस गया।

बाहर के कमरे में रामसिंह दो सरबराहकारों के साथ बैठे बातें कर रहे थे। मनमोहन बरामदे में दरवाज़े की आड़ में खड़ा होकर इन सरबराहकारों के जाने की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद दोनों सरबराहकार उठ कर चले गए। वे सरबराहकार फाटक के बाहर निकल गए और रामसिंह अन्दर आने को उठ खड़े हुए। उसी समय मनमोहन ने उनके कमरे में प्रवेश किया।

मनमोहन के कमरे में प्रवेश करते ही रामसिंह चौंक उठे। उन्होंने कहा, "आप ! आप यहां कैसे? आप तो आज उन्नाव चले गए थे!"...और एकाएक रामसिंह रुक गए, उनका चेहरा पीला पड़ गया, वह भय से कांप उठे।

उस समय रामसिंह ने देखा कि उनके सामने मनुष्य नहीं खड़ा है, एक महाकुरूप दानव खड़ा है। मनमोहन मुस्करा रहा था और उसके हाथ में पिस्तौल थी। उसने कहा, "रामसिंह ! हम लोगों के विधान में मृत्यु का बदला मृत्यु हुआ करता है। तुमने परमेश्वर की हत्या की है, मैं तुम्हें उसका दण्ड देने आया हूं !" और इसके पहले कि रामसिंह कुछ कहें, या अपनी

सहायता के लिए किसी को पुकारे, मनमोहन ने पिस्तौल का घोड़ा दाब दिया।

पिस्तौल की आवाज होते ही चारों ओर से लोग दौड़ पड़े। इस भगदड़ का लाभ उठाकर मनमोहन पिस्तौल दागता हुआ गांव के बाहर हो गया।

१२

जिस समय रामसिंह की हत्या की खबर तिवारीजी के यहां पहुंची, वे लेटे हुए थे। उन्हें नींद न आई थी, उस समय वे बहुत अधिक उद्विग्न थे। उनका दिल कह रहा था कि जल्द ही कोई भयानक काण्ड होने वाला है, लेकिन उनकी समझ में न आ रहा था कि क्या होगा और कैसे होगा।

खबर पाते ही रामनाथ उठ खड़े हुए। उमानाथ के साथ वे रामसिंह के घर पहुंचे, वहां कुहराम मचा हुआ था। मनमोहन के पिस्तौल की गोली रामसिंह का हृदय पार कर गई थी और गोली लगते उसी क्षण उसके प्राण निकल गए थे। रामनाथ ने आते ही एक हरकारा थाना भेज दिया पुलिस को खबर करने के लिए, इसके बाद उन्होंने मानों अपने ही से कहा, "यह गोली रामसिंह के नहीं मारी गई है, यह गोली मेरे मारी गई है।"

पुलिसवाले आए और तहकीकात शुरू हुई। कोई भी यह नहीं कह सकता था कि रामसिंह की हत्या किसने की। किसी पर शक भी नहीं किया जा सकता था। लेकिन यह स्पष्ट था कि रामसिंह की हत्या की गई, और गांव की जैसी परिस्थिति थी, उसे देखते हुए इस पर आश्चर्य भी न होता था कि रामसिंह की हत्या की गई। रामसिंह का शव चीर-फाड़ के लिए उसी समय उन्नाव भेज दिया गया।

रामसिंह की हत्या की खबर सुबह गांववालों को उस समय मालूम हुई, जिस समय पुलिस ने तहकीकात के लिए गांव में प्रवेश किया। पर गांव में पूरी तरह तहकीकात होने पर भी पुलिस के दारोगा और पण्डित रामनाथ तिवारी किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके। पुलिस के चले जाने के बाद शाम के

समय रामनाथ अपने महल के बरामदे में राज्य के कर्मचारियों से घिरे बैठे थे। कोई कुछ न बोल रहा था, किसी की समझ में कुछ न आ रहा था।

एकाएक रामनाथ उठ खड़े हुए, उन्होंने तन कर कहा, "यह वार रामसिंह पर ही नहीं किया गया, यह वार मुझ पर भी किया गया है, और इस वार का मुझे जवाब देना पड़ेगा। ठाकुर, जगदेवसिंह! क्या किया जाय?"

सरबराहकार जगदेवसिंह रामसिंह के नजदीकी रिश्तेदार होते थे। उन्होंने कहा, "सरकार! सारा फ़िसाद झगड़ू मिसिर ने खड़ा किया है।"

"हो सकता है, लेकिन इससे तो मामला हल नहीं होता!" रामनाथ तिवारी कुछ सोचने लगे! उन्होंने फिर कहा, "सवाल यह है कि किया क्या जाय! क्या तुम्हारा ऐसा खयाल है कि झगड़ू इस हत्या में शामिल हैं, या उन्हें हत्या करनेवाले का पता होगा?"

"मैं तो ऐसा ही समझता हूं, सरकार!"

"तो फिर मुझे झगड़ू से इस पर बातचीत करनी पड़ेगी!" रामनाथ ने एक कदम बढ़ाते हुए कहा, "मैं खुद झगड़ू के यहां चल रहा हूं!"

रामनाथ तिवारी सदलबल झगड़ू के यहां पहुंचे। उस समय झगड़ू के यहां गांव के लोग एकत्रित थे और रामसिंह की हत्या पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे। रामनाथ को देखते ही सब लोग उठ खड़े हुए। झगड़ू ने तख्त पर बिछौना बिछाते हुए कहा, "प्रनाम तिवारीजी! कैसे कष्ट कीन्हेव? पधारो!"

रामनाथ तिवारी बैठे नहीं, खड़े ही खड़े उन्होंने पूछा, "मिसिरजी, मैं आपके यहां यह पूछने आया हूं कि रामसिंह की हत्या किसने की?"

झगड़ू चौंक उठे, "तो का आप का ऐस ख्याल है कि ई हत्या मां हम सामिल हन?"

रामनाथ ने व्यंगात्मक स्वर में कहा, "मैं आशा करता था कि मुझपर पीछे से वार न किया जायगा।"

एकाएक झगड़ू कांप उठे। अचानक ही उन्हें मनमोहन की याद हो

आई, 'निर्बल और सबल की लड़ाई केवल एक तरह सम्भव है, निर्बल सबल पर जब वार करे, पीछे से करे!' और झगड़ू ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे उस समय सोच रहे थे—'क्या मनमोहन ने यह किया है? लेकिन मनमोहन तो कल शाम के समय ही उन्नाव चला गया था, उमानाथ उसे खुद गाड़ी पर चढ़ा आए थे!'

कुछ देर तक झगड़ू के उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद रामनाथ ने कहा, "क्यों मिसिरजी! बोलते क्यों नहीं; रामसिंह की हत्या का बदला मैं जरूर लूंगा। अगर आप उस आदमी का नाम मुझे बतला दें, जिसने यह काण्ड किया है, तो गांव के अन्य लोग मेरे बदले की चक्की से बच जाएंगे!"

"और नहीं तो?" झगड़ू के पास खड़े हुए परमानन्द सुकुल ने पूछा।

रामनाथ ने तेज नजर से परमानन्द सुकुल को देखा, "और नहीं तो मैं सारे गांव को उजाड़ दूंगा, इस गांव को जलवा कर राख कर दूंगा!" उत्तेजित होकर रामनाथ ने कहा।

"और यह सब आप कर के सही सलामत बच जाएंगे और हम नपुंसक की तरह देखते रहेंगे"—मन्नू दुबे ने रामनाथ की आंखों से अपनी आंखें मिलाते हुए कहा।

और उसी समय परमानन्द सुकुल ने कहा, "आपकी क्या हस्ती जो यह सब करें? हम ऐसे निर्बल नहीं हैं, तिवारीजी!"

"मेरी हस्ती देखना चाहते हो तो देख लेना!" और रामनाथ अपने आदमियों के साथ वापस लौट आए!

दूसरे दिन रामनाथ के आदमियों के साथ पुलिस के दारोगा गांव में आए। परमानन्द सुकुल और मन्नू दुबे को बांध कर वे रामनाथ की कोठी पर ले गए। यह बात आंधी की तरह गांव भर में फैल गई! रामनाथ ने चुनौती दे दी थी।

खबर एक गांव से दूसरे गांव में पहुंची, और दूसरे से तीसरे में। आस-

पास के गांवों के आदमी उत्तेजित होकर बानापुर में एकत्रित होने लगे, और करीब दो-तीन घण्टे के बाद ही तीन चार सौ लट्ठ-बन्द आदमी रामनाथ की कोठी की तरफ़ चल पड़े। उस समय झगड़ू ने उन लोगों को शान्त रहने को बहुत कुछ समझाया-बुझाया, लेकिन वहां झगड़ू की बात सुनने को कोई भी तैयार न था। झगड़ू ने देखा कि एक अति भयानक कांड होने वाला है। एकबार रामनाथ को समझाने के लिए झगड़ू वहां से रामनाथ के यहां चले, भीड़ से यह वादा करके कि आध घंटे के अन्दर ही वे मामला तै करके लौट आवेंगे !"

जिस समय झगड़ू रामनाथ के यहां पहुंचे, पुलिस-दारोगा के साथ बैठे हुए रामनाथ गांव में एकाएक उत्पन्न हो जाने वाली परिस्थिति पर बातें कर रहे थे। झगड़ू के पहुंचते ही बातें बन्द हो गईं। दारोगाजी ने झगड़ू से कहा, "कहिए मिसिरजी ! गांववालों के क्या इरादे हैं ?"

झगड़ू ने पुलिस-दारोगा के सवाल का कोई जवाब नहीं दिया, उन्होंने रामनाथ से कहा, "हम आपसे यू प्रार्थना करन आए हैं कि परमानन्द सुकुल और मन्नू दुबे का छोड़ दीन जाय। और फिर यू हमार जिम्मेदारी कि गांव मां कौनो उपद्रव न होई !"

"और अगर न छोड़े गए तो ?" रामनाथ ने पूछा।

झगड़ू रामनाथ के स्वर को जानते थे, उन्होंने कहा, "तिवारीजी ! आप यू हमार व्यक्तिगत प्रार्थना समझो ! हम गांव की तरफ़ से आपका चुनौती देन नाहीं आए हन !"

रामनाथ मुस्करा पड़े, "आपकी प्रार्थना है, मिसिरजी ! आपने मुझे अजीब परिस्थिति में डाल दिया। पर आपकी बात मैं नहीं टालूंगा !" इस बार उन्होंने पुलिस-दारोगा से कहा, "दारोगाजी, उन दोनों आदमियों को आप यहां बुलाइए और उन्हें आगाह करके छोड़ दीजिए !"

दारोगा ने दोनों आदमियों को बुलाया, उनकी हथकड़ियां खोल दी

गईं। रामनाथ ने कहा, "आप लोग जा सकते हैं! अपने छूटने पर आप लोग मिसिरजी को धन्यवाद दें !"

दोनों चले गए, बिना एक शब्द कहे हुए, सर झुकाए ! पर उन दोनों की मुद्रा में कुछ ऐसी बात थी जो वहां बैठे हुए लोगों को अच्छी नहीं लगी।

भीड़ रामनाथ की कोठी से करीब एक मील की दूरी पर खड़ी हुई थी। मन्नू दुबे उस हथियारबन्द भीड़ को देखते ही चिल्ला उठे, "धिक्कार है हम लोगन पर! आज हमार सब मर्दानगी बूड़ गई। हमारा इतना अपमान हुआ, हथकड़ी पहिना कर हम लोगों को पुलिसवाले ले गए और तुम लोग मुर्दा की तरह खड़े रहे। अब यह गांव रहने काबिल नहीं रह गया।"

मन्नू दुबे की इस बात ने आग में घृत का काम किया। कुछ लोगों ने पूछा, "हम लोग मरने-मिटने पर तैयार होकर निकले हैं। बोलो क्या किया जाय?"

अब परमानन्द की बारी थी। उन्होंने पास खड़े हुए एक आदमी की लाठी छीनकर घुमाते हुए कहा, "आज फ़ैसला हो जाना चाहिए। जो अपने को मर्द समझता हो वह आवे हमारे साथ !" और यह कह कर वे रामनाथ की कोठी की तरफ़ घूम पड़े। उत्तेजित भीड़ परमानन्द और मन्नू के पीछे-पीछे चल पड़ी।

भीड़ की आवाज़ सुनकर रामनाथ और अन्य लोग चौंक उठे। भीड़ तेज़ी के साथ बढ़ी आ रही थी। दारोगा ने उठते हुए कहा, "राजा साहेब ! भीतर चलिए ! मालूम होता है यह लोग बलवा करने आ रहे हैं। अपने आदमियों को इकट्ठा कीजिए, मुकाबला करने के लिए !"

पर रामनाथ बैठे ही रहे, "आने दीजिए ! सुनूं भी कि ये लोग क्या कहना चाहते हैं !"

भीड़ उस समय तक सामने आ गई थी। दारोगा जी तेज़ी के साथ कमरे के अन्दर घुस गए और उन्होंने भीतर से दरवाज़ा बन्द कर दिया। झगड़ू ने खड़े होकर कड़े स्वर में कहा, "काहे! का बात है?"

पर झगड़ू की बात मानों किसी ने सुनी ही नहीं; एक मिनट में दोनों चारों तरफ़ से घिर गए। परमानन्द सुकुल ने चिल्लाकर कहा, "लो ! हमें हथकड़ी पहनाने का बदला लो !" और उन्होंने रामनाथ पर लाठी का प्रहार किया।

पर झगड़ू ने यह प्रहार अपने हाथों पर लिया, और उसी समय मन्नू दुबे ने लाठी चलाई। उस समय रामनाथ खड़े हो गए। लाठी उनके सर पर पड़ी और वे गिर पड़े। झगड़ू ने चिल्लाकर कहा, "हत्यारा ! यू का करि रहे हो ?"

लेकिन भीड़ पागल हो गई थी। एक साथ पचास लाठियां उठीं। और उसी समय झगड़ू रामनाथ तिवारी के ऊपर लेट गए। पचासों लाठियां झगड़ू पर पड़ीं।

और एकाएक मार्कण्डेय की आवाज़ आई, "बप्पा ! बप्पा ! यह क्या हो रहा है ?"

मार्कण्डेय की आवाज़ सुनते ही मानों भीड़ का पागलपन गायब हो गया। लाठियां रुक गईं, और मार्कण्डेय दौड़ता हुआ वहां पहुंचा। उस समय लोगों ने देखा कि झगड़ू की आंखें बन्द हैं और उनके सर से खून की धार बह रही है। इस समय तक रियासत के दस आदमी और पुलिस के दस आदमी बन्दूकें लिए हुए वहां आ गए थे।

भीड़ ने देखा कि रामनाथ जिन्दा हैं और उसने झगड़ू के प्राण ले लिये।

चौथा परिच्छेद

१

रेल की पटरी-पटरी मनमोहन रातों-रात पैदल उन्नाव पहुंच गया।

जिस वक्त मनमोहन प्रभानाथ के बंगले पर पहुंचा, प्रभानाथ सो कर उठ चुका था। मनमोहन को देखते ही वह चौंक उठा। आश्चर्य से उसने पूछा, "अरे, इस वक्त तुम यहां कैसे ?"

कुर्सी पर बैठते हुए मनमोहन ने कहा, "सब कुछ बताता हूं, लेकिन जरा ठहर कर। रात भर पैदल चलता हुआ यहां पहुंचा हूं।"

थोड़ी देर में नौकर ने प्रभानाथ को चाय के लिए बुलाया। मनमोहन को साथ लेकर प्रभानाथ चाय पीनेवाले कमरे में पहुंचा। वहां वीणा प्रभानाथ का इंतजार कर रही थी। मनमोहन को देखते ही वह उठ खड़ी हुई, उसने मनमोहन को नमस्कार किया। लेकिन शायद मनमोहन ने न वीणा को देखा, न उसके नमस्कार को देखा; सर झुकाए हुए वह एक खाली कुर्सी पर बैठ गया था। उसने वीणा को उस समय देखा, जब वीणा ने चाय बना कर प्याला उसके सामने रख दिया।

वीणा को देखते ही मनमोहन चौंक कर उठ खड़ा हुआ; नमस्कार करते हुए उसने मुस्कराने का प्रयत्न किया, "क्षमा कीजिएगा, मैंने आप को देखा नहीं था। मैं आपके अस्तित्व को, और आपके ही अस्तित्व को नहीं, स्वयम् अपने अस्तित्व को भूला हुआ था !" इतना कह कर वह फिर कुर्सी पर बैठ गया और उसने एक ठंढी सांस ली।

वीणा की आंखों में कौतूहल चमक उठा। उसने पूछा, "आखिर कौन-सी ऐसी बात हुई जो आप इतने अधिक उद्विग्न हैं ?"

"बात ?" मनमोहन ने जरा हिचकिचाते हुए कहा, "बात...कुछ भी नहीं, और शायद बहुत बड़ी । मैं बानापुर से आ रहा हूं, प्रभानाथ, तुम्हारी रिआसत के मैनेजर को खत्म करके, और उसको खत्म करने के साथ तुम्हारी रिआसत में एक बहुत बड़े खून-खराबे को रोक कर !" और यह कह कर मनमोहन ने बानापुर के संघर्ष का पूरा किस्सा आदि से अन्त तक कह सुनाया ।

इस किस्से को सुनकर प्रभानाथ गम्भीर हो गया । उसने कहा, "मनमोहन ! तुम समझते हो कि तुमने बानापुर के संघर्ष और विद्रोह को खत्म कर दिया है, लेकिन मैं कहता हूं कि तुमने एक ऐसा काम किया है जिसके परिणाम की कल्पना करते ही मैं कांप उठता हूं। इस समय वहां क्या हो रहा होगा, मैं नहीं जानता; लेकिन कुछ भयानक काण्ड हो रहा होगा ! तुम बबुआ को पूरी तरह नहीं जानते !"

चाय पी कर मनमोहन लेट गया । वह जिस समय सोकर उठा, बारह बज गए थे ।

वीणा स्कूल चली गई थी और प्रभानाथ बाहर लान पर आधा धूप में तथा आधा एक पेड़ की छाया में कुर्सी पर बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा था । मनमोहन बाहर निकल आया, वह प्रभानाथ के सामने लान पर ही बैठ गया। उसने पूछा, "कौन सी किताब है ?"

"कार्ल मार्क्स का कैपीटल !"

मनमोहन हँस पड़ा, "तो समाजवादी बनने की धुन तुम पर कैसे सवार हुई ?"

प्रभानाथ मुस्कराया, "समाजवाद ऐसा कुछ बुरा भी नहीं मालूम होता, गोकि मैं समाजवादी बनने की इस समय तो नहीं सोच रहा हूं। यह किताब मझले भइया की है, पढ़ने के लिए और कोई किताब नहीं थी, इसलिए इसी को खोल कर बैठ गया ।" कुछ रुक कर प्रभानाथ ने पूछा, "नींद तो अच्छी तरह आई ?"

"खूब अच्छी तरह ! सारी थकावट मिट गई ! हां प्रभानाथ, एक बात कहनी थी। आज मैं कानपुर जा रहा हूं। मैं समझता हूं कि अज्ञात-प्रवास की अवधि समाप्त कर देनी चाहिए, अब काम करना है।"

प्रभानाथ कुछ बोला नहीं, वह मौन मनमोहन को देख रहा था।

मानों मनमोहन ने प्रभानाथ के किसी भी प्रकार के उत्तर की आशा न की थी, कुछ रुक कर उसने फिर कहा, "छोटी-सी जिन्दगी और भयानक-रूप से अनिश्चित ! इसका प्रत्येक क्षण मूल्यवान् है, प्रभानाथ ! और हमारे सामने काम ही काम है ! तो शाम की गाड़ी से मैं कानपुर जा रहा हूं। परसों सरदार विजयसिंह के मकान पर शाम के वक्त तुम्हें आना है !"

"समझा !" प्रभानाथ ने कहा, "और वीणा को भी साथ लेता आऊं?"

मनमोहन ने कुछ देर तक सोचा, फिर उसने कहा, "जरूरत तो कोई खास नहीं है, लेकिन अगर चाहो तो साथ लेते आना; शायद कुछ निकल ही आवे ! और सब से बड़ी बात यह है कि इससे तुम्हें संतोष होगा !"

२

तीसरे दिन रात को सरदार विजयसिंह के मकान पर लोग एकत्रित हुए। कानपुर की पार्टी के तीस आदमी वहां मौजूद थे और उनके अलावा दो आदमी और थे, जिन्हें प्रभानाथ न पहचानता था। मनमोहन ने बतलाया कि वे दोनों आदमी दिल्ली से आए हैं। वीणा एक कोने में गुम-सुम बैठी थी।

सब लोगों के बैठ जाने के बाद कारंवाई शुरू हुई। विजयसिंह ने बतलाया कि जो दो आदमी दिल्ली से आए हैं, उनका कहना है कि वहां की पार्टी के पास रुपया नहीं है और वहां के कार्यकर्ता विवश तथा अकर्मण्य बैठे हैं। साथ ही कानपुर की पार्टी का रुपया भी धीरे-धीरे खत्म हो रहा है।

इसके बाद निस्तब्धता छा गई। अन्त में मनमोहन ने कहा, "तो फिर क्या हो ?——रुपए का तो इंतजाम करना ही होगा।"

"और रुपया पाना आसान काम नहीं है !" एक आदमी हँस पड़ा, "फिर एक सवाल और उठता है—कितना रुपया चाहिए ?"

"चाहिए तो बहुत ज्यादा ! दिल्ली के लिए, कानपुर के लिए! और बंगाल से अलग रुपए की मांग है । वहां पुलिस की जो सरगर्मी है तथा जिस प्रकार वहां के कुछ लोगों के विश्वासघात के कारण परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, उससे वहां कुछ दिन के लिए काम स्थगित-सा हो रहा है, और वहां के प्रमुख कार्यकर्ताओं को भागना है । महीनों से वे अज्ञात स्थानों में बन्द-से हैं ।"

इसी समय एक आदमी और आया, सब लोग चुप हो गए । आनेवाले ने कहा, "कल रात पैसेंजर गाड़ी से बिंदकी रोड से खजाना जाएगा, फ़तेहपुर !"

"पूरा पता लगा लिया है ?" विजयसिंह ने पूछा ।

"हां, करीब दस हजार रुपया होगा ।"

विजयसिंह का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा, "भगवान् हमारी मदद कर रहा है । कल रात को ही काम करने का अवसर मिल गया ।"

थोड़ी देर तक सब मौन बैठे रहे, सब सोच रहे थे । उस मौन को मनमोहन ने तोड़ा , "हूं, कल रात डाका डालना है !" वह हंस पड़ा, "कल—बिंदकी रोड से गाड़ी चलती है बारह बजे, और फ़तेहपुर पहुंचती है एक बजे । बीच में दो स्टेशन हैं । लेकिन हमें सब से छोटा स्टेशन चाहिए, वह कुरुस्ती कलाँ; वहां सिर्फ़ एक स्टेशन मास्टर है, वही टिकट बाबू है । और मान लो दो चपरासी; तो कुल मिल कर हुए तीन आदमी । इन तीन आदमियों के लिए हमारा एक आदमी काफ़ी है । एक कार पर । एक ड्राइवर के लिए और एक गार्ड के लिए । इन चार के अलावा चार आदमी और चाहिए खजाने के साथ पुलिसवालों के लिए और खजाना ट्रेन से अपनी कार तक पहुंचाने के लिए । इस तरह कुल आठ आदमियों की जरूरत है ।

विजयसिंह ने कहा, "एक मैं हूं !"

और मनमोहन ने उसी समय कहा, "दूसरा मैं हूं।" यह कह कर उसने प्रभानाथ को एक अजीब तरह देखा। और प्रभानाथ भी अनायास ही कह पड़ा, "तीसरा मैं हूं।"

उस समय वीणा उठ खड़ी हुई, "चौथी मैं हूं।"

मनमोहन ने कहा, "मैं अस्वीकार करता हूं। इस काम में स्त्री की कोई आवश्यकता नहीं!"

सब लोगों ने मनमोहन की बात का समर्थन किया।

इसके बाद लाटरी डालकर टिकट निकाले गए—पांच आदमियों का चुनाव इन टिकटों से हुआ। कार्यवाही समाप्त होने के पहले विजयसिंह ने कहा, "कार का प्रबन्ध मैं लूंगा।"

३

दो बजे रात के समय उस स्टेशन पर कोई मुसाफ़िर न था। जिस समय इन डाका डालनेवालों की कार स्टेशन के बाहर रुकी, बिंदकी रोड से आने वाली ट्रेन की रोशनी दूर से दिख रही थी। एक आदमी ने स्टेशन मास्टर और वहां के खलासियों को वश में किया। तब तक गाड़ी स्टेशन पर आकर रुक गई। गाड़ी के रुकते ही विजयसिंह इंजन की तरफ़ झपटा और मनमोहन गार्ड की तरफ़। प्रभानाथ की अध्यक्षता में तीन आदमी उस डब्बे में घुस गए जिसमें खजाना रक्खा था।

प्रभानाथ और उसके एक साथी के हाथ में पिस्तौलें थीं। और इन दोनों को देखते ही पुलिसवालों के हाथ-पैर ढीले पड़ गए। प्रभानाथ और उसका साथी, दोनों पिस्तौलें ताने खड़े रहे और दो आदमियों ने खजाने के सन्दूक कार पर लादने शुरू किये। उसके बाद सब लोग कार की तरफ़ चले, प्रभानाथ और मनमोहन को छोड़ कर। जब सब लोग कार पर बैठ गए, तब विजयसिंह ने सिटी दी। विजयसिंह के सीटी देते ही मनमोहन और प्रभानाथ पिस्तौलें दागते हुए तेजी के साथ कार की तरफ़ बढ़े।

खजाने के साथ बारह पुलिसवाले थे, सशस्त्र । उनकी आंखों के आगे खजाना लुट रहा था, और वे विवश बैठे थे । लेकिन उसी गाड़ी के सेकंड क्लास में एक और आदमी था, जो इस काण्ड को बड़े कौतूहल के साथ देख रहा था । प्रभानाथ और मनमोहन के भागने के साथ ही उसने अपने रिवाल्वर से उन दोनों की तरफ़ फ़ायर किया । गोली प्रभानाथ के बांए हाथवाले पुट्ठे में धँस गई । उसी समय मनमोहन ने घूम कर उस आदमी की तरफ़ गोली छोड़ी । पर वह आदमी उस समय तक गाड़ी से नीचे उतर आया था ।

मनमोहन और प्रभानाथ स्टेशन की इमारत के पास आ गए थे—वे अपनी कार से करीब पचीस कदम के फ़ासिले पर थे । उसी समय उस आदमी ने दूसरी गोली चलाई। इस बार गोली मनमोहन की जांघ में घुस गई । मनमोहन ने फिर उलट कर पिस्तौल चलाई, एक आह के साथ उस आदमी के पास खड़े हुए एक दूसरे आदमी के गिरने का धमाका हुआ।

इस समय तक बारहों पुलिसमैन अपनी राइफ़लें लिये हुए गाड़ी से उतर पड़े, और बारह राइफ़लें एक साथ छूटीं ।

मनमोहन और प्रभानाथ इस समय स्टेशन की इमारत के बाहर हो रहे थे। मनमोहन ने खतरे को देख लिया, उसने प्रभानाथ से कहा, "तुम जाओ, और सब लोग कार पर चल दो ! मैं इस जंगल में कहीं छिप जाऊंगा।

प्रभानाथ ने उसी समय जोर से कहा, "सरदार—तुम चलो । हम लोग कल तक पहुंच जाएंगे ।" और उसके कहने के साथ ही कार चल दी । इधर मनमोहन को सहारा देते हुए प्रभानाथ रात के गहरे अंधकार में विलीन हो गया ।

जिस आदमी ने ये दो गोलियां चलाई थीं, उसका नाम विश्वम्भर-दयाल था, और वह पुलिस डिपार्टमेंट में था । विश्वम्भरदयाल खुफ़िया विभाग का एक बड़ा कर्मचारी था और वह भारत-सरकार से सम्बद्ध था। वह असिस्टेंट सुपरिण्टेण्डेण्ट के पद पर था और वह उस गाड़ी से इलाहाबाद

जा रहा था, जहां दो दिन रुक कर उसे कलकत्ता के लिए चल देना था। कलकत्ता में आतंकवादियों के दल की जड़ खोद निकालने के लिए उसकी नियुक्ति हुई थी।

विश्वम्भरदयाल ने देख लिया था कि दो आदमी जख्मी हो गए हैं और कार बिना उन्हें लिए हुए ही चल पड़ी है। उसने पुलिसवालों को दो टुकड़ी में बांट कर प्रभानाथ और मनमोहन का पीछा करने का हुक्म दिया। एक टुकड़ी के साथ वह था, दूसरी के साथ खजाने के साथवाला हवलदार था।

पेड़ों के झुरमुट में छिपते हुए मनमोहन और प्रभानाथ दोनों चल रहे थे। मनमोहन की जांघ से खून बह रहा था और धीरे-धीरे उसकी जांघ में पीड़ा बढ़ रही थी। थोड़ी दूर तक चलने के बाद पुलिसवालों के पैरों की आवाज धीमी पड़ी। प्रभानाथ ने अपने रूमाल से मनमोहन की जांघ में पट्टी बांध दी। उसी समय उन्हें पुलिस वालों की टार्च का प्रकाश दिखलाई दिया और उनके पैरों की आवाजें बढ़ने लगीं। ऐसा मालूम होता था कि टार्च के प्रकाश में पुलिसवालों को इन दोनों की झलक मिल गई।

प्रभानाथ मनमोहन को हाथ का सहारा देते हुए दूसरी ओर घूम पड़ा; और उन्हें दूसरी ओर भी दूर पर टार्च का प्रकाश दिखलाई दिया। पुलिस वालों की दूसरी टुकड़ी उस ओर थी।

इस समय तक दोनों घनी झाड़ियों के बीच आ गए थे। उनके सामने एक नाला था जो सूखा था, और दोनों उस नाले में उतर गए। अब वे नाले-नाले चलने लगे; किधर? वे स्वयं न जानते थे। करीब दो फ़र्लांग चलने के बाद उन्हें नाले के ऊपर पुल दिखलाई दिया। दोनों उस पुल के नीचे घुस गए।

दूर पर पुलिसवालों के पैरों की आवाजें साफ़ सुनाई पड़ रही थीं; वे जानते थे कि दो जख्मी आदमी कहीं पास में ही हैं और वे दूर नहीं जा सके होंगे। एक ओर से आवाज आई, "कहीं उस पुल के नीचे न छिपे हों!"

"लेकिन पुल के अन्दर कौन जाएगा?" एक ने कहा।

प्रभानाथ ने सुना। उसने मनमोहन से कहा, "वे लोग पुल के अन्दर आने की कोशिश करेंगे चलो, यहां से निकल चला जाय!"

मनमोहन उठ खड़ा हुआ। दो कदम चलने के बाद वह रुक गया, "नहीं प्रभानाथ! मैं नहीं चल सकता! जांघ का दर्द अब बहुत बढ़ गया है। तुम यहां से निकल जाओ; कल मौका पा कर मुझे यहां से उठा ले जाना!" और उसने धीरे से कहा, "अगर मैं जिन्दा रहा!"

उस समय प्रभानाथ ने जबर्दस्ती मनमोहन को उठा कर कंधे पर लाद लिया, और वह पुल के बाहर दूसरी ओर निकल पड़ा। पुलिसवाले सतर्कता के साथ पुल की ओर बढ़ रहे थे। प्रभानाथ सारा बल लगाकर तेज़ी के साथ आगे बढ़ रहा था। दो फ़र्लांग तक चलने के बाद वह एक घने पेड़ की छाया में बैठ गया। मनमोहन ने कहा, "प्रभानाथ! हम लोग कहां हैं?"

प्रभानाथ ने एक ठंडी सांस ली, "मैं कह नहीं सकता!"

उसी समय उन्हें दूर पर पैरों की आहट सुनाई दी; इस समय तक पुलिस वालों के साथ कुछ गांव वाले भी एकत्रित हो गए थे, और उस प्रदेश की छान-बीन सरगर्मी के साथ हो रही थी।

प्रभानाथ ने कहा, "वे लोग इधर ही आ रहे हैं! इन बेईमानों से यह भी नहीं हुआ कि ज़रा आराम कर लेने देते!" और वह हँस पड़ा। उठते हुए उसने मनमोहन को हाथ का सहारा दिया, "चलो मनमोहन!"

"नहीं प्रभानाथ!" मनमोहन ने कहा, "तुम जाओ, और उन्हें आने दो। अपनी पिस्तौल भी तुम मुझे दे दो—बस! मैं इन लोगों को समझ लूंगा!"

"यह नहीं हो सकता। मैं इस तरह तुम्हें न मरने दूंगा!" प्रभानाथ ने दृढ़ता के साथ कहा।

"मुझे बचाने में हम दोनों को मरना होगा!" मनमोहन ने एक ठंडी सांस ली।

लेकिन प्रभानाथ ने मानों मनमोहन की बात सुनी ही नहीं। उसने मनमोहन को उठा लिया, और वह तेजी के साथ चल पड़ा। चारों ओर भयानक अंधकार था, और प्रभानाथ खेतों को पार करता हुआ चला जा रहा था।

"कहां चल रहे हैं ?" मनमोहन ने पूछा।

"कह नहीं सकता ! केवल इतना जानता हूं कि चल रहे हैं!"

चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया था। कभी-कभी दूर से पैरों की आहट आ जाती थी, जिससे यह मालूम होता था कि पीछा करनेवाले थके नहीं, न उन्होंने पीछा करने का इरादा ही छोड़ा है।

मनमोहन सोच रहा था, एक ठंडी सांस भर कर उसने कहा, "ठीक कहते हो, प्रभानाथ ! हम सब केवल इतना ही जानते हैं कि हम चल रहे हैं, और यही हमारी मुसीबत है। यही मुसीबत रही है, यही मुसीबत रहेगी। अगर हम इतना जान सकते कि हम कहां चल रहे हैं तो अधिक अच्छा होता। लेकिन......लेकिन शायद यह सम्भव नहीं है।"

प्रभानाथ मौन था, पता नहीं वह मनमोहन की बात सुन भी रहा था। पर यह साफ़ मालूम हो रहा था कि प्रभानाथ थक गया है। वह हांफ रहा था। मनमोहन ने काफ़ी देर तक प्रभानाथ के बोलने की प्रतीक्षा करके कहा, "नहीं मुसीबत तब हल होगी, जब हम यह जान लें कि हम कहां चल रहे हैं। इस बिना लक्ष्य के चलते रहने से मैं ऊब गया हूं, प्रभानाथ!"

लेकिन प्रभानाथ ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। प्रभानाथ के लिए यह समय बात करने का नहीं था—उसके सामने सवाल यह था कि किस तरह सही-सलामत बच-निकला जाय।

मनमोहन ने कुछ रुक कर कहा, "प्रभानाथ ! प्यास लगी है !"

"देखो—आगे चल कर कोई गांव मिल जाय !"

"नहीं, प्रभा ! बुरी तरह प्यासा हूं ! मेरा गला सूख रहा है। तुम

गए हो—मैं यह साफ़ देख रहा हूं ! मुझे तुम यहीं लिटा दो, देखो पास में कोई नहर या तालाब हो।"

प्रभानाथ वास्तव में थक गया था। उसने मनमोहन को ज़मीन पर लिटा दिया और फिर वह पानी की तलाश में चल दिया।

प्रभानाथ करीब बीस-पचीस कदम गया होगा कि उसे पिस्तौल की आवाज़ सुनाई दी। यह पिस्तौल की आवाज़ वहां से आई थी, जहां वह मनमोहन को लिटा आया था। प्रभानाथ दौड़ा, उसने देखा कि मनमोहन चित पड़ा है, उसका एक हाथ उसके मत्थे पर है और उसके हाथ में पिस्तौल है ! प्रभानाथ ने मनमोहन को देखते ही कहा, "यह क्या कर डाला, मनमोहन ?"

मनमोहन का चेहरा एक भयानक पीड़ा से ऐंठ रहा था। उसने अपनी पीड़ा को दबाने के लिए मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "प्रभा ! दो आदमियों के मरने की अपेक्षा एक का मरना अधिक अच्छा है। अब तुम जाओ—अपने घर ! और मैं जा रहा हूं...हम दोनों के चलने का लक्ष्य तो मिल गया। अभी तक हम लक्ष्यहीन चलते रहे थे।

प्रभानाथ खड़ा था, निस्तब्ध और विमूढ़। मनमोहन ने फिर कहा, "प्रभा, ज़रा मेरे पास बैठ जाओ—हां, ठीक ! प्रभा, अन्तिम समय एक बात मैं तुमसे कहूंगा—तुम इस क्रान्तिकारी दल को छोड़ दो। यह बड़ा गलत रास्ता है, यह रास्ता उन लोगों के लिए है, जो निराश हो चुके हैं !" मनमोहन छट-पटा रहा था। उसने फिर कहा, "मैं जा रहा हूं, प्रभा ! मेरी तुम पर ममता हो गई है—क्यों ? मैं नहीं कह सकता। लेकिन एक बात की खुशी है—आज मैंने तुममें वह मानवता देखी, जिस पर से मैं विश्वास खो चुका था। मैंने देखा कि मुझे बचाने के लिए तुम अपनी जान खतरे में डाल रहे हो ! उफ़, प्रभा ! तुम नहीं जानते कि मैंने कितना बर्दाश्त किया है ! कितनी ज़ोर की प्यास लगी है—अन्तिम समय यदि पानी की एक बूंद मिल सकती !"

"मैं पानी लिये आता हूं !" प्रभानाथ ने कहा।

"नहीं ! यह भी बर्दाश्त कर सकता हूं। कुछ क्षण—बस इतनी ही देर

तो बर्दाश्त करना है, जब एक लम्बी जिन्दगी मैंने बर्दाश्त करने में बिता दी! अच्छा, प्रभा! तुम मुझे बचन दो कि तुम इस क्रान्ति के मार्ग से हट जाओगे—मुझे बचन दो!"

"मनमोहन!...."

"मैं मर रहा हूं, प्रभा, और मैं कहता हूं—अपने सारे अनुभवों को लेकर कहता हूं कि यह गलत मार्ग है। मुझे बचन दो!..." मनमोहन ने प्रभा को एक बड़ी करुण दृष्टि से देखा।

प्रभानाथ ने कहा, "मैं बचन देता हूं!"

"ठीक, प्रभा! अब मैं शान्तिपूर्वक मर सकता हूं—म—र—र—हा—हूं।" और प्रभानाथ ने देखा कि मनमोहन का सर लटक गया, उसके हाथ एकाएक ऐंठ गए। लेकिन उनके होठों पर एक हलकी सी मुस्कान है।

४

मनमोहन के सिरहाने बैठ कर प्रभानाथ ने भगवान् से मनमोहन की आत्मा को शान्ति देने की प्रार्थना की; इसके बाद वह वहां से चल पड़ा। उस समय उसे दिशा-ज्ञान न था, उसके सर में चक्कर आ रहा था। चलते-चलते वह पक्की सड़क पर पहुंच गया और उसने फ़तेहपुर की राह ली। जिस समय वह श्यामनाथ के बंगले में पहुंचा, सुबह हो रही थी। पहरेदार ने प्रभानाथ को सलाम किया! चुपचाप प्रभानाथ अपने कमरे में चला गया। कमरे में पहुंच कर उसने कपड़े बदले, रातवाले कपड़ों को उसने जला दिया। पर उस समय उसके हाथ में असह्य पीड़ा हो रही थी।

जिस समय प्रभानाथ मकान में पहुंचा था, श्यामनाथ वहां न थे। रात में ही उन्हें ट्रेन की डकैती की खबर मिल गई थी और वे तहकीकात को निकल पड़े थे। प्रभानाथ अपने कमरे में पड़ा छटपटा रहा था—उसका हाथ सूज आया था। गोली हाथ के अन्दर रह गई थी। रात भर वह जागता रहा

था—उस समय वह बुरी तरह थका हुआ था। लेकिन उसे नींद न आ रही थी।

करीब दो घंटे के बाद उसे श्यामनाथ की आवाज़ सुनाई दी—ड्राइंग-रूम में से। श्यामनाथ कह रहे थे, "जहां तक मैं कह सकता हूं, फ़तेहपुर में कोई भी क्रान्तिकारी नहीं है। वह लोग कानपुर के रहे होंगे—कानपुर में इन क्रान्तिकारियों का एक बहुत बड़ा अड्डा है भी। इस तरह की वारदात मेरे इलाके में पहली है।"

और इसके उत्तर में एक दूसरी आवाज़ ने कहा, "मेरा भी ऐसा ही खयाल है। लेकिन सवाल यह है कि वह दूसरा आदमी गायब कहां हो गया? जहां तक मैं समझता हूं, वह आदमी भी ज़ख्मी हो गया है; और वह उस स्टेशन से बहुत दूर नहीं गया होगा, क्योंकि किसी ट्रेन का समय भी नहीं है।"

दूसरे आदमी की आवाज़ सुन कर प्रभानाथ चौंक उठा। यह दूसरा आदमी कौन है? क्या यह वही आदमी तो नहीं है, जिसने रात में गोली चलाकर उसे और मनमोहन को ज़ख्मी किया था?

श्यामनाथ ने फिर कहा, "लेकिन यह आदमी कौन है जो मरा हुआ पाया गया है। उसके पास कोई ऐसी चीज़ नहीं मिली, जिससे उसका पता लगाया जा सके। सिर्फ़ उसके पैरों में बंधा हुआ एक रूमाल और उस रूमाल पर एक अक्षर है—पी। इस पी के क्या माने हैं? परमेश्वरी, पूरन, प्रद्योत—न जाने कितने नाम हैं।"

"प्रभाकर!" दूसरी आवाज़ ने कहा।

"अरे हां, प्रभाकर! क्या सचमुच वह प्रभाकर ही है? यकीन तो नहीं होता!"

दूसरी आवाज़ ने कहा, "मैं जानता हूं कि वह प्रभाकर है। प्रभाकर का फ़ोटो मेरे पास है। मैं परेशान था, इस आदमी से। न जाने कितनी कोशिशें की गईं, इस आदमी को पकड़ने की; लेकिन गज़ब का फ़ितरती आदमी

था। सवाल मेरे सामने यह नहीं है कि वह लाश प्रभाकर की है या किसी दूसरे आदमी की; सवाल मेरे सामने यह है कि क्या यह रूमाल उसी आदमी का है ? जहां तक मैं जानता हूं, प्रभाकर के रूमाल पर 'पी' अक्षर न होना चाहिए। अब यह सवाल उठता है कि क्या वह रूमाल उसके साथी का है ?"

प्रभानाथ यह सुन कर चौंक उठा। उसे याद हो आया कि उसने अपना रूमाल मनमोहन के ज़ख्म पर बांध दिया था। इस बात से वह बहुत अधिक चिन्तित हो उठा। यह दूसरा आदमी कौन है, क्या है, कहां का है ? रात में वह गोली चलानेवाले की शक्ल न देख सका था। वह उठा, दरवाज़े की संास से उसने देखा—एक दुबला-सा क्लीन-शेव आदमी बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था। उस आदमी की उम्र कोई तीस साल की होगी, मझोला कद; सांवला रंग और उसके मुख पर एक प्रकार की कठोरता।

नौकर ने चाय की ट्रे उन दोनों आदमियों के सामने रख दी। प्रभानाथ फिर आकर पलंग पर लेट गया।

चाय पी चुकने के बाद श्यामनाथ ने कहा, "मिस्टर विश्वम्भरदयाल ! आप थोड़ा-सा आराम कर लें—रात भर की दौड़-धूप के बाद कुछ अराम की ज़रूरत होगी ही।" यह कहकर उन्होंने प्रभानाथ के कमरे की तरफ़ इशारा किया, "उस कमरे में चले जाइए, मेरे लड़के का है। वह आजकल उन्नाव गया है। बिस्तर बिछा हुआ है—आराम से सोइए !"

मिस्टर विश्वम्भरदयाल कमरे में प्रवेश करते ही चौंक उठे—उनके सामने प्रभानाथ खड़ा था।

५

दोनों ने एक दूसरे को ध्यान से देखा, थोड़ी देर तक दोनों मौन खड़े रहे। इसके बाद प्रभानाथ ने मुस्कराते हुए कहा, "काका जी को यह पता नहीं कि मैं रात में आ गया था, इसी से उन्होंने आपको मेरे कमरे में भेजने की गलती की। चलिए, मैं आपको दूसरे कमरे में पहुंचा दूं !"

एकाएक विश्वम्भरदयाल की गम्भीरता जाती रही, वे खिलखिला कर हंस दिए, "आप रात को आए और आपके काकाजी को इसका पता तक नहीं ! वाकई, बड़ी मजेदार गलती रही मिस्टर......"

"प्रभानाथ ! मेरा नाम प्रभानाथ है ! जी हां, गलती मजेदार हुई..." और प्रभानाथ चलने के लिए घूम पड़ा।

विश्वम्भरदयाल प्रभानाथ के साथ दूसरे कमरे में पहुंचे, उन्हें कमरे में छोड़ कर प्रभानाथ लौट आया ।

विश्वम्भरदयाल से मिलकर प्रभानाथ के मन में एक अजीब तरह की हलचल पैदा हो गई । वह आदमी भयानक था—प्रभानाथ उसके चेहरे को देखते ही समझ गया था । छोटी-छोटी, तेज और पैनी निगाह जो आदमी के हृदय तक को चीर देने का प्रयत्न करती हों, मुख पर एक अजीब तरह की कठोरता से भरी दृढ़ता । प्रभानाथ सीधा श्यामनाथ के कमरे में पहुंचा । बड़ी मुश्किल से वह अपने दर्द को बर्दाश्त कर रहा था। प्रभानाथ को देखते ही श्यामनाथ उठ खड़े हुए, "अरे प्रभा ! तुम कब आए ?"

"सुबह !" और प्रभानाथ कराह उठा ।

"अरे !—तुम्हें क्या हुआ ?" श्यामनाथ ने प्रभानाथ की तरफ़ बढ़ते हुए कहा, "सुबह तो कोई गाड़ी नहीं आती !..." और श्यामनाथ कहते-कहते रुक गए । उन्होंने देखा कि प्रभानाथ का चेहरा पीला पड़ गया है, उसका हाथ सूज गया है और वह दर्द से छटपटा रहा है ।

प्रभानाथ ने कहा, "इसमें गोली धंस गई है, काकाजी !" और वह दर्द से फिर कराह उठा ।

एकाएक श्यामनाथ सर से पैर तक सिहर उठे, "तो क्या—क्या वह रूमाल तुम्हारा था ?"

"हां !" प्रभानाथ ने एक ठंढी सांस ली ।

"तुम्हें यहां आते किसी ने देखा तो नहीं ?"

"सिर्फ़ चौकीदार ने देखा है—और...वह आपके मेहमान—वे मुझे देख गए हैं ! काका बड़ा दर्द है !"

श्यामनाथ हत-बुद्धि से खड़े थे, उनको इस सब पर यकीन हो रहा था। लेकिन उनके सामने खड़ा हुआ उनका लड़का दर्द से कराह रहा था, और उन्हें कुछ करना था। कुछ देर तक मौन रह कर उन्होंने प्रभानाथ की तरफ़ देखा। प्रभानाथ के चेहरे पर असह्य पीड़ा के भाव अंकित थे, श्यामनाथ को ऐसा लगा, मानों प्रभानाथ गिर पड़ेगा। बढ़कर उन्होंने प्रभानाथ को सँभाला, उसे कुर्सी पर बिठलाते हुए उन्होंने कहा, "चलो, तुम्हें डाक्टर के यहां ले चलता हूं !..."

और यह कहते-कहते वे रुक गए। अपनी बात के खोखलेपन से वे स्वयम् ही चौंक उठे—"नहीं तुम्हें फ़तेहपुर से बाहर जाकर इलाज कराना होगा। बाहर जाकर। कानपुर ?—नहीं, वहां खतरा है। हां, इलाहाबाद ! मैं डाक्टर अवस्थी को चिट्ठी लिखे देता हूं, उनके यहां चले जाओ। सब कुछ उन्हें बतला देना !"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, उसकी आंखें बन्द थीं।

श्यामनाथ ने स्वयं सुराही से गिलास में ढाल कर पानी प्रभानाथ को पिलाया, प्रभानाथ ने आंखें खोल दीं। श्यामनाथ ने कहा, "क्या तुम अकेले इलाहाबाद जा सकते हो ? मेरा अभी यहां से चल देना ठीक न होगा।"

एक क्षीण मुस्कराहट के साथ प्रभानाथ ने कहा, "मैं अकेला जाऊंगा !"

"तो तुम तैयार हो जाओ, एक्सप्रेस आती ही होगी।"

६

कमरे से प्रभानाथ के जाने के बाद विश्वम्भरदयाल सोए नहीं, प्रभानाथ को देख कर उन्हें ऐसा लगा, मानों उन्होंने कहीं उसे देखा है। विश्वम्भरदयाल

बहुत देर तक सोचते रहे कि कहां उन्होंने इस युवक को देखा है, और एकाएक उन्हें रातवाली घटना स्मरण हो गई। ऐसा ही लम्बा और सुडौल वह आदमी था जो मरनेवाले के साथ था। और वह आदमी एकाएक गायब हो गया था।

विश्वम्भरदयाल ने सोचना आरम्भ किया, "यह नवयुवक रात में आया, इसके पिता को इसके आने का पता नहीं। तो क्या वह नवयुवक सच बोला? और फिर उस युवक का चेहरा पीला था, उसकी आंखें लाल थीं—मानों वह बुरी तरह थका हुआ था। तो क्या यही तो वह आदमी न था, जो गायब हो गया था! लेकिन यह नवयुवक—यह सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस पण्डित श्यामनाथ तिवारी का लड़का—यह क्रान्तिकारी दल में कैसे होगा?"

विश्वम्भरदयाल उठ बैठे—वे बरामदे में टहलने लगे। सामने फाटक पर पुलिस का कांस्टेबिल बैठा था। उसको बुला कर विश्वम्भरदयाल ने पूछा, "यह तुम्हारे छोटे बाबू सुबह जिस वक्त आए, उस वक्त क्या ड्यूटी पर तुम्हीं थे?"

"जी हां," कांस्टेबिल शिवसिंह ने उत्तर दिया।

विश्वम्भरदयाल का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। तो वह युवक झूठ बोला—वह रात में नहीं, बल्कि सुबह आया था।

"कितने बजे आए थे?" विश्वम्भरदयाल ने फिर पूछा।

प्रभानाथ की बाबत इस जिरह से शिवसिंह के कान खड़े हुए। उसको ऐसा लगा कि दाल में कुछ काला है; वह सतर्क हो गया, "ठीक वक्त तो मुझे याद नहीं, शायद छः या सात बजे रहे होंगे।"

"उनके साथ कुछ असबाब वगैरह था?" विश्वम्भरदयाल ने फिर सवाल किया।

"यह तो मैंने गौर नहीं किया!" शिवसिंह विश्वम्भरदयाल की बात को टाल गया।

विश्वम्भर दयाल समझ गए कि अब उन्हें शिवसिंह से ठीक उत्तर की आशा नहीं करनी चाहिए ! लौट कर वे फिर कमरे में लेट गए। उनके हृदय में एक तरह की प्रसन्नता भर गई थी ! मामले का पता इतनी आसानी से लग सकेगा, इसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। जिस मुलजिम की तलाश में हैं वह उसी घर में है---लेकिन सबूत ? और सबूत पाने के पहले सब से बड़ी बात यह है कि वह मुलजिम सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस का लड़का है।

प्रभानाथ श्यामनाथ का लड़का है---और श्यामनाथ के खिलाफ़ सबूत पाना कठिन है। लेकिन असम्भव नहीं है---विश्वम्भरदयाल यह जानते थे। लेकिन यही कब निश्चित था कि प्रभानाथ जख्मी है, और प्रभानाथ वास्तव में क्रान्तिकारी दल में शामिल था। मानों प्रभानाथ रात में ही आया हो और सुबह के वक्त वह टहलने चला गया हो। जब वह टहल कर वापस आ रहा हो, उस समय उसे शिवसिंह ने देखा हो !

विश्वम्भरदयाल एक अजीब उलझन में थे; लेकिन प्रत्येक क्षण उनके मन में यह धारणा जमती जा रही थी कि प्रभानाथ ही मुलजिम है और प्रभानाथ निश्चित-रूप से जख्मी है। उस सब का पता पहरेवाले सिपाही से लग सकता है, पहरे वाला सिपाही ही यह बतला सकता है कि प्रभानाथ सुबह जब आया तब उसके कपड़े अस्त-व्यस्त थे।

विश्वम्भरदयाल उठ खड़े हुए, उन्हें कुछ करना ही होगा। 'असम्भव' नाम की चीज पर उन्होंने कभी विश्वास नहीं किया था। वे अनुभव कर रहे थे कि अनायास ही उनके हाथ में एक ऐसा सूत्र आ गया, जिसका मिलना बहुत अधिक कठिन होता। और एक बार सूत्र हाथ में आ जाने के बाद उन्हें पूरी कारंवाई करनी ही थी।

विश्वम्भरदयाल रात भर सोए न थे, और कुछ देर पहले तक उन्हें जोर की नींद आ रही थी; लेकिन नींद अब उनकी आंखों से गायब हो चुकी थी। वे बरामदे में आए---वहां श्यामनाथ बैठे हुए थे और प्रभानाथ की

प्रतीक्षा कर रहे थे। विश्वम्भरदयाल को देखते ही श्यामनाथ ने कहा, "क्यों? क्या नींद नहीं आ रही?"

"नहीं!" विश्वम्भरदयाल ने उत्तर दिया। वह श्यामनाथ के सामने बैठ गए, कुछ रुककर उन्होंने कहा, "जो काम हाथ में लिया है, बिना उसे पूरा किए अब मुझे नींद-आराम सब हराम। आप आफ़िस चल रहे हैं न!"

"हां!" श्यामनाथ ने उत्तर दिया, "लेकिन अभी एक मुआइने में जाना है—वहां करीब आध घण्टे का काम है; उसके बाद में आऊंगा। आप चलें!" और यह कह कर ड्राइवर से कार मंगवाई।

विश्वम्भरदयाल श्यामनाथ को मौका न देना चाहते थे कि वह प्रभानाथ से मिल कर उसे बचाने की कोई कार्रवाई कर सके। उनका ऐसा ख़याल था कि प्रभानाथ अभी श्यामनाथ से नहीं मिला और श्यामनाथ को प्रभानाथ के सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं मालूम। लेकिन जब विश्वम्भर दयाल को कार पर बिठला कर श्यामनाथ ने ड्राइवर से कहा कि वह कार वापस लावे और वे स्वयम् कार पर नहीं बैठे, तब विश्वम्भरदयाल को चिन्ता हुई। कहा, "चलिए, वहीं से चले जाइएगा।"

विश्वम्भरदयाल के इस रुख से श्यामनाथ को बुरा लगा, और शायद दूसरे मौके पर वह अपनी बात पर अड़ भी जाते; पर इस समय मामला ही दूसरा था; उन्होंने कार पर बैठते हुए कहा, "चलिए, अच्छी बात है!"

श्यामनाथ के साथ चलने से विश्वम्भरदयाल एक प्रकार से निश्चिन्त हो गए। पुलिस आफ़िस में पहुंच कर श्यामनाथ ने विश्वम्भरदयाल को सब सुविधाएं देने का आदेश दिया और फिर वे उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा, "एक घण्टे में काम ख़त्म हो जाएगा—आप मेरा इंतज़ार कीजिएगा।"

श्यामनाथ के चले जाने के बाद विश्वम्भरदयाल ने सब इंसपेक्टर माताप्रसाद को बुलाया। सब इंसपेक्टर माताप्रसाद मोटे से अधेड़ आदमी थे, सुलझे हुए दिमाग के। विश्वम्भरदयाल ने कहा, "माताप्रसाद साहेब, मेरा ऐसा ख़याल है कि आप कायस्थ हैं!"

"हां हुजूर !" माताप्रसाद ने अदब के साथ उत्तर दिया।

"और मैं भी कायस्थ हूं !" विश्वम्भरदयाल ने कहा, "और इस पर आप मेरे बुज़ुर्ग हैं ! इसलिए मैं आपको भाई साहेब कहूंगा !"

"मेहरबानी है हुजूर की—वरना ओहदे में, हैसियत में तो ख़ाकसार हुजूर का गुलाम है !"

"तो भाई साहेब ! बात यह है कि कप्तान साहेब के यहां जो सिपाही आज सुबह पहरे पर था, क्या आप उसके नाम व पता का पता लगा सकते हैं ?"

"क्या बात है ?" माताप्रसाद ने पूछा।

"पहले आप बतलाइए कि क्या आप उसे जानते हैं और उस पर अपना असर डाल सकते हैं, पीछे मैं आपसे सब कुछ बतलाऊँगा !"

माताप्रसाद चक्कर में पड़ गए। जिस ढंग से विश्वम्भरदयाल बातें कर रहे थे, वह ढंग अच्छा न था। उस बात में कहीं न कहीं कोई कुरूपता अवश्य थी। उसने ज़रा बच कर कहा, "जो...उसका पता लगाना होगा।"

माताप्रसाद के इस उत्तर से विश्वम्भरदयाल समझ गए कि उन्हें माताप्रसाद को कुछ और दम-दिलासा देना होगा। उन्होंने माताप्रसाद को गौर से देखा, फिर उनको पीठ पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "मैंने आपको अपना भाई साहेब कह दिया है और इसलिए मैं आप से कोई बात छिपाऊँगा नहीं। मामला यह है कि कल रात की डकैती के सिलसिले में मेरा शक कप्तान साहेब के साहेबजादे पर है, और मेरा ख़याल है कि वह वही क्रान्तिकारी है जो गोली खा कर लापता हो गया था। आप शायद मेरे शक की वजह भी जानना चाहेंगे। तो वजह यह है कि साहबज़ादे आज सुबह तशरीफ़ लाए—बिना किसी असबाब के। मैंने उनको सुबह कप्तान साहेब के बँगले पर देखा—चेहरा ज़र्द था और आंखें सुर्ख़ थीं। यह साफ़ मालूम होता था कि वे रात भर सोए नहीं हैं। इसके अलावा सुबह के वक्त कोई

गाड़ी भी नहीं आती। और सब से बड़ी बात तो यह है कि श्यामनाथ साहेब को भी अपने साहबजादे के आने का कोई इल्म न था।"

माताप्रसाद सन्नाटे में आ गए। कुछ देर तक तो उनके मुंह से बोल ही न निकला, फिर सँभाल कर उन्होंने कहा, "यह तो बुरी बात है! कप्तान साहेब के लड़के के खिलाफ़......" और वे कहते-कहते रुक गए।

विश्वम्भरदयाल ने कहा, "बुरी बात तो जरूर है, लेकिन जो मेरा फ़र्ज़ है, जो आपका फ़र्ज़ है, जो हरएक पुलिस वाले का फ़र्ज़ है—यानी अमनो-आमान कायम रखना और मुजरिम को सजा दिलाना—उसे तो अदा करना ही पड़ेगा। मैं जानता हूं कि पण्डित श्यामनाथ साहेब निहायत ही नेक व शरीफ़ आदमी हैं, मैं जानता हूं कि उनका मातहत उनके इखलाक व उनकी नेकी का गुलाम है; लेकिन किया क्या जाय, भाई साहेब—यह मजबूरी है।"

माताप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया, वे सोच रहे थे।

विश्वम्भरदयाल को शायद माताप्रसाद के अन्तर्द्वन्द्व का पता था। उन्होंने फिर कहा, "भाई साहेब—हम पुलिसवाले दया और मुहब्बत के वास्ते नहीं बने हैं—हमें तो अपना फ़र्ज़ अदा करना चाहिए। मैं आपको अपना भाई साहेब मानता हूं और इसलिए मैं आपसे इतना और कह दूं कि ऐसे मौके बेर-बेर नहीं आते। इस मौके का फ़ायदा उठाइए—और इसमें मेरी ही नहीं बल्कि आपकी भी बहुत बड़ी तरक्की होगी।"

हिचकिचाते हुए माताप्रसाद ने कहा, "फिर क्या करना होगा?"

"अकेले उस लड़के का जख्मी होना पूरा सबूत नहीं है—यह भी साबित करना होगा कि वह अलस्सुबह बाहर से आया बिना किसी असबाब के—पैदल। वह थका हुआ था, उसके कपड़े मैले थे व कपड़ों पर खून के दाग थे—वगैरह—वगैरह। और इसके लिए पण्डित श्यामनाथ के बँगले पर जो सिपाही सुबह के वक्त पहरे पर था, उसकी शहादत की जरूरत पड़ेगी। मुझसे वह सही-सही बात न बतलावेगा। आपकी मदद की जरूरत होगी!"

"मैं आपकी मदद करूँगा!" माताप्रसाद ने कहा।

७

शिवसिंह का बयान ले लिया गया, और वह बयान इस प्रकार था, "सुबह करीब सात बजे प्रभानाथ बंगले में दाखिल हुए। उनके कपड़े फटे हुए थे और कपड़ों पर ख़ून के दाग थे। उस वक्त प्रभानाथ के पैर डगमगा रहे थे; ऐसा मालूम होता था कि पैदल एक लम्बा रास्ता तै किए हुए आ रहे हैं, और बहुत ही थके हुए हैं। उनके साथ कोई सामान न था। इधर कई दिनों से प्रभानाथ फ़तेहपुर के बाहर गए थे। जब वे गए थे तो अपना सामान ले गए थे और फ़तेहपुर से वह अपनी कार पर गए थे। प्रभानाथ के इस हालत में होने से मुझे ताज्जुब तो जरूर हुआ, लेकिन चूंकि वे कप्तान साहेब के साहेबजादे हैं, इसलिए मुझे उनसे किसी भी तरह की बातचीत करने की या पूछताछ करने की कोई हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने भी मुझसे कोई बात नहीं की, न उन्होंने मुझसे किसी की बाबत कुछ दरियाफ्त किया। सीधे वे अपने कमरे में चले गए।"

बयान देकर शिवसिंह चला गया। थोड़ी देर बाद श्यामनाथ लौटे, उस समय विश्वम्भरदयाल और माताप्रसाद बैठे हुए परामर्श कर रहे थे कि आगे क्या कारंवाई की जाय। श्यामनाथ के आने पर विश्वम्भरदयाल ने कहा, "मिस्टर श्यामनाथ! मुझे बड़ी नींद लग रही है—कुछ देर आराम करना चाहता हूं!"

"चलिए बंगले पर; आप बेकार ही यहां चले आए। सो लेते तो अच्छा होता। कहिए कुछ काम-काज हुआ?"

उठते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा, "हुआ तो, लेकिन नहीं के बराबर है। हां, इस तहकीकात में मैं मिस्टर माताप्रसाद को अपने साथ लेना चाहता हूं, आपको इसमें कोई एतराज़ तो नहीं है?"

"भला मुझे इसमें क्या एतराज़ हो सकता है—आप बड़ी ख़ुशी से मिस्टर माताप्रसाद को ले सकते हैं?" चलते हुए श्यामनाथ ने कहा।

"तो मिस्टर माताप्रसाद आप भी मेरे साथ बंगले पर चलिए, वहीं बातचीत होगी !" और विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद को अपने साथ ले लिया।

तीनों आदमी श्यामनाथ के बंगले पहुंचे। ड्राइंग-रूम में बैठ कर विश्वम्भरदयाल ने श्यामनाथ से कहा, "आपके साहबजादे क्या अभी तक सो रहे हैं? दिखलाई नहीं दिए !"

श्यामनाथ ने अपने को सँभालते हुए उत्तर दिया, "वह तो यहां नहीं है; मैंने तो शायद आपसे सुबह ही कहा था कि वह बाहर गया है।"

"लेकिन सुबह के वक्त आपके साहबजादे अपने कमरे में मौजूद थे, हम लोगों के आने के चन्द घण्टे पहले आए थे और उस वक्त आराम कर रहे थे।"

"ताज्जुब की बात है। मुझे उसके आने की खबर ही नहीं मिली !" यह कहते हुए श्यामनाथ ने प्रभानाथ के कमरे का दरवाजा खोल दिया। कमरा खाली था। श्यामनाथ ने मानों अपने आप ही कहा, "कहीं गया ?" और उन्होंने अपने नौकर स्वामी को आवाज दी।

"प्रभा कहां है ?" श्यामनाथ ने स्वामी से पूछा।

"छोटे सरकार ! क्या छोटे सरकार उन्नाव से लौट आए ?" स्वामी ने आश्चर्य से पूछा।

स्वामी को विदा करके श्यामनाथ ने कहा, "बड़े ताज्जुब की बात है कि उसके आने की खबर न मुझे है न इस घर के नौकरों को है !"

विश्वम्भरदयाल के मत्थे पर बल पड़ गए ! काम इतना आसान नहीं है—वे समझ गए। उन्होंने कहा, "बहुत मुमकिन है मुझसे कुछ गलती हो गई हो !" और वह फिर कुर्सी पर बैठ गए।

थोड़ी देर तक सब लोग मौन बैठे रहे। इस मौन को श्यामनाथ ने तोड़ा, "तो अब आप आराम कर लीजिए !"

"जी—आराम तो क्या करूंगा—अब तो मुझे उस वारदात की सरगर्मी के साथ छानबीन करनी होगी !" इसके बाद विश्वम्भरदयाल माताप्रसाद की ओर घूमे, "यहां किसी भी किस्म का पता या सुराग लगना मुश्किल है—मुझे कानपुर चलना चाहिए, क्योंकि मेरे खयाल से डाकू कानपुर के आए थे ! इस वक्त कानपुर के लिए कोई गाड़ी जाती है ?"

"करीब दो घण्टे बाद यहां से एक्सप्रेस जाएगी !" माताप्रसाद ने उत्तर दिया ।

"तो वह एक्सप्रेस ठीक रहेगी !" इस बार विश्वम्भरदयाल श्यामनाथ की ओर घूमे, "देखिए, मैं अपने साथ मिस्टर माताप्रसाद को ले जाना चाहता हूं । फतेहपुर जिले का तो कोई आदमी मेरे साथ चाहिए !"

श्यामनाथ ने अनुभव किया कि विश्वम्भरदयाल हुक्म चला रहे हैं । उनसे वे भली भांति परिचित नहीं थे । उन्हें केवल इतना मालूम था कि विश्वम्भरदयाल भारत-सरकार के गुप्तचर विभाग के एक कर्मचारी हैं । लेकिन वे यह अच्छी तरह समझते थे कि विश्वम्भरदयाल ओहदे में उनसे छोटा होगा, और इसलिए उसका इस तरह हुक्म चलाना उन्हें अच्छा नहीं लगा । उन्होंने रुखाई के साथ कहा, "मिस्टर माताप्रसाद को तो मैं आपके साथ नहीं भेज सकूंगा, क्योंकि यहां के काम-काज में हर्ज होगा । इसके अलावा चूंकि यह वारदात मेरे इलाके में हुई है, लिहाजा मैं समझता हूं कि इसके बाबत आपको तकलीफ़ करने की कोई जरूरत नहीं ।"

इस उत्तर के लिए मानों विश्वम्भरदयाल तैयार बैठे थे, "नहीं—इसमें तकलीफ़ की क्या बात—ऐसे ही मामलों के लिए तो हम लोग रक्खे गए हैं ।" यह कहकर उन्होंने अपनी जेब से एक तार निकाला जो इलाहाबाद से इंसपेक्टर जनरल पुलिस के यहां से आया था । तार विश्वम्भरदयाल ने श्यामनाथ के हाथ में रख दिया । उसमें लिखा था, "कुरस्ती कलां डकैती की तहकीकात का काम मिस्टर विश्वम्भरदयाल को, जो भारत-सरकार के

गुप्तचर विभाग के हैं, सौंपा जाता है। वे फ़तेहपुर की पुलिस से हर तरह की मदद ले सकते हैं।"

श्यामनाथ ने आंखें फाड़ कर विश्वम्भरदयाल को देखा—और उस समय उन्हें यह अनुभव हुआ कि उनके सामने जो आदमी बैठा हुआ है, वह चतुर है, दृढ़ है और किसी हद तक कठोर भी है। उन्होंने ठंढी सांस लेकर कहा, "ठीक है—माताप्रसाद साहेब को अपने साथ आप ले जा सकते हैं।"

दो घंटे बाद विश्वम्भरदयाल कानपुर की गाड़ी पर सवार हो गए। माताप्रसाद अपना असबाब वगैरह लेने अपने घर चले गए थे। जिस समय वे स्टेशन पर पहुंचे, गाड़ी ने सीटी दे दी थी। वे भी विश्वम्भरदयाल के डब्बे में बैठ गए।

जब गाड़ी फ़तेहपुर के प्लेटफ़ार्म से निकल गई तब माताप्रसाद ने कहा, "आज सेकण्ड क्लास का सिर्फ़ एक टिकट बिका है—इलाहाबाद के वास्ते—और वह टिकट एक्सप्रेस जाने के पहले बिका है। इसके आगे और कुछ पता नहीं चल सका।"

"इलाहाबाद !" विश्वम्भरदयाल ने धीरे से दुहराया, "इलाहाबाद ! ठीक है। कानपुर में खतरा है। कानपुर में छानबीन होगी, कानपुर में तहकीकात होगी। माताप्रसाद साहेब ! हमें सुबह की गाड़ी से ही इलाहाबाद के लिए रवाना होना पड़ेगा।" विश्वम्भरदयाल मुस्कराए, "बरखुरदार से मुलाकात करनी निहायत जरूरी है, और वह भी जल्दी से जल्दी !"

"लेकिन इलाहाबाद में कैसे पता लगेगा ?" माताप्रसाद ने पूछा।

विश्वम्भरदयाल की कुरूप मुस्कराहट अभी तक उनके होठों पर मौजूद थी, "कह नहीं सकता, लेकिन यह जानता हूं कि पता लगेगा जरूर ! जानते हैं, माताप्रसाद साहेब—मैं तकदीर पर यकीन करनेवाला हूं और मैं यह जानता हूं कि इस वक्त मेरी किस्मत अच्छी है, मेरा सितारा बुलन्दी पर है। इसका सबूत शायद आप पाना चाहें, तो सुनिए। रात के वक्त मैं इत्तिफ़ाक से ही उस गाड़ी में था जिसमें डाका पड़ा था। मैंने गोली चलाई, और यह

इत्तिफ़ाक की ही बात है कि मेरी दोनों गोलियां कारगर हुईं। यह भी इत्तिफ़ाक की ही बात है कि वह शख्स जिसका नाम प्रभाकर है और जिसे गिरफ्तार करने में हिन्दुस्तान की पुलिस के अच्छे से अच्छे आदमी नाकामयाब हुए, मेरी गोली का शिकार हुआ। यह इत्तिफ़ाक की ही बात है कि प्रभाकर की गोली मेरे न लग कर मेरी बगल में खड़े हुए पुलिसवाले के लगी, जब कि दुनिया जानती है कि प्रभाकर का निशाना अचूक होता था। और सब से बड़ी खुश-किस्मती की बात तो यह है कि दूसरा आदमी मुझे बड़ी आसानी से ऐन सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस के मकान में ही दिख गया। माताप्रसाद साहेब! आप यकीन रखिए, मेरा सितारा बुलन्द है और मैं जानता हूं कि साहेबजादे का पता मुझे बड़े मजे में लग जायगा।"

माताप्रसाद विश्वम्भरदयाल की बात से काफ़ी अधिक प्रभावित हो गए, "वाकयी बात तो आपने बड़े पते की कही। चलिए, इलाहाबाद में ही किस्मत आजमायी जाय!"

दूसरे दिन सुबह विश्वम्भरदयाल मातापसाद के साथ इलाहाबाद के लिए रवाना हो गए। गाड़ी इलाहाबाद दोपहर में पहुंची! गाड़ी से उतरते ही वे इंसपेक्टर जेनरल के पास पहुंचे। इंसपेक्टर जेनरल ने इलाहाबाद के सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस से फ़ोन पर सब बातें बतला कर विश्वम्भरदयाल को हर तरह की मदद देने को कह दिया।

८

श्यामनाथ ने डाक्टर अवस्थी के नाम एक पत्र लिख कर प्रभानाथ को दे दिया था। डाक्टर अवस्थी का पूरा नाम था डाक्टर ब्रजबिहारी अवस्थी, और वे श्यामनाथ के अभिन्न मित्र थे। वे इलाहाबाद में सिविल सर्जन थे; और इलाहाबाद नगर में उनका मान था।

प्रभानाथ जब डाक्टर अवस्थी के घर पहुंचा, वे घर पर ही थे।

प्रभानाथ को देखते ही वे उठ खड़े हुए, "तुम, प्रभा !--अरे--तुम्हारे चेहरे पर यह पीलापन कैसा ? क्या हुआ ?"

प्रभानाथ ने डाक्टर अवस्थी को कोई उत्तर नहीं दिया--वह निष्प्राण-सा पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया । इसके बाद उसने अपनी जब से पण्डित श्यामनाथ का पत्र निकाल कर उन्हें दिया ।

डाक्टर अवस्थी ने उस पत्र को तीन बार आदि से अन्त तक पढ़ा, फिर उसमें दियासलाई लगाकर वे प्रभानाथ के सामने खड़े हो गए, "हूँ ! तो यह बात है ! तुम्हारा असबाब ?"

"तांगे में है ।" प्रभानाथ ने कहा ।

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ का असबाब उतरवा कर एक खाली कमरे में रखवाया और तांगा विदा कर दिया । "तुम्हारे काका का कहना है कि तुम्हें मौत के मुंह से बचाना है ! बचाने की कोशिश करूंगा, प्रभा--भरसक कोशिश करूंगा !"

प्रभानाथ इस बार भी मौन रहा । कुछ देर रुक कर डाक्टर अवस्थी ने फिर कहा, "तुम्हें यह क्या सूझी जो तुम यह नासमझी का काम कर बैठे ? लेकिन नहीं, यह वक्त यह सब बात कहने का नहीं है । इस वक्त तो तुम्हारे हाथ का आपरेशन करके गोली निकालनी होगी और तुम्हें अच्छा होने में करीब एक महीना लगेगा । डाक्टर अवस्थी ने घड़ी की ओर देखा--दो बज चुके थे । उन्होंने फिर कहा, "और तुम्हारा आपरेशन, अभी इसी वक्त करना होगा । तुम्हारा अस्पताल जाना ठीक न होगा--मैं तुम्हें वहां ले भी न जाऊंगा; इसलिए यह आपरेशन यहीं, मेरे मकान पर होगा । लेकिन आपरेशन करने का सारा सामान मुझे अस्पताल से लाना पड़ेगा । आपरेशन के बाद तुम मेरे घर में ही रहोगे--कहीं भी निकल कर नहीं जा सकते । समझे !

"जी हां !"--और प्रभानाथ ने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

डाक्टर अवस्थी के मकान पर उनकी पत्नी के सिवा और कोई न था।

वह प्रभानाथ को एक खाली बेडरूम में ले गए और उसे वहां लिटा दिया, "मैं अभी आया!" और यह कहकर डाक्टर अवस्थी अस्पताल चले गए।

एक घंटे बाद डाक्टर अवस्थी आपरेशन का सामान लिये हुये वापस लौटे। वे अकेले ही आए थे। अपने विश्वासपात्र नौकर से उन्होंने कमरे में पानी, तौलिया, साबुन वगैरह मंगवा लिया। उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "प्रभा! मैं नहीं चाहता कि कोई बाहरवाला यह जान सके कि मैंने तुम्हारा आपरेशन किया है और तुम मेरे मकान में हो। इसलिए मैं आपरेशन में मदद करने के लिए किसी को अपने साथ नहीं लाया, एक कम्पाउंडर तक नहीं। अब सवाल यह है कि तुम्हें क्लोरोफ़ार्म कौन देगा!"

प्रभानाथ संभल कर बैठ गया, "आप इसकी फ़िक्र न कीजिए—मुझे क्लोरोफ़ार्म की कोई आवश्यकता नहीं; मैं बर्दाश्त कर लूंगा!"

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ को ध्यान से देखा, फिर उन्होंने हलकी मुस्कान के साथ कहा, "जहां तक मेरा ख्याल है, तुम आसानी से बर्दाश्त न कर सकोगे; मैं जानता हूं कि तुम बर्दाश्त नहीं कर सकोगे। बर्दाश्त करने वाले लोग दूसरे होते हैं, मैंने उन्हें देखा है!"

प्रभानाथ को बुरा लगा, वह तन गया, "आप मुझे गलत समझ रहे हैं!"

इस बार डाक्टर अवस्थी हँस पड़े, "मैं तुम्हें गलत समझ रहा हूं! कैसी मजेदार बात कही तुमने। वह तजुर्बा, जो मैंने इन बालों को पका कर हासिल किया है, जरा मुश्किल से ही झूठा हो सकेगा। लेकिन मैं तुम पर विश्वास करूंगा!"

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ को लिटा दिया। इसके बाद उन्होंने चाकू से उस स्थान को काटा, जहां से गोली घुसी थी। प्रभानाथ ने दर्द बर्दाश्त करने की बहुत कोशिश की, लेकिन एक हलकी सी चीख निकल ही पड़ी।

डाक्टर अवस्थी ने चाकू रोक दिया, वे मुस्कराए, "मैंने कहा था न कि तुम बर्दाश्त न कर सकोगे और मैंने गलत नहीं कहा। लेकिन प्रभा, मैं

जानता हूँ कि तुम वीर हो, और तुम्हें बर्दाश्त करना ही पड़ेगा। इसके सिवा कोई चारा नहीं।"

डाक्टर अवस्थी ने आपरेशन कर के गोली निकाल दी, इसके बाद उन्होंने प्रभानाथ की मलहम पट्टी खुद की।

६

इलाहाबाद में प्रभानाथ की छान-बीन ज़ोरों के साथ शुरू हो गई, लेकिन इसमें पुलिस को कोई सफलता न मिल सकी। विश्वम्भरदयाल को पूरा विश्वास था कि प्रभानाथ इलाहाबाद में ही है और किसी डाक्टर से इलाज करवा रहा है; लेकिन किसी भी डाक्टर के यहां उसका पता न चल सका। करीब-करीब शहर के सब कम्पाउण्डरों से पूछताछ की गई और इसमें भी विश्वम्भरदयाल को असफलता ही मिली।

तीसरे दिन विश्वम्भरदयाल एक तरह से निराश हो गए। दोपहर को खाना खाकर विश्वम्भरदयाल माताप्रसाद से उसी सम्बन्ध में बातचीत करने लगे। इलाहाबाद में की गई तहकीकात की पूरी रिपोर्ट विश्वम्भरदयाल के सामने थी। उस रिपोर्ट को विश्वम्भरदयाल दो बार आदि से अन्त तक पढ़ गए। उनका चेहरा धुंधला हो गया, एक ठंडी आह भर के उन्होंने कहा, "मुमकिन है साहबजादे और आगे बढ़ गए हों।—बनारस, पटना, कलकत्ता—कहीं भी। सोचा हो कि नजदीक रहने में खतरा है।"

"मुझे तो यकीन है कि प्रभानाथ साहेब आगे बढ़ गए हैं—शायद कलकत्ता, क्योंकि वहां डाक्टरी इलाज अच्छा होता है!" माताप्रसाद ने कहा।

"लेकिन मुझे यकीन है कि साहेबजादे इलाहाबाद में ही हैं और मेरे हाथों गिरफ्तार होंगे!" विश्वम्भरदयाल यह कह कर चुप हो गए, वह सोचने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने सर उठाया, "लेकिन साहेबजादे हैं कहां? सवाल यह है! इलाहाबाद में जितने बंगले हैं, सब का पता

मैंने ले लिया। किन बँगलों में डाक्टर आते हैं और वहां कौन बीमार है, इस बात का भी पता है!"

कुछ सोच कर माताप्रसाद ने कहा, "क्या यह मुमकिन है कि साहेबज़ादे किसी डाक्टर के घर में ही ठहरे हों?"

"मुमकिन है! लेकिन उन डाक्टरों के कम्पाउण्डरों से भी तो कोई पता नहीं चलता!"

"सरकारी अस्पताल अभी तक नहीं देखा गया है।" माताप्रसाद ने कहा।

विश्वम्भरदयाल हँस पड़े, "कोई ज़रूरत नहीं। इतना बड़ा जुर्म कर के और उसका सबूत रखते हुए साहेबज़ादे सरकारी अस्पताल में न भरती होंगे, इतना यकीन है!" कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा, "लेकिन आपका ख्याल ठीक है, सरकारी अस्पताल की भी जांच हो जानी चाहिए। यह तो कहने को न रह जाय कि ज़रा-सी गलती हो गई।"

शाम के समय माताप्रसाद के साथ विश्वम्भरदयाल सरकारी अस्पताल में पहुंचे। उस समय वहां डाक्टर अवस्थी न थे, एक असिस्टेंट सर्जन से इन दोनों की मुलाकात हुई। विश्वम्भरदयाल ने उससे पूछ-ताछ शुरू की, लेकिन इस असिस्टेंट सर्जन ने उनके प्रश्नों का उत्तर देने से यह कहते हुए इनकार कर दिया, "जब तक सिविल सर्जन की आज्ञा न हो, तब तक हम लोग इस अस्पताल के सम्बन्ध में कोई भी बात नहीं बतला सकते और न आपको अस्पताल दिखला सकते हैं।"

"सिविल सर्जन किस समय आते हैं?" विश्वम्भरदयाल ने पूछा।

"सुबह!" उन्हें उत्तर मिला।

विश्वम्भरदयाल ने सिविल सर्जन के बँगले का पता ले लिया। कार सिविल सर्जन के बँगले की तरफ़ मोड़ दी गई। डाक्टर अवस्थी उस समय प्रभानाथ के पास बैठे हुए उससे बातें कर रहे थे। विश्वम्भरदयाल का कार्ड

पाकर वे बाहर आए। विश्वम्भरदयाल और माताप्रसाद को ड्राइंग-रूम में बिठलाते हुए उन्होंने कहा, "कहिए, आप लोगों ने कैसे तकलीफ़ की ?"

विश्वम्भरदयाल ने गला साफ़ करके कहा, "बात यह है डाक्टर साहब, कि एक क्रान्तिकारी ज़ख्मी होकर इलाहाबाद की तरफ़ आया है, और यहीं कहीं इलाज करा रहा है। मैंने बहुत पता लगाया, लेकिन कहीं उसका पता नहीं लगा। सोचा कि एक दफ़े सरकारी अस्पताल भी देख लूं, गोकि जहां तक मेरा खयाल है, वह सरकारी अस्पताल में भरती न हुआ होगा। बहरहाल जब अस्पताल पहुंचा तो वहां के डाक्टर ने बतलाया कि बिना आपकी इजाज़त के यह मुमकिन नहीं।"

डाक्टर अवस्थी ने कागज़-कलम लेते हुए कहा, "इस काम के लिए आपको यहां तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत थी, आपने वहीं से मुझे फ़ोन कर दिया होता। खैर मैं चिट्ठी लिखे देता हूं।"

डाक्टर अवस्थी ने विश्वम्भरदयाल को चिट्ठी दे दी, और विश्वम्भरदयाल माताप्रसाद के साथ कार पर बैठ कर अस्पताल की तरफ़ चल पड़े। माताप्रसाद ने कहा, "इन डाक्टर साहब को तो मैंने कप्तान साहब के यहां देखा है, उनके तो यह बहुत बड़े दोस्त हैं!"

विश्वम्भरदयाल के मत्थे पर बल पड़ गए, "क्या कहा? यह कप्तान साहब के दोस्त हैं?"

"जी हां! और इसलिए मैं समझता हूं कि हम लोगों का अस्पताल जाना बेकार ही होगा। अगर साहबज़ादे वहां होते तो डाक्टर साहब इतनी आसानी से चिट्ठी न दे देते।"

विश्वम्भरदयाल तेज़ी के साथ सोच रहे थे। तो क्या प्रभानाथ इलाहाबाद में सिविल सर्जन के इलाज में हैं? और अगर है तो कहां ठहरा हुआ है?

विश्वम्भरदयाल और माताप्रसाद को अस्पताल में कोई पते की बात न मिल सकी। रात में दोनों थके हुए होटल वापस आए। लेकिन विश्वम्भर-

दयाल को न जाने क्यों यह विश्वास हो गया कि प्रभानाथ डाक्टर अवस्थी के इलाज में है। उन्होंने माताप्रसाद से कहा, "भाई साहेब ! मुझे पूरा यकीन है कि प्रभानाथ यहां इलाहाबाद में है, और वह डाक्टर अवस्थी के इलाज में है ! आप शायद वजह जानना चाहेंगे, लेकिन वजह मैं बतला नहीं सकता, वजह मैं जानता नहीं। अगर वजह की तलाश करने लगूं तो भाई साहेब, मुझे अपना पेशा छोड़ देना पड़ेगा। विश्वम्भरदयाल कहते-कहते हंस पड़े, एक अजीब रूखी-सी हंसी, "जी हां, हमारा वास्ता पड़ता है मुजरिमों से और जुर्म हैवानियत है। मुजरिम वही इंसान होता है, जिसकी हैवानियत उसकी इंसानियत पर हावी हो जाती है। और जहां हैवानियत है, वहां बहस नहीं, दलील नहीं!"

विश्वम्भरदयाल कहते-कहते रुक गए, उनके मत्थे पर बल पड़ गए, उनका चेहरा कुछ भयानक-रूप से विकृत हो गया, "हैवानों से इस कदर साबिका पड़ता है मातापसाद साहेब कि एक कामयाब पुलिस के अफ़सर में इंसानियत बाकी ही नहीं रह जाती। हमें सूंघना पड़ता है। हमारी हर हरकत ऊल-जलूल, बिना मानी-मतलब की होती है। और इसलिए जिसे हम एनीमल इंस्टिक्ट कहते हैं, वह मुझमें मौजूद है ! मैं कहता हूं कि प्रभानाथ है, यहीं इलाहाबाद में है, डाक्टर अवस्थी के इलाज में है और वह मेरे हाथों गिरफ्तार होगा, बचेगा नहीं!"

पता नहीं, मुंशी माताप्रसाद विश्वम्भरदयाल की बातों को समझे कि नहीं, उन्होंने इतना जरूर कहा, "मुझे तो काम इतना आसान नहीं दिखलाई देता ! मामला सिविल सर्जन का है......"

"और मामला सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के लड़के का भी है ! है न ऐसी बात ? लेकिन भाई साहेब, मैं तो सिर्फ़ एक बात समझता हूं—मामला मेरा है और मेरी पीठ पर बैठी हुई सरकार का है ! हमें डाक्टर अवस्थी की हरकतों पर नजर रखनी पड़ेगी।"

१०

विश्वम्भरदयाल के हुक्म से दो सादी वर्दीवाले खुफ़िया पुलिस के सिपाही सिविल सर्जन के बंगले के सामने तैनात कर दिए गए। सिविल सर्जन साहेब कहां जाते हैं, कब जाते हैं, उनके यहां कौन-कौन लोग आते हैं, इन सब बातों की पूरी-पूरी खबर विश्वम्भरदयाल को मिलती थी। तीसरे दिन उन्हें यह खबर मिली कि पण्डित श्यामनाथ तिवारी डाक्टर अवस्थी के यहां आए थे और एक घण्टा ठहर कर चले गए। यह खबर पाते ही विश्वम्भरदयाल खुशी से उछल पड़े। उन्होंने माताप्रसाद से कहा, "भाई साहेब, किस्मत अच्छी मालूम होती है। साहेबजादे यहीं इलाहाबाद में मौजूद हैं, और इसका सबब यह है कि पण्डित श्यामनाथ तिवारी डाक्टर अवस्थी के यहां आए थे। लेकिन सवाल यह है कि साहेबजादे ठहरे कहां हैं?"

"शायद कप्तान साहेब की मोटर का पीछा करने से पता लग जाता!"

"हां लेकिन जिस वक्त वह आए, उस वक्त हम लोगों को खबर ही नहीं मिली, और अब उनका पता चलाना बड़ा मुश्किल है। मौका चूक गया।"

थोड़ी देर तक विश्वम्भरदयाल बैठे रहे, फिर उन्होंने कहना आरम्भ किया, मानों वे यह बात अपने ही से कह रहे हों, "पण्डित श्यामनाथ आए थे! एक घण्टा ठहरे और चले गए! कहां गए? जहां प्रभानाथ ठहरा है। अरे!—क्या साहेबजादे खुद डाक्टर अवस्थी के यहां तो नहीं ठहरे हैं?"

विश्वम्भरदयाल उठ खड़े हुए और उन्होंने एक सिगरेट सुलगाई। इसके बाद वे कमरे में टहलने लगे। वे कह रहे थे, "माताप्रसाद साहेब! प्रभानाथ डाक्टर अवस्थी के यहां ही ठहरा है, वहीं उसका इलाज हो रहा है। मिल गया! कितनी आसानी से मिला—और किस जगह मिला! उफ़! बाप सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, उसका इलाज कर रहा है एक सिविल सर्जन, जो उसका रिश्तेदार भी हो सकता है; और लड़का क्रान्तिकारी, जिसने एक ऐसा जुर्म किया है, जिसकी सजा मौत है! हा! हा! हा! कितनी मजेदार बात है, भाई साहेब!"

विश्वम्भरदयाल हंस रहे थे और माताप्रसाद उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे ! उन्होंने विश्वम्भरदयाल को इस तरह हंसते कभी न देखा था। एकाएक विश्वम्भरदयाल गम्भीर हो गए । उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया, "जो ज़िन्दगी के साथ खेलता है, क्या उसे मौत की परवाह भी होती है ? यह लड़का—क्या यह मौत से डरता है ? क्यों माताप्रसाद साहेब—क्या यह प्रभानाथ मौत से डरता होगा ?"

"यह कहना तो मुश्किल है, लेकिन यह सवाल ही क्यों उठा ?" माताप्रसाद ने पूछा ।

"यह सवाल क्यों ? माताप्रसाद साहेब, यह सवाल इसलिए कि इसी के जवाब पर मेरी कामयाबी या नाकामयाबी, मेरी फ़तह या शिकस्त की बुनियाद है ! आप जानते हैं मैं क्यों इस लड़के के पीछे पड़ा हूं ? शायद आप नहीं जानते ! तो मैं आपको बतलाता हूं, क्योंकि जो कुछ मैं कर रहा हूं वह किसी कदर इनसानियत से नीचेवाली चीज़ समझ में आ सकती है । आखिर पण्डित श्यामनाथ साहेब ने मुझे अपने घर में ठहराया, उन्होंने मेरी अच्छी तरह से खातिरदारी की और उन्हीं के लड़के के पीछे मैं पड़ा हूं, उसे गिरफ्तार करने पर आमादा हूं ! अगर मैं इस मामले को छोड़ दूं, तो इसका किसी को कुछ भी पता न चलेगा । और यह लड़का भी यह रास्ता छोड़ देगा । अगर खुद न छोड़ेगा तो इसके वालदैन इससे यह रास्ता छुड़वा देंगे । और वाकया यह है कि मैं इतना गिरा हुआ भी नहीं हूं कि ख्वामख्वाह किसी के खून का प्यासा होऊं ! तो फिर मैं इस लड़के के पीछे इतनी बुरी तरह क्यों पड़ा हूं ?—सवाल यह है ! इसका जवाब सब से पहले देना पड़ेगा, माताप्रसाद साहेब ! और मैं कहता हूं कि मैंने उस लड़के की शक्ल देखी है ! गोकि थोड़ी देर के ही लिए देखी है, लेकिन गौर से देखी है ! और उस लड़के की शक्ल देख कर ही मुझे पता चल गया कि वह लड़का मौत का मुकाबला नहीं कर सकता, हरगिज़ नहीं कर सकता।"

"जब आप इतना जानते हैं, तब तो उसके पीछे पड़ना और भी गलत है !"

"नहीं, माताप्रसाद साहेब, अगर आप ठीक तौर से देखें तो आपको मालूम होगा कि सही है। वह मौत का मुकाबला नहीं कर सकता, इसके मानी यह हैं कि वह मौत से डरता है, और चूंकि वह मौत से डरता है लिहाजा मैं उसे मौत से बचा दूंगा और उससे जिन्दगी की कीमत वसूल करूंगा..." विश्वम्भर दयाल फिर हंस पड़े, "जी हां भाई साहेब, जिन्दगी बख्शूंगा, उसे जरूर जिन्दगी बख्शूंगा, लेकिन उससे जिन्दगी की कीमत वसूल कर के। और आप जानते हैं उसकी जिन्दगी की कीमत क्या होगी ?"

"जी हां समझ गया। आप उसे मुखबिर बनाने की कोशिश करेंगे !"

"कोशिश ही नहीं करूंगा, उसमें कामयाब हूंगा।"

इस बार माताप्रसाद के हंसने की बारी थी, "मैं दिलसे चाहता हूं कि आपका खयाल सही निकले, लेकिन मुझे तो आपकी कामयाबी पर शक है। मेरा भी खयाल है कि वह लड़का मौत से डरता है, और मेरा खयाल है कि मैं मौत से डरता हूं, आप मौत से डरते हैं, हर एक इनसान मौत से डरता है। लेकिन दुनिया में कुछ ऐसी चीजें हैं, जो किन्हीं-किन्हीं लोगों के लिए मौत से भी ज्यादा खौफ़नाक हैं। उन चीजों में एक है बेइज्जती ! जहां तक मैं कप्तान साहेब व उनके खान्दान को जानता हूं, बेइज्जती से वे सब के सब बहुत ज्यादा डरते हैं, इतना ज्यादा डरते हैं कि वे मौत का सामना करने को तैयार हो जाएंगे।"

माताप्रसाद की बात ने मानों विश्वम्भरदयाल को चौंका दिया हो, वे टहलते-टहलते रुक गए। माताप्रसाद के पास आकर, उनकी आंखों से आंख मिला कर उन्होंने कहा, "क्या वाकया आपका यह खयाल है ?"

"जी हां !" माताप्रसाद ने विश्वम्भरदयाल की नजर से अपनी नजर हटा कर कहा, "इस खान्दान को मैं थोड़ा-बहुत जानता हूं। सब के सब ऐंठदार आदमी हैं, दबना और झुकना शायद इस खान्दान में कोई नहीं जानता।"

"तो क्या मैं गलती करता हूं?" विश्वम्भरदयाल ने अपने आप ही कहा, "क्या इसमें मुझे नाकामयाबी मिलेगी? माताप्रसाद साहेब! क्या कहा आपने? सब के सब ऐंठ में फूले हुए, न दब सकते हैं, न झुक सकते हैं!" और एकाएक विश्वम्भरदयाल में वही पुराना विश्वास और जोश लौट आया, "हां! खुदी में गर्क हैं। और जब खुद ही मिटने का सवाल आ जाय तब? नहीं, माताप्रसाद साहेब! हर इंसान झुक सकता है, मौत के आगे झुकना ही पड़ता है!"

११

"कहिए चाचाजी, अभी कितने दिन और लगेंगे?" प्रभानाथ ने पूछा।

डाक्टर अवस्थी पट्टी बांध चुके थे, प्रभानाथ के पलंग के सामने कुर्सी खिसका कर बैठते हुए उन्होंने कहा, "मैं समझता था कि जख्म के पूरने में ज्यादा वक्त लगेगा, लेकिन देखता हूं कि पन्द्रह दिनों में ही ठीक हो जायगा!" कुछ रुक कर डाक्टर अवस्थी ने फिर कहा, "प्रभा! एक बात पूछूंगा, ठीक-ठीक जवाब देना!"

"जी हां! चाचाजी! लेकिन इतना ही पूछिएगा जितने का मैं ठीक जवाब दे सकूं!"

डाक्टर अवस्थी मुस्कराए, "उतना ही पूछूंगा, यह यकीन दिलाए देता हूं, और अगर कहीं ज्यादा पूछ बैठूं तो जवाब देने से इनकार कर देना। मैं जरा भी बुरा न मानूंगा।"

प्रभानाथ भी मुस्कराया, "तो फिर पूछिए!"

डाक्टर अवस्थी ने कहा, "पहला सवाल यह है कि तुमने यह टेररिस्ट मूवमेण्ट क्यों ज्वाइन किया,? क्या तुम समझते हो कि इस मूवमेण्ट-द्वारा ब्रिटिश सरकार को उलट सकोगे?"

"चाचाजी! मैं समझता हूं कि ब्रिटिश सरकार को हिन्दुस्तान से

केवल इस तरह निकाला जा सकता है कि हिन्दुस्तानी अँगरेजों को युद्ध करके हरा दें। लेकिन सामने आकर हिन्दुस्तानी अँगरेजों से युद्ध नहीं कर सकते, और इसलिए अँगरेजों पर, ब्रिटिश सरकार पर, पीठ-पीछे से ही हमला करना होगा। अब सवाल यह है कि क्या हम लोग इस सरकार को उलट सकते हैं? वहां मैं केवल इतना कहूंगा कि हम, यानी मैं और मेरे साथी भले ही इस सरकार को न उलट सकें, क्योंकि हमारी संख्या अभी बहुत कम है, लेकिन एक समय आ सकता है जब हमारी तादाद बहुत अधिक बढ़ जाय। और उस हालत में इन मुट्ठी भर अँगरेजों को निकाल बाहर करना क्या मुश्किल है?"

"और क्या तुम्हारा खयाल है कि तुम्हारी तादाद इतनी बढ़ सकेगी?"

"मुझे पूरा यकीन है।"

"और मुझे पूरा यकीन है कि तुम्हारी तादाद किसी भी हालत में इतनी ज्यादा न बढ़ सकेगी। तुम समझते हो कि आयर्लैण्ड के रास्ते पर चल कर हिन्दुस्तान में भी तुम क्रान्ति कर सकते हो, लेकिन प्रभा, तुम हिन्दुस्तान को पहचानते नहीं! तुम्हारे मार्ग में बाधा बननेवाले, तुम्हें मिटानेवाले अँगरेज न होंगे, वे होंगे हिन्दुस्तानी, गुलाम, स्वार्थी और देश-द्रोही हिन्दुस्तानी जो ब्रिटिश सरकार के टुकड़ों के बदले धर्म, ईमान, मनुष्यता सभी कुछ बेच सकते हैं!"

इसी समय डाक्टर अवस्थी के नौकर ने आकर खबर दी कि बाहर कई पुलिसवाले खड़े हैं और एक पुलिस के अफ़सर ने डाक्टर अवस्थी को बुलाया है।

यह खबर सुनकर डाक्टर अवस्थी सहम गए। नौकर से उन्होंने कहा, "बँगले के पीछे देखो, वहां तो कोई पुलिसवाला नहीं है!"

नौकर ने लौट कर कहा, "सरकार पुलिस सारा बँगला घेरे हुए है!"

डाक्टर अवस्थी ने उठते हुए कहा, "प्रभा, तुम चिन्ता न करना! देखूं तो क्या मामला है!"

प्रभानाथ ने दृढ़ता के साथ कहा, "चाचाजी, अगर वे मुझे गिरफ्तार करने आए हों, तो मैं तैयार हूं। मेरी वजह से आप किसी तरह की मुसीबत में न पड़िएगा।"

डाक्टर अवस्थी बाहर निकले। ड्राइंग-रूम में इलाहाबाद के सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस के साथ विश्वम्भरदयाल खड़े थे। डाक्टर अवस्थी ने कहा, "कहिए—आप लोगों ने कैसे तकलीफ़ की?"

विश्वम्भरदयाल ने वारंट निकालते हुए कहा, "प्रभानाथ नाम के एक टेररिस्ट पर वारंट है। वह आपके बंगले में है, इसलिए उसे गिरफ्तार करने आया हूं!"

"वह मेरे बंगले में है—यह आपको कैसे मालूम?"

"मुझे मालूम नहीं है बल्कि शक है!"

"और महज शक पर आप लोगों ने पुलिसवालों से मेरा बंगला घिरवा लिया है! आप जानते हैं मैं कौन हूं और मेरे बंगले में आप लोग घुस कैसे आए?"

विश्वम्भरदयाल ने दूसरा वारंट निकालते हुए कहा, "मैं जानता था डाक्टर अवस्थी, कि मुझे सिविल सर्जन के बंगले से मुलजिम गिरफ्तार करना है और इसलिए मैं सर्च वारंट लेता आया हूं!"

"मैं अपने बंगले की तलाशी किसी हालत में नहीं लेने दूंगा!" डाक्टर अवस्थी ने कड़े स्वर में कहा।

यह बातचीत काफ़ी तेज आवाज में हो रही थी कि एकाएक लोगों ने देखा कि प्रभानाथ ड्राइंग-रूम में चला आ रहा है। प्रभानाथ आकर बीच कमरे में खड़ा हो गया। उसने कहा, "क्या आप लोगों के पास मेरे नाम कोई वारंट है?"

डाक्टर अवस्थी पुलिसवालों और प्रभानाथ के बीच में आ गए, "मैं

आप लोगों को किसी हालत में इस लड़के को गिरफ्तार न करने दूंगा। यह बीमार है और मेरे इलाज में है !"

विश्वम्भरदयाल ने कहा, "जी हां ! यह लड़का आपके ही इलाज में रहेगा, लेकिन अस्पताल में रहेगा और पुलिस की हिरासत में रहेगा।"

पांचवाँ परिच्छेद

१

जिस समय दयानाथ को मार्कण्डेय का वह पत्र मिला, जिसमें मार्कण्डेय ने अपने पिता की मृत्यु की सूचना दी थी, दयानाथ फिर से जेल जाने की तैयारी कर रहा था। सत्याग्रह चल रहा था और ब्रिटिश साम्राज्य के कर्णधारों के हृदय में एक प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। पहली राउण्ड टेबिल कानफरेन्स में हिन्दुस्तान ने कोई दिलचस्पी न ली थी, दुनिया की नजर में उसका खोखलापन साबित हो चुका था। साथ ही देश के कुछ नेताओं ने कांग्रेस के राउण्ड टेबिल कानफ़रेन्स में शामिल होने की आवश्यकता समझ कर कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में समझौता कराने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया था।

मार्कण्डेय का पत्र पढ़ कर दयानाथ अवसन्न-सा रह गया। वह जानता था कि बानापुर में जो कुछ फ़िसाद हुआ, उसकी जड़ में रामनाथ तिवारी की अहम्मन्यता और उनका प्रतिक्रियावादी होना ही था। इस भयानक काण्ड की पूरी जिम्मेदारी उसके पिता पर है—वह अच्छी तरह जानता था; ग्लानि से वह क्षुब्ध हो गया।

दयानाथ के सामने अब यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि वह बानापुर जाय या न जाय। बानापुर में उसके पिता मौजूद थे, बानापुर के गांववाले मौजूद थे। यही नहीं, बानापुर में सम्भवतः इस समय संघर्ष चल रहा होगा—ज़ोरों के साथ। दयानाथ के जाने से और भी असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। यह भी सम्भव है कि बानापुर गांव के लोग उसके पिता के प्रति अपनी घृणाको दयानाथ के साथ भी बरतें। उन गांववालों को क्या पता कि दयानाथ घर का त्याज्य पुत्र है। एक बार दयानाथ के अन्दर वाले कायर मानव ने कहा, "नहीं, बानापुर जाना उचित नहीं।"

लेकिन दूसरे ही क्षण दयानाथ के अन्दरवाला वीर मानव बोल उठा, "इससे क्या ? मेरा कर्तव्य है अपने मित्र के प्रति संवेदना प्रकट करना ! लोक-मत से मुंह फेर लेना कायरता है—वीरता है लोकमत का सामना करने में !" और उसी समय दयानाथ ने तै कर लिया कि उसे मातमपुर्सी करने के लिए बानापुर जाना ही चाहिए।

दयानाथ बानापुर पहुंच कर सीधे मार्कण्डेय के यहां पहुंचा । मार्कण्डेय अपने पिता का क्रिया-कर्म कर के बैठा था। दयानाथ को देखते ही मार्कण्डेय की आंखों में आंसू आ गए । उसने दयानाथ का मौन-भाव से स्वागत किया। दयानाथ में हिम्मत नहीं थी कि वह मार्कण्डेय से बातें करे। चुपचाप सर झुकाकर वह मार्कण्डेय के सामने बैठ गया।

थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे; फिर उस मौन को मार्कण्डेय ने तोड़ा, "क्या सीधे यहीं आ रहे हो ?"

"हां !" दयानाथ ने उत्तर दिया, "घर का त्याज्य पुत्र हूं न ! आना आवश्यक था इसलिए चला आया —कल चला जाऊंगा—रात भर तुम्हारे यहां ठहरूंगा !"

फिर दोनों मौन हो गए । अब की बार दयानाथ के बोलने की बारी थी, "क्या से क्या हो गया, मार्कण्डेय।"

मार्कण्डेय के मुख पर एक करुण मुस्कान आ गई, "दया ! बप्पा की, मृत्यु मैंने अपनी आंखों देखी है। मुझे इस बात पर गर्व है कि बप्पा मेरे पिता थे ! एक बहुत बड़ी हिंसा को बचाने के लिए उन्होंने अपने प्राण दिए !"

उस समय संध्या ढल रही थी और रात की कालिमा ने ग्राम-प्रान्त को ढंकना आरम्भ कर दिया था । पश्चिम में शुक्र तारा झलमला रहा था। दयानाथ ने आकाश की कालिमा पर अपनी आंखें गड़ाते हुए कहा, "हां मार्कण्डेय ! मैंने सब कुछ सुना है !"

उस समय दयानाथ गम्भीर था, बहुत अधिक गम्भीर ! उस ग्राम में,

जिसे वह कुछ दिनों पहले तक अपना समझता था, आज वह बिल्कुल पराया था। बानापुर का वह विशाल महल, जिसमें दयानाथ ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग हँसी-खुशी में बिताया था, दूर पर एक भयानक दानव की भांति उन्नत-मस्तक खड़ा था। और दयानाथ के चारों ओर उदासी का अथाहसागर लहरा रहा था। उसके अन्तरवाली गहरी कालिमा सारे आकाश को घेरती हुई बढ़ रही थी।

और दयानाथ के ठीक सामने मार्कण्डेय बैठा था, श्वेत वस्त्र पहने हुए। मार्कण्डेय के मुख पर सौम्य भाव था, उत्साह था, आत्माभिमान था। दयानाथ ने कुछ देर तक चुप रह कर कहना आरम्भ किया, "मार्कण्डेय! लज्जा से मेरा मस्तक झुका जा रहा है। वह हिंसा, जिसकी ज्वाला को शान्त करने के लिए झगड़ू काका ने अपने प्राण दे दिए, वह मेरे पिता-द्वारा प्रज्वलित की गई थी!"

"नहीं दया! ऐसी बात न कहो!" मार्कण्डेय ने दयानाथ को रोकते हुए कहा, "इसमें दोष तिवारीजी का नहीं है। मैंने बहुत सोचा, और मैं तो इसी निर्णय पर पहुंचा कि यही आज का विधान है! आज का समस्त समाज इसी हिंसा की नींव पर विकसित हुआ है। तिवारीजी को अधिक से अधिक इस हिंसा की नींव पर स्थापित समाज का प्रमुख प्रतिनिधि कहा जा सकता है!" चुप होकर मार्कण्डेय ने अपने चारों ओर देखा। कुछ गांववाले सामने बैठे हुए अलाव ताप रहे थे। उन गांववालों की ओर कुछ देर तक देख कर मार्कण्डेय ने दयानाथ से कहा, "इन्हें देखते हो—ये जो न सोच सकते हैं, न समझ सकते हैं! ये जो भयानक-रूप से कायर हैं! सदियों से शासित होनेवाले, अपमानित होनेवाले यही लोग जरा-जरा सी बात पर खून-खराबी कर सकते हैं, हत्या कर सकते हैं। और इसका कारण है कि हम सब के सब अपनी प्राकृतिक और स्वाभाविक हिंसा को लेकर पैदा हुए हैं, और हम सब अर्ध-विकसित हैं! इस जन-समुदाय की हिंसा और पशुता को दूर करने में समय लगेगा। इस हिंसा को हिंसा-द्वारा दूर करना असम्भव है—इसे दूर करने का एकमात्र साधन है, अहिंसा!"

श्यामनाथ फूट पड़े, "भइया, मेरे हाथ-पैर ढीले पड़ गए हैं। अगर दूसरे का मामला होता तो मैं सब कुछ कर सकता था, लेकिन यह मामला मेरे लड़के का है, मेरा है! भइया, आप मेरे साथ चलिए, मेरे दिल में एक प्रकार का भय समा गया है—मेरे प्राणों में एक प्रकार की निराशा भर गई है!"

उमानाथ ने कहा, "काका, अगर आप उचित समझें तो मैं बड़के भइया को भी खबर दे दूं!"

"क्या दया यहां है?" श्यामनाथ ने पूछा।

"जी हां! मार्कण्डेय भइया के यहां ठहरे हैं!" उमानाथ ने कहा, आपको मालूम हो गया होगा कि यहां क्या-क्या हो चुका है।

"दया को अभी खबर दो जाकर—उसे अपने साथ लेते आओ!" श्यामनाथ ने अधीर होकर कहा।

नहीं, दया को खबर देने की कोई जरूरत नहीं, न कोई फ़ायदा है। गाड़ी तैयार करो, उमा! अभी चलना है, इसी समय!" यह कह कर रामनाथ तिवारी उठ खड़े हुए।

३

प्रभानाथ की गिरफ्तारी की खबर दयानाथ को सुबह मिली, और वह खबर सुन कर वह स्तब्ध हो गया। उसे यह भी मालूम हुआ कि उसके पिता, उमानाथ और श्यामनाथ रात के समय ही कानपुर के लिए रवाना हो गए। मार्कण्डेय से दयानाथ ने कहा, "सुना!"

मार्कण्डेय मुस्कराया, "हां दयानाथ, सुना! और यह सब सुनकर मुझे जरा भी ताज्जुब नहीं हुआ। प्रभानाथ क्रान्तिकारी हो सकता है, इसकी कल्पना तुम लोगों में से किसी ने न की होगी, मैं कहता हूं, मैंने भी नहीं की थी। लेकिन इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। उसमें क्रान्तिकारी बनने की हिंसा

मौजूद थी—वह हिंसा, जो तुम्हारे कुल के सब लोगों को मिली है—तुम्हें भी मिली है ! तुम उस हिंसा से मुक्त नहीं हो, दयानाथ !"

आश्चर्य से दयानाथ ने मार्कण्डेय की ओर देखा, "क्या कहा मार्कण्डेय ? मुझमें हिंसा है ?"

इस बार मार्कण्डेय हँस पड़ा । "हां दया ! तुममें भी हिंसा है, उतनी ही जितनी तुम्हारे पिता म है । अन्तर केवल इतना है कि तुम्हारे अन्दरवाली हिंसा किसी हद तक दबी हुई है । तुम जानते हो कि यह हिंसा क्या है ? यदि तुम हिंसा का विश्लेषण कर सको तो समझ जाओगे !"

दयानाथ ने सीधे-सादे भाव से कहा, "हिंसा को मैं अच्छी तरह जानता हूँ ! उसका विश्लेषण मैं क्या करूँ ? हिंसा है दूसरों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति ! और मैं समझता हूँ कि मैं दूसरे पर प्रहार करनेवाली प्रवृत्ति को पूरी तौर से दबा चुका हूँ !"

मार्कण्डेय ने सर हिलाया, "नहीं दया ! तुम समझते भर हो; पर वास्तविकता इससे भिन्न है ! अच्छा बताओ, हम दूसरों पर प्रहार क्यों करते हैं ? तुम कहोगे कि यह हमारी एक प्रवृत्ति भर है ! पर बात यहीं खत्म नहीं हो जाती ! हमें और आगे बढ़ना पड़ेगा । दूसरों पर प्रहार करने की यह प्रवृत्ति हमारी अहम्मन्यता का रूपान्तर भर है ! जिसमें जितनी अधिक अहम्मन्यता है, उसमें उतनी ही अधिक भयानक रूप में दूसरों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति है । और मैं जानता हूँ दया कि तुममें अहम्मन्यता है, उतनी ही अधिक, जितनी तुम्हारे पिता में अथवा अन्य भाइयों में है !"

दयानाथ कुछ देर तक सोचता रहा, फिर उसने कहा, "लेकिन, मार्कण्डेय, मैं तो अहम् पर विश्वास करनेवाला हूँ और जहां अहम् होगा वहां, अहम्मन्यता भी होगी । अगर तुम समझते हो कि हमारे विकास के लिए अहम् को मिटा देना अनिवार्य है, तो मैं तुमसे असहमत हूँ, क्योंकि अहम् एक मनोवैज्ञानिक सत्य है और कोई भी समझदार व्यक्ति इस सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकता ।"

मार्कण्डेय के पास उत्तर तैयार था, "मैंने कब कहा कि अहम् मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं है। अगर मैं इस बात से इनकार करता तो मैं न जाने कब का समाजवादी बन गया होता। लेकिन दया ! अहम् में और अहम्मन्यता में भेद है ! अहम् और अहम्मन्यता के भेद को जान लेना तथा इसके बाद अहम्मन्यता को छोड़ कर केवल अहम् का विकास करना—यह एक असाधारण साधना है। यह याद रखना, अहम्मन्यता अहम् और दूसरों के पार्थक्य से होती है, अहम्मन्यता सीमित और अविकसित अहम् का गुण है, जिसमें वह बुद्धि और ज्ञान तो मानवता के लिए वरदान-रूप में आए हैं, अभिशाप बन जाया करते हैं। हमारी आज की दुरवस्था का मूल कारण यह सीमित और संकुचित अहम् है। इस अहम् को असीमत्व प्रदान करना, दूसरों को दूसरा न समझ कर अपना समझना—यही अहम् का विकास है और यही अहम्मन्यता का विनाश है !"

"शायद तुम ठीक कहते हो !" दयानाथ ने कहा, "और मैं इतना मानता हूं कि मेरे कुल में हर एक आदमी में अहम्मन्यता है ! और......... और......जाने भी दो, मार्कण्डेय !" दयानाथ अपनी ही बात में उलझ कर कुछ सोचने लगा।

"क्यों, क्या सोच रहे हो ?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"यही कि मुझे आज ही कानपुर चल देना चाहिए ! प्रभा गिरफ्तार हो गया; सब लोग कानपुर गए हैं, और मैं यहां पड़ा हूं !"

"लेकिन तुम जाकर ही क्या करोगे ? इस मामले में तुम्हारा बीच में पड़ना ठीक नहीं। उससे मामला बिगड़ ही सकता है। तुम उसे सुधार न सकोगे !"

"हां, यह ठीक कहते हो। लेकिन फिर भी इस समय मेरा कानपुर में होना जरूरी है। प्रभानाथ की पैरवी में मदद कर सकता हूं। इसके अलावा कांग्रेस का भी काम है !"

उसी दिन शाम के समय दयानाथ कानपुर के लिए रवाना हो गया।

जिस समय वह घर पहुँचा, उसने देखा कि उमानाथ वहां मौजूद है और वह पण्डित ब्रह्मदत्त से बातें कर रहा है। पण्डित ब्रह्मदत्त जोरों में कह रहे थे, "कामरेड ! मजाल है कि वे लोग मुझे बिना मेरी इच्छा के जेल में रख सकते ! नाकों चने चबवा दिये, नाकों ! आखिरकार झख मार कर मुझे छोड़ना ही पड़ा !"

"लेकिन यह कैदियों का यूनियन ! यह तो बड़ा नया-सा आइडिया था !" उमानाथ ने मुस्कराते हुए कहा।

"क्यों ? नए आइडिया की क्या बात ? आखिर जेल के कैदी भी तो वर्कर्स हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह मिल के मजदूर ! फ़र्क इतना है कि जहां कैदी एक इमारत में कैद हैं, वहां मजदूर एक क्षेत्र में। वास्तविक स्वाधीनता किसी को भी प्राप्त नहीं है। फिर मिल के मजदूरों का जितना शोषण किया जाता है, उससे कहीं अधिक कैदियों का शोषण होता है ! मैं कहता हूँ कि उन कैदियों को, वे जो काम करते हैं, उसकी मजदूरी क्यों नहीं दी जाती ? आप कहेंगे कि उन्हें सजा मिली है। और सजा मिलने की वजह से वे लोग बन्द कर दिए गए हैं। बाहर घूम नहीं सकते, कहीं निकल नहीं सकते, किसी को देख नहीं सकते, किसी से मिल नहीं सकते। दुनिया की सारी की सारी हँसी-खुशी उनसे छीन ली गई है। न उन्हें बीबी का सुख, न उन्हें बच्चों का सुख ! इतनी सजा क्या उन्हें काफ़ी नहीं है जो उन कैदियों से बड़ी से बड़ी मेहनत ली जाय और वह भी जबर्दस्ती, फिर इसके बाद उन्हें उनकी मेहनत की मजदूरी न दी जाय ! नतीजा यह होता है कि जब वे जेल के बाहर निकलते हैं, तो भूखे और कंगाल। इसके अलावा मुलजिम होने का ठप्पा भी उनके लगा होता है। और इस सब का नतीजा यह होता है कि जेल के बाहर आते ही उन्हें जुर्म करने की जरूरत होती है।"

उमानाथ मुस्कराया, "बात तो तुमने बड़े पते की कही। विलायत में कैदियों को उनके काम की तनख्वाहें मिलती हैं। लेकिन तुम्हारा यह कैदियों का यूनियन कहां तक चला ?"

ब्रह्मदत्त हँस पड़ा, "अभी यह कैदियों का यूनियन क्या चलेगा ! वह तो मैंने जेलर को यह दिखलाने के लिए चलाया था कि मैं क्या बला हूं !"

दयानाथ को देखते ही उमानाथ ने बातचीत बन्द कर दी । उठते हुए उसने कहा, "आप आ गए बड़के भइया—बड़ा अच्छा किया।"

"दवुआ और काका कहां ठहरे हैं ?" दयानाथ ने पूछा।

"होटल में ! मैंने बहुत कहा कि यहां ठहरें, और काकाजी ने भी जोर दिया, लेकिन दवुआ को तो आप जानते ही हैं कितने जिद्दी आदमी हैं । मुझसे भी वहीं ठहरने को कह रहे थे, लेकिन मैंने साफ़-साफ़ कह दिया कि घर रहते हुए मैं होटल में नहीं ठहर सकता ।"

कुर्सी पर बैठते हुए दयानाथ ने कहा, "हां; तो उमा क्या बात है ? प्रभा क्यों गिरफ्तार हुआ ?"

"कुरस्तीकलां की डकैती के सिलसिले में—वह भी उस डकैती में शामिल था । भइया, प्रभा क्रान्तिकारी हो सकता है, इसकी मैंने कल्पना भी न की थी !"

"मुझे भी ताज्जुब हो रहा है उमा ! कितना शान्त और सुशील ! यह सब क्या हो रहा है ?" और दयानाथ उठ कर घर के अन्दर चलने लगे । तब तक ब्रह्मदत्त ने कहा, "नमस्कार दयानाथजी ! आपने तो मुझे देखा तक नहीं !"

"अरे पण्डित ब्रह्मदत्तजी ! क्षमा कीजिएगा—दिमाग अजीब उलझन में है !" दयानाथ ने मुड़ कर कहा ।

"जी हां ! जब दिमाग है तब वह कभी-कभी उलझन में भी हो सकता है !" और ब्रह्मदत्त अपने उस कटु व्यंग पर खिलखिला कर हँस पड़ा ।

दयानाथ को ब्रह्मदत्त का हँसना उसके व्यंग से भी अधिक बुरा लगा। उसने कहा, "ब्रह्मदत्तजी ! संस्कृति नाम की एक चीज होती है, जो लोगों को बड़ी मुश्किल से मिलती है । मुझे दुःख है कि वह संस्कृति आपको नहीं मिल

सको। लेकिन शायद इसमें आपका दोष नहीं है—दोष है हमारे समाज का!" और दयानाथ अन्दर चला गया।

ब्रह्मदत्त ज़ोर से हँस पड़ा, "संस्कृति! संस्कृति! उमानाथजी—सुना आपने! कितनी मज़ेदार बात है!" लेकिन उसके तमतमाए हुए चेहरे से यह स्पष्ट था कि ब्रह्मदत्त पर आघात हुआ है, ऐसा आघात कि वह तिलमिला उठा है, "शायद संस्कृति के ठीकेदार ये लोग हैं, जिनके पास पैसा है, जो अमीर घरों में पैदा हुए हैं, जिन्हें जीवन में सब प्रकार की सुविधाएँ मिली हैं! कितनी मज़ेदार बात है!" और ब्रह्मदत्त हँसता रहा, मानों वह अपनी इस व्यंगात्मक और कुरूप हँसी से अपने दिल पर लगी हुई चोट की मरहम-पट्टी करने का प्रयत्न कर रहा हो।

उमानाथ ने बात को सँभालने की कोशिश की, "ब्रह्मदत्तजी, आपने सुना ही है कि प्रभानाथ गिरफ्तार हो गया है। बड़के भइया की बात पर इसलिए बुरा न मानिएगा। हम सब लोग इस मामले में बहुत अधिक परेशान हैं!"

"कोई बात नहीं कामरेड! ऐसी बातें तो करीब-करीब रोज़ ही सुनने को मिलती हैं—एक तरह से मैं इन बातों को सुनने का आदी हो गया हूँ!" ब्रह्मदत्त ने सँभलते हुए कहा, "लेकिन यह संस्कृति, यह सभ्यता! समाज की विषमता-द्वारा उत्पन्न ये चीज़ें—इन पर वे लोग जो समाज में समता उत्पन्न करने के दावेदार हैं, गर्व कैसे कर सकते हैं; यह कांग्रेस वाले पूंजीपति, ये कितने झूठे और ढोंगी हैं! अच्छा खाते हैं और पहनते हैं!"

"हां, अधिकांश आदमी ऐसे हैं ब्रह्मदत्त! लेकिन यह तो मानना ही पड़ेगा कि जो सच्चे कांग्रेसवाले हैं, जिनका अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है, वे ऐसे नहीं हैं!"

"बिलकुल गलत! मैं कहता हूं कि सबके सब ऐसे हैं। जब मैं देखता हूँ उन लोगों को, जो सर हिला कर मेरे साथ सहानुभूति दिखलाते हैं, जो मुझ पर दया का भाव प्रदर्शित करते हैं, तब मैं सच कहता हूँ मेरी तबीअत जल

उठती है । मुझे ऐसा लगता है कि वह आदमी मेरा उपहास कर रहा है, मेरा ही नहीं, सारी मनुष्यता का उपहास कर रहा है । मैं कहता हूं, मुझसे लड़ो, मुझसे झगड़ो, मुझे गाली दो—मुझे जरा भी बुरा न लगेगा, क्योंकि यह सब तुम मेरी बराबरी में आकर करते हो; लेकिन जब तुम मुझसे लड़ना टाल जाते हो, यह प्रदर्शित करते हुए कि तुम इतने ऊंचे हो कि मुझसे लड़ना-झगड़ना तुम्हें शोभा नहीं देता, और इसलिए लड़ने-झगड़ने की जगह तुम मेरे साथ प्रेम, दया, सहानुभूति की बात चलाने लगते हो, तब मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुम मुझे चिढ़ा रहे हो, तुम मेरा उपहास कर रहे हो !"

उमानाथ ब्रह्मदत्त की बात सुन रहा था और उसे ताज्जुब हो रहा था ब्रह्मदत्त की उस बात पर । जो कुछ वह ब्रह्मदत्त के सम्बन्ध में जानता था, जितना कुछ उसे ब्रह्मदत्त का अनुभव था, उससे वह कल्पना भी न कर सकता था कि ब्रह्मदत्त ऐसे महत्त्वपूर्ण सत्य की तह तक पहुंच सकता है। उसने कहा, "लेकिन ब्रह्मदत्त, इतना कटु होने की आवश्यकता नहीं ! तुम्हारे अन्दरवाली कटुता दूसरे का अहित करने के स्थान पर तुम्हारा ही अहित कर सकती है । इस कटुता से ऊपर उठ कर रचनात्मक कार्य करने में ही कल्याण है ।"

"हां, मैं यह जानता हूं ! लेकिन कामरेड, जरा सोचो तो, यह कटुता कितनी मनोवैज्ञानिक है । आप लोग ऊंचे समाज के हैं, सम्पन्न हैं, आपको ऊंची शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएं मिली हैं ! लेकिन मैं गरीब घर में पैदा हुआ; तिरस्कार और अपमान के बीच में मैं पला, ऊंची शिक्षा मिलने के साधनों का सर्वथा अभाव था । जहां तक योग्यता, लगन, कर्मण्यता का सवाल है, वहां मैं किसी से कम नहीं हूं । लेकिन फिर भी देखता हूं कि लोग लगातार मुझे दबाने का प्रयत्न करते हैं । नित्य ही मुझे इन घमण्डी अमीरों के सामने आना पड़ता है, इनकी अहम्मन्यता का मुझे मुकाबला करना पड़ता है । आप जानते नहीं कामरेड ! कभी किसी पूंजीपति के सम्पर्क में आप अभाव की स्थिति में नहीं आए । आप अपनी सारी योग्यता

और सारी ईमानदारी लेकर किसी भी मूर्ख से मूर्ख और चरित्रहीन से चरित्र-हीन पूंजीपति के सामने जाइये, और आप देखिएगा कि वह आपके व्यक्तित्व को चांदी और सोने के पाटों के बीच में डालकर पीसकर रख देने की कोशिश करेगा। मैं पूछता हूं, दुनिया में कौन-सा नेता है, कौन-सा महात्मा है, जो पूंजीपति के इशारों पर न नाचता हो ?"

उमानाथ ब्रह्मदत्त के तर्कों का उत्तर न दे सकता था, क्योंकि वे स्वयं उमानाथ के तर्क थे। अन्तर केवल इतना था कि जहां वह उमानाथ का पढ़ा हुआ तर्क भर था, वहां वह ब्रह्मदत्त का अनुभव था और उन अनुभवों से जनित उसके गहन विश्वास से भरा हुआ विद्रोहात्मक व्यक्तित्व था। उस समय घड़ी ने रात के दस बजाए।

ब्रह्मदत्त उठ खड़ा हुआ, "अरे ! दस बज गए और मैं अभी तक आपके यहां बैठा रहा। अब आप सोइये जाकर कामरेड उमानाथ !"

"तो कामरेड, कल मिलना ! जहां तक मैं समझता हूं, कांग्रेस का काम-काज ढीला पड़ने लगा है; और लोगों की दौड़-धूप से यह पता चलता है कि कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में जल्दी ही कोई समझौता होनेवाला है। लिहाजा अब हमारे काम-काज करने का अवसर आ रहा है, और उसकी तैयारी करनी है। सब कार्यकर्ताओं से मिल कर एक भावी कार्यक्रम बनाना पड़ेगा।

"हां कामरेड ! मैं कल सुबह नौ बजे आऊंगा !" यह कह कर ब्रह्मदत्त चला गया।

४

कानपुर आकर जो पहिला काम पण्डित रामनाथ तिवारी ने किया, वह था विश्वम्भरदयाल से मिलना। उस समय विश्वम्भरदयाल अपने होटल में बैठे नाश्ता कर रहे थे और माताप्रसाद उनके सामने बैठे थे। विश्वम्भर-दयाल कह रहे थे, "यहां तक पहुंच गया हूं माताप्रसाद साहेब; जिस काम

को हाथ में उठाया, इतनी बड़ी उम्मीदों के साथ, उसे यहां तक ले आया। अब आगे क्या होगा ? उसकी कल्पना कर सकता हूं !" इसी समय नौकर ने पण्डित रामनाथ तिवारी के आने की सूचना दी।

विश्वम्भरदयाल राजा रामनाथ तिवारी का स्वागत करने के लिए बाहर गए और उन्हें कमरे में ले आए। तिवारीजी को बिठलाते हुए विश्वम्भर-दयाल ने कहा, "कहिए राजा साहेब ! क्या सेवा कर सकता हूं ?"

पण्डित रामनाथ तिवारी थोड़ी देर तक अपने सामने बैठे हुए आदमी को गौर से देखते रहे। एकहरे बदन का आदमी, चेहरा किसी कदर कुरूप, लम्बी नाक और चमकीली आंखें। पण्डित रामनाथ ने समझ लिया कि जो आदमी उनके सामने बैठा है, वह असाधारण बुद्धि का आदमी है और किसी हद तक जिद्दी तथा अपनी धुन का पक्का। जरा सँभलते हुए रामनाथ तिवारी ने बात आरम्भ की, "मैं आपसे प्रभानाथ के सम्बन्ध में बातें करने आया था !"

"हां-हां ! लेकिन आपको कष्ट उठाने की क्या जरूरत थी। पण्डित श्यामनाथ तिवारी से तो मैंने साफ़-साफ़ कह दिया था कि प्रभानाथ मेरे लड़के की तरह है, उस पर आंच न आने पावेगी !" मुस्कराते हुए विश्वम्भर-दयाल ने कहा।

"जी हां, आपकी मेहरबानी है ! लेकिन मैं आपसे स्पष्ट और काम की बातें करने आया हूं। आपको इसमें कोई एतराज तो न होगा ?" यह कह कर पण्डित रामनाथ तिवारी ने माताप्रसाद की ओर इस प्रकार देखा मानों उस आदमी की उपस्थिति में उन्हें बात कहने में संकोच हो रहा हो।

विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से कहा, "माताप्रसाद साहेब, आपको बाजार जाना था न ! देखिए मेरे लिए कुछ फल लाना न भूलिएगा !"

माताप्रसाद वहां से उठ कर चले गए। थोड़ी देर रुक कर रामनाथ ने कहा, "जी ! मैं यह दरियाफ्त करने आया था कि आप इस लड़के की जान की क्या कीमत चाहते हैं ?"

विश्वम्भरदयाल इस तरह के प्रश्न सुनने का आदी था। वह मुस्कराया, "वह कीमत क्या आप दे सकेंगे राजा साहेब ?—"

"आप बतलाइये तो सही—" रामनाथ ने कहा, "दस हजार, बीस हजार, एक लाख—कितना चाहते हैं आप ?

विश्वम्भरदयाल हँस पड़ा, "जी, आप मुझे गलत समझ रहे हैं राजा साहेब ! मैं पैसों का भूखा नहीं हूँ; आपकी कृपा से मैं भी बहुत बड़े सम्पन्न कुल का आदमी हूँ—पचास हजार—लाख मैं आसानी से खर्च कर सकता हूँ ! नहीं राजा साहेब—रुपये-पैसे में जान की कीमत समझ कर मुझसे बात करने आकर आपने गलती की !"

विश्वम्भरदयाल के इस उत्तर से रामनाथ सकपका गए, "फिर-फिर—" तिवारीजी आगे न कह सके; उनकी समझ में न आ रहा था कि अब क्या कहा जाय।

लेकिन इस अजीब मनोवैज्ञानिक परिस्थिति से विश्वम्भरदयाल ने उन्हें निकाल लिया, "मैं जानता हूँ कि आप क्यों आए हैं और क्या चाहते हैं ! आप आए हैं प्रभानाथ को छुड़ाने; और मुझे अफ़सोस है कि उसका जुर्म बड़ा संगीन है—वह जुर्म है ब्रिटिश सरकार को उलटने की कोशिश करना।"

"आप अच्छी तरह जानते हैं कि वह ब्रिटिश सरकार को नहीं उलट सकता, यह उसका लड़कपन था कि वह उन बागियों के गिरोह में शामिल हो गया !"

"जी हां, यह मैं जानता हूँ। लेकिन दूसरा जुर्म जो उससे भी ज्यादा संगीन है, यह है कि उसने या उसके साथी ने दो सिपाहियों की हत्या की है।"

"मिस्टर विश्वम्भरदयाल ! इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ !"

"आप मेरे यहां आए हैं राजा साहेब, और इसीलिए मैंने आपसे कहा

था कि आपके लड़के पर आंच न आवेगी। सिर्फ़ वह थोड़ी-सी मदद कर दे। और मैं आपसे वादा करता हूं कि मैं उस पर से हत्या का मामला भी हटा लूंगा !"

"कैसी मदद आप चाहते हैं ?" रामनाथ ने पूछा।

"जी, मैं सिर्फ़ इतना चाहता हूं कि वह अपने साथियों का नाम व पता बतला दे !"

विश्वम्भरदयाल की बात सुनकर पण्डित रामनाथ तिवारी थोड़ी देर तक मौन बैठे रहे, इसके बाद उन्होंने धीरे से कहा, "तो आप उसे मुखबिर बनाना चाहते हैं ?"

"जी...मुखबिर क्या, मैं एक तरह से इस बड़े काम में उसकी मदद चाहता हूं !" लड़खड़ाते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा।

रामनाथ उठ खड़े हुए, "मिस्टर विश्वम्भरदयाल ! आप प्रभानाथ से ऐसा काम कराना चाहते हैं जो उसके नाम पर ही नहीं, हम लोगों के नाम पर भी बहुत बड़ा कलंक होगा। जहां तक मेरा खयाल है, प्रभानाथ आप की यह शर्त किसी हालत में न मंजूर करेगा। क्या उसे बचाने का कोई दूसरा तरीका नहीं है ?"

पण्डित रामनाथ तिवारी के उठने के साथ विश्वम्भरदयाल भी उठ खड़ा हुआ था, "जी ! मैंने आपको सब से आसान तरीका बतलाया है राजा साहेब, और इस तरीके पर आपको तो कोई एतराज़ न होना चाहिए। आखिर मैं चाहता क्या हूं ? मुजरिमों को गिरफ्तार करना ! पीठ-पीछे वार करनेवालों को ढूंढ़ निकालना ! ये बड़े खतरनाक किस्म के मुजरिम हैं, इनको गिरफ्तार करने में मदद देना तो हरएक आदमी का कर्तव्य है !"

रामनाथ अच्छी तरह समझ गए कि विश्वम्भरदयाल से अधिक बात करना बेकार है, वे जानते थे कि उस पुलिस अफ़सर से वे पराजित हुए। और वे यह भी समझ गए थे कि विश्वम्भरदयाल उस समय शक्तिशाली

हैं। उन्होंने कहा, "देखिए ! इस मामले में आप अभी जल्दी न कीजिएगा, मैं गौर करूंगा।"

रामनाथ तिवारी को उनकी कार तक पहुंचा कर जब विश्वम्भरदयाल कमरे में लौटा, तब उसे अच्छा न लग रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि उसका दांव ठीक नहीं पड़ा। रामनाथ तिवारी की हिचकिचाहट से भरी मुद्रा में उसने कुछ ऐसी बात देखी, जिससे उसे एक प्रकार की निराशा हुई। उसने श्यामनाथ तिवारी को देखा था, और उसने देख लिया था कि श्यामनाथ तिवारी कमज़ोर आदमी है, भावुक और व्यक्तित्वहीन। और श्यामनाथ को पहिचान लेने के बाद उसे अपनी सफलता पर विश्वास हो गया था। लेकिन आज--रामनाथ से मिल कर, उनसे बातचीत करके उसका वह विश्वास डिग गया। प्रभानाथ श्यामनाथ का नहीं बल्कि रामनाथ का पुत्र है, विश्वम्भरदयाल को यह भी मालूम हो गया था।

माताप्रसाद ने बाजार से लौट कर देखा कि विश्वम्भरदयाल गुम-सुम कुर्सी पर बैठे कुछ सोच रहे हैं। मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए माताप्रसाद ने पूछा, "कहिए, राजा साहेब से क्या बातचीत हुई ?"

विश्वम्भरदयाल ने सर उठाया, "बहुत थोड़ी-सी बात हुई, नपी-तुली बात हुई और साथ ही जो बात हुई, वह मुझे अच्छी नहीं लगी !"

"उस बातचीत को अगर आप मुझे बतला दें तो कोई हर्ज तो न होगा ? मुमकिन है मैं आप की कुछ मदद ही कर सकूं !" माताप्रसाद ने कहा।

"आप शायद इस मामले में मेरी ज्यादा मदद न कर सकेंगे। लेकिन चूंकि मैंने इस मामले में आपको शामिल कर लिया है, इसलिए मैं आप से कोई बात न छिपाऊंगा। राजा साहेब मुझे रिश्वत देने आए थे !"

माताप्रसाद को इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, "कितनी रिश्वत दे रहे थे ?"

मुस्कराते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा, "अगर मैं चाहता तो एक लाख तक दे देते !"

"एक लाख !" माताप्रसाद की आंखें फैल गईं, "बड़ी लम्बी रकम है ! और आपने इनकार कर दिया ?"

"क्यों ? क्या आप समझते हैं कि मैं एक लाख पर बिक सकता हूं ?" विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद को कौतूहल की नजर से देखते हुए कहा, "तो फिर आप मुझे अभी तक नहीं पहचान सके माताप्रसाद साहेब ! मैं रुपयों का भूखा नहीं हूं। भगवान् की कृपा से मेरे पास बहुत कुछ है। मुझे चाहिए ताकत , ओहदा, इज्जत ! मैं इस क्रान्तिकारी-दल को ढूंढ़ निकालना चाहता हूं।"

"फिर ?" माताप्रसाद ने ऐसे स्वर में कहा मानों, उन्हें विश्वम्भरदयाल की महत्वाकांक्षाओं में कोई भी दिलचस्पी नहीं है।

"मैंने अपनी शर्त पेश की कि प्रभानाथ मुखबिर बन जाय। लेकिन इसमें रामनाथ तिवारी कुछ पशोपेश करते दिखलाई दिये।"

माताप्रसाद अब फूट पड़े, "आपने बहुत बड़ी गलती की ! एक मौका हाथ में आया था, वह निकल गया। लम्बी रकम हाथ लग रही थी। आपने अभी तो उस लड़के के बाप से बात की है, जब बाप इतना पशोपेश कर रहा है, तब लड़का यकीनन मुखबिर बनने से इनकार कर देगा। मैं आपसे कहे देता हूं कि आपने गलत रास्ता अपनाया है, और आप देखेंगे कि आप महज हवाई किले बना रहे हैं।"

विश्वम्भरदयाल उठ खड़े हुए, उनके मुख पर एक अजीब तरह की कठोरता आ गई थी, "क्या आप ठीक कह रहे हैं माताप्रसाद साहेब ? क्या वास्तव में इसमें मुझे असफलता मिलेगी ? नहीं, आप गलती करते हैं। मैंने उस लड़के को देखा है, गौर से देखा है। और मुझे यकीन है कि वह कमजोर दिल का है, कमजोर तबीअत का है ! क्या वह मौत का मुकाबला कर सकता है ? शायद ! लेकिन उसमें कमजोरी है, और उसकी कमजोरी

का मैं फ़ायदा उठाना चाहता हूं ! किस तरह से ? सवाल मेरे सामने यह है !"

५

जिस समय ब्रह्मदत्त उमानाथ से मिलने के लिए दयानाथ के बंगले में पहुंचा, उसने देखा कि दयानाथ अकेले ड्राइंग-रूम में बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। दयानाथ ने ब्रह्मदत्त को देखा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, पर दयानाथ वैसा का वैसा बैठा रहा। ब्रह्मदत्त ने दरवाजे पर रुक कर कहा, "माफ़ कीजिएगा दयानाथजी ! मैं उमानाथजी से मिलने आया हूं। उन्होंने मुझसे इस समय यहां मिलने को कहा था !"

"ओह ! क्षमा कीजिएगा—मैंने आपको देखा नहीं था।" दयानाथ ने ब्रह्मदत्त का स्वागत करने के लिए उठते हुए कहा, "आइए ! दरवाजे पर क्यों खड़े हैं ?"

"मुझे डर मालूम होता था कि कहीं आप मुझे कमरे से निकाल बाहर न करें !" हँसते हुए ब्रह्मदत्त ने कहा। कमरे में आकर वह सोफ़े पर पैर फैला कर बैठ गया, "क्यों दयानाथजी ? आप इतना अधिक चिन्तित क्यों हैं ?"

"क्या बतलाऊँ ब्रह्मदत्तजी ! आप जानते ही हैं कि पिताजी ने मुझे त्याग दिया है ! वे मुझसे इतना अधिक नाराज़ हैं कि कानपुर आकर वे होटल में ठहरे ! प्रभानाथ की गिरफ्तारी की मुझे खबर तक देने की जरूरत उन्होंने नहीं समझी ! मैं सोच रहा था कि आखिर यह सब क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है ?" और ब्रह्मदत्त ने देखा कि दयानाथ के मुख पर एक अजीब तरह की विवशता है !

दयानाथ की इस विवशता पर ब्रह्मदत्त को दयानाथ की ओर सहानुभूति हुई या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। उसने गम्भीरतापूर्वक कहा, "हां दयानाथजी ! दुनिया बड़ी विचित्र जगह है, और इस विचित्र जगह में बातें भी बड़ी विचित्र होती हैं। लेकिन यह संघर्ष—यह तो कोई नई चीज़ नहीं

है। मैं कहता हूँ कि अधिकांश मनुष्यों में यह संघर्ष रोज का किस्सा बन गया है। एक तरह से मैं तो यहां तक कह सकता हूँ कि एक साधारण आदमी का सारा अस्तित्व ही इसी संघर्ष में है। मैं जब अपने जीवन का अध्ययन करता हूँ; अपने अतीत पर मनन करता हूँ, वर्तमान को देखता हूँ, भविष्य की कल्पना करता हूँ, तब मुझे आश्चर्य होने लगता है कि मैं जिन्दा कैसे हूँ। दयानाथजी, मेरी सलाह तो यह है कि भावुकता को तिलांजलि देकर जिस प्रकार आपके सामने जीवन आता जाय, उसी रूप में आप उसे स्वीकार कर लीजिए।"

ब्रह्मदत्त ने जो बात कही थी, वह अपनी समझ से बड़े महत्त्व की बात कही थी, एक दार्शनिक सत्य की व्याख्या की थी। लेकिन दयानाथ उस बात को सुन कर झल्ला उठा। दयानाथ ने अपना दुखड़ा रोया था ब्रह्मदत्त से कुछ सहानुभूति प्राप्त करने के लिए, दर्शन-शास्त्र पर एक लम्बा व्याख्यान सुनने के लिए नहीं। उसने तीव्र दृष्टि से ब्रह्मदत्त को देखा और फिर उठ खड़ा हुआ, भीतर जाने के लिए। पर दयानाथ दरवाजे पर से उमानाथ का स्वर सुन कर रुक गया।

उमानाथ ब्रह्मदत्त से कह रहा था, "आ गए कामरेड ! माफ़ करना, मैं जरा देर से सोकर उठा।" और उसने नौकर को पुकार कर चाय और नाश्ता लाने का हुक्म दिया।

दयानाथ ने उमानाथ से पूछा, "उमा, क्या तुम दद्दुआ से आज मिलोगे ?"

"जी हां ! चाय पीकर बस वहीं जा रहा हूँ ! आप भी चलिए न !"

"नहीं उमा ! मेरा वहां जाना ठीक न होगा। तुम जानते ही हो कि दद्दुआ ने मुझे अपने यहां आने से मना कर दिया है !"

"यह ठीक है, लेकिन होटल में जाकर उनसे मिल लेने में क्या हर्ज है ? आखिर वे आपके पिता ही हैं, और उनके लिए यह एक बहुत बड़ी विपत्ति का समय है !" ब्रह्मदत्त ने दयानाथ से कहा।

"आप नहीं समझते ब्रह्मदत्तजी ! यह उनके ही लिए नहीं, मेरे लिए भी विपत्ति का समय है । प्रभा मेरा भी भाई है । लेकिन मेरे यहां रहते हुए भी दद्दुआ होटल में ठहरे । मैं कानपुर में मौजूद था, लेकिन प्रभानाथ की गिरफ्तारी की मुझे खबर तक देने से उन्होंने उमा को मना कर दिया था।" इसके बाद उसने उमानाथ से कहा, "नहीं उमा ! मैं नहीं जाऊंगा।"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "आप ठीक कहते हैं । मैं भी यही समझता हूं कि आपका वहां जाना ठीक न होगा।"

नाश्ता आ गया था और दोनों कामरेडों ने डट कर नाश्ता किया। इसके बाद उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा, "चलो कामरेड, अब चला जाय ! रास्ते में बातचीत होगी ।" फिर उसने दयानाथ से कहा, "बड़के भइया, आपकी कार मैं लिए जा रहा हूं । आपको कहीं जाना तो नहीं है ?"

"अभी तो नहीं, लेकिन जल्दी आ जाना । और बतलाना कि क्या-क्या हुआ ! मैं बहुत चिन्तित हूं ।"

उमानाथ ने चलते हुए ब्रह्मदत्त से कहा, "हां, तो मैं कह रहा था कि हम लोगों को अब अपना काम आरम्भ कर देना चाहिए । कानपुर के वर्तमान संगठन को मैं संतोषजनक नहीं समझता । जब मजदूरों के इस प्रमुख केन्द्र की यह हालत है, तब प्रान्त के अन्य स्थानों में क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मैं कर सकता हूं ।"

"जी हां, मैं आपसे सहमत हूं !" ब्रह्मदत्त ने उत्तर दिया, "जो काम हम यहां कर रहे हैं, उसमें हमें उत्साह नहीं, उमंग नहीं !"

"लेकिन मैं पूछता हूं कि यहां पर काम ही क्या हो रहा है ?" उमानाथ ने गम्भीरतापूर्वक पूछा, "कितने मजदूरों को दुनिया की गतिविधि का पता है ? कितने मजदूर अपनी वास्तविक स्थिति, अपने अभाव तथा अपने अधिकारों को समझते हैं ? कितने मजदूर शिक्षित हैं ? क्या यहां मजदूरों का कोई पत्र है ?"

"जी नहीं ! पत्र के लिए पूंजी की जरूरत होती है, और वह पूंजी हमारे पास नहीं है। फिर भला हम पत्र कैसे निकाल सकते हैं ? लेकिन मेरा खयाल है कि मजदूरों का एक पत्र होना अत्यन्त आवश्यक है !"

"मैं उस पूंजी का प्रबन्ध कर दूंगा। ब्रह्मदत्त जी ! पत्र का निकलना जरूरी है। आप अगले सप्ताह कानपुर के मजदूर-नेताओं की एक सभा बुला लीजिए। मैं और लोगों के सम्पर्क में आना चाहता हूं—उनसे मिलकर अपना एक कार्यक्रम निर्धारित करना चाहता हूं।"

"अच्छी बात है; मैं सभा का प्रबन्ध कराए देता हूं ! अगले रविवार को ठीक रहेगा न !"

"हां कामरेड !" कार उस समय तक मेस्टन रोड और चौक के चौराहे पर आ गई थी। कश्मीरी होटल, जहां उसके पिता ठहरे थे, सामने दिख रहा था। उमानाथ मुस्कराया, "अगर ब्रिटिश-राज्य के लिए कोई सबसे अधिक खतरनाक है तो मैं हूं; न बड़के भइया हैं जिनको जेल जाने का सार्टीफ़िकेट मिल चुका है और न प्रभा है, जिसकी फांसी की तैयारियां हो रही हैं।"

कार रुक गई और ब्रह्मदत्त के साथ उमानाथ उतर पड़ा। ब्रह्मदत्त ने कहा, "अच्छा कामरेड, अब मैं जाऊंगा; मैं आपसे परसों मिलूंगा।"

ब्रह्मदत्त को विदा करके उमानाथ होटल में पहुंचा।

उस समय पण्डित रामनाथ तिवारी पूजा से उठकर होटल के बरामदे में बैठे हुए मेस्टन रोड की भीड़ को देख रहे थे। उस समय वे न कुछ सोच रहे थे, न समझ रहे थे, वे केवल देख रहे थे—एकटक ! वे क्या देख रहे हैं, क्यों देख रहे हैं—इसका भी पता उन्हें न था।

विश्वम्भरदयाल से मिलने के बाद तिवारीजी किसी कदर हत-बुद्धि से हो गए थे। उन्होंने काम इतना कठिन न समझा था जितना उन्हें विश्वम्भर-दयाल से मिलने के बाद मालूम हुआ था। मुश्किल ही नहीं, उनके अन्दर से किसी ने कह दिया था, "काम असम्भव है !" और इस असम्भव शब्द ने उन्हें मर्माहत कर दिया था। शाम के समय जब विश्वम्भरदयाल के यहां

से वे असफल लौटे थे, उन्होंने श्यामनाथ से कोई बात नहीं की थी। सुबह से अभी तक श्यामनाथ से उनकी मुलाकात न हुई थी। उमानाथ जब रामनाथ के सामने पहुंचा, तो रामनाथ ने कहा, "उमा! श्यामू कहां है? ज़रा उसे बुलाना!"

श्यामनाथ अपने कमरे में उदास लेटे हुए थे! उमानाथ ने उनसे कहा, "काका! दद्दुआ आप को बुला रहे हैं!"

श्यामनाथ चौंक कर उठ खड़े हुए। उस समय उनका चेहरा मुर्झाया हुआ था, उनकी आंखें लाल थीं। रात भर उन्हें नींद न आई थी। रामनाथ ने पिछली रात उनसे बात नहीं की, इसी से वे समझ गए थे कि रामनाथ को काम में सफलता नहीं मिली। स्वयम् कुछ पूछने का उन्हें साहस न हुआ था। आज श्यामनाथ अपनी विवशता, अपनी निर्बलता, और अपनी कायरता बुरी तरह अनुभव कर रहे थे। उनका लड़का गिरफ्तार हो गया था, और उसे बचाने का उनके पास कोई उपाय न था। रात भर वे सोचते रहे कि क्या किया जाय, पर उन्हें उस विषम समस्या का कोई हल न मिल सका था।

सर झुकाए हुए श्यामनाथ रामनाथ के सामने बैठ गए। रामनाथ ने कहा, "श्यामू—कल शाम मेरी विश्वम्भरदयाल से जो बातचीत हुई, उससे मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि वह आदमी सख्त है और ज़िद्दी है। इसी से मैंने उससे ज्यादा बात नहीं की, क्योंकि मेरी बातचीत से मामला सुधरने की जगह बिगड़ सकता था। मेरा खयाल है कि उससे तुम्हें बातचीत करनी चाहिए।"

श्यामनाथ ने पूछा, "लेकिन आपसे क्या बातें हुईं?"

"क्या करोगे उन बातों को सुनकर, उनकी याद आते ही मेरा खून खौलने लगता है। उसने यह कैसे समझ लिया कि मेरा लड़का मुखबिर बनने पर राज़ी हो जायगा!" थोड़ी देर रुक कर उन्होंने फिर श्यामनाथ से कहा, "तुम्हीं उससे मिलो, संभल कर बातें करो। मुझे अधिक आशा तो नहीं है, लेकिन सम्भव है तुम्हें कुछ सफलता मिल जाय!"

"क्या ले-देकर कुछ काम नहीं चल सकता ?" श्यामनाथ ने पूछा।

"नहीं श्यामू—उस आदमी को पैसे का लोभ नहीं है। अगर उस आदमी के साथ कोई चीज़ काम कर सकती है तो वह है भावना !"

श्यामनाथ उठ खड़े हुए, "तो फिर मैं जा रहा हूं। लेकिन भइया, न जाने क्यों मुझे उस आदमी से घृणा हो गई है । मैं उसका मुंह नहीं देखना चाहता, उससे बात करना तो दूर रहा । उफ़ ! मैं नहीं जानता था कि वह आदमी इतना भयानक निकलेगा, नहीं तो मैं उसे उस दिन अपने घर में लाता ही नहीं ।"

"खैर, जो हो गया, वह हो गया । वह तुम्हारे बस की बात नहीं थी । अब जो तुम्हारे बस की बात है, वह करो !" रामनाथ ने अपने छोटे भाई को आश्वासन देते हुए कहा ।

इसी समय श्यामनाथ ने देखा कि माताप्रसाद उनके यहां चले आ रहे हैं । माताप्रसाद को अपने यहां आते देख कर श्यामनाथ के अन्दर आशा की एक लहर दौड़ गई । उन्होंने तपाक के साथ कहा, "आइए मुंशी माताप्रसाद साहेब ! कहिए, कैसे आना हुआ ? तशरीफ़ रखिए !"

बैठते हुए माताप्रसाद ने कहा, "मैंने सुना कि हुज़ूर कानपुर तशरीफ़ लाए हैं। लिहाज़ा मैंने सोचा कि हुज़ूर की हाज़िरी बजाता चलूं !"

"जी हां ! प्रभानाथ की गिरफ्तारी के सिलसिले में आया हुआ हूं।" श्यामनाथ ने कहा ।

"वह तो मुझे कल शाम को ही मालूम हो गया था अब राजा साहेब इस सिलसिले में डिप्टी साहेब से मिलने तशरीफ़ ले गए थे ।" अपनी आवाज़ थोड़ी-सी धीमी करते हुए माताप्रसाद ने कहा, "हुज़ूर खुद क्यों नहीं डिप्टी साहेब से मिलते ? मुमकिन है, कोई सूरत निकल आवे !"

"वहीं जाने की मैं तैयारी कर रहा था । क्या आप समझते हैं कि मेरे मिलने से कुछ काम बन सकेगा ?" श्यामनाथ ने थाह लेने के लिए पूछा ।

"मेरा तो खयाल है, गोकि डिप्टी साहेब कुछ अजीब तरह के आदमी हैं।"

६

विश्वम्भरदयाल मानों श्यामनाथ की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्होंने उठते हुए कहा, "आइए मिस्टर तिवारी।" और यह कह कर उन्होंने श्यामनाथ से हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया।

श्यामनाथ को जबर्दस्ती विश्वम्भरदयाल से हाथ मिलाना पड़ा। मजबूरी जो न करावे, वह थोड़ा। थोड़ी देर तक श्यामनाथ मौन बैठे रहे, फिर उन्होंने कहा, "मैं आप के यहां आ ही रहा था कि माताप्रसाद से मेरी मुलाकात हो गई। यह तो आप कयास कर ही सकते हैं कि मैं आप के यहां क्यों आया हूं!"

"जी हां! आप के बड़े भाई राजा साहेब भी कल मेरे यहां पधारे थे।" विश्वम्भरदयाल ने मुस्कराते हुए कहा, "देखिए मिस्टर तिवारी! आप जानते ही हैं कि इन क्रान्तिकारियों के उपद्रव आजकल बुरी तरह बढ़ रहे हैं, और इसमें हम पुलिसवालों की बड़ी बदनामी हो रही है। अभी कुछ दिन पहले जिला रायबरेली में एक सब इंसपेक्टर को गोली मार दी गई थी, और आज तक मुजरिमों का पता नहीं चला। इस वाकये में भी दो पुलिस के सिपाही जान से मारे गए।"

"यह तो मैं जानता हूं!" श्यामनाथ ने कहा, "लेकिन आपका मतलब क्या है?"

"मैं वही कह रहा था!" विश्वम्भरदयाल ने उत्तर दिया, "देखिये मिस्टर तिवारी, आप सरकार का नमक खाते हैं और एक जिम्मेदारी के ओहदे पर हैं। अपने लिए भी मैं यही बात कह सकता हूं! ऐसी हालत में हम दोनों का यह फ़र्ज है कि अपनी जिम्मेदारी पूरी करें, उन छिपे हुए, भयानक किस्म के मुजरिमों को ढूंढ़ निकालें, उन्हें सजा दिलवाएं। और

मैं समझता हूँ कि हम लोग यह काम प्रभानाथ के जरिए आसानी से कर सकते हैं !"

"यह किस तरह ?" विश्वम्भरदयाल का मतलब समझते हुए भी श्यामनाथ ने पूछा ।

"इस तरह कि वह अपने वालिद को व मुझे इन क्रान्तिकारियों का पता लगाने में मदद दे । आपका खान्दान प्रसिद्ध राजभक्त खान्दान है; प्रभानाथ के लिए यह एक बहुत आला मौका है कि वह अपनी राजभक्ति दिखलावे, वह आपका हाथ बटावे ।" विश्वम्भरदयाल कहता जा रहा था और श्यामनाथ के मुख के भावों को भी साथ-साथ पढ़ता जा रहा था, "बुरा न मानियेगा । प्रभानाथ जैसे आपका लड़का है, वैसे मेरा लड़का है । लेकिन क्या करूँ मजबूरी है ! मुझे सरकार के प्रति भी तो अपना कर्तव्य पालन करना है; और इस काम में आप का लड़का हम लोगों की सहायता कर सकता है ?"

"लेकिन यह काम प्रभानाथ कभी न करेगा---कभी न करेगा !" श्यामनाथ ने एक-एक शब्द पर इस प्रकार जोर देते हुए कहा, मानों वे स्वयं प्रभानाथ का यह काम पसन्द न करेंगे ।

विश्वम्भरदयाल को कुछ हँसी आ गई, लेकिन अपनी हँसी को दबाते हुए उसने कहा, "जी, मैं मानता हूँ कि इस काम में उसे हिचकिचाहट होगी, जब कि खुद आपको हिचकिचाहट हो रही है । वह यह समझेगा कि वह अपने साथियों के साथ दगाबाजी करेगा; और वही क्यों, ज्यादातर लोग यही समझेंगे । लेकिन अगर आप ध्यान से देखें तो आपके सामने यह साफ़ हो जायगा कि बुराई को दूर करने के लिए, बुराई को मिटाने के लिए हम जो कुछ करते हैं, वह पाप नहीं कहलाता, नीति कहलाती है । उस काम को हमें साधारण नैतिक नियमों से तो नहीं नापना चाहिए !"

श्यामनाथ ने विवशतापूर्वक कहा, "लेकिन मिस्टर विश्वम्भरदयाल, आप जरा सोचिए तो कि आप उससे क्या काम कराना चाहते हैं ?"

"वह तो मैंने आपको साफ़-साफ़ समझा दिया है !" विश्वम्भरदयाल ने कहा, "मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि इसके बाद मैं उस लड़के को ए० एस० पी० नामजद करा दूंगा—यह मेरा जिम्मा ! मिस्टर तिवारी ! कोरी भावुकता में पड़ जाना हम पुलिसवालों को शोभा नहीं देता !"

श्यामनाथ कभी भी अच्छे तार्किक नहीं रहे; विश्वम्भरदयाल ने जो तर्क दिए थे, वे उनके लिए अकाट्य थे। पर उनकी आत्मा कह रही थी कि प्रभानाथ से एक बहुत जघन्य काम करने को कहा जा रहा है। उन्होंने एक बार फिर प्रयत्न किया, "मिस्टर विश्वम्भरदयाल, मैं आपसे विनय करता हूँ कि आप और कोई दूसरा रास्ता बतलाइये ! आप अपनी इस शर्त पर मत अड़िए—मैं आपसे फिर कहता हूँ कि वह लड़का आपकी इस शर्त को किसी हालत में न मानेगा।" श्यामनाथ के स्वर में एक करुण विवशता स्पष्ट थी।

"आप कोशिश तो करके देखिए मिस्टर तिवारी ! मैं जानता हूँ कि वह राज़ी हो जायगा ! सिर्फ़ उसे अच्छी तरह समझाने की ज़रूरत है ! मैं उसे ख़ुद समझाता, लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मेरी बात नहीं सुनेगा, क्योंकि वह मुझे ग़ैर समझता है !"

"और अगर वह न माना ?"

"अगर वह न माना !" विश्वम्भरदयाल ने अपने मत्थे पर हाथ लगाते हुए श्यामनाथ के प्रश्न को दुहराया, "और अगर वह न माना ! तो मिस्टर तिवारी, मामला मेरे हाथ के बाहर है, क्योंकि इस मामले की खबर केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के पास पहुंच चुकी है। उस वक्त मामला अदालत के हाथ में होगा !"

इस उत्तर से श्यामनाथ तिलमिला उठे। वे उठ खड़े हुए, उस समय उनका मुख क्रोध से लाल हो गया था, "अच्छी बात है मिस्टर विश्वम्भर-दयाल—मैं जाता हूँ। आप जो चाहे करें, मैं समझ गया कि आपसे मेरा कुछ भी भला नहीं हो सकता। आपके यहां हम लोगों का दौड़ना, अपने को इतना नीचे गिराना बेकार था !" और श्यामनाथ चल दिए।

रामनाथ श्यामनाथ की प्रतीक्षा कर रहे थे। श्यामनाथ से सब बातें सुन कर उन्होंने कहा, "श्यामू ! वारदात तुम्हारे इलाके में हुई है, जितनी भी शहादत-पेश होगी, वह फ़तहपुर की होगी; तुम अपने इलाके को सँभालो जा कर, और मैं लखनऊ जा रहा हूँ—होम-मेम्बर से मिलने।

उसी दिन शाम के समय पण्डित रामनाथ तिवारी लखनऊ के लिए रवाना हो गए।

७

एकाएक खबर आई कि गांधी-अर्विन पैक्ट हो गया। दयानाथ को यह खबर उस समय मिली, जब वह कांग्रेस-कार्य-कर्ताओं के साथ अपने कमरे में बैठा हुआ भावी कार्यक्रम पर बातचीत कर रहा था। टेलीफ़ोन का रिसीवर रखते हुए उसने अपने इर्द-गिर्द बैठे हुए लोगों को यह खबर दी। सब लोग थोड़ी देर के लिए चुप हो गए। फिर दयानाथ ने एक मुस्कराहट के साथ कहा, "चलो ! झगड़ा खत्म हुआ !"

और उसी समय ब्रह्मदत्त ने कहा, "जो कुछ हुआ, वह बुरा हुआ। यह हमारी जीत नहीं, बल्कि हार हुई।"

मार्कण्डेय पास ही बैठा हुआ था। उसने कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो ब्रह्मदत्त !"

दयानाथ बिगड़ कर बोला, "क्यों ? इसमें ठीक क्या है ? मैं तो कहता हूँ कि इसमें कांग्रेस की विजय हुई। ब्रिटिश सरकार को कांग्रेस के आगे झुकना पड़ा, समझौता करने पर मजबूर होना पड़ा।"

"जैसा मजबूर होना पड़ा, वह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ" ब्रह्मदत्त ने जरा तेजी से कहा, "महात्मा गांधी राउण्ड टेबिल कानफ़रेन्स में जाएँगे—है न ऐसा ! और वहां एक से एक-प्रतिक्रियावादी हिन्दुस्तानी मौजूद हैं। स्पीचें होंगी, बहसें होंगी, और इस के बाद—टांय-टांय-फ़िश ! न कुछ होने का, न कुछ मिलने का।"

यह ब्रह्मदत्त का व्यक्तिगत विचार था, और अगर दयानाथ इस व्यक्तिगत विचार से असहमत था तो वह भी अपना व्यक्तिगत विचार प्रकट कर सकता था। लेकिन दयानाथ एकाएक बिगड़ उठा, उसने कहा, "तुम उतना ही सोच-समझ सकते हो, जितनी तुम्हें शिक्षा मिली है, उसके आगे सोचना-समझना तुम्हारे लिए असम्भव है !"

मार्कण्डेय ने उसी समय दयानाथ को टोका, "क्या कह रहे हो दयानाथ--तुम अपने शब्द वापस लो !"

लेकिन शब्द निकल चुके थे, और उन शब्दों का वापस आना ग़ैर-मुमकिन था। ब्रह्मदत्त ने तड़प कर उत्तर दिया, "वह शिक्षा जो दूसरों का रक्त चूसकर अर्जित किये गये धन की सहायता से तुम्हें मिली है, वह तुम्हीं को मुबारक हो ! उस शिक्षा के साथ मानवता का अभिशाप है ! वह शिक्षा, जिस पर तुम्हें इतना अभिमान है, जिसका तुम दिन-रात ढिंढोरा पीटा करते हो, कल्याणकारिणी हो ही नहीं सकती !"

दयानाथ का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा, "ब्रह्मदत्त ! तुमने मेरा अपमान किया है। लेकिन यह खैरियत है कि तुमने मेरे अतिथि की हैसियत से मेरा अपमान किया है !" और दयानाथ उठ खड़ा हुआ।

ब्रह्मदत्त भी उठ खड़ा हुआ, "मैंने तुम्हारा अपमान किया है, इसलिए कि मैं गरीब हूँ। और तुम जो अमीर हो, सब कुछ कह सकते हो, सब कुछ कर सकते हो, बिना किसी की भावना को ठेस पहुँचाए हुए--बिना किसी का अपमान किए हुए ! कितनी मजेदार बात है !"

मार्कण्डेय ने दयानाथ का हाथ पकड़ कर बिठला लिया, "दया ! तुम अपने को भूल रहे हो, तुम अपने आदर्श से गिर रहे हो। तुमने अनुचित बात कही, अपने अनौचित्य को स्वीकार करने के स्थान पर तुम अपनी बात पर अड़े हुए हो।"

ब्रह्मदत्त वहीं खड़ा था, और मार्कण्डेय ने दयानाथ से जो कुछ कहा, उससे ब्रह्मदत्त को एक तरह से संतोष हुआ। यह साबित हो गया था कि

गलती दयानाथ की थी, ब्रह्मदत्त की नहीं। दयानाथ ने झल्ला कर कहा, "लेकिन--लेकिन--मार्कण्डेय तुमने सुना कि ब्रह्मदत्त ने क्या-क्या कहा!"

"हां, ब्रह्मदत्त को वह सब कहने का पूरा अधिकार था, क्योंकि ब्रह्मदत्त को अहिंसा पर विश्वास नहीं। ब्रह्मदत्त की नैतिकता और तुम्हारी नैतिकता में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। अगर ब्रह्मदत्त की हिंसात्मक नीति को तुमने भी अपना लिया, तो तुम्हारा पवित्रता का वह सिद्धान्त, मानवता का वह आदर्श, जिसे तुम अपने जीवन में अपना चुके हो--वह सब कहां रह गया?"

मार्कण्डेय की पहली बात न ब्रह्मदत्त को शान्त करने के लिए जो कुछ भी प्रभाव उत्पन्न किया था, उसकी दूसरी बात ने उस सब पर पानी फेर दिया। ब्रह्मदत्त बुरी तरह भड़क उठा, "तुम्हीं लोगों को मुबारक हो यह तुम्हारा ढोंग--क्योंकि यह सब सिद्धान्त, यह सब नैतिकता, जिसकी तुम गला फाड़ कर दुहाई देते हो--इस सब को मैं कोरा ढोंग समझता हूं और खुले आम कहता भी हूं। तुम देवता बनो--मैं तो मनुष्य की हैसियत से कायम रहने में ही अपना गौरव समझता हूं!"

"काश कि तुम--तुम्हीं क्या, हम सब मनुष्य बन सकते ब्रह्मदत्त! हम सब में पशुता है, वही पशुता जिसे हम हिंसा कहते हैं। और मानवता के विकास के अर्थ होते हैं उस हिंसा को अपने से निकाल बाहर करना, उस पशुता को छोड़ देना। लेकिन मैं देखता हूं कि अपनी उस पशुता को कायम रखने पर तुम तुले हुए हो, यही नहीं, अपनी उस पशुता पर तुम्हें गर्व भी है!" मार्कण्डेय ने कहा।

ब्रह्मदत्त जोर से हँस पड़ा, "कायरता और नपुंसकता पर विश्वास करने वाले गुलामो! इनसान की शक्ल में भेड़-बकरियों की नस्लें पैदा करो--खूब पैदा करो! लो, मैं तो चला!" और ब्रह्मदत्त वहां से चलता बना। ब्रह्मदत्त तो उस कमरे से चला गया, लेकिन उसकी हँसी का ठहाका उस कमरे में गूंजता रहा।

इतनी कटु बातचीत के बाद, यह स्वाभाविक ही था, कि कांग्रेस की उस सभा में एक प्रकार की शिथिलता आ जाती। ब्रह्मदत्त के जाने के बाद धीरे-धीरे कांग्रेस के सभी कार्यकर्ता वहां से चले गए। अकेले दयानाथ और मार्कण्डेय वहां रह गए।

ब्रह्मदत्त की हँसी का ठहाका अब भी दयानाथ के कानों म गूंज रहा था—कठोर और कर्कश ! दयानाथ सोच रहा था—मौन ! मार्कण्डेय थोड़ी देर तक दयानाथ की इस गम्भीर मुद्रा को कौतूहल के साथ देखता रहा, फिर उसने दयानाथ का कंधा हिलाते हुए पूछा—"दयानाथ—क्या सोच रहे हो?"

दयानाथ मानों चौंक उठा। उसने कहा, "मार्कण्डेय ! ब्रह्मदत्त की बात सुनी ?"

"हां सुनी ! लेकिन उससे क्या ?"

"उससे क्या ?" दयानाथ के मत्थे पर बल पड़ गए, "उससे क्या?—मार्कण्डेय, बड़ी कठोर बात कह गया है वह चलते-चलते ! इनसान की शक्ल में भेड़-बकरियों की नस्लें। ठीक यही शब्द हैं उसके ! मार्कण्डेय—मैं सोच रहा हूं क्या वास्तव में उसकी बात ठीक है !"

"तुम क्या समझते हो ?" मार्कण्डेय ने मुस्कराते हुए पूछा।

"मैं क्या समझता हूं ? मार्कण्डेय ! जो कुछ मैं समझता हूं, उसे कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। इतने दिनों तक जिस सिद्धान्त को अपने जीवन का एकमात्र सत्य मान रक्खा है, यही नहीं, जिस सिद्धान्त को मैंने अपना अस्तित्व ही बना लिया है, वह कहीं मिथ्या न साबित हो जाय ! इसका मुझे डर लगता है, इसीलिए मैं सच कहता हूँ, उस पर सोचने-समझने की इच्छा नहीं होती, कायर की तरह उस प्रश्न को जबर्दस्ती अपने सामने से हटा देता हूं। फिर भी मार्कण्डेय ! जो कुछ सुनता हूं, उसका असर तो मुझ पर पड़ता ही है !"

दयानाथ की इस करुण मुद्रा से मार्कण्डेय गम्भीर हो गया। उसने गौर से दयानाथ के उतरे हुए चेहरे को देखा और फिर वह उठ खड़ा हुआ।

वह दयानाथ के सामने--ठीक सामने खड़ा हो गया, और दयानाथ के कंधों पर उसने अपने दोनों हाथ रख दिये। दयानाथ की नज़र से अपनी नज़र मिलाते हुए उसने कहा, "दयानाथ ! जो कुछ मिथ्या है, वह त्याज्य है। उस पर मोह करना अपने को धोखा देना है, अपने ही साथ विश्वासघात करना है। और इसलिए मैं तुमसे अनुरोध करूँगा कि तुम सोचो, ठीक तरह से सोचो और समझो ! बाहर की बातों का असर तुम पर इसलिए पड़ता है कि तुम्हारे अन्तर में अविश्वास है, निर्णय की कमी है। तुमने अपनी बुद्धि को पूर्ण विकास का अवसर नहीं दिया है। यह हिंसा और अहिंसा का प्रश्न --यही आज का एकमात्र प्रश्न है। यह याद रखना, दूसरों को सुधारने की प्रवृत्ति हिंसा है, स्वयं सुधरने की प्रवृत्ति अहिंसा है। अगर इस बुनियादी बात पर तुम्हें विश्वास हो सके, यदि तुम्हारी बुद्धि इसे स्वीकार कर सके, यदि तुम्हारी आत्मा इस बात को पूर्ण रूप से ग्रहण कर ले, तब दूसरों की बातों का असर तुम पर पड़ने के स्थान पर तुम्हारी बातों का असर दूसरों पर पड़ेगा, तब तुम्हारे अन्दर कमज़ोरी के स्थान पर बल और साहस आ जायगा।"

मार्कण्डेय की बात का असर दयानाथ पर पड़ा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। वह उठ खड़ा हुआ और मुस्कराया, "शायद तुम ठीक कहते हो मार्कण्डेय--मुझे आत्मविवेचन करना ही होगा।"

मार्कण्डेय के चले जाने के बाद दयानाथ अकेला रह गया। उस समय रात हो गई थी और नौकर ने कमरे की बिजली जला दी थी। दयानाथ वैसा ही बैठा रहा। वह उस समय तेज़ी के साथ सोच रहा था। उस समय उसकी हालत ठीक वैसी हो रही थी, जैसी बारात चले जाने के बाद लड़की के पिता की होती है। उसकी आत्मा में एक प्रकार की भयानक शिथिलता भर गई थी।

इधर कई महीने किस हलचल में बीते; ऐसी हलचल, जिसमें दयानाथ ने अपने को पूरी तौर से खो दिया था। और एकाएक वह हलचल खत्म हो गई। दयानाथ के सामने अब थी वास्तविकता--कठिन और कुरूप !

क्या से क्या हो गया ! आज दयानाथ मानों इस विषय पर विचार करने को कटिबद्ध हो गया था। नशा उतर जाने के बाद अर्धचेतन ख़ुमार में जिस प्रकार मनुष्य का मस्तिष्क धुंधला हो जाता है, ठीक, उसी तरह उस समय उसका मस्तिष्क धुंधला था। चीज़ों को ठीक तौर से देखने की क्षमता उसमें नहीं है, वह यह अच्छी तरह जानता था। लेकिन फिर भी वह जबर्दस्ती सोच रहा था !

"क्या से क्या हो गया !" यह केवल एक मीमांसा भर थी, लेकिन इस मीमांसा के अन्दर एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी था—"आगे चलकर क्या होनेवाला है ?" विगत शून्य का नाम है, लेकिन विगत की स्थिति भविष्य की कल्पना के साथ मिलकर एक समस्या बन जाती है। विगत अनुभव भविष्य का निर्माण-कर्त्ता होता है; और दयानाथ का विगत कटुताओं का एक बहुत बड़ा संग्रह था। उन कटुताओं से घिरा हुआ दयानाथ सोच रहा था।

उसने वैभव को ठुकरा दिया था, एक आदर्श को पाने के लिए। और मानों उस आदर्श का मूल्य चुकाने के लिए अकेला उसका वैभव ही काफ़ी न था, उसको अतिरिक्त मूल्य चुकाना पड़ा था, अपने घरवालों से सम्बन्ध-विच्छेद के रूप में। प्रभानाथ डकैती और हत्या के अभियोग में जेल में है, और इस विपत्ति के काल में भी उसके पिता ने उसे नहीं पूछा। उसके पिता ने उसे सदा के लिए शरीर के सड़े हुए अंग की भांति काट कर फेंक दिया। आज दयानाथ की क्या स्थिति थी ? उसका आदर्श उसे कहां तक बढ़ा सका था ? कानपुर-नगर में उसकी कितनी इज्जत थी ? जनता पर उसके प्रभाव का कितना स्थायित्व था ? जो बलिदान उसने किया था, उसका पुरस्कार क्या था और कैसा था ?

दयानाथ जानता था कि उसके विरोधियों की संख्या काफ़ी अधिक है। वह सोच रहा था, "आखिर मेरा इतना विरोध क्यों ? क्या मैं ईमानदार नहीं ? क्या मैंने बलिदान करने में कोई कमी की है ? क्या मैंने व्यक्तिगत

लाभ पर ध्यान दिया है ? और इतना होते हुए भी मेरा विरोध बहुत अधिक है, उग्र है और बढ़ता ही जा रहा है । आखिर लोग अकारण ही मेरा विरोध क्यों करते हैं ?"

और स्वयं दयानाथ ने ही उत्तर दिया, "गिरे हुए स्वार्थी और अशिक्षित आदमी ! यही लोग मेरा विरोध करते हैं ! यह ब्रह्मदत्त ! आखिर यह क्या है ? अशिक्षित और उद्धत ! इसकी ईमानदारी पर भी लोगों को शक है । फिर भी लोग उसको मानते हैं—उसकी हां में हां मिलाते हैं । आखिर उसमें कौन-सी योग्यता है ? उसने कौन-सा त्याग किया है ? कांग्रेस में आने के पहले उसकी आर्थिक स्थिति क्या थी, और आज क्या है ! किस कुल और समाज का वह आदमी है—उसकी संस्कृति कितनी, उसका चरित्र ही क्या ? फिर भी लोग उसे मानते हैं ! यह क्यों ? वह नेता क्यों बन गया—कैसे बन गया ?"

दयानाथ जोर से कह उठा, "क्या मेरा यह सब त्याग बेकार गया ?"

८

दयानाथ का त्याग वास्तव में बेकार गया या नहीं, यह नगर-कांग्रेस के सभापति के चुनाव से साबित होनेवाला था ।

कांग्रेस-कमेटी के सभापति के पद के लिए खड़े होने की इच्छा दयानाथ में जरा भी न थी, पर उसके दलवालों ने उसे उस पद के लिए खड़े होने को मजबूर किया । लाला रामकिशोर के इस्तीफ़े से विचित्र स्थिति पैदा हो गई थी । लाला रामकिशोर कानपुर के प्रमुख नागरिक थे, करोड़पति और मिल मालिक । कांग्रेस के भी वे बहुत बड़े कार्यकर्ता थे । लेकिन उस मूवमेंट में लाला रामकिशोर का जेल न जाना लोगों को बुरा लगा । लाला रामकिशोर का स्वास्थ्य अच्छा न था, और डाक्टरों ने—उनमें कानपुर के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता डाक्टर हीरालाल भी थे—लाला रामकिशोर को आगाह कर दिया था कि जेल का जीवन व्यतीत करने पर उनका हृदय-रोग उभड़ सकता

है। लेकिन जनता को लाला रामकिशोर के व्यक्तिगत जीवन से कोई दिलचस्पी न थी, उसने यही मतलब लगाया कि ऐन मौके पर वे अपने को बचा गए।

इसके अलावा समाजवादी-दल एक अरसे से लाला रामकिशोर के ख़िलाफ़ प्रचार करता रहा था। उस दलवालों का कहना था कि लाला रामकिशोर कांग्रेस में इसलिए हैं कि कांग्रेस-द्वारा पूंजीपतियों का भला हो सकता है। लाला रामकिशोर की मिलों में मजदूरों के साथ वही अन्याय तथा ज्यादतियां होती थीं, जो अन्य पूंजीपतियों की मिलों में मजदूरों के साथ होती हैं। और लाला रामकिशोर के जेल न जाने से इन वाम-पक्ष वालों का ज़ोर बढ़ रहा था।

दयानाथ लाला रामकिशोर की पार्टी का आदमी था। कांग्रेस के कार्य-कर्त्ता अभी तक दक्षिण-पंथ के लोग ही होते आए थे—और सम्भवतः उसका कारण था कि दक्षिण-पंथ के लोगों के पास पैसा था। पर अब परिस्थिति बदल रही थी, वाम-पंथ के आदमी आगे बढ़ रहे थे। उनको रोकना ज़रूरी था; और इसलिए लाला रामकिशोर की पार्टी ने दयानाथ को ढाल की तरह कानपुर-नगर-कांग्रेस-कमेटी के सभापति-पद के लिए खड़ा कर दिया। जनता जानती थी कि दयानाथ महान् त्यागी तथा निःस्वार्थ आदमी है।

लेकिन हवा बदल चुकी थी—रामकिशोर बुरी तरह बदनाम हो गए थे, और रामकिशोर के साथ रामकिशोर की पार्टी भी बदनाम हो चुकी थी। दयानाथ का व्यक्तित्व क्या उस हवा के रुख को बदल सकेगा? प्रश्न यह था!

इस प्रश्न का उत्तर मार्कण्डेय ने दयानाथ को अपनी सलाह के रूप में दिया, "दयानाथ! अब भी समय है। ब्रह्मदत्त से मिल कर बातें कर लो, हम समझते हैं कि उसको अपने पक्ष में करने से हमें बहुत बड़ी सहायता मिलेगी!"

उस पर दयानाथ ने कहा, "नहीं मार्कण्डेय! ब्रह्मदत्त से बात करना—उसकी खुशामद करना! इतना नीचे गिरने में मुझे विश्वास नहीं। मैं जानता हूं कि मुझे विजय मिलेगी।"

मार्कण्डेय हँस पड़ा, "दया, तुम गलती कर रहे हो। यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि तुम्हें सफलता मिलेगी ही !"

"क्या कहा ?" दयानाथ मानों आश्चर्य से चौंक-सा उठा, "क्या तुम समझते हो कि मेरी सफलता अनिश्चित है ? मार्कण्डेय, मुझे विश्वास नहीं होता तुम्हारी बात पर !"

"विश्वास करना होगा दया ! कल्पना-लोक से उतर कर हमें वास्तविकता का मुकाबला करना है। तुम शायद नहीं जानते कि लाला रामकिशोर के कारण हमारी पार्टी का बल बहुत घट गया है। फिर कांग्रेस में बहुत से नए-नए आदमी आ गए हैं और वे नए आदमी, जहां तक मैं समझता हूँ, हमारा साथ न देंगे !"

"लेकिन यह सवाल पार्टी का नहीं है, यह सवाल मेरा है मार्कण्डेय।" दयानाथ ने उत्तर दिया, "क्या तुम समझते हो कि लोग मेरे खिलाफ़ वोट देंगे ?"

"अगर लोग तुम्हारे खिलाफ़ वोट दें तो मुझे तो कोई आश्चर्य न होगा।" मार्कण्डेय ने सहज भाव से कहा।

दयानाथ का चेहरा तमतमा उठा, "तो फिर मार्कण्डेय ! मैं समझ लूंगा कि कांग्रेस बेईमानों और अयोग्य आदमियों का एक समूह-भर है !"

"और यह समझकर भी तुम गलती ही करोगे दयानाथ !" मार्कण्डेय ने थोड़ा-सा गम्भीर होकर कहा, "क्योंकि तुम्हें वोट देने के समय लोग तुम्हें वोट न देंगे, बल्कि तुम्हारी पार्टी को वोट देंगे। और तुम जानते ही हो कि तुम्हारी पार्टी किसी हद तक बदनाम हो चुकी है।"

"लेकिन मार्कण्डेय ! सभापति के पद के लिए मैं खड़ा हो रहा हूँ, व्यक्ति की हैसियत से ! जो लोग मुझे वोट नहीं देते, उन्हें मुझ पर विश्वास नहीं, मेरी नेकनीयती और ईमानदारी पर उन्हें शक है।"

मार्कण्डेय ने कहा, "दयानाथ, एक बात याद रखना—लोग वोट देने

आते हैं, वोट न देने नहीं आते हैं। तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हारे अलावा उन लोगों के सामने एक और भी आदमी है—और उस आदमी पर उन्हें अधिक विश्वास हो सकता है, उस आदमी को वे तुमसे अधिक पसन्द कर सकते हैं।"

"लेकिन मार्कण्डेय, मेरे मुकाबले जो आदमी खड़ा है, उसके सम्बन्ध में केवल तुम्हें ही नहीं, सब लोगों को यह मालूम है कि रुपये-पैसे के विषय में उसमें ईमानदारी की कमी है!"

"मैं मानता हूं दयानाथ! लेकिन तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम समर्थ हो, तुम्हारे सामने अभाव नहीं है और इसलिए तुम ईमानदार बने रह सकते हो। लेकिन इस बात से मुझे मतलब नहीं—जब तुमने अपनी बात उठाई है तब मैं उसी पर बात करूंगा। यह तो तुम जानते ही हो कि बहुत-से लोग तुमसे व्यक्तिगत-रूप से खिलाफ़ हैं!"

"हां, यह मैं मानता हूं।"

"और क्या तुमने कभी यह सोचा है कि यह क्यों? तुमने उनका कोई अहित नहीं किया, फिर वे लोग तुम्हारे खिलाफ़ क्यों हैं?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"हां मार्कण्डेय, मैंने इस पर बहुत सोचा। लेकिन मुझे इसका कोई उत्तर नहीं मिला। मुझे स्वयं आश्चर्य होता है कि आखिर ये लोग मेरे खिलाफ़ क्यों हैं। अभी तुम्हीं ने कहा है कि मैंने उनका कोई अहित नहीं किया, मैंने अपने जीवन में कोई ऐसा काम नहीं किया कि लोग मुझसे घृणा करें। फिर भी मैं कभी-कभी यह अनुभव करता हूं कि कुछ लोग मुझसे घृणा तक करते हैं।"

"तो मैं इसका कारण बतलाता हूं।" मार्कण्डेय ने कहा, "दयानाथ! तुममें अहम्मन्यता है, कठोर और कुरूप; और लोग तुम्हारी अहम्मन्यता बर्दाश्त नहीं कर सकते! तुम्हारी हर हरकत में, तुम्हारे हर काम में, दूसरे के साथ तुम्हारे बर्ताव में, तुम्हारी अहम्मन्यता का जबर्दस्त पुट रहता है और

अपनी उस अहम्मन्यता को तुम देख नहीं पाते, क्योंकि वह तुमसे पृथक् कोई चीज नहीं।"

दयानाथ कुछ देर तक चुपचाप मार्कण्डेय की इस बात पर सोचता रहा, फिर एक ठंडी सांस लेकर उसने कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो मार्कण्डेय! लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं! मैं वास्तव में अनुभव करता हूं कि अधिकांश मनुष्य ऐसे नहीं हैं जिनके साथ मैं बराबरी से मिल सकूं। उनमें बेईमानी है, उनमें बेवकूफी है, उनमें संस्कृति, शिष्टता और सभ्यता का अभाव है!" यह कहते-कहते दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "मार्कण्डेय! समझ में नहीं आता कि क्या करूं! आज तुमने एक बहुत कटु सत्य मेरे सामने रख दिया, जिसकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता। चुनाव बहुत नजदीक आ गया है, और इस चुनाव में मुझे सफलता प्राप्त करनी है—जिस तरह भी हो वैसे! जरा कोशिश करो!"

मार्कण्डेय भी उठ खड़ा हुआ, "दयानाथ, मैं तो केवल एक उपाय देख पा रहा हूं—वह है ब्रह्मदत्त से बातें करके उसे अपनी तरफ़ कर लेना!"

"ब्रह्मदत्त से मिलना, ब्रह्मदत्त की खुशामद करना! नहीं मार्कण्डेय, यह असम्भव है, मुझसे किसी हालत में न होगा। मैं ब्रह्मदत्त को जानता हूं, पतित और बेईमान आदमी! उससे मिलने में कोई फ़ायदा नहीं!"

"और मेरा खयाल है कि ब्रह्मदत्त के सम्बन्ध में आपकी धारणा बहुत गलत है बड़के भइया!" दयानाथ को उमानाथ के ये शब्द स्पष्ट-रूप से सुनाई पड़े।

९

"अरे उमा—तुम! कब आए? और ददुआ कहां हैं?" दयानाथ ने पूछा।

"ददुआ तो उन्नाव चले गए, लखनऊ में कोई सफलता नहीं मिली!"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "और इसलिए वे उन्नाव में ही रुक गए। मुझे प्रभा की पैरवी में काकाजी की मदद करने के लिए यहां भेज दिया है।"

"मेरे सम्बन्ध में भी कुछ कहा है ?" दयानाथ ने जरा हिचकिचाते हुए पूछा।

"जी...कुछ नहीं; शायद जल्दी में थे !" दबी जबान उमानाथ ने उत्तर दिया।

"हूं !" दयानाथ ने केवल इतना कहा, लेकिन उनके इस छोटे से 'हूं !' में एक असह्य पीड़ा थी। दयानाथ मौन हो गया, और उसकी आंखों के आगे एक भयानक सूनापन आ गया। मार्कण्डेय पास ही खड़ा था, उसने दयानाथ की उस अन्तर्वेदना को पढ़ लिया। उसने कहा, "दया ! साहस करो, अपने को सुस्थिर रक्खो ! साधना का मार्ग बड़ा कठिन है, उस मार्ग पर रत रहना ही तुम्हारे लिए इष्ट है। बड़ी विषम स्थिति में आ पड़े हो दयानाथ, यह तुम्हारे आत्मिक बल की परीक्षा का समय है। सँभालो—अपने को, जैसे भी हो सँभालो !" और यह कहकर मार्कण्डेय चला गया।

मार्कण्डेय की बात का असर दयानाथ पर पड़ा। उसकी चेतना और कर्मण्यता एकाएक जाग उठी; एक बार फिर वह अपने आपे में आ गया। उसने उमानाथ से कहा, "उमा ! मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मेरा इस समय क्या कर्तव्य है ! इतनी बड़ी विपत्ति के समय में पूछा तक नहीं जा रहा हूँ, जैसे मैं मर गया हूँ !"

उमानाथ मुस्कराया, "केवल दद्दुआ की नजर में ही बड़के भइया ! हम लोगों की नजर में नहीं। काका, मैं और प्रभा—हम सब आपके हैं, आप हमारे हैं। प्रभा पर जितना अधिकार दद्दुआ का है, उतना ही अधिकार आपका भी है। आप जो कुछ भी कर सकते हैं, कीजिए, यद्यपि इसमें मुझे बहुत कम आशा है कि आप वास्तव में कुछ कर सकेंगे।"

"क्यों ? मैं क्यों न कुछ कर सकूंगा ?" दयानाथ ने पूछा, "उमा ! मैं वकील हूँ—कानपुर-नगर का एक प्रमुख वकील; और जहां तक मैं समझता

हूं, प्रभा का मामला अब अदालत में आ गया है। ऐसी हालत में इस मामले में जो कुछ कोई कर सकता है, वह वकील ही कर सकता है !"

उसी दिन रात के समय पण्डित श्यामनाथ तिवारी भी फ़तहपुर से कानपुर आ गए। श्यामनाथ सीधे होटल पहुंचे, पर जब वहां उन्हें पण्डित रामनाथ तिवारी या उमानाथ के आने की सूचना न मिली तो वह दयानाथ के यहां आए।

उमानाथ ने श्यामनाथ को, लखनऊ में जो कुछ हुआ था, वह ब्यौरे-वार बतला दिया।

श्यामनाथ उमानाथ से सब बातें सुनकर कुछ देर सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने दयानाथ की ओर देखा, "दया ! अब क्या हो ? प्रभानाथ को किसी तरह बचाना ही होगा, वह तुम्हारा भाई है !"

दयानाथ ने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "काका ! वकालत छोड़ चुका हूं, लेकिन भाई को बचाने के लिए फिर वकालत करूंगा—जो कुछ मेरे बस में है, उठा न रक्खूंगा ! देश के अच्छे से अच्छे वकील को बुलाऊंगा। हां, पुलिस के गवाह तो आपके ही हाथ में हैं न !"

"हां दया ! मैंने उनसे बातें कर ली हैं और जहां तक मैं समझता हूं, वे अपना बयान बदल देंगे। कल मैंने उस कांस्टेबल को, जो मेरे बंगले में तैनात था, यहां बुलाया है, उससे बातें कर लेना !"

"तब फिर मामले में क्या रक्खा है ! मैं समझता हूं कि प्रभा के छूटने में कोई अड़चन न होगी, "उमानाथ ने कहा।

"तुम गलती करते हो उमा !" दयानाथ ने कहा, "काका के सामने ऐसी मुसीबतें खड़ी हो सकती हैं, जिनकी काका ने कभी कल्पना भी न की हो ! प्रभा के खिलाफ़ जुर्म बड़ा संगीन है, और साथ ही यह भी याद रखना कि क्रान्तिकारियों के मामले में सरकार पूरी-पूरी दिलचस्पी लेती है !"

यह बातें हो ही रही थीं कि मथाप्रसाद के आने की सूचना आई।

श्यामनाथ ने माताप्रसाद को वहीं बुलवा लिया। माताप्रसाद ने आते ही श्यामनाथ को लम्बा-चौड़ा सलाम किया, "हुज़ूर की कार इधर आते हुए दिख गई थी। सोचा, हुज़ूर को हाज़िरी देता चलूं।"

"आप की बड़ी मेहरबानी है! तशरीफ़ रखिए!" श्यामनाथ ने कहा, "कहिए, विश्वम्भरदयाल साहेब अभी यहीं हैं न?"

"जी हां—उसी होटल में हैं!"

"क्या हाल हैं उनके?"

"कुछ न पूछिए हुज़ूर! अब तो मुझसे भी भेद रखने लगे। अपनी ज़िद पर अड़े हुए हैं! अच्छा हुज़ुर—एक अर्ज़ करूं?"

"हां-हां! कहिए!"

गला साफ़ करते हुए माताप्रसाद ने कहा, "हुज़ूर! मामला तो हमी लोगों के हाथ में है। अगर विश्वम्भरदयाल साहेब को कोई सबूत ही न मिलने पाए! हुज़ूर ही तो फ़तहपुर के कप्तान हैं!"

श्यामनाथ ने माताप्रसाद को ध्यान से देखा। वह सोच रहे थे, कहीं यह आदमी भेद तो लेने नहीं आया है। लेकिन उनका अनुभव उनसे कह रहा था कि माताप्रसाद उनके साथ विश्वासघात नहीं करेगा। फिर भी कुछ संभलते हुए श्यामनाथ ने कहा, "मामला तो विश्वम्भरदयाल के हाथ में है माताप्रसाद साहेब! सरकार ने यह मामला उनके हाथ में सौंप दिया है। और जैसा विश्वम्भरदयाल साहेब चाहेंगे, वैसा करेंगे!"

माताप्रसाद मुस्कराए, "लेकिन हुज़ूर! हम लोग तो आपके आदमी हैं, और हमारे लिए आपकी आज्ञा सब कुछ है। जो कुछ आप कहेंगे, वही होगा।"

श्यामनाथ अब फूट पड़े, "माताप्रसाद! प्रभानाथ को बचाना है, जिस तरह भी हो, बचाना है—मैं तो सिर्फ़ इतना जानता हूं!"

"तो हुज़ूर, विश्वास रखिए—उसे बचाने की जी-जान से कोशिश करूंगा!" माताप्रसाद ने कहा, "आप मुझे अपना ही आदमी समझिए!"

"माताप्रसाद ! इसमें मेरी जो कुछ भी मदद करोगे, वह बेकार न जाएगी, यह तो तुम जानते ही हो !"

"हां हुजूर ! आप लोगों के आला खान्दान को और आप लोगों की उदारता को कौन नहीं जानता ! लेकिन उस सब की बात नहीं—सिर्फ़ हुजूर के ख़याल से यह सब करूंगा।"

माताप्रसाद इसी के लिए श्यामनाथ के पास आए थे। श्यामनाथ को एक और सहायक मिला।

लेकिन न माताप्रसाद को और न श्यामनाथ को इस बात का पता था कि उनका साबिका एक बहुत जबर्दस्त आदमी से पड़ रहा है। विश्वम्भरदयाल का व्यक्तित्व कितना प्रबल है, वह क्या-क्या कर सकता है, अगर इसका पता माताप्रसाद को होता, तो वह कभी भी ऐसी बात न कहते।

दूसरे दिन जब सुबह के समय माताप्रसाद विश्वम्भरदयाल के यहां पहुंचे, विश्वम्भरदयाल ने बड़े तपाक के साथ उनका स्वागत किया। माताप्रसाद को बिठलाते हुए विश्वम्भरदयाल ने पूछा, "कहिए माताप्रसाद साहेब ! पण्डित श्यामनाथ तिवारी के कैसे मिजाज हैं ! मुझसे तो बेहद नाराज होंगे !"

अपनी घबराहट दबाते हुए माताप्रसाद ने उत्तर दिया, "जी हुजूर ! कल रात में कप्तान साहब मिल गए थे तो उन्होंने मुझे बुला लिया था। बहुत ज्यादा फ़िक्र में हैं !"

विश्वम्भरदयाल मुस्कराया, "तो इसमें आपके हिचकिचाने की क्या जरूरत है माताप्रसाद साहेब ? वे आपके अफ़सर हैं, और अगर आप उनके बंगले में खुद-ब-खुद मिलने गए, तो इसमें हर्ज ही क्या है जो यह बात छिपाई जाय !" और इसके बाद विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से मुकदमे की बातचीत शुरू कर दी।

बातचीत खत्म हो जाने के बाद विश्वम्भरदयाल ने उठते हुए कहा,

"जहां तक मेरा खयाल है, आज शायद पण्डित श्यामनाथ तिवारी का फ़तहपुर से तबादिला हो जायगा।"

"कप्तान साहेब का आज तबादिला हो जायगा ?" माताप्रसाद चौंक उठे, "लेकिन उनके तबादिले की तो कोई बातचीत थी नहीं !"

विश्वम्भरदयाल ने उत्तर दिया, "माताप्रसाद साहेब ! यह मामला फ़तहपुर में हुआ है और हमें फ़तहपुर की शहादत चाहिए । मुजरिम का चचा फ़तहपुर का सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ़ पुलिस है, उसकी मौजूदगी में हमें फ़तहपुर से शहादत मिलने में कठिनाई होगी । इसी बात को खयाल में रखकर मैंने इंसपेक्टर जेनरल से उनका तबादिला करवा दिया है !"

"हुजूर ने मुनासिब ही किया !" माताप्रसाद ने दबी जबान उत्तर दिया ।

"जी हां, मेरा भी कुछ ऐसा ही खयाल है । इसके अलावा आज वह बँगले वाला कांस्टेबिल पण्डित श्यामनाथ के साथ कानपुर आने वाला था, नए सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस ने उसे भी रोक लिया होगा और उस पर कड़ी निगरानी बिठला दी होगी ! है न मजेदार बात !" और विश्वम्भरदयाल खिलखिला कर हंस पड़ा । लेकिन कितनी भयानक थी वह विश्वम्भरदयाल की हंसी—माताप्रसाद सर से पैर तक कांप उठे ।

१०

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड—तुम्हारे कहने के मुताबिक मैंने अब की रविवार को मीटिंग बुला ली है । सब लोग इकट्ठा होंगे । लेकिन मैं देखता हूं कि लोगों में जोश की कमी है ।"

"यह स्वाभाविक ही है कामरेड !" उमानाथ ने उत्तर दिया, "एक बड़ा मूवमेण्ट समाप्त हो जाने के बाद लोगों में शिथिलता आ ही जानी चाहिए ! लेकिन इस शिथिलता को दूर करना हमारा कर्तव्य है । साथ ही हम कोई मूवमेण्ट नहीं उठाने जा रहे हैं—हमारा मुख्य ध्येय होगा अपना

प्रचार करना—और उसके लिए यही उपयुक्त अवसर है !" थोड़ी देर तक रुक कर उमानाथ ने फिर कहा, "कम्यूनिज्म का साहित्य जो हिन्दी और उर्दू में छपवाने को मैंने तुमसे कहा था, उसका क्या किया ?"

"वह पुस्तिकाएं छप गई हैं और मिल-एरिया में बंट रही हैं । पुलिसवाले सरगर्मी के साथ तलाश कर रहे हैं कि ये पुस्तिकाएं निकलती कहां से हैं !" और ब्रह्मदत्त हंस पड़ा ।

उमानाथ मुस्कराया, "ठीक है । और कामरेड, तुम शायद कामरेड नरोत्तम को जानते होगे ! आदमी बड़ा उत्साही और काम का मालूम होता है !"

ब्रह्मदत्त की भृकुटियों में बल पड़ गए , "कामरेड नरोत्तम ! हां, मिला तो कई बार हूं, लेकिन उसके सम्बन्ध में मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं है । तुम्हारा मतलब क्या है ?"

"वह अभी यहीं आने वाले हैं ! काम को विस्तृत-रूप से चलाने में हमें अधिक से अधिक आदमियों की जरूरत पड़ेगी न ! कामरेड मारीसन ने कामरेड नरोत्तम से मेरा परिचय कराया था । उन्होंने यह भी कहा था कि नरोत्तम ने उन्हें बहुत काफ़ी मदद दी है । मैं समझता हूं कि बाहर के प्रचार के लिए हम कामरेड नरोत्तम को नियुक्त कर दें, आदमी शिक्षित और कर्मण्य है !"

ब्रह्मदत्त मुस्कराया, लेकिन उसकी मुस्कराहट किसी हद तक व्यंगात्मक थी, "जहां तक बाहर के प्रचार का सवाल है, मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि वह मेरा क्षेत्र नहीं है । लेकिन कामरेड, मैं तुम्हें एक बात से आगाह कर देना आवश्यक समझता हूं, नए और अनजाने आदमियों के सम्बन्ध में अच्छी तरह से छान-बीन कर लेनी चाहिए ।"

ब्रह्मदत्त के अविश्वास पर उमानाथ को हंसी आ गई । "ठीक कहते हो कामरेड ! मैंने कामरेड नरोत्तम की बाबत अच्छी तरह जानकारी हासिल कर

ली है ।" और उस समय उसे बाहर से एक आदमी की आवाज़ सुनाई दी, "क्या मिस्टर उमानाथ घर पर हैं ?"

"लो, कामरेड नरोत्तम आ गए !" कह कर उमानाथ कमरे के बाहर चला गया । बरामदे में एक नाटे कद का गोरा-सा युवक खड़ा था, सूट पहने हुए । उसकी आंखें चमकीली थीं और हाथ-पैर में एक अजीब तरह की चपलता । उमानाथ ने कहा, "आइए कामरेड नरोत्तम ! मैं आप के ही सम्बन्ध में कामरेड ब्रह्मदत्त से बातें कर रहा था ।" उमानाथ नरोत्तम का हाथ पकड़ कर कमरे में ले आया । "इनको तो आप जानते ही होंगे--ये हैं कामरेड ब्रह्मदत्त !"

नरोत्तम मुस्कराया, "नमस्कार कामरेड ब्रह्मदत्त ! हम लोग एक दूसरे को अच्छी तरह जानते हैं ।" उसने ब्रह्मदत्त से अपने नमस्कार का कोई जवाब न पाकर कहा, "आप लोग शायद किसी गम्भीर विषय पर बातें कर रहे थे ।" और यह कह कर वह बैठ गया ।

ब्रह्मदत्त एक शब्द नहीं बोला । वह ध्यान से कामरेड नरोत्तम को देख रहा था; एक तरह से ब्रह्मदत्त के देखने को असभ्यतापूर्वक घूरना भी कहा जा सकता था । नरोत्तम से वह केवल दो-चार बार मिला था, और प्रत्येक बार नरोत्तम ने उससे घनिष्टता बढ़ाने का प्रयत्न किया था । पर न जाने क्यों, ब्रह्मदत्त को नरोत्तम कभी पसन्द नहीं आया । शिष्ट, हँसमुख और सुसंस्कृत नरोत्तम को वह क्यों नहीं पसन्द कर सका, यह वह स्वयं न जानता था । नरोत्तम की चमकीली आंखों में उसे कुछ ऐसी चीज मालूम हुई, जिससे उसने नरोत्तम के निकट न आने में ही अपना कल्याण समझा । उसे कुछ ऐसा लगा, कि नरोत्तम में कुछ चीज है--छिपी हुई, बन्द ! नरोत्तम खुल कर मिलता था, हँसकर बात करता था, लेकिन ब्रह्मदत्त को ऐसा लगता था कि नरोत्तम का यह खुलकर मिलना, हँसकर बात करना—यह सब उसके अन्दरवाली किसी भयानक कुरूपता को छिपाने के लिए एक आवरण भर है !

उमानाथ ने बात छेड़ी, "तो फिर आपने तै कर लिया बाहर दूर करने के लिए !"

"जी हां—उसके लिए मैं एकदम तैयार हूं। मुझे यहां से कब जाना है ?"

"ऐसी कोई खास जल्दी नहीं—अभी कम से कम एक सप्ताह का समय आपके पास है। इस बीच में हम लोगों को अपना कार्यक्रम निर्धारित करना पड़ेगा।"

"जी हां ! लोग कहते हैं कि जल्दी का काम शैतान का ! हर काम करने के पहले खूब अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिए !" और नरोत्तम खिलखिला कर हंस पड़ा। "काम करने का प्लान भी तो बनाना है ?"

"नहीं, प्लान बनाने की कोई जरूरत नहीं, वह मेरे पास बना-बनाया मौजूद है। आपको उसी प्लान के मुताबिक काम करना होगा।" उमानाथ ने कहा।

नरोत्तम ने कहा, "जी हां—उसी प्लान के मुताबिक काम करूंगा। लेकिन क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि वह प्लान आपने तैयार किया है या आपको कहीं और से मिला है ?"

ब्रह्मदत्त कुछ चौंक-सा पड़ा, "यह सवाल क्यों ?"

नरोत्तम ने जरा संभलते हुए उत्तर दिया, "बात यह है कि अगर यह प्लान कामरेड उमानाथ ने तैयार किया है, तो उसमें हम लोगों की सलाह से कुछ रद्दोबदल किया जा सकता है। काम मुझको ही करना है न ! ऐसी हालत में अपनी कठिनाइयों के अनुसार उसमें कुछ परिवर्तन करना चाहूंगा।"

"और अगर यह प्लान कामरेड उमानाथ ने न बनाया हो तो ?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

नरोत्तम के उत्तर देने के पहिले ही उमानाथ बोल उठा, "कामरेड ब्रह्मदत्त ! आपको मैं फिर बतला देना उचित समझूंगा कि हिन्दुस्तान में

कम्यूनिस्ट पार्टी का मैं प्रमुख आदमी हूँ। मेरे ऊपर कोई नहीं है। यह प्लान मैंने बनाया है !"

उमानाथ का इतना अधिक खुल जाना ब्रह्मदत्त को अच्छा नहीं लगा। उसने फिर एक बार प्रयत्न किया, "तो फिर ठीक है ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप कामरेड नरोत्तम को अपना कार्यक्रम बतला दें और इन्हीं से एक प्लान बनवा लें, क्योंकि काम इन्हीं को करना है !"

नरोत्तम हँस पड़ा, "आप ठीक कहते हैं कामरेड ब्रह्मदत्त ! कामरेड उमानाथ, आप मुझे अपना प्लान दे दें और उसको मैं एक बार देख कर अध्ययन कर लूं। इसके बाद जो-जो परिवर्तन मुझे उसमें आवश्यक मालूम पड़ेंगे--उन्हें नोट कर लूंगा और आपसे उन पर परामर्श कर लूंगा !"

लेकिन उमानाथ को अहम्मन्यता उस समय तक सतह पर आ गई थी। दूसरों की यह मजाल कि वे उसके बनाए हुए प्लान पर अपनी कलम चलावें ! उसने तेजी से कहा, "कामरेड नरोत्तम ! जो प्लान मैंने बनाया है, वह बहुत सोच-समझ कर ! आप कार्यकर्त्ता हैं; बिना किसी बात पर शंका किये, बहस किये, काम करना--यह आप का कर्तव्य है। आप यह प्लान ले जाइए, इसका अध्ययन कर लीजिए, फिर आपकी समझ में जो बातें न आवें, उन्हें मैं आपको समझा दूंगा !"

और उमानाथ ने प्लान ड्रार से निकाल कर नरोत्तम को दे दिया।

११

नरोत्तम के चले जाने के बाद ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड--अगर बुरा न मानो तो एक बात तुमसे कहूँगा !"

"क्या बात है ?" आश्चर्य से उमानाथ ने पूछा।

"मेरी सलाह है कि तुम राजनीतिक मामले से सदा के लिए अपना हाथ खींच लो। तुम इन कामों के लिए नहीं बने हो !"

"क्या मतलब है तुम्हारा ?" उमानाथ ने जरा गरम होते हुए पूछा ।

"मेरा मतलब यह है कि जितनी असावधानी के साथ तुम काम करते हो, जिस लापरवाही के साथ तुम बात करते हो, उससे तुम किसी हालत में सफल नहीं हो सकते । यही नहीं, बल्कि मैं तो यहां तक कहूंगा कि तुम खुद खतरे के मुंह में फांद रहे हो और अपने साथियों को भी खतरे में ढकेल सकते हो ! तुम जानते ही हो कि कम्यूनिस्ट पार्टी पर सरकार की कड़ी नजर है । आज तुमने, एक अनजाने आदमी के सामने खुलकर, उस पर यह प्रकट करके कि तुम कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रमुख प्रतिनिधि हो, अदूरदर्शिता का परिचय दिया है !"

ब्रह्मदत्त की इस बात से उमानाथ निरुत्तर-सा हो गया । कुछ देर तक वह चुप सोचता रहा, फिर उसने कहा, "तुम ठीक कहते हो कामरेड ! नरोत्तम के सामने खुलकर मैंने शायद ठीक नहीं किया ।"

उसकी बात के तर्क को उमानाथ ने स्वीकार कर लिया, इस बात से ब्रह्मदत्त को प्रसन्नता हुई । उसने फिर कहा, "और उससे भी अधिक नासमझी का काम तुमने किया अपने हाथ से लिखा हुआ प्लान उसके हाथ में सिपुर्द करके ! बिना इस पर सोचे कि उस प्लान के सरकार के हाथ में पड़ जाने से तुम बड़े संकट में पड़ सकते हो !"

"उंह जाने भी दो ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि नरोत्तम ठीक तरह का आदमी है और वह मेरे साथ विश्वासघात नहीं करेगा !" लेकिन उमानाथ के शब्दों में चिन्ता की झलक साफ़ थी ।

इसी समय मार्कण्डेय के साथ दयानाथ ने कमरे में प्रवेश किया । मार्कण्डेय ने ब्रह्मदत्त को देखकर ही कहा, "नमस्कार ब्रह्मदत्तजी—कहिए, स्वास्थ्य कैसा है ?"

ब्रह्मदत्त ने अपने भुजदण्डों को ठीक तरह से देख-भाल कर उत्तर दिया, "नमस्कार मार्कण्डेयजी ! स्वास्थ्य आपकी कृपा से अच्छा है !"

मार्कण्डेय ने बैठते हुए अपनी बात जारी रक्खी, "बड़े मौके से मिल गए ब्रह्मदत्त ! मैं तुम्हें ढूंढ़ ही रहा था !"

ब्रह्मदत्त ने पूछा, "कहिए ! आप लोगों की क्या सेवा कर सकता हूं ?"

मार्कण्डेय का स्वर थोड़ा और मुलायम हुआ, "भाई, अब दयानाथ की लाज तुम्हारे हाथ में है। इस समय इन्हें तुम्हारी ही सहायता बचा सकती है।"

ब्रह्मदत्त मुस्कराया, "ओहो ! तो पण्डित दयानाथ को मेरी सहायता की आवश्यकता आ पड़ी ? लेकिन यह सहायता मुझसे पहले क्यों नहीं मांगी गई मार्कण्डेयजी ?"

उत्तर दयानाथ ने दिया, "इसलिए कि मैं समझता था कि मेरा विरोध न होगा, और अगर थोड़ा-बहुत विरोध हुआ भी, तो उसमें कोई दम न होगा !"

"क्यों ? क्या इसलिए कि दुनिया का सारा दम-खम आप में ही है दयानाथ जी ? लेकिन आपने अपनी ताकत का अन्दाज़ा लगाने में गलती की। आपके मुकाबले जो शिवरामजी खड़े हुए हैं, उनमें भी दम है !"

दयानाथ की भृकुटियां चढ़ गईं, "शिवराम ! ब्रह्मदत्तजी ! आप सब लोग अच्छी तरह जानते हैं कि शिवराम में ईमानदारी की कमी है। चन्दे की एक बहुत बड़ी रकम उनके नाम पर चढ़ी हुई है, जिसका उन्होंने अभी तक कोई हिसाब नहीं दिया है। यह तै है कि वह उस रकम का कोई हिसाब देंगे भी नहीं, क्योंकि हिसाब दे ही नहीं सकते। फिर भी मुझे आश्चर्य होता है कि लोग एक बेईमान आदमी का समर्थन कर रहे हैं !"

ब्रह्मदत्त हंस पड़ा, "बेईमान आदमी ? हां दयानाथजी, रुपये-पैसे के मामले में आप शिवरामजी को बेईमान कह सकते हैं। लेकिन दूसरी बातों में ? आपकी सारी नैतिकता रुपयों-पैसों की है। यही रुपया-पैसा आपकी उस नैतिकता का एकमात्र माप-तौल है। लेकिन इस रुपये-पैसे के आगे भी कुछ है...यह आप नहीं समझ सकते !"

इस बार मार्कण्डेय के हँसने की बारी थी, "इस रुपये-पैसे के आगे भी कुछ है ब्रह्मदत्त ! तुम यह बात कह रहे हो—और वह भी शिवराम के लिए ! मैं पूछता हूँ कि अगर रुपये-पैसे के ऊपर शिवराम किसी चीज़ को मानते होते तो जनता की उस रकम पर, जो उनके पास धरोहर के रूप में रक्खी हुई थी—हाथ न लगाते ! नहीं ब्रह्मदत्त—ग़लत कह रहे हो। न शिवराम के लिए रुपये-पैसे के ऊपर कोई चीज़ है और न तुम्हारे लिए !"

"यह आप क्या कह रहे हैं मार्कण्डेय भइया !" उमानाथ ने आश्चर्य से पूछा, "शिवराम कैपिटेलिस्ट है या बन रहा है, और इसलिए मैं उसके सम्बन्ध में यह माने लेता हूँ कि उसके लिए रुपये-पैसे से ऊपर कोई चीज़ नहीं है; लेकिन ब्रह्मदत्त तो कम्यूनिस्ट हैं। ब्रह्मदत्त के सम्बन्ध में आप यह कैसे कह सकते हैं ?"

मार्कण्डेय सँभल कर बैठ गया, "उमा ! तुम भी तो कम्यूनिस्ट हो न ! और मैं कहता हूँ कि ब्रह्मदत्त के लिए ही नहीं, तुम्हारे लिए भी रुपये-पैसे के ऊपर कुछ नहीं है ! अगर मेरी बात पर तुम्हें बुरा लगे तो माफ़ करना, लेकिन मैं अभी सारी मीमांसा किये देता हूँ। हां, अगर मैं गलती नहीं करता, तो तुम कम्यूनिस्ट समाज का निर्माण आर्थिक नींव पर मानते हो। है न ऐसा ?"

"आप ठीक कहते हैं !" उमानाथ ने उत्तर दिया।

"ठीक ! और अर्थ का दूसरा रूप है रुपया-पैसा। तो प्रत्येक कम्यूनिस्ट रोटी और पैसे के ऊपर ही प्रत्येक सामाजिक अंग का निर्माण मानता है। उसके लिए धर्म-कर्म-विश्वास—यह सब एक ढकोसला है, जिसे पैसेवाले सम्पन्न लोगों ने ग़रीबों और असमर्थों को धोखा देने के लिए, उन्हें बहला कर तथा फुसला कर उनका बेजा फ़ायदा उठाने के लिए बना रक्खा है। है न ऐसी बात ?"

"बिल्कुल ठीक !" उमानाथ ने तपाक के साथ कहा।

"तो जहां तक ज़िन्दगी पर कम्यूनिस्टों के दृष्टिकोण का सवाल है, वह

यही है जो एक पूंजीपति का है। न पूंजीपति रुपये-पैसे के ऊपर किसी चीज को मानता है, न कम्यूनिस्ट रुपये-पैसे के ऊपर किसी चीज को मानता है। भेद केवल इतना है कि जहाँ पूंजीपति इस बात को स्वीकार नहीं करता, वहां कम्यूनिस्ट इस बात को खुल्लम-खुल्ला स्वीकार करता है !"

"यह इसलिए कि पूंजीपति का इस बात को स्वीकार न करने में हित है !"

"ठीक ! इसलिए कि पूंजीपति के पास है—प्रचुरता के साथ है। और कम्यूनिस्ट के पास नहीं है। पूंजीपति समाज से छीनकर इस रुपये-पैसे को व्यक्ति में केन्द्रित करना चाहता है, वहां कम्यूनिस्ट चाहता है कि यह रुपया-पैसा व्यक्ति के हाथ से निकलकर समाज के पास चला जाय !"

"आप ठीक कहते हैं ! पूंजीपति और कम्यूनिस्ट में यह अन्तर बड़े महत्त्व का है। पूंजीपति अपने लिए जीवित रहता है, कम्यूनिस्ट समाज के लिए !"

"दूसरों के लिए जीवित रहना !" मार्कण्डेय ने इन शब्दों पर जोर देते हुए कहा, "दूसरों के लिए जीवित रहना—एक मनोवैज्ञानिक असत्य ! ऊपरी ढंग से, प्रचार के लिए यह चिल्ला कर कहा जाता है कि हम दूसरों के लिए जीवित रहते हैं, लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है। कोई भी व्यक्ति दूसरों के लिए नहीं जीवित रहता—प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जीवित रहता है। कम्यूनिस्ट दूसरों से लेने में, छीनने में विश्वास करता है, दूसरों को देने में नहीं। कम्यूनिस्ट में आत्म-बलिदान की भावना नहीं। वह अपने ऊपर अधिक से अधिक खर्च करने में विश्वास करता है। उसके आगे अभाव अथवा 'नहीं' का विकराल रूप है, और वह 'अभाव अथवा नहीं' का प्रथम केन्द्र अपने को मान कर काम आरम्भ करता है। और कम्यूनिज्म अभाव की प्रतिक्रिया भर है—इसके बाद कुछ नहीं !"

उमानाथ ने तड़प कर कहा, "मार्कण्डेय भइया ! आप यह बात याद रखिए कि दुनिया के सब से बड़े कम्यूनिस्ट वे लोग रहे हैं, जिन्हें मध्यवर्ग का पूंजीपति कहा जा सकता है, जिन्हें खाने-पहिरने का कभी कोई अभाव नहीं रहा है। इस सत्य को भुलाकर आप अपने भयानक असत्य को अपना रहे हैं !"

मार्कण्डेय हँस पड़ा, "यही सत्य तो, जो कुछ मैं कह रहा हूँ, उसका आधार है ! एक मजदूर ! वह वास्तविक कम्यूनिस्ट हो ही नहीं सकता ! सदियों से पिसते-पिसते उसकी आत्मा मर-सी चुकी है। वह न सोच सकता है, न समझ सकता है, अपने अभाव के रूप को देखने की उसमें क्षमता ही नहीं है। कम्यूनिस्टों में अधिकतर मध्यवर्ग के लोग ही हुए हैं, ऐसे लोग, जिनका दुनिया के घमण्डी पूंजीपतियों से मुकाबला हुआ और उनके मन में पूंजीपतिवर्ग के स्वार्थ, अभिमान और उच्छृंखलता के प्रति विद्रोह पैदा हुआ। जिन लोगों में पूंजीपति के भाग्य पर ईर्ष्या हुई, जिन्होंने लगातार यह सोचा, कि उन्हें वे सब सुविधाएँ क्यों नहीं मिलतीं, जो पूंजीपतियों को प्राप्त हैं। ईर्ष्या और ईर्ष्याजनित विद्रोह पर ही कम्यूनिज्म की नींव पड़ी है—यह याद रखना ! विद्रोह संतोष से नहीं होता, वह होता है अभाव से; और अगर अभाव से तुम इन साधारण चीजों को—यानी रोटी-कपड़े को समझते हो—तो तुम्हारा बड़ा गलत खयाल है !" मार्कण्डेय यह कहते-कहते उत्तेजित हो उठा, "उमानाथ ! क्या तुम यह बतला सकते हो कि दुनिया में किस कम्यूनिस्ट ने दूसरों की गरीबी से द्रवित होकर अपनी सम्पत्ति उनके लिए दान कर दी है ? तुम बता सकते हो कि किस कम्यूनिस्ट ने ऐयाशी, भोग-विलास छोड़े हैं, तुम बता सकते हो कि किस कम्यूनिस्ट ने त्याग किया है ?"

"दान, त्याग, दया ! मूर्खों के लिए बने हुए सिद्धान्त हैं—तुम इन पर विश्वास करो मार्कण्डेय भइया, लेकिन बुद्धिवादी कम्यूनिस्ट को इन पर विश्वास नहीं !"

"ठीक कहते हो उमानाथ ! यह चीजें जिनका मतलब है 'देना'—इन पर तुम्हें विश्वास नहीं। तुम्हारा सिद्धान्त है लेना—ठीक वही सिद्धान्त, जो पूंजीपति का है। कम्यूनिज्म एक तरह से पूंजीवाद से भी भयानक है, क्योंकि पूंजीवाद में जहां महज 'लेना' ध्येय है, वहां कम्यूनिज्म का ध्येय 'लेने' के साथ 'मारना और मिटाना' भी है। दूसरे शब्दों में कम्यूनिज्म पूंजीवाद की प्रतिक्रिया भर है; और साथ ही कम्यूनिज्म में पूंजीवाद की हिंसा की एक विनाशात्मक प्रतिहिंसा भी है, जो समाज के लिए कहीं अधिक भयानक है !"

उमानाथ ने आवेश में आकर कहा, "आपने बहुत गलत बात कह डाली मार्कण्डेय भइया ! कम्यूनिज्म की नींव 'लेने' पर अवश्य है, लेकिन वह 'लेना' स्वत्व और अधिकार के अन्तर्गत है । हम अपनी समर्थता पर विश्वास करते हैं—हम मनुष्यमात्र में पौरुष देखना चाहते हैं । हमारा सम्प्रदाय संघर्ष के युग का सम्प्रदाय है । दया और त्याग असमर्थों और अपाहिजों के लिए हैं—ये व्यक्तिगत चीजें हो सकती हैं, सामाजिक नहीं। दया और त्याग व्यक्ति के लिए भले ही कुछ हों, समाज के लिए यह दया और त्याग अनैतिक है, समाज के लिए आत्महत्या है । कम्यूनिज्म समाज का सत्य है और चूंकि व्यक्ति समाज का भाग है, इसलिए व्यक्ति के लिए लाजिमी है कि वह समाज के सत्य को अपनावे !" और उसी समय ब्रह्मदत्त ने कहा, "मैं तो यह कहता हूं कि रूस की ओर देखो ! क्या से क्या हो गया है ! प्रत्येक व्यक्ति सुखी है, प्रत्येक व्यक्ति सम्पन्न है। दुनिया के उत्पीड़ितों के लिए, भेड़-बकरियों की तरह पिसनेवाले कायर मजदूरों और किसानों के लिए रूस ने नवजीवन का संदेश दिया है !"

दयानाथ ने मुस्कराते हुए पूछा, "क्या वास्तव में रूस का हरएक आदमी सुखी है, सम्पन्न है, सन्तुष्ट है ? क्या वास्तव में रूस ने अपने यहां से अभाव को निकाल फेंका है ?"

"हां ! हां ! रूस महान् है !" ब्रह्मदत्त ने सामने पड़ी हुई सेंटर टेबिल पर हाथ पटकते हुए कहा ।

"और मैं कहता हूं कि तुम बिना जाने-बूझे, सोचे-समझे, रूस के नारे लगा रहे हो । तुम रूस के इतने बड़े गुलाम हो, कि उसकी बुराइयां तुम्हें नजर आ ही नहीं सकतीं !" दयानाथ ने उत्तेजित होकर कहा ।

मार्कण्डेय ने दयानाथ का हाथ पकड़कर सचेत किया, "दया ! फिर तुम अपने ऊपर से अधिकार खो बैठे ! यह तुम्हें इस तरह उत्तेजित हो जाना शोभा नहीं देता !"

लेकिन दयानाथ की बात का असर पड़ चुका था। ब्रह्मदत्त ने उठते

हुए कहा, "जहां हमारे विचारों का इस तरह अपमान किया जाता है, जहां हमें इस तरह गालियां दी जाती हैं, वहां बैठना गलत है। अच्छा कामरेड उमानाथ, मैं आपसे फिर कभी मिलूंगा !"

१२

पण्डित श्यामनाथ तिवारी को तार-द्वारा अपने तबादिले की खबर मालूम होने पर धक्का-सा लगा। जिस समय मिस्टर राबर्टसन उनसे चार्ज लेने आए, वे कानपुर जाने की तैयारी कर रहे थे। उन्हें यकीन नहीं हो रहा था कि यह क्या हो रहा है, लेकिन सरकारी आज्ञा थी और उन्हें चार्ज देना ही पड़ा। चार्ज देकर पण्डित श्यामनाथ तिवारी इंसपेक्टर जेनरल पुलिस से मिलने के लिए इलाहाबाद चले गए।

इन्सपेक्टर जेनरल पुलिस ने उन्हें बतलाया कि उनका तबादिला भारत-सरकार के आदेशानुसार किया गया है। उसने श्यामनाथ के साथ पूरी हमदर्दी जाहिर की। उसी समय श्यामनाथ ने एक लम्बी छुट्टी ले ली।

इलाहाबाद से श्यामनाथ तिवारी उन्नाव पहुंचे। जिस समय श्यामनाथ रामनाथ के यहां पहुंचे, वीणा रामनाथ तिवारी को अखबार सुना रही थी। अपने बड़े भाई के सामने पहुंचते ही श्यामनाथ रो-से पड़े, "भइया— सर्वनाश हो गया !"

"क्या बात है ?" रामनाथ ने घबराकर पूछा।

"फ़तहपुर का चार्ज मुझसे आज सुबह ले लिया गया। भइया—जो कुछ भी मैं प्रभा को बचाने के लिए कर सकता था, अब न कर सकूंगा।"

रामनाथ थोड़ी देर तक एकटक अपने छोटे भाई की ओर देखते रहे, इसके बाद उन्होंने अपनी आंखें शून्य में गड़ा दीं। कुछ रुककर उन्होंने धीरे से कहा, "श्याम ! तुम्हें नियति पर विश्वास है ?"

श्यामनाथ मर्माहत-से मौन रहे।

रामनाथ ने कुछ देर तक श्यामनाथ के उत्तर की प्रतीक्षा करके कहा, "नियति का चक्र चल रहा है श्यामू ! एक बहुत बड़ी ताकत हमारे ख़िलाफ़ है। जरा सोचकर और समझकर हमें उस ताकत का मुकाबला करना पड़ेगा, बहुत सँभल कर ! एक कदम भी गलत पड़ा और विनाश अवश्यंभावी है। कहीं हम हार न जायें, इसका ख्याल रखना पड़ेगा !" और अनायास ही रामनाथ उठ खड़े हुए, मानों उनका दम घुट रहा हो। उस समय वे कह रहे थे, अपने ही से, "कहीं हम हार न जायें—हार न जायें ! नहीं, हारना असम्भव है !" और वे उस समय बरामदे के बाहर निकलकर खड़े हो गए। अमावस्या की रात घिर आई थी—अमावस्या के उस गहरे अन्धकार में उन्होंने अपनी आंखें गड़ा दीं। "हे भगवान् ! क्या मुझे पराजित होना पड़ेगा ? तुम चाहते क्या हो ? तुम्हारे विरुद्ध लड़ना !—इतना बल मुझमें नहीं है ! मुझे बल दो मेरे भगवान् !"

उस रात पण्डित रामनाथ तिवारी को नींद नहीं आई। उनकी समझ में न आ रहा था कि प्रभानाथ को किस प्रकार बचाया जाय। उनकी हरएक चाल गलत पड़ रही थी, हर जगह उन्हें असफलता मिल रही थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि नियति उनके साथ युद्ध कर रही है, और नियति ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वह उन्हें पराजित करेगी ही।

सुबह उन्होंने श्यामनाथ से कहा, "श्यामू ! कानपुर जाकर प्रभा की पैरवी का इन्तजाम करो ! इस बीच में मैं सोचूंगा कि क्या किया जाय !"

पर मानों श्यामनाथ के प्राणों में बल ही न रह गया हो ! बड़े करुण स्वर में उन्होंने कहा, "भइया ! आप कानपुर चलिए ! मुझसे कुछ न हो सकेगा ! अब आप का ही सहारा है !"

"अच्छी बात है—मैं चलता हूं !"

दूसरे दिन श्यामनाथ के साथ रामनाथ कानपुर के लिए रवाना हो गए। रामनाथ ने एक बँगला किराए पर ले लिया और उसी में वे उतरे। उन्हें

मालूम था कि उमानाथ दयानाथ के यहां ठहरा है, श्यामनाथ तिवारी को उन्होंने उमानाथ को बुलाने को भेजा।

श्यामनाथ जब दयानाथ के घर पहुंचे, उमानाथ घर पर न था। दयानाथ कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के साथ अपने चुनाव की तैयारी में लगे थे। श्यामनाथ के आते ही उन्होंने उठ कर उनके चरण छुए और जब दयानाथ को पता लगा कि रामनाथ ने दूसरा बंगला किराए पर ले लिया है तब उन्होंने मर्माहत होकर कहा, "तो काका! बात यहां तक पहुंच गई है! दद्दुआ ने इस तरह मुझे छोड़ दिया!"

श्यामनाथ ने इस पर केवल इतना कहा, "दया! तुम तो जानते ही हो बड़के भइया को!"

दयानाथ ने उत्तर दिया, "हां काका, मैं जानता हूं! लेकिन उनके साथ आप सब लोगों ने—सब लोगों ने...!" और दयानाथ आगे कुछ न कह सके; उनका गला रुंध गया।

एक क्षण के लिए श्यामनाथ विचलित हो उठे। उन्होंने दयानाथ का हाथ पकड़ लिया, "दया! मुझे क्षमा करो! मैं जानता हूं कि तुम्हारे साथ जो अन्याय हो रहा है, उसमें मैं भी सम्मिलित हूं। लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि अपनी इच्छा के विरुद्ध! मैं अपने आपे में नहीं हूं!"

छठा परिच्छेद

१

उमानाथ कह रहा था, और उसके सामने बैठे हुए दस आदमी गौर से सुन रहे थे, "ये सारी भावनाएं, यह धर्म-कर्म, यह दया, यह प्रेम, यह त्याग !—यह सब का सब एक ढकोसला है, जिन्हें समर्थों ने असमर्थों को बहकाने के लिए, धोखा देने के लिए बनाया है । ये जितनी भावनाएँ हैं, उनका रूप मनुष्य की सामर्थ्य अथवा असमर्थता के साथ बदलता रहता है । समाज के नियमों का निर्माण शासक-वर्ग के व्यक्तियों-द्वारा हुआ है, और यही शासक-वर्ग समाज का शोषक-वर्ग है, जिसने अपनी सुविधा के लिए, अनन्त काल तक शोषितों को अपना शिकार बनाए रखने के लिए, यह सब धर्म, कर्म, दया, करुणा का जाल बिछाया है । इनकी दुहाई देना बहुत बड़ी छलना है और जन-समुदाय को इस छलना [illegible] बचाना पड़ेगा ।

"अपने यहां के ही पूंजीपति बनिये को लो—वह बहुत बड़ा धर्मात्मा बनता है । उसने मंदिर बनवाए हैं, उसने धर्मशालाएँ बनवाई हैं । उसने अस्पताल खोले, उसने स्कूल खोले । वह गंगा-स्नान करता है, वह निरामिषभोजी है । और उसके बाद उसका वास्तविक रूप देखो ! मनुष्य का खून चूस कर वही पूंजीपति पनपता है, उसके ही शोषण के कारण लाखों आदमी भूखों तड़प कर मर जाते हैं । अपने स्वार्थ के लिए वह झूठ बोलता है, दूसरों को धोखा देता है । और साथ ही लोगों की आंखों में धूल झोंकने के लिए वह खुले हाथों दान करता है !

"मैं पूछता हूं कि यह राष्ट्रीयता है क्या ? यह राष्ट्रीयता एक ढकोसला है, जिसका पूंजीपतियों ने अपने स्वार्थ-साधन के लिए निर्माण किया है । इस

राष्ट्रीयता के नाम पर लाखों, करोड़ों आदमी अपनी जानें दे देते हैं। लेकिन भला किनका होता है? पूंजीपतियों का!

"कांग्रेस इन्हीं पूंजीपतियों की संस्था है और गांधी इन पूंजीपतियों का प्रतिनिधि है! सत्याग्रह में जेल जानेवालों की संख्या पर ध्यान दो, और तुम्हें स्पष्ट हो जायगा कि उन लोगों में अधिकांश मध्यवर्ग के वे लोग हैं, जिन्हें पूंजीपतियों ने जेल जाने के लिए प्रोत्साहित किया है, पूंजीपति लोग समय-समय पर धन से जिनकी सहायता करते रहते हैं। इस सत्याग्रह को चलानेवाले देश के पूंजीपति हैं। और अब आप सब लोग पूछ सकते हैं 'कि देश के पूंजीपति इस स्वतंत्रता-संग्राम में क्यों दिलचस्पी ले रहे हैं?"

"इस स्वाभाविक प्रश्न का उत्तर ही हमारे सिद्धान्त की, हमारे समुदाय की, हमारी नीति की सब से बड़ी और अकाट्य दलील है। आप लोग यह याद रखिए कि जन-समुदाय न स्वतंत्रता के रूप को जानता है, न स्वतंत्रता के मूल को—और यह बात केवल हिन्दुस्तान के जन-समुदाय पर ही लागू नहीं है। यह बात दुनिया के प्रत्येक स्वतंत्र अथवा परतंत्र जन-समुदाय पर लागू है। उत्पीड़ित, दलित और अशिक्षित जन-समुदाय केवल राज्य से ही शासित नहीं है, वह पूंजीवाद अथवा उच्चश्रेणीवाद का गुलाम है। मजदूर को अपने मालिक के, किसान को जमीन्दार के, इशारों पर नाचना पड़ता है। उस मजदूर अथवा किसान की सारी नैतिकता, उसका हंसना-गाना, उसका धर्म-कर्म—यह सब का सब पूंजीपति के चंद चांदी के टुकड़ों पर बिक चुका है। उसका सारा अस्तित्व उस पशु का-सा अस्तित्व है, जो मालिक के यहां पलता है, उसका अन्न खाता है, उसका असबाब ढोता है। और इसलिए जन-समुदाय की स्वतंत्रता के प्रति उपेक्षा स्वाभाविक ही है। मैं यह मानता हूं कि विभिन्न देशों के जनसमुदाय में राष्ट्रीयता की एक झूठी और घातक भावना भर दी गई है, पर यह सब पूंजीपतियों ने तथा उच्च श्रेणीवालों ने जन-समुदाय को बेवकूफ बनाकर अपना स्वार्थ-साधन करने के लिए किया है। और इसीलिए मैं कहता हूं कि जन-समुदाय में स्वतंत्रता के लिए वास्तविक उत्साह होना असम्भव है। वह तो इतना जानता है कि उसे अनन्त काल

तक गुलामी करनी ही पड़ेगी—अपने मालिक की; वह मालिक चाहे हिन्दुस्तानी हो, चाहे अँगरेज हो !

"देश की स्वतंत्रता से लाभ होगा केवल पूंजीपति को । आज अँगरेज पूंजीपति अपने साम्राज्यवाद की सहायता से हमारे देश का सारा व्यवसाय अपने हाथ में किए हुए है । वह हमारे देश के व्यवसाय को पनपने नहीं देता । इसका अर्थ यह है कि हमारे देश का पूंजीपति उतना मुनाफ़ा नहीं कर सकता, जितना अँगरेज पूंजीपति कर लेता है । और इसीलिए आज हिन्दुस्तानी पूंजीपति का यह स्वार्थ है कि हिन्दुस्तान स्वतंत्र हो, जिससे वह बिना रोक-टोक देश के जन-समुदाय को उत्पीड़ित और शोषित कर सके, जिससे वह भेड़-बकरी के समान हिन्दुस्तान के जन-समुदाय को अपना गुलाम बना सके ।

"और इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस राष्ट्रीयता की लड़ाई में हमें, हम मजदूरों को, हम किसानों को, न कोई दिलचस्पी हो सकती है, न कोई दिलचस्पी होनी चाहिए । हमें पूंजीपतियों से लड़ना है, हमें संगठित होकर श्रेणीवाद का विनाश करना है—तभी हमें वास्तविक स्वतंत्रता मिलेगी !"

"लेकिन यह सम्भव किस प्रकार है ?" एक आदमी ने पूछा ।

उमानाथ ने उत्तर दिया, "यह विश्व-क्रान्ति-द्वारा सम्भव है !"

"और विश्व-क्रान्ति कैसे सम्भव है ?"

"रूस-द्वारा !" उमानाथ ने कहा, "रूस विश्व-क्रान्ति की आयोजना कर रहा है, हमें उसके लिए तैयार होना चाहिए । और इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह राष्ट्रीयता, यह स्वराज्य की लड़ाई—यह सब बेकार है । मेरे मत में तो यह हम लोगों के हितों के लिए किसी अंश तक हानिकारक है । अभी इस परतंत्रता की हालत में तो हम सब हिन्दुस्तान के निवासी—हम मजदूर, किसान, मध्यवर्ग के लोग और पूंजीपति—ब्रिटेन के खिलाफ़ रूस की सहायता कर सकते हैं, और इसलिए कम से कम हिन्दुस्तान में विश्व-क्रान्ति का काम आसान हो जायगा, लेकिन यदि एक बार हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता मिल

गई और देश के मजदूर तथा किसान एक बार देश के पूंजीपतियों के शिकंजे में पूरी तौर से कस गए, तो याद रखिएगा, उस कल्याणकारी भावी विश्व-क्रान्ति के समय रूस का विरोधी एक जबर्दस्त दल हिन्दुस्तान में तैयार हो जायगा।"

"इसके माने तो यह हुए कि जब तक रूस विश्व-क्रान्ति न करे, तब तक हम हिन्दुस्तानियों को ब्रिटेन की गुलामी करनी चाहिए, और खास तौर से तब, जब विश्व-क्रान्ति का न कोई निश्चित समय है, न उसकी कोई निश्चित रूप-रेखा है !" ब्रह्मदत्त ने कहा।

"रूप-रेखा मौजूद है, लेकिन वह गुप्त है—उसे मैं प्रकट नहीं कर सकता। और जरा आप लोग चीजों पर ठीक तौर से गौर करें। जैसा मैं कह चुका हूँ, राष्ट्रीयता एक छिछली और धोखे की चीज है, हमारी समस्या राष्ट्रीय समस्या नहीं है, हमारी समस्या वर्गवाद की अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। दुनिया भर के मजदूर-किसान उत्पीड़ित हैं, दुनिया भर के पूंजीपति मौज करते हैं। इसलिए हमें पूंजीवाद के खिलाफ़ युद्ध करते रहना है। हमारा युद्ध एक दिन का नहीं है, एक वर्ष का नहीं है, इस युद्ध की अवधि एक लम्बी अवधि रहेगी। इस युद्ध में हमें कुशल लोगों का नेतृत्व चाहिए, और वह नेतृत्व हमें रूस से ही मिल सकता है। रूस की जो नीति है वह हमारी नीति होनी चाहिए। और जितनी जल्दी हम विश्व-क्रान्ति के लिए तैयार हो सकते हैं, उतनी ही जल्दी विश्वक्रान्ति होगी। यह याद रखिए कि यह समाजवादी-दल अकेले रूस में नहीं है, अकेले हिन्दुस्तान में नहीं है, यह समाजवादी-दल सारी दुनिया में फैला है और सारी दुनिया के मजदूर और अन्य शोषित लोग रूस की अध्यक्षता में, रूस के पवित्र नेतृत्व में, इस विश्व-क्रान्ति के लिए तैयार हो रहे हैं !"

२

उमानाथ के इस व्याख्यान का प्रभाव वहां बैठे हुए अधिकांश आदमियों पर पड़ा, और जिस समय उमानाथ वहां से निकला, एक नवयुवक ने

उससे कहा, "कामरेड उमानाथ ! मैं आपको बधाई देता हूं कि आपने हम लोगों को वास्तविक स्थिति समझा कर हमारी आंखें खोल दीं। मैं चाहता हूं कि मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूं !"

"आप आज-कल क्या करते हैं ?" उमानाथ ने पूछा।

"आज-कल मैं बेकार हूं !" उस नवयुवक ने उत्तर दिया, "पिछले साल मैंने बी० ए० पास किया था; आगे पढ़ नहीं सकता। क्योंकि घर की हालत बहुत खराब है; और अभी तक लाख कोशिश करने पर कोई नौकरी नहीं मिली। और नौकरी भी कैसे मिले ? नौकरी मिलने के लिए होनी चाहिए सिफ़ारिश। हर एक बड़े आदमी के भाई-भतीजे, नाते-रिश्तेदार हैं। पहले उन्हें नौकरी मिलेगी या मुझे !"

उमानाथ मुस्कराया, "ठीक कहते हो ! अच्छा, अगर मैं तुमसे यह कहूं कि तुम एम० ए० पढ़ो तो उसमें तुम्हें कोई आपत्ति होगी ?"

"एम० ए० मैं कैसे पढ़ूं ! मैं कह चुका हूं न कि घर की हालत बहुत खराब है !"

"इसकी चिन्ता मत करो। तुम्हारी पढ़ाई का खर्च मैं बर्दाश्त करूंगा। तुम्हारा काम होगा युनिवर्सिटी में रह कर विद्यार्थियों में समाजवाद का प्रचार करना। समाजवाद पर अधिक से अधिक पुस्तकें लिखी गई हैं—वह पूरा साहित्य मैं दूंगा। उसे तुम पढ़ डालो, और उस साहित्य का दूसरे विद्यार्थियों में प्रचार करो ! हमें आवश्यकता है मजदूरों का संगठन करने के लिए पढ़े-लिखे निर्भीक नौजवानों की। और ऐसे नौजवानों की कमी नहीं है, जिन्हें पग-पग पर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन लोगों को संगठित करना आसान होगा। इसके अलावा इन नेक लोगों को विश्व की समस्याओं से परिचित भी कराया जा सकेगा।"

उस समय तक ब्रह्मदत्त उमानाथ के पास आ गया था। उमानाथ ने उस युवक से कहा, "तुम मुझसे फिर कभी मेरे घर पर मिलना, मैं तुम्हारा सब प्रबन्ध कर दूंगा।"

'मुखबिर' शब्द से पण्डित रामनाथ तिवारी तिलमिला उठे । अपने को सँभालते हुए उन्होंने कहा, "मुखबिर नहीं, सरकारी गवाह बनने पर । एक यही तरीका है कि जिससे उसकी जान बच सकती है !"

"लेकिन उनकी जान बचने के माने होंगे कम से कम छः जानों का जाना। उस हत्या में छः आदमी और थे । उसके अलावा क्रान्तिकारी-दल में करीब तीस आदमी और हैं, और अगर प्रभा ने उनका नाम बतला दिया तो उन लोगों को कालेपानी तक की सजा हो सकती है ।"

रामनाथ सँभलकर बैठ गए—उन्होंने गौर से वीणा को देखा, "तुम—तुम यह सब कैसे जानती हो ? क्या तुम भी क्रान्तिकारी-दल में हो ?" और वीणा के उत्तर देने के पहले ही वे उठ खड़े हुए, "अब समझा—अब समझा कि प्रभा ने तुम्हें उन्नाव क्यों बुलाया था—अब समझा कि एक बंगाली लड़की से उसकी इतनी घनिष्ठता क्यों थी, अब समझा !"

रामनाथ की इस मुद्रा से वीणा डरी नहीं, सहमी नहीं; उसने स्थिर-भाव से कहा, "आप ठीक समझे—लेकिन मैं आपसे पूछना चाहती हूं कि प्रभानाथ जो कुछ कर रहे हैं, क्या उचित कर रहे हैं ? क्या आप उसे उचित समझते हैं ?"

रामनाथ उत्तेजित हो उठे, "बिल्कुल उचित कर रहा है वह ! तुम्हारी जान खतरे में है, तुम्हारे दोस्तों की जान खतरे में है—इसकी चिन्ता प्रभानाथ क्यों करे—इसकी चिन्ता हम लोग क्यों करें ? जो जैसा करेगा, वैसा भोगेगा—भोगें—मरें—छः नहीं, छः सौ आदमी मरें—वे कीड़े हैं, हमें उनकी चिन्ता क्यों हो ! जाओ यहां से, इसी समय मेरे घर से निकल जाओ !" रामनाथ चिल्ला उठे ।

"इस तरह चिल्लाना आपको शोभा नहीं देता—मैं स्वयं जा रही हूं। विश्वासघातियों के घर का अन्न खा कर मैंने अपने को अपवित्र कर लिया है—इसका प्रायश्चित्त करना होगा न !"

"विश्वासघाती !" रामनाथ वीणा की तरफ़ क्रोध से बढ़े, "क्या कहा? विश्वासघाती ?"

वीणा ने इस समय विकराल रूप धारण कर लिया था, "हां--पतित, कीड़ों से भी गए-बीते--विश्वासघाती ! इतने आदमियों ने प्रभा पर विश्वास किया था--आज उस विश्वास को वह तोड़ रहा है । तुम लोग बड़े स्वाभिमानी, बड़े उत्तम आचरण के आदमी बनते हो। लेकिन मैं कहती हूं कि तुम विश्वास को तोड़नेवाले, तुम अपने घनिष्ट मित्रों को दगा देनेवाले हो । तुम उन लोगों की हत्या करनेवाले--तुम कीड़ों से भी गए बीते हो--तुम शैतान हो।"

रामनाथ से अब न रहा गया, बढ़कर उन्होंने वीणा के मुंह पर एक तमाचा मारा। उस तमाचे से वीणा गिर पड़ी। उसे घसीट कर रामनाथ ने दरवाजे के बाहर कर दिया। दरवाजे पर से वीणा उठी, उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा, "विश्वासघाती ! विश्वासघाती !" और वह वहां से चली गई।

रामनाथ ने वीणा को रोका नहीं, उन्होंने उससे कुछ कहा नहीं; वे चुपचाप दरवाजे पर खड़े रहे। उनके कानों में रह-रह कर "विश्वासघाती !" शब्द सुनाई पड़ रहा था।

आज पहली बार रामनाथ तिवारी ने एक स्त्री पर हाथ उठाया था, आज पहली बार उन्होंने आकस्मिक उत्तेजना-वश अपना विवेक खो दिया था। रामनाथ ने वीणा पर जो प्रहार किया था, वह इसलिए कि वीणा ने रामनाथ पर एक भयानक प्रहार किया था--ऐसा प्रहार, जिसे वह संभाल न सके थे। वीणा चली गई थी--लेकिन उसके प्रहार का असर रामनाथ पर बढ़ता ही जा रहा था।

"विश्वासघाती !" प्रभानाथ के लिए दुनिया इस भयानक शब्द का प्रयोग करेगी। और प्रभानाथ को यह विश्वासघात करने को प्रेरित किया गया है। रामनाथ कमरे में पागल की भांति टहलने लगे।

रामनाथ की सारी अहम्मन्यता--उनका सारा आत्म-गौरव उस समय तिलमिला उठा था, इतना कड़ा प्रहार किया था वीणा ने ! वह मनुष्य,

जिसने कभी झुकना नहीं जाना, जिसने दबना नहीं जाना—आज उसे एक स्त्री विश्वासघाती कह कर चली गई ! दरवाज़े पर आकर रामनाथ फिर रुके । बंगले के दूसरे भाग का दरवाज़ा बन्द होने का शब्द उन्हें सुनाई दिया—वे उधर गए । वीणा कमरे के बाहर खड़ी थी और रामनाथ के कमरे की ओर देख रही थी । रामनाथ को देखते ही उसने अपना मुंह फेर लिया ।

रामनाथ उसके पास पहुंचे । उन्होंने वीणा का हाथ पकड़ लिया, "वीणा—मुझे क्षमा करना जो मैंने तुम पर प्रहार किया—लेकिन तुमने मेरी आत्मा पर कितना कठिन प्रहार किया है, यह तुम न समझ सकोगी !"

वीणा चुप रही ।

रामनाथ ने कहा, "इतनी रात में तो यहां से कोई गाड़ी नहीं मिलेगी ! कहां जा रही हो ?"

इस बार वीणा ने उत्तर दिया, "जहां जा रही हूं, वहां गाड़ी पर चढ़ कर नहीं जाया जाता ददुआ ।"

रामनाथ चौंक उठे, "क्या कहा ? आत्महत्या करोगी ?"

वीणा फूट पड़ी, "अपने और जिसे मैंने अपना सब कुछ मान लिया था, उसके पाप का प्रायश्चित्त करूंगी—अपने प्राण देकर ! इस शरीर के बन्धन से मुक्त होकर आत्मा शायद जेल के सींखचों के अन्दर पहुंच सके—और तब एक बार मैं उनसे यह जघन्य काम करने को रोकूंगी, एक बार वीर बन कर अपनी दुर्बलता पर विजय पाने को उत्साहित करूंगी ददुआ !"

रामनाथ ने कमरे का दरवाज़ा खोला, वीणा को अन्दर भेजते हुए उन्होंने कहा, "यह सब तुम्हें नहीं करना होगा । प्रभा ने जो दुर्बलता दिखाई है, वह क्षणिक हो सकती है । कल मैं उससे मिलने कानपुर जा रहा हूं !"

५

श्यामनाथ को विदा करके जब उमानाथ ड्राइंग-रूम में पहुंचा, उस समय मार्कण्डेय सोफ़ा पर लेटा हुआ था । उमानाथ थोड़ी देर तक अनिश्चित-सा

दरवाजे पर खड़ा रहा, फिर वह मार्कण्डेय के पास कुर्सी पर बैठ गया। "सुना मार्कण्डेय भइया ! पुलिस मेरे पीछे भी लग गई है। आज एक सब-इंसपेक्टर मुझसे पूछताछ करने आया था।"

मुस्कराते हुए मार्कण्डेय ने कहा, "तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? हिन्दुस्तान में, और हिन्दुस्तान में ही क्यों, दुनिया में पैसों पर बिकने-वालों की कमी नहीं है। चारों तरफ़ जासूसों का एक जाल बिछा है—तुम किसी पर विश्वास नहीं कर सकते। जहां विश्वास किया, वहीं गए !"

मार्कण्डेय उठकर बैठ गया, "फिर ! क्या किया तुमने ?"

"अभी तो मैंने उस सब-इंसपेक्टर का मुंह बन्द कर दिया है; लेकिन कहावत है न 'मौत ने घर का रास्ता देख लिया।'"

"उमा ! तुम जो काम कर रहे हो, वह काफ़ी ज्यादा खतरे से भरा है—क्या तुम यह काम छोड़ नहीं सकते ?"

"नहीं मार्कण्डेय भइया—यह काम मेरा जीवन बन चुका है। इस काम को छोड़ने के माने होंगे अपने को, अपने व्यक्तित्व को, नष्ट कर लेना।"

"फिर क्या करोगे ?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"यही तो समझ में नहीं आता। एक बहुत बड़े संगठन की जिम्मेदारी मैंने ले ली है। मेरे यहां आने से पहले कामरेड मारीसन के हाथ में यह काम था। इसके बाद मेरी नियुक्ति हुई, क्योंकि अंगरेज होने के कारण कामरेड मारीसन पुलिस की निगाह में चढ़ गए थे। इसके अलावा हिन्दुस्तानी न होने के कारण वे यहां ठीक तौर से काम भी नहीं कर पाते थे। मैंने आते ही काम बढ़ा दिया है।"

कुछ सोचकर मार्कण्डेय ने कहा, "अच्छा उमा ! रूस जो हिन्दुस्तान में यह सब कर रहा है, इसमें क्या रूस का कोई हित है या केवल विश्व-कल्याण के लिए ही वह यह सब कर रहा है ?"

"केवल विश्व-कल्याण के लिए !" उमानाथ ने अपने शब्दों पर जोर देते

हुए कहा, "रूस सारी दुनिया के दलित और उत्पीड़ित वर्ग का एकमात्र प्रतिनिधि है। रूस सारी दुनिया में साम्य स्थापित करना चाहता है!"

"मेरा ऐसा ख्याल है कि इस काम में रूस को काफ़ी रुपया खर्च भी करना पड़ता होगा!"

"निश्चय! बिना रुपये के कहीं कोई काम चलता भी है?" उमानाथ ने उत्तर दिया, "लेकिन हम कम्यूनिस्ट—हम लगन के आदमी हैं। कम से कम खर्च में अधिक से अधिक काम करना हमारा ध्येय है मार्कण्डेय भइया!"

"मुझे तुम हिन्दुस्तानी कम्यूनिस्टों और तुम्हारी बुद्धि पर तरस आती है!" यह कह कर मार्कण्डेय जोर से हँस पड़ा।

चौंककर उमानाथ ने कहा, "यह आप क्या कह रहे हैं?"

मार्कण्डेय ने उत्तर दिया, "उमा! यह याद रखना, कि जो पैसा देकर तुम लोगों को खरीद रहा है, उसका इस खर्च करने में एक बहुत बड़ा स्वार्थ होना अनिवार्य है!"

"हम लोगों को खरीद रहा है? हम लोगों को कौन खरीद सकता है? हम अपने विश्वासों पर दृढ़ हैं—हम एक सिद्धान्त के लिए लड़ रहे हैं—हम पूंजीपतियों के भयानक शत्रु हैं। खरीदा-बेचा जाता है पूंजीवाद में!" उमानाथ ने उत्तेजित होकर कहा, "कांग्रेस के अन्दर जो पूंजीवाद का नग्न नृत्य हो रहा है, उस माप से हम कम्यूनिस्टों को तौलनेवालों की बुद्धि पर हमें तरस आना चाहिए मार्कण्डेय भइया!"

मार्कण्डेय कांग्रेस पर किये गये इस प्रहार को पी-सा गया। उसने कहा—उमा! तो तुम्हारा ख्याल है कि रूस महान् देश है!"

"हां—रूस महान् देश है। रूसवालों ने ही पूंजीवाद को अपने यहां से निकाल बाहर करने का साहस किया है। रूस ही इस समय दुनिया का नेतृत्व करने के योग्य है।"

मार्कण्डेय उठ खड़ा हुआ, "उमानाथ ! अंगरेज़ों के हाथ बिकनेवालों को फिर तुम व्यर्थ दोष दे रहे हो ! उनकी और तुम्हारी स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं । वे समझते हैं कि इंगलैण्ड के हाथ ही देश का कल्याण है जब कि तुम समझते हो कि रूस के हाथ देश का कल्याण है । हम इंगलैण्ड के हाथ बिकनेवालों को दोष इसलिए देते हैं कि इंगलैण्ड यहां शासन कर रहा है । लेकिन तुम लोगों का यह प्रयत्न है कि अगर रूस यहां शासन करने आवे तो हिन्दुस्तान रूस की गुलामी के लिए तैयार रहे । दुनिया में वास्तविकता बड़ी भयानक है, बड़ी कुरूप है । ये सारे सिद्धान्त मौखिक हैं । चीज़ वही सम्भव है, जो मनोवैज्ञानिक है । और मनोवैज्ञानिक कहता है कि अनुचित साधन अपनाने वाले का कभी उच्चादर्श हो ही नहीं सकता । जाल, फ़रेब, धोखा, झूठ, हिंसा—इनकी सत्ता को स्वीकार करनेवाला कोई भी राष्ट्र दूसरों का कल्याण नहीं कर सकता उमा !" और मार्कण्डेय बिना उमानाथ का उत्तर सुने ही वहां से चला गया ।

उस समय सूर्यास्त हो चुका था, और कमरे में अंधेरा छाया हुआ था । मार्कण्डेय एक बहुत कड़ी बात कहकर चला गया था—उमानाथ इस को अनुभव कर रहा था । उस कमरे का अंधकार उसकी आत्मा में समाया जा रहा था । घबराकर उमानाथ ने बिजली का स्विच दबा दिया । फिर आकर चुप चाप वह कुर्सी पर बैठ गया ।

पर उस बिजली के पीले प्रकाश में भी उमानाथ को धुंधलापन ही नज़र आ रहा था । अपने अन्दर इस तरह अचानक ही फिर आनेवाली उदासी को उमानाथ समझ न पा रहा था । यह सब क्यों ! उमानाथ को कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था कि आगे कोई बहुत अशुभ घटना घटित होनेवाली है। निराशा का एक अथाह सागर उसकी आंखों के सामने लहरा रहा था । और एकाएक उसने अपने से ही पूछा, "यह निराशा क्यों ?"

सुबह से जो कुछ हुआ—वह कोई ऐसी बातें नहीं थीं, जो उमानाथ को विचलित कर सकें । पुलिस के मामले को उसने टाल दिया था, प्रभानाथ का

मामला व्यक्तिगत प्रभानाथ का था, और उसमें भी प्रभानाथ के बचने की ही बात थी । और जो कुछ मार्कण्डेय कह गया, वह एक, प्रलाप भर था । लेकिन फिर भी इन घटनाओं ने एक रूप होकर, एक में मिलकर उमानाथ के अन्दर भयानक उथल-पुथल पैदा कर दी थी । उमानाथ आंखें बन्द किए हुए सोच रहा था, "मैं यह सब क्या कर रहा हूं ? क्यों कर रहा हूं—और आगे चल कर मुझे क्या करना होगा ?" उमानाथ के सामने एक के बाद एक ये प्रश्न आ रहे थे और इन प्रश्नों का कोई स्पष्ट उत्तर उसके पास न था। एकाएक चौंककर उसने आंखें खोलीं, उसने देखा कि फ़र्श पर उसके सामने उसके पैर के पास महालक्ष्मी बैठी है ।

"अरे तुम ?" उमानाथ कह उठा !

"आज आप बहुत उदास हैं ! अगर कोई हर्ज न हो तो मुझे बताइये, क्या बात है !" महालक्ष्मी ने करुण स्वर में पूछा ।

उमानाथ जितना ही महालक्ष्मी को अपने जीवन से दूर हटाने का प्रयत्न करता था, उतना ही अधिक महालक्ष्मी उमानाथ के जीवन में आने का प्रयत्न करती थी । महालक्ष्मी भी उमानाथ के जीवन में एक समस्या थी। लगातार उमानाथ की सेवा—केवल एक दासी की भांति—महालक्ष्मी ने अपना व्रत बना रक्खा था । महालक्ष्मी का त्याग, उसका असीम आत्म-बलिदान—उमानाथ इसकी उपेक्षा न कर सकता था। उमानाथ को महालक्ष्मी के प्रति क्रोध होता था, पर उस क्रोध से प्रबल भावना थी, उमानाथ के महालक्ष्मी के प्रति दुःख की ।

उमानाथ ने कहा, महालक्ष्मी—आज न जाने क्यों मन एकाएक उदास हो गया है । ऐसा दिखता है कि मुझे हिन्दुस्तान छोड़ कर जाना पड़ेगा !"

महालक्ष्मी ने उमानाथ के पैर पकड़ लिए, "आप मत जाइए—उन्हीं को यहां बुला लीजिए । मैं घरवालों से कहकर सब कुछ ठीक कर दूंगी—लेकिन आप मत जाइए—मैं बिनती करती हूं !"

उमानाथ हंस पड़ा, "नहीं महालक्ष्मी, वह बात नहीं है। तुम नहीं समझोगी!"

"समझूंगी क्यों नहीं—आप समझाइए तो!"

"बात यह है कि पुलिस मेरे पीछे पड़ गई है। अभी तक कोई वारंट तो नहीं निकला, लेकिन न जाने किस दिन मेरे नाम वारंट निकल जाय। और कम से कम मैं तो गिरफ्तार नहीं होना चाहता!"

"क्या आप भी...आप भी..." महालक्ष्मी कहते-कहते रुक गई; उसका गला भर आया था।

"नहीं, मैंने डकैती नहीं की, हत्या भी नहीं की। लेकिन सरकार के खिलाफ़ मैं जरूर हूं!"

"और कोई दूसरा उपाय नहीं है?" महालक्ष्मी की आंखों में आंसू भर आए थे।

उमानाथ हंस पड़ा, "इतनी अधिक चिन्ता की बात नहीं है! उठो, अन्दर जाओ! बड़के भइया आते होंगे!"

महालक्ष्मी सर झुकाए अन्दर चली गई, उमानाथ उठकर बरामदे में आ गया।

थोड़ी देर तक उमानाथ बरामदे में खड़ा रहा, फिर उसके पैर अपने ही आप उठ गए—वह शहर की ओर चल दिया।

उस समय ब्रह्मदत्त घर पर ही था; उमानाथ के आते ही उसने उसका अभिवाद किया। "अरे कामरेड, तुम इस वक्त!"

एक रूखी मुस्कराहट के साथ उमानाथ ने कहा, "ऐसे ही, घर में मन नहीं लग रहा था! तुम्हारे यहां चला आया।"

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ के मुख पर चिन्ता के भाव पढ़ लिए, "क्या बात है कामरेड—आज तुम्हारा मुंह बहुत उतरा हुआ है। कोई खास घटना घटी है क्या?"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "हां ब्रह्मदत्त ! आज जब मैं मीटिंग के बाद घर लौटा, तब एक पुलिस इंसपेक्टर मेरे घर पर आया । वह मेरे मूवमेण्ट पर तहकीकात करने भेजा गया था !"

"यह तो बुरा हुआ कामरेड ! मैंने पहले ही कहा था कि नरोत्तम पर विश्वास करके तुमने अच्छा नहीं किया । फिर ?"

"जहां तक उस इंसपेक्टर का सवाल है, मैंने उसे तो अपने बस में कर लिया है । लेकिन ब्रह्मदत्त ! बात सरकार तक पहुंच गई है—अधिकारी-वर्ग की आंखों में मैं आ चुका हूं ।"

ब्रह्मदत्त ने थोड़ी देर तक सोच कर कहा, "कामरेड, मेरी सलाह मानो तो थोड़े दिनों के लिए तुम अपना काम-काज बन्द कर दो । हम लोगों को तुमने काम समझा दिया ही है; हम लोग उसे चलाते रहेंगे । तुम यहां से हट जाओ, इसमें ही भला है । जब सरकार तुम्हारे मामले में असावधान हो जाय, तब तुम काम शुरू कर देना !"

"मैं भी यही ठीक समझता हूं ।" उमानाथ ने उत्तर दिया ।

६

सुबह दस बजे पण्डित रामनाथ तिवारी प्रभानाथ से मिलने पहुंचे । प्रभानाथ ने अपने पिता के चरण छुए और चुपचाप उदास खड़ा हो गया ।

रामनाथ ने पूछा, "अच्छी तरह हो, किसी तरह की तो कोई क्लेश तो नहीं है ?"

"जी नहीं, शारीरिक क्लेश तो कोई नहीं है, किन्तु मानसिक पीड़ा जरूर है !"

"कैसी मानसिक पीड़ा ?" रामनाथ तिवारी ने पूछा ।

इस बार प्रभानाथ ने सर उठाकर अपने पिता को देखा, "दद्दुआ ! काका ने कल सरकारी गवाह बनने की मेरी अनुमति ले ली है—लेकिन तब

से मेरे मन में एक भयानक अशान्ति भर गई है। यह काम, जो मैं कर रहा हूं, अपनी इच्छा के विरुद्ध कर रहा हूं।"

रामनाथ ने अपने पुत्र की आंखों से आंखें मिलाते हुए कहा, "प्रभा! अपने कर्मों का उत्तरदायी मनुष्य स्वयं होता है। किसी के विवश करने से जिसे तुम अनुचित समझते हो, उसे करना कहां तक उचित है, इसका निर्णय तुम्हारे हाथ में है।"

प्रभानाथ बढ़कर पिता के चरणों पर गिर पड़ा। "दद्दुआ--कल से बुरी तरह भटक रहा हूं। आपने मुझे उचित रास्ता दिखला दिया। एक बहुत बड़े पाप से आपने मुझे बचा लिया है! अब मैं शान्तिपूर्वक हँसते-हँसते मर सकता हूं।

रामनाथ सहमकर एक कदम पीछे हटे, क्या कह रहे हो प्रभा! तुम मेरा मतलब ठीक तरह नहीं समझे।"

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ। उसके मुख की उदासी जाती रही थी; उसके मुख पर उल्लास का तेज था, दृढ़ता की चमक थी, "दद्दुआ मरना है ही--आज नहीं तो कल। इस नश्वर शरीर को बचाने का मोह मुझमें कैसे आ गया था, मुझे आश्चर्य हो रहा है। कैसे मैंने काका को अनुमति दे दी थी?"

रामनाथ को अब अपने पुत्र के सामने खड़ा रहना असह्य हो गया था। उन्होंने यह क्या कर डाला? रामनाथ के अन्दर वाला पिता उन्हें धिक्कार रहा था कि उन्होंने स्वयं अपने हाथों अपने पुत्र को फांसी पर चढ़ने को तैयार किया है। उन्होंने जल्दी से कहा, "प्रभा! तुमने अपने काका से जो वादा किया है, उसे पूरा करो--मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है!"

"आपका आशीर्वाद तो मुझे मिल चुका है दद्दुआ!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "अब कोई भी कमजोरी मुझ पर आधिपत्य नहीं जमा सकती, इतना विश्वास रखिए!"

रामनाथ से और ज्यादा न बोला गया, सर झुकाए हुए वह अपने पुत्र के सामने से चले आए।

जेल से लौटकर पण्डित रामनाथ तिवारी को अपने छोटे भाई से मिलने की हिम्मत न हुई, वे सीधे उन्नाव चले गए।

शाम के समय उन्होंने वीणा को बुलवाया, "कल वाली खबर, कि प्रभानाथ मुखबिर बनने पर राजी हो गया है, गलत थी। मैं आज सुबह प्रभा से मिल आया हूं।"

आश्चर्य से वीणा ने रामनाथ की ओर देखा, "आपने ददुआ........ आपने...मुझे आश्चर्य होता है!"

"चुप रहो, और जाओ यहां से! चुड़ैल कहीं की।" रामनाथ क्रोध में कह उठे, "अब मुझे अपना मुंह मत दिखाना!"

न जाने क्यों, रामनाथ की गाली सुनने पर भी, वीणा ने अनायास ही झुक कर रामनाथ के चरण की धूल अपने मस्तक पर लगा ली। उसने रामनाथ से कहा, "ददुआ—आपने अपने पुत्र को खोया है, लेकिन मैंने अपना सर्वस्व खो दिया है!"

रामनाथ का स्वर कठोर हो गया, "वीणा! क्या तुम सच कह रही हो?"

"देवता-तुल्य अपने पूज्य से मैं झूठ न बोल सकूंगी!" वीणा ने शान्त-भाव से उत्तर दिया।

रामनाथ थोड़ी देर तक कठोर दृष्टि से वीणा को देखते रहे, और फिर उन्होंने वीणा के मस्तक पर अपना हाथ रख दिया, "हिन्दू-पत्नी के कर्तव्य को तुम जानती हो—मुझे तुमसे आशा है?"

आपको मेरी ओर से निराश होने का अवसर न आएगा!" वीणा ने उत्तर दिया।

७

सुबह जब उमानाथ सोकर उठा, उसका मन हल्का था। चाय पीकर जब वह ड्राइंग-रूम में गया, वहां दयानाथ अपने साथियों से चुनाव के विषय में परामर्श कर रहे थे। मार्कण्डेय ने उमानाथ को देखते ही कहा, "आओ उमा, बड़े मौके से आ गए हो तुम, अब यह ब्रह्मदत्तवाला मसला तुम हल करो !"

दयानाथ ने उत्तेजित होकर कहा, "ब्रह्मदत्त—ब्रह्मदत्त। मुझे ब्रह्मदत्त से कुछ नहीं कहना है, न मुझे उसकी सहायता की ही कोई आवश्यकता है। ये पतित और नीची कोटि के व्यक्ति—ये इतना ऊपर चढ़ जायें, मुझसे भीख मंगवाएं, खुशामद करवाएं—यह विधि की विडम्बना ही है !"

"इतना उत्तेजित होने की कोई बात नहीं दयानाथ।" मार्कण्डेय ने समझाया, "तुम यह याद रखना, कि तुम राजनीति को अपने जीवन में अपना चुके हो, और राजनीति में यह सब कुछ करना पड़ता है।"

दयानाथ ने और भी गरम होकर कहा, "मार्कण्डेय ! ऐसी कोई भी बात राजनीति में सही मानने को मैं तैयार नहीं हूं, जिसे साधारण जीवन में मैं बुरी समझूं। मैं उस राजनीति को समाज के लिए घातक समझता हूं, जो नैतिकता से परे है !"

"पर यह बात नैतिकता से कहां परे है ? तुमसे कोई अनैतिक बात करने को तो मैं नहीं कह रहा हूं; मैं केवल इतना चाहता हूं कि तुम ब्रह्मदत्त से स्वयं मिलकर उससे अपनी पार्टी के साथ वोट देने के लिए कहो। मैं मानता हूं कि इस काम में तुम्हारी अहम्मन्यता को धक्का जरूर लगेगा, लेकिन दयानाथ, अहम्मन्यता के ऊपर उठना ही सब से बड़ी अहिंसा है।"

दयानाथ कह उठा, "मार्कण्डेय, अहिंसा निर्बल की चीज नहीं है, अहिंसा सबल की चीज है। निर्बल में अहिंसा कायरता समझी जाती है। आज मुझे अपना हित-साधन करना है, और अपने हित-साधन के लिए जब मैं ब्रह्मदत्त के सामने जाता हूं, तब मैं उसके अन्दरवाली हिंसा-वृत्ति को तुष्ट

करके उसे और भी पुष्ट करने के पाप का भागी बन जाता हूं। मैं ब्रह्मदत्त के सामने झुकने को तैयार हूं। लेकिन तब, जब मैं सबल हूं, जब ब्रह्मदत्त से मुझे कोई काम न हो, जब ब्रह्मदत्त को मुझसे कोई काम हो !"

"यही तुम्हारी अहम्मन्यता है दया !" मार्कण्डेय कह उठा, "तुम झुकने के लिए तैयार नहीं; तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे सामने झुकें। यह कोई बुरी बात भी नहीं है, जहां तक व्यक्तित्व का सवाल है, लेकिन राजनीति में अपने व्यक्तित्व को लोक-हित में मिला देना पड़ता है, और लोक-हित के लिए दूसरों के आगे झुकने में मैं तो कोई हर्ज नहीं समझता। मेरी बात मानो दया—बिना ब्रह्मदत्त के आगे झुके तुम्हारी विजय असम्भव है।"

दयानाथ थोड़ी देर तक सोचता रहा। फिर उसने कहा, "अच्छी बात है—जैसा कहते हो करूंगा, केवल तुम लोगों को संतुष्ट करने के लिए !" और वह उमानाथ की ओर घूमा, "उमा, अगर तुम्हें ब्रह्मदत्त मिलें, तो उनसे कह देना कि मैं कल सुबह उनके यहां आऊंगा, वे घर पर ही रहें।"

सब लोगों के चले जाने के बाद जब दोनों भाई अकेले रह गए, तब उमानाथ ने दयानाथ से कहा, "बड़के भइया ! आपने सुना है—प्रभा सरकारी गवाह बनने पर राजी हो गया है !"

दयानाथ चौंक उठे, "असम्भव ! यह क्या कह रहे हो ?"

"कल शाम काका मुझसे कह गए हैं। वे कल रात दबुआ के यहां चले गए थे।"

दयानाथ गम्भीर हो गया, "विश्वास नहीं होता उमा ! क्या प्रभा अपने प्राण बचाने के लिए अपने साथियों के साथ विश्वासघात करेगा ? यह तो हम लोगों के कुल के नाम पर बहुत बड़ा कलंक होगा !"

उमानाथ हँस पड़ा, "प्राण बचाने के लिए मनुष्य क्या नहीं कर सकता बड़के भइया ! लेकिन प्रभा को अपने प्राणों का इतना मोह हो गया है, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी।"

थोड़ी देर तक चुप रह कर उमानाथ ने फिर कहा, "बड़के भइया, विपत्ति के बादल मुझ पर भी मँडरा रहे हैं। कल एक पुलिस इंसपेक्टर मुझसे पूछ-ताछ करने आया था। एक हज़ार रुपया देकर मैंने अभी तो उसे अपनी ओर मिला लिया है, लेकिन खेल ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगा।"

"क्या कहा? सरकार को तुम्हारे कम्यूनिस्ट होने का पता चल गया है? यह तो बुरा हुआ!"

दो सौ तिरसठ

"ब्रह्मदत्त का कहना है कि मैं कुछ समय के लिए कानपुर से चला जाऊँ। सोच रहा हूँ कि दो-चार महीने के लिए बानापुर हो आऊँ, इस बीच में पुलिस भी मेरी तरफ़ से असावधान हो जाएगी!"

दयानाथ मुस्कराया, "लेकिन यह कब तक? दो-चार महीने बाद जब तुम आओगे, पुलिस फिर तुम्हारे पीछे लगेगी। छिपकर काम करना तो मुझे ठीक नहीं जंचता, जो कुछ करो खुलकर, निर्भीक होकर!"

"लेकिन बड़के भइया—आप जानते ही हैं कि हमारी संस्था गैर-कानूनी है। खुलकर हम अपना काम कर ही नहीं सकते।"

"ऐसी हालत में तुम्हारा मार्ग गलत है—उसे सदा के लिए त्याग देना ही तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा!"

उमानाथ हँस पड़ा, "आप क्या कह रहे हैं भइया? मैं अपने पवित्र आदर्श को छोड़ दूं, असम्भव! हमें ब्रिटिश-साम्राज्यवाद से लड़ना है, हमें पूंजीवाद का अन्त करना है, हमें सामन्तशाही को मिटाना है। यह काम आसान नहीं है जब कि देश के अधिकांश लोग भेड़-बकरियों से भी गए-बीते हैं।........"

उमानाथ अपनी बात खतम भी न कर पाया था कि कमरे में सब-इंसपेक्टर लालबहादुर ने प्रवेश किया। लालबहादुर दयानाथ को अच्छी तरह

पहचानता था। उसने दयानाथ को अभिवादन करके उमानाथ से कहा, "कुंवर साहेब, मैं आपको आगाह करने आया हूं—खतरा सर पर मंडरा रहा है।"

"क्या मतलब है आपका" उमानाथ ने पूछा।

"मैं नहीं जानता था कि अफ़सरान आपके मामले में इतनी सरगर्मी दिख-लाएंगे। मेरा ऐसा खयाल है कि कल आपके नाम वारंट निकल जायगा। आपके पास चौबीस घंटे का वक्त है—आप जैसा उचित समझें, करें।"

लालबहादुर के जाने के बाद दयानाथ ने पूछा, "अब क्या करोगे उमा? गांव तो तुम नहीं जा सकते, क्योंकि पुलिस वहां तुम्हारा पीछा करेगी।"

उमानाथ ने चिंतित भाव से कहा, "हां बड़के भइया! अब केवल एक उपाय है—मैं हिन्दुस्तान छोड़ दूं। हिन्दुस्तान में जहां भी रहूंगा, वहीं गिरफ्तार कर लिया जाऊंगा!"

"लेकिन हिन्दुस्तान के बाहर कैसे जा सकोगे?"

"इसकी चिन्ता आप न करें। बम्बई, कलकत्ता—जहां से होगा, किसी भी विदेशी जहाज में स्मगल करके रवाना हो जाऊंगा—इन हथकण्डों में हम लोग सिद्धहस्त हैं। लेकिन सवाल मेरे सामने पैसे का है। हिन्दुस्तान से जाने के लिए पास में दस-पांच हजार रुपया तो होना ही चाहिए। इतना रुपया दद्दुआ से कैसे मांगा जाय?"

दयानाथ ने कहा, "मेरी तो आर्थिक स्थिति तुम जानते ही हो उमा! अभी तो तुम यहां से चले जाओ, फिर मौका पाकर दद्दुआ से मांग लेना!"

"आप ठीक कहते हैं!" उमानाथ ने कहा।

और उसी दिन रात के समय उमानाथ कानपुर के बाहर चला गया।

सातवां परिच्छेद

१

"मैंने राजपूत-इतिहास में पढ़ा था कि बाप अपने बेटे को फांसी दे सकता है ! यकीन नहीं होता था माताप्रसाद--किस तरह एक बाप अपने बेटे को फांसी के तख्ते पर भेज सकता है । लेकिन पण्डित रामनाथ तिवारी इस बीसवीं सदी में, अपने बेटे को फांसी के तख्ते पर भेज रहे हैं--कुछ समझ में नहीं आता--ज़रा भी समझ में नहीं आता !" विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से कहा ।

माताप्रसाद चुप थे--क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, कैसे हो रहा है--इस सबमें अब उन्हें कोई दिलचस्पी न रह गई थी । वे यह अनुभव कर रहे थे कि परिस्थितियों-द्वारा वे एक अप्रिय तथा घृणित काण्ड में पड़ गए हैं। उन्होंने विश्वम्भरदयाल को कोई उत्तर नहीं दिया ।

पर अपनी बात विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से नहीं कही थी, वह बात उसने कही थी स्वयं अपने से । प्रभानाथ ऐन मौके पर मुखबिर बनने से इनकार कर जायगा, इसकी उसने आशा न की थी । उनकी जीती हुई बाज़ी अनायास ही उसके हाथ से निकल गई । जज के सामने विश्वम्भरदयाल को लज्जित होना पड़ा, जज के सामने ही नहीं, सारे पुलिस-डिपार्टमेंट के सामने, और सब से बढ़ कर अपने सामने उसे लज्जित होना पड़ा था । विश्वम्भरदयाल के मत्थे पर बल पड़ गए थे--उसके मुख पर एक भयानक प्रतिहिंसा की छाया घिर आई थी । कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा रहा, और फिर वह फूट पड़ा, "बाप बेटे से कहे कि अपना बयान वापस लेकर फांसी पर चढ़ जाय ! मैं जानता हूं कि प्रभानाथ बयान देता--लेकिन उस दिन रामनाथ ने प्रभानाथ से मिलकर मेरे किये-धरे पर पानी फेर दिया। अपने बेटे

की जान लेकर वह मुझे हराना चाहता है। मैं जानता हूँ—रामनाथ भी जानते है कि प्रभानाथ के फांसी पर चढ़ने से मुझे कोई फ़ायदा नहीं होगा—रामनाथ तिवारी का फ़ायदा उसी में है, जिसमें मेरा फ़ायदा है। लेकिन रामनाथ तिवारी अपना फ़ायदा नहीं चाहते—इसलिए कि वे मेरा फ़ायदा नहीं चाहते। वह मुझे गिराना चाहते हैं, मुझे जलील करना चाहते हैं।"

इस बात का उत्तर देने की माताप्रसाद को कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि यह बात भी विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से नहीं कही थी, वरन अपने से कही थी; पर न जाने क्यों माताप्रसाद अपने को न रोक सके। उन्होंने कहा था, "अगर आप मुझे माफ़ करें तो मैं यह कहने की हिम्मत जरूर करूंगा कि आप चीजों को गलत तोर से समझ रहे हैं!"

"गलत तौर से समझ रहा हूँ?" विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद पर अपनी तेज आंखें गड़ाते हुए पूछा, "माताप्रसाद साहेब, आप क्या कह रहे हैं!"

"जी मैं ठीक कह रहा हूँ। मैंने आपको पहले ही आगाह कर दिया था कि आप गलत रास्ता अपना रहे हैं। राजा साहेब ने जो कुछ किया, उसी की उनसे उम्मीद की जा सकती थी। प्रभानाथ का मुखबिर बन जाना उनके आला खान्दान पर एक बहुत बड़ा कलंक होता—उस कलंक से वे बचना चाहते थे। उसमें आपकी दुश्मनी व दोस्ती का कोई सवाल नहीं उठता।"

विश्वम्भरदयाल कह उठा, "यहीं आप गलती करते हैं माताप्रसाद साहेब! असलियत यह है कि मेरे और राजा साहेब के बीच में एक शतरंज का खेल हो रहा है—प्रभानाथ उसमें महज एक मोहरा है। मैं पूछता हूँ कि प्रभानाथ के मुखबिर बनने को वह अपने खान्दान पर कलंक क्यों समझते हैं? और मान भी लिया जाय कि वह प्रभानाथ के मुखबिर बनने को वाक़ई अपने खान्दान पर कलंक समझते हैं, तो फिर ऐसी हालत में वह मुझे व मेरी हरकतों को किस नजर से देखते होंगे—सवाल यह है। मैंने कहा न—प्रभानाथ मोहरा है—खेलने वाला मैं हूँ—चाल मेरी है। राजा साहेब मुझसे

नफ़रत करते हैं--नफ़रत ! अपने लड़के को भी कुर्बान करके वह मुझे हराना चाहते हैं--" और एकाएक विश्वम्भरदयाल हँस पड़ा। बड़ी कुरूप और भयानक हँसी थी वह, और वह बड़ी देर तक हँसता रहा। उसने कहा, "लेकिन माताप्रसाद साहेब--मैं भी ज़बर्दस्त खिलाड़ी हूँ; मुझे हराना आसान काम नहीं है। मैं जीतूंगा और फिर जीतूंगा--हारने के लिए मैंने कदम नहीं उठाया।"

इस बार माताप्रसाद चौंक उठे--उन्होंने विश्वम्भरदयाल की ओर एक कौतूहल की दृष्टि डाली। माताप्रसाद की आंखों वाले कौतूहल को विश्वम्भर-दयाल ने पढ़ लिया था, "माताप्रसाद साहेब ! मौत से भी भयानक चीज़ होती है उसकी पीड़ा। मृत्यु में भय है, पीड़ा नहीं है। प्रभानाथ ने भय पर विजय पा ली है--मैं जानता हूँ वह पीड़ा पर विजय न पा सकेगा।"

"मैं समझा नहीं !" और माताप्रसाद की समझ में वास्तव में विश्वम्भर-दयाल की बात न आई थी।

"जी--आप नहीं समझ पाए--समझना मुश्किल भी है। आपको शायद यह पता नहीं कि दुनिया की बड़ी से बड़ी सरकारों को अक्सर ऐसे लोगों से साबिका पड़ता है जो मौत से नहीं डरते। और उन लोगों पर हावी आना, उनसे बात कहला लेना, उनसे बातें निकाल लेना--कभी-कभी यह निहायत ज़रूरी होता है। ऐसी हालत में सरकार के सामने एक ही रास्ता रह जाता है--उस निर्भय आदमी को भयानक पीड़ा देना !"

"तो क्या आपका मतलब है कि उस लड़के को......?" माताप्रसाद कहते-कहते रुक गए।

"जी हां--आप बिल्कुल ठीक समझे ! मुझे उससे बात कहलानी है--और मैं कहलाऊँगा। हमारी सरकार लोगों से बात कहलाना जानती है--" और विश्वम्भरदयाल उठ खड़े हुए।

२

मुंशी माताप्रसाद स्तब्ध-से रह गए। बात यहां तक पहुंच सकती है—इसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। पण्डित श्यामनाथ तिवारी के लड़के के साथ वह बर्ताव किया जायगा, जो साधारण खूनियों और डकैतों के साथ किया जाता है—शायद उससे भी कड़ा बर्ताव किया जाए। उन्होंने सुन रक्खा था कि पुलिस में कुछ ऐसे विभाग हैं, जो अमानुषिक यंत्रणा देने में सिद्धहस्त हैं। उन यंत्रणाओं के आगे कड़े से कड़े दिल के आदमी भी कांप उठते हैं।

माताप्रसाद ने यह तै कर लिया कि इसकी सूचना पण्डित श्यामनाथ तिवारी को दे दी जाय। शायद विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से जो बातें कही थीं, इसीलिए कही थीं कि वे बातें पण्डित रामनाथ तिवारी के कानों तक पहुंच जायें। विश्वम्भरदयाल एक कुशल खिलाड़ी है—उससे भी अधिक भयानक खिलाड़ी है। माताप्रसाद जानते थे कि विश्वम्भरदयाल जीतने पर तुला हुआ है, जो बात उसने कही है, उसे वह पूरा करेगा।

जब माताप्रसाद पण्डित श्यामनाथ तिवारी के यहां पहुंचे, उन्हें पता चला कि श्यामनाथ तिवारी अपने भाई से मिलने को उन्नाव चले गए हैं। माताप्रसाद सीधे उन्नाव के लिए रवाना हो गए।

श्यामनाथ तिवारी को पिछले दिन ही यह खबर मिल गई थी कि प्रभानाथ ने मुखबिर बनने से इनकार कर दिया है। रामनाथ तिवारी से इस सम्बन्ध में बातें करने के लिए ही वह उन्नाव गए थे।

रामनाथ कह रहे थे, "श्याम—मैं प्रभा को बचाऊंगा, मैं तुमसे कहता हूं। अपनी सारी ताकतें लगा दूंगा, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि प्रभा को फांसी नहीं होगी।"

उसी समय रामनाथ तिवारी को माताप्रसाद के आने की इत्तिला मिली।

वीणा बगल वाले कमरे में बैठी हुई इन दोनों भाइयों की बातचीत सुन

रही थी, और उसके मन में एक प्रकार की शान्ति थी, एक प्रकार का संतोष था। पर माताप्रसाद के आते ही उसका दिल न जाने क्यों धड़कने लगा। एक अज्ञात भय से वह सिहर उठी।

श्यामनाथ ने माताप्रसाद का स्वागत किया, "आइए माताप्रसाद साहेब! कैसे तकलीफ़ की?"

"हुज़ूर बड़ा गजब होगया। उस शैतान ने यह तै कर लिया है कि जिस तरह भी हो, प्रभानाथ से बात निकलवाई ही जायगी।" माताप्रसाद ने कहा।

"तुम्हारा मतलब है..." श्यामनाथ पूरी बात कहते-कहते रुक गए।

"जी हां--प्रभानाथ को टार्चर करने की तैयारी है! मुमकिन है टार्चर शुरू भी हो गया हो!"

रामनाथ उठ खड़े हुए, "बात यहां तक पहुंच गई है। मेरे लड़के को पुलिस टार्चर करेगी। श्यामू--चलो, मुझे अभी कानपुर चलना है।"

सब लोगों के चले जाने के बाद वीणा बरामदे में आकर बैठ गई। उस समय वह बहुत अधिक उद्विग्न थी। माताप्रसाद ने जो खबर दी थी, उस खबर के महत्त्व को वह जानती थी। वह जानती थी कि टार्चर क्या बला है, वह यह भी जानती थी कि वीर से वीर आदमी भी उस टार्चर को नहीं बर्दाश्त कर सकता।

क्या पण्डित रामनाथ तिवारी कुछ कर सकेंगे? नहीं--कुछ भी नहीं। वीणा जानती थी कि उस महान् ब्रिटिश सरकार की नजर में रामनाथ तिवारी एक धूल के एक कण हैं। रामनाथ से कुछ नहीं होने का--और वीणा सिर से पैर तक सिहर उठी।

प्रभानाथ कहां है--वह न जानती थी। वह कानपुर में न होगा, यह निश्चित था। पुलिस उसे कानपुर से हटाकर और कहीं ले जाएगी--ऐसी जगह, जिसका रामनाथ और श्यामनाथ को पता न लग सके। उसे प्रभानाथ का पता लगाना होगा, उसे अब काम करना होगा।

वीणा—एक तो स्त्री और उस पर अकेली—अपनी पिस्तौल को देख रही थी और सोच रही थी। एक बहुत बड़ा, एक बहुत महत्त्व का काम था उसके सामने ! क्या वह उसे कर सकेगी ?

२

पण्डित रामनाथ तिवारी कानपुर के लिए रवाना हो गए थे, पर उनका दिल कह रहा था कि वे कुछ न कर सकेंगे। उनके मन में एक प्रकार की निराशा भर गई थी, उनके अन्दर एक प्रकार का भय समा गया था।

निराशा और भय—रामनाथ ने पहली बार इन चीज़ों का अनुभव किया था। बड़े ज़बर्दस्त आदमी से उनका मुकाबला पड़ा है; और वे अब यह अनुभव करने लगे थे कि उस आदमी को पराजित करना असम्भव-सा है। विश्वम्भरदयाल जैसे न जाने कितने आदमियों से उनका वास्ता पड़ चुका था, लेकिन कभी भी उन्हें उस प्रकार के भय का अनुभव न हुआ था। जो उनके सामने आया, उसे उनके आगे झुकना पड़ा। आज पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि जो आदमी उनके सामने आया है, वह उन्हें झुकाने पर तुला हुआ है।

और रामनाथ तिवारी को ऐसा अनुभव हुआ कि मनुष्य से नहीं, इस समय उनका युद्ध नियति के साथ चल रहा है। विश्वम्भरदयाल उस नियति का साधन-मात्र है।

मोटर तेजी के साथ चली जा रही थी और रामनाथ तिवारी सोच रहे थे। विश्वम्भरदयाल की इतनी मजाल कि वह उनके लड़के को टार्चर करे ! वह चाहते थे कि विश्वम्भरदयाल उनके सामने आवे और वे विश्वम्भरदयाल को मसल दें—हमेशा के लिए मिटा दें। प्रतिहिंसा की भयानक आग उनमें भड़क उठी थी।

कानपुर पहुंचकर वे सीधे जेल पहुंचे। वहां उन्हें मालूम हुआ कि सुबह के समय प्रभानाथ कानपुर से पुलिस की हिरासत में किसी अज्ञात

स्थान को भेज दिया गया है। यह खबर सुनकर रामनाथ तिवारी का सर चकरा गया। इतनी जल्दी कार्रवाई शुरू हो गई !

पुलिस ने अदालत से एक महीने की मोहलत ले ली थी। पुलिस का यह कहना था कि प्रभानाथ बहुत खतरनाक किस्म का मुलजिम है, उसके क्रान्तिकारी साथी उसे बचाने की कोशिश कर सकते हैं—यही नहीं, प्रभानाथ की जान को उन क्रान्तिकारियों के हाथ से भी खतरा है—और ऐसी हालत में जब तक अदालत में मामला न पेश हो, पुलिस प्रभानाथ को एक अज्ञात स्थान में रक्खेगी।

दूसरे दिन रामनाथ ने बहुत कोशिशें कीं कि प्रभानाथ के स्थान का उन्हें पता लग सके, लेकिन इसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। शाम के समय रामनाथ निराश-भाव से उन्नाव वापस लौट गए।

रामनाथ के जाने के बाद श्यामनाथ कानपुर में अकेले रह गए—असहाय और हतबुद्धि ! उन्होंने एक बार विश्वम्भरदयाल से मिलने की कोशिश की, पर वे सफल न हो सके। विश्वम्भरदयाल ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। पागल की तरह श्यामनाथ दयानाथ के यहां गए।

उमानाथ उस समय ड्राइंग-रूम में अकेला बैठा अपना कार्यक्रम बना रहा था। पण्डित श्यामनाथ तिवारी की लड़खड़ाती चाल और पीले चेहरे को देखकर वह उठ खड़ा हुआ—आगे बढ़कर उसने कहा, "अरे काका ! आपकी यह कैसी हालत ?"

टूटे शब्दों में श्यामनाथ ने कहा, "उमा ! प्रभा का पता नहीं—पुलिस ने उसे न जाने कहां भेज दिया ! हे भगवान् ! उसकी न जाने क्या दशा होगी !"

उमानाथ ने सुन लिया था कि प्रभानाथ ने मुखबिर बनने से इनकार कर दिया है—और यह सुनकर उसे खुशी भी हुई थी। सारी स्थिति वह समझ गया। उसने कहा, "यह तो बुरा हुआ काका ! अब क्या हो ?"

"उसका पता लगाना होगा उमा—किसी तरह उसका पता लगाना होगा ! दया कहां है ?"

आज उनका चुनाव हो रहा है—उसमें फंसे हैं ! आते ही होंगे !" उमानाथ ने कहा।

उसी समय मार्कण्डेय के साथ दयानाथ ने कमरे में प्रवेश किया। उस समय दोनों मौन थे, दोनों गम्भीर थे। आते ही श्यामनाथ ने कहा, "दया ! बड़ा गजब हो गया !"

"आप काका ?" दयानाथ ने आगे बढ़ते हुए कहा, "क्यों क्या बात है ?"

"प्रभा का हाल तो तुम्हें मालूम ही है। आज सुबह प्रभा को पुलिस ने जेल से निकालकर किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया है !"

दयानाथ चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया, थोड़ी देर वह मौन बैठा रहा। फिर उसने कहा, "हूं ! फिर क्या किया जाय ?"

"यही पूछने आया हूं दया ! किसी तरह से प्रभा का पता लगाना ही होगा ! मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूं—इसीसे तुम्हारे पास आया हूं !"

दयानाथ उस समय शून्य की ओर देख रहा था। उसने कुछ रुककर कहा, "मेरी समझ में भी कुछ नहीं आ रहा है। हर तरफ़ निराशा—हर तरफ़ अन्धकार ! किसी चीज पर विश्वास नहीं किया जा सकता, कोई चीज निश्चित नहीं !" और दयानाथ एक व्यंगात्मक हंसी हंस पड़ा।

दयानाथ के इस उत्तर से उमानाथ को आश्चर्य हुआ, "क्या हुआ बड़के भइया, जो आप में इतनी कटुता आ गई ?"

उत्तर मार्कण्डेय ने दिया, हुआ यह कि दयानाथ आज के चुनाव में हार गए। ब्रह्मदत्त ने दयानाथ की मदद नहीं की—उसने अपनी समस्त शक्तियां दयानाथ के खिलाफ़ लगा दी थीं !"

उसी समय दयानाथ ने कहा, "चुप रहो मार्कण्डेय ! ब्रह्मदत्त उमा का मित्र है—बहुत बड़ा मित्र है !"

दयानाथ का यह वाक्य उमानाथ को अखर गया। लेकिन उत्तर मार्कण्डेय ने दिया, "दयानाथ, मुझे दुःख इस बात का है कि उमानाथ के लाख प्रयत्न करने पर भी तुम ब्रह्मदत्त को अपना मित्र नहीं बना सके। इसमें दोष उमा का नहीं है, ब्रह्मदत्त का नहीं है, दोष तुम्हारा है !"

इस समय तक दयानाथ के अन्दरवाली कटुता बहुत अधिक उभड़ चुकी थी, "मेरा दोष है मार्कण्डेय—मैं मानता हूँ! मैं इन पशु-तुल्य आदमियों के आगे झुकने को तैयार नहीं—यह मेरा दोष है। मैंने इतना अधिक त्याग किया, मैं पितृ-द्रोही बना, मैंने अपना सारा वैभव, सारा सुख छोड़ दिया—इन लोगों के लिए ! और इसके परिणाम में मुझे क्या मिला ? अविश्वास—अपमान ! मेरा ही दोष है कि मैंने पहले इस सबको नहीं सोचा था, मैंने यह नहीं सोचा था कि इन पशुओं के साथ काम करने के लिए स्वयं पशु बन जाना पड़ेगा ! तुम ठीक कहते हो मार्कण्डेय—मैं अपने दोष को स्वीकार करता हूँ !"

मार्कण्डेय को दयानाथ के इन उद्गारों से दुःख हुआ। उसने कहा, "दया, ज़रा ठंडे दिमाग से सोचो ! तुम्हारी अहम्मन्यता पर जो भयानक प्रहार हुआ है, उससे तुम मर्माहत हो रहे हो !"

पर दयानाथ इस समय आपे से बाहर हो चुका था। उसने कहा। "मेरी अहम्मन्यता नहीं, अहम्मन्यता उन लोगों की है, जिन्होंने मेरा विरोध किया, जिन्होंने असत् को अपनाया, जिन्होंने नेकी और शिष्टता का अपमान किया। अभी तुमने ब्रह्मदत्त की बात उठाई है मार्कण्डेय ! मैं तुमसे पूछता हूँ—ब्रह्मदत्त को कब नेकी और ईमानदारी पर विश्वास रहा है ? अपनी खुशी और स्वार्थ में भूला हुआ वह आदमी ! वह मेरे यहां आता है, वह उमा का बहुत बड़ा मित्र बनता है, और ऐन मौके पर वह मेरे खिलाफ़ गया, क्योंकि मैंने उसकी खुशामद नहीं की, क्योंकि मैं उसके सामने झुका नहीं, क्योंकि मैंने उसके सामने हाथ नहीं फैलाया !"

मार्कण्डेय ने देखा कि दयानाथ अपने आपे में नहीं हैं, वह किसी भी प्रकार का तर्क सुनने को तैयार नहीं, और उसने इस बार प्रसंग बदलने की कोशिश की। श्यामनाथ की ओर घूम कर उसने कहा, "श्यामू काका ! फिर आपने प्रभा के सम्बन्ध में आखिर कुछ तो सोचा होगा !"

श्यामनाथ कुछ देर के लिए दयानाथ की बातों में अपने को भूल गए थे। मार्कण्डेय की बात से वे चौंक उठे। उन्होंने बड़े करुण स्वर में कहा, "इसी सम्बन्ध में तो दया से सलाह लेने आया था; लेकिन दया अपने मामले में सब कुछ भूले हुए हैं ! तुम भी तो वकील हो मार्कण्डेय ! तुम बतलाओ, मैं क्या करूं ?"

मार्कण्डेय ने कुछ सोचकर कहा, "आप एक बार इंसपेक्टर जेनरल पुलिस से मिलकर बातचीत कीजिए—मामला आपका है—शायद वहां से आपको कोई सहायता मिल जाय !"

श्यामनाथ चौंक कर उठ बैठे "हां" यह तुमने ठीक कहा। मुझे तो यह सूझा ही नहीं था। मैं कल सुबह ही इलाहाबाद चला जाऊंगा।

४

शाम के समय जब पण्डित रामनाथ तिवारी घर पहुंचे। वीणा बरामदे में चुपचाप बैठी रामनाथ तिवारी का इंतजार कर रही थी। रामनाथ तिवारी अपनी मोटर से चुपचाप उतरकर अपने कमरे में चले गए—उन्होंने भीतर से दरवाजा उढका लिया।

वीणा समझ गई कि रामनाथ तिवारी को कोई सफलता नहीं मिली, उसका मन और भी भारी हो गया।

रात के समय भी जब रामनाथ तिवारी अपने कमरे से बाहर नहीं निकले तब वीणा ने डरते-डरते उनके कमरे का द्वार खोला। रामनाथ तिवारी चुपचाप लेटे थे। वीणा ने कहा, "दद्दुआ !"

रामनाथ ने अपनी आंखें खोलकर वीणा को कुछ देर तक देखा, फिर शिथिल-स्वर में उन्होंने कहा, "क्या है ?"

"आपके खाने का समय हो गया है—उठिए !"

रामनाथ चुपचाप उठ खड़े हुए । ड्राइंग-रूम में पहुंच कर वे बैठ गए—उन्होंने कहा, "मुझे भूख नहीं है !"

"कुछ थोड़ा-सा तो खा लीजिए !"

रामनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया । वीणा रसोई से थाली परोसवा कर ले आई। भोजन करते हुए रामनाथ ने कहा, "प्रभा को पुलिस किसी अज्ञात-स्थान में ले गई है । मैंने बहुत पता लगाने की कोशिश की, लेकिन मुझे पता न लग सका !"

रामनाथ की बात सुनकर वीणा कांप उठी । "दद्दुआ—यह तो बुरा हुआ !"

"बुरा हुआ या भला हुआ—यह मैं नहीं कह सकता; लेकिन इतना जानता हूं कि मैं आज पराजित हुआ—उस विश्वम्भरदयाल के हाथ से !" रामनाथ के स्वर में एक अजीब करुणा थी—दयनीयता थी ।

वीणा चुप रही, रामनाथ की करुणा उसके हृदय में चुभ गई ।

रामनाथ को उनके कमरे में पहुंचा कर वीणा लेट गई । उस समय वह बहुत उद्विग्न थी ।

प्रभानाथ को वह जानती थी—बहुत अच्छी तरह ! वह जानती थी कि प्रभानाथ पुलिस के टार्चर को बर्दाश्त न कर सकेगा, और फलस्वरूप दो-एक दिन में वह सब कुछ कह देगा । प्रभानाथ को बचाना होगा—जैसे भी हो वैसे !

और वीणा के सामने सवाल था कि प्रभानाथ को कैसे बचाया जाय।

वीणा रात भर जागती रही—उसकी आंखों में निद्रा न थी ।

वीणा स्पष्ट देख रही थी कि अन्त उसके सामने है। यह अन्त उस दिन से हमेशा उसके सामने रहा था, जिस दिन वह क्रान्तिकारी-दल में सम्मिलित हुई थी, पर उस अन्त को उसने इतने निकट से इसके पहले कभी अनुभव न किया था। लेकिन अन्त से उसे भय न था, झिझक न थी। केवल एक विचित्र प्रकार का स्पन्दन भर था। उसका विगत जीवन धीरे-धीरे उसके सामने छाया-चित्र की भांति आने लगा—उसके अधिकांश साथी इस दुनिया से चले गए थे। और एकाएक प्रतिभा की मूर्ति उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

प्रतिभा—वीणा की अभिन्न साथिन—उसके सामने खड़ी मुस्करा रही थी, मानों वह कह रही हो कि वह लगातार वीणा का इंतजार करती रही है। और एकाएक प्रभानाथ की मूर्ति प्रतिभा की बगल में आकर खड़ी हो गई। उद्धत, हृष्ट-पुष्ट प्रतिभाशाली नवयुवक!

प्रभानाथ से वीणा ने प्रेम किया था। वह प्रेम कितना प्रशान्त और कितना सम्पूर्ण था। अपने जीवन के प्रत्येक अभाव को वीणा ने अपने को प्रभानाथ में लय करके खो दिया था, उसका समस्त अस्तित्व प्रभानाथ था। और प्रभानाथ को पाकर वह अपने मार्ग से प्रायः हट गई थी। इस थोड़े से काल में, जब वह प्रभानाथ के साथ रही, वह अपने दल को भूल गई थी, वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गई थी, वह अपने व्रत को भूल गई थी। एक प्रभानाथ—और उसके आगे कुछ नहीं।

और एकाएक उसकी आंखों के आगे जेल की एक काल्पनिक कोठरी आ गई। उसने देखा कि सीखचों के अन्दर प्रभानाथ पड़ा है—उसके हाथों में हथकड़ियां हैं, पैरों में बेड़ियां हैं, और वह कराह रहा है! भय से वीणा चीख उठी; जबर्दस्ती उसने अपनी आंखें खोल दीं—और अब उसके सामने उसका कमरा था, जिसमें उषा की प्रथम किरणें प्रवेश कर रही थीं।

वीणा उठ खड़ी हुई। पण्डित रामनाथ तिवारी स्नान कर रहे थे। जल्दी-जल्दी वीणा ने पूजा के फूल तोड़ कर पूजा-गृह में रख दिए—रामनाथ

तिवारी की ओर से वह तीन घंटे के लिए निश्चिन्त हो गई। सब कुछ करके वह अपने कमरे में लौटी। उसने अपनी सबसे सुन्दर साड़ी निकालकर पहनी, और दो-चार आभूषण, जो उसके पास थे, उनसे उसने अपना सम्पूर्ण सिंगार किया। इसके बाद उसने अपनी पिस्तौल निकाली। उस पिस्तौल को उसने बहुत दिनों से न छुआ था। आज उस पिस्तौल के लोहे को छूकर वह कुछ सिहर उठी। लेकिन उसने अपना मन कड़ा किया, पिस्तौल में उसने कारतूस लगा लिए।

वह कमरे के बाहर निकली। रामनाथ पूजा के कमरे में पूजा कर रहे थे। पूजा-गृह की देहली पर वह रुकी, और धीरे से उसने अपना मस्तक देहली पर रखकर प्रणाम किया। वह प्रणाम पूजा-गृह के देवता को न किया गया था। वह अन्तिम प्रणाम वीणा ने प्रभानाथ के पिता, अपने श्वसुर पण्डित रामनाथ तिवारी को किया था। और फिर दबे पांव वह वहां से चल दी।

स्टेशन आकर वह कानपुरवाली गाड़ी में बैठ गई।

५

कानपुर स्टेशन पर उतर कर वीणा दयानाथ के बंगले की ओर रवाना हो गई। एक बार उसके मन में आया कि वह अपनी पार्टीवालों से मिले, उन्हें सारी परिस्थिति बतलावे, उनकी सहायता ले—पर दूसरे ही क्षण उसने अपना विचार बदल दिया। यह मामला उसका था, निजी, जिसका पार्टीवालों से कोई सम्बन्ध न था। प्रभानाथ उसका था, वह प्रभानाथ की थी। जो कुछ उसे करना था, वह प्रभानाथ के हित के लिए, अपनी पार्टीवालों के लिए नहीं। अपने और प्रभानाथ के जीवन में किसी भी तीसरे व्यक्ति का आना उसके लिए असह्य था। जो कुछ करेगी, वह करेगी।

आज वह अपने में एक नवीन प्रकार की चेतना, एक नई स्फूर्ति अनुभव कर रही थी। आज वह साक्षात् शक्ति बनकर निकल पड़ी थी—पिस्तौल उसके वक्ष में थी। आज वह विनाश के ताण्डव के लिए तैयार होकर आई थी।

उसकी अवस्था ठीक उस दीपक के समान थी, जो बुझने के पहले एक प्रखर प्रकाश अपने चारों ओर बिखेर देता है। उसके मन में भय न था, उसके मन में झिझक न थी; अपने प्राणों को हथेली पर रखकर वह मौत से खेलने निकल पड़ी थी। प्रातःकाल के बाल्य और हँसते हुए जीवन की ओर उसका ध्यान न था—वह अपने अन्तर में एक पूर्ण-रूप से विकसित और प्रौढ़ जीवन का अनुभव कर रही थी।

दयानाथ के बंगले के बाहर ही तांगे से उतरकर उसने तांगेवाले को विदा कर दिया। पैदल उसने बंगले में प्रवेश किया। उस समय आठ बजे थे।

उमानाथ बरामदे में बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था; वीणा को देख कर वह चौंक उठा। उठते हुए उसने कहा, "आप इस वक्त यहां?"

वीणा मुस्कराई, "जी हां! प्रभानाथ की तलाश में निकली हूँ!"

वीणा की मुस्कराहट में निहित उस करुणा को, और उसके वाक्य में निहित निश्चय को, उमानाथ समझ सका या नहीं; यह नहीं कहा जा सकता; उसने केवल इतना कहा, "मैं समझता हूँ, कि आप प्रभा का पता न लगा सकेंगी—बदुआ, काका और हम सब लोग पता लगाने में हार गए हैं।"

वीणा ने शान्त भाव से कहा, "लेकिन मैं हारने के लिए नहीं निकली हूँ—मैं प्रभा का पता लगाने आई हूँ। थोड़ी-सी सहायता चाहती हूँ!"

"कैसी सहायता?" कौतूहल से उमानाथ ने पूछा।

"मुझे आप विश्वम्भरदयाल का पता बतला दीजिए—उसके आगे मैं सब-कुछ कर लूंगी!"

"चलिए, विश्वम्भरदयाल के बंगले में मैं आप को पहुंचा दूं!" उमानाथ ने कहा।

"नहीं—आप मेरे साथ मत चलिए, नहीं तो आप मुसीबत में फंस सकते हैं! मैं अकेले सब-कुछ कर लूंगी। आप सिर्फ़ मुझे पता बतला दीजिए!"

उमानाथ ने वीणा को पता बतला दिया ।

वीणा ने चलते हुए कहा, "मैं यहां आई और आप से मिली, यह बात केवल दो व्यक्ति जानते हैं---आप और मैं, तीसरा आदमी इस बात को न जानने पाए, यह मेरी आप से प्रार्थना है !"

वीणा चली गई और उमानाथ लौटकर फिर कुर्सी पर बैठ गया ! वह अजीब चक्कर में था । आखिर वीणा क्या करेगी ? लेकिन उसका मन कह रहा था कि वीणा कुछ करेगी जरूर---और जो कुछ वह करेगी, वह भयानक होगा । उमानाथ ने वीणा के स्वर में एक तरह की दृढ़ता देखी, उसकी आंखों में एक तरह का विश्वास देखा था।

६

उमानाथ अनायास ही बहुत अधिक उद्विग्न हो उठा था । ऐसी उद्विग्नता शायद उसने पहले कभी अनुभव न की थी । लाख प्रयत्न करने पर भी उमानाथ को उस उद्विग्नता का कोई स्पष्ट कारण न मिल रहा था, पर फिर भी एक भयानक उथल-पुथल वह अपने अन्तर में अनुभव कर रहा था ! उमानाथ को उस समय कुछ ऐसा लग रहा था कि उसके चारों ओर जो कुछ है, वह सब का सब अनायास ही बदलनेवाला है---और वह यह भी अनुभव कर रहा था कि यह बदला अच्छा न होगा, यह बदला विनाश होगा ! विनाश में निहित निर्माण भी है---उमानाथ को इस बात पर विश्वास था; लेकिन निर्माण की कोई स्पष्ट रूप-रेखा उसके सामने न होने के कारण उसका निर्माण के प्रति विश्वास उसके अन्दर वाले विनाश के प्रति भय पर विजय न पा सकता था !

उमानाथ उठ खड़ा हुआ---मर्माहत-सा ! उसने मन ही मन कहा, "समझ में नहीं आता कि क्या होनेवाला है ।" और वह जोर सेअपने अन्दर-वाली विवशता पर ही हंस पड़ा । कमरे से निकलकर वह बरामदे में बैठ गया । लेकिन बरामदे में भी उसकी विचार-धारा ने साथ न छोड़ा, और

उसने उस समय दयानाथ और मार्कण्डेय के आगमन को मन ही मन धन्यवाद दिया।

मार्कण्डेय को उमानाथ के साथ छोड़कर दयानाथ अन्दर चला गया। थोड़ी देर तक दोनों चुप बैठे रहे, इसके बाद मार्कण्डेय ने कहा, "देख रहे हो उमा ! ज़रा-सी बात पर दयानाथ इतने अधिक कटु हो गए हैं !"

यह स्पष्ट था कि दयानाथ के अन्दर एक प्रकार की कटुता पैदा हो रही थी, और इस पर उमानाथ को आश्चर्य हो रहा था। दयानाथ—त्याग और बलिदान का एकनिष्ठ उपासक—एक ज़रा-सी बात से उसके अन्दर कटुता क्यों पैदा हो रही है, उमानाथ को समझ में न आ रहा था। उमानाथ ने केवल इतना कहा, "मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है ! मार्कण्डेय भइया ! बड़के भइया अपनी ही हठधर्मी के कारण इस चुनाव में हारे हैं, ऐसी हालत में वे दूसरों को दोष कैसे दे सकते हैं !"

"एक तरह से तुम्हारी बात ठीक है, उमा, लेकिन एक दूसरा पहलू भी है—और अगर उस पहलू पर गौर करोगे तो दयानाथ के अन्दरवाली कटुता तुम्हें स्वाभाविक लगेगी।"

उमानाथ ने मार्कण्डेय की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, वह सोचने लगा। इतने में उसे सुनाई पड़ा, "कहो कामरेड, क्या सोच रहे हो ?"

उमानाथ ने चौंककर देखा, ब्रह्मदत्त खड़ा मुस्करा रहा था। उमानाथ ने कहा, "कुछ नहीं, यों ही इस अजीब-गरीब दुनिया की अजीब-गरीब रफ्तार पर सोच रहा था !"

ब्रह्मदत्त खिलखिला कर हँस पड़ा, "कामरेड ! कुछ सोचना-विचारना—यह सब बेकार है ! कुछ भी नहीं समझ में आ सकता—रत्ती भर नहीं !"

मार्कण्डेय ने कौतूहल के साथ ब्रह्मदत्त को देखा, फिर उसने मुस्कराते हुए कहा, "ब्रह्मदत्त ! तुम भी दार्शनिक बन रहे हो ? इस दर्शन से सँभल-कर ही रहना।"

ब्रह्मदत्त मार्कण्डेय की बात के व्यंग को पी गया, उसने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बैठते हुए ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "दयानाथ-जी के क्या हाल हैं ? अपनी पराजय पर उन्हें एक धक्का-सा लगा होगा ! वे कल्पना भी नहीं करते थे कि वे पराजित होंगे !"

उमानाथ ने बात टालने की कोशिश की, "छोड़ो भी उस बात को ब्रह्मदत्त ! जो कुछ हो चुका, उस पर बात करना बेकार है !"

लेकिन शायद ब्रह्मदत्त अपनी कैफ़ियत देने पर तुल गया था, "नहीं कामरेड ! उस बात को स्पष्ट न करना मेरे हित में न होगा, क्योंकि प्रश्न तुम्हारे बड़े भाई का है, और इसलिए दयानाथजी का मामला मेरे लिए किसी हद तक व्यक्तिगत प्रश्न हो जाता है। लेकिन कामरेड, मैंने बहुतेरी कोशिश की कि दयानाथजी झुकें, अपनी अहम्मन्यता छोड़कर वह एक क्षण के लिए मेरे स्तर पर आवें, मुझसे बराबरी से मिलें ! और मैं असफल हुआ, यह मार्कण्डेयजी अच्छी तरह जानते हैं ! मनुष्यता का कल्याण करने का दम भरनेवाला कांग्रेस का एकनिष्ठ प्रतिनिधि वर्गवाद का कितना बड़ा पुजारी हो सकता है, यह मैंने दयानाथजी में स्पष्ट देखा। और मैं कहता हूँ कामरेड, इस पर मुझे ग्लानि हुई, ग्लानि ही नहीं, एक प्रकार का भयानक विद्रोह मेरे अन्तःकरण में भर गया !"

उमानाथ ब्रह्मदत्त की भावना को समझता था, वह भी तो वर्गवाद का भयानक शत्रु था ! लेकिन न उमानाथ और न ब्रह्मदत्त दयानाथ का ठीक-ठीक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सके थे। उमानाथ ने कहा, "मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं, बड़के भइया भी वर्गवाद के उतने ही बड़े प्रतिनिधि हैं, जितना कोई पूंजीपति हो सकता है !"

इस पर मार्कण्डेय ने कहा, "उमा ! एक बात तुम्हारी ठीक है, दूसरी बात में तुम गलती कर गए ! दयानाथ वर्गवाद में विश्वास करते हैं, यह मैं मानता हूँ; लेकिन उनका वर्गवाद पूंजीवाद का वर्गवाद नहीं है, वह दूसरा ही वर्गवाद है !"

"यह दूसरा वर्गवाद कहां से निकल आया—ज़रा मैं भी सुनूं!" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"लेकिन तुम बुरा न मान जाना!" मार्कण्डेय ने मुस्कराते हुए कहा।

"आप इसकी चिन्ता न करें—मैं जानता हूं कि आप लोग इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं करते कि दूसरा आदमी आपकी बात पर बुरा मानता है या उसे पसन्द करता है! आप लोग सत्य के उपासक हैं न!" और ब्रह्मदत्त अपने मज़ाक पर खुद हँस पड़ा।

मार्कण्डेय ने कहा, "तो फिर सुनो ब्रह्मदत्त! दुनिया में एक चीज़ होती है संस्कृति; नेकी और ईमानदारी, शील और विनय। आज इन मानवीय गुणों का उपासक एक नया वर्ग पैदा हो रहा है, और दयानाथ उस वर्ग के आदमी हैं।"

इस बात से ब्रह्मदत्त तिलमिला उठा, "नेकी, ईमानदारी, संस्कृति, शील और विनय! समाज के भयानक भुलावे! असत्य की नींव पर बनाए गए वे मन्दिर, जिनमें पूंजीपति उत्पीड़ित जन-समुदाय को छल-कपट से फँसाकर अपना काम निकालता है!

लेकिन उमानाथ ने पूछा, "मार्कण्डेय भइया! आपने जो कुछ कहा, वह बाहरी रूप से ठीक दिखता है, लेकिन उसका एक आन्तरिक रूप है, जिसे आप नहीं देख पाते! यह संस्कृति, यह विनय, यह शील, यह नेकी, यह ईमानदारी!—ये सब के सब समर्थता से उत्पन्न हैं, उस समर्थता से, जिसे दूसरों को दबाकर, दूसरों को उत्पीड़ित करके, दूसरों को असमर्थ बनाकर कुछ इने-गिने लोगों ने हासिल कर लिया है!"

"यहीं गलती कर रहे उमा!" मार्कण्डेय ने उत्तर दिया, "यह सब चीज़ें, जिन्हें तुम समर्थ कहते हो, उनके पास नहीं हैं। यद्यपि इन्हीं चीज़ों को मैं पूर्ण समर्थता समझता हूं! तुमने अपने समर्थ पूंजीपति को तो देखा ही है! वह न नेक है, न ईमानदार है! उसमें न शील है, न विनय है! सांस्कृतिक दृष्टि से वह बहुत नीचे गिरा हुआ है! यह नेकी-ईमानदारी की

संस्कृति मनुष्य के अन्दरवाली प्रेम, दया तथा त्याग की भावनाओं पर अवलम्बित है, स्वयम् अपने को मिटाने की भावना-द्वारा जनित है ! लेकिन शायद इसे तुम न समझ सकोगे, क्योंकि तुम्हारी संस्कृति हिन्दुस्तानी नहीं है, तुम्हारी संस्कृति विदेशी है !"

ब्रह्मदत्त बोल उठा, "मार्कण्डेयजी ! मैंने माना कि उमानाथजी विलायत हो आए हैं और उन पर विदेशी संस्कृति का प्रभाव पड़ा है, लेकिन मैं तो ठेठ हिन्दुस्तानी हूँ !"

मार्कण्डेय मुस्कराया, "हां ! तुम हिन्दुस्तानी ज़रूर हो, क्योंकि तुम्हारा जन्म हिन्दुस्तान में हुआ है, और तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा भी हिन्दुस्तान में ही हुई है। लेकिन ब्रह्मदत्त ! हिन्दुस्तान में जो शिक्षा मिल रही है, वह विदेशी है। आज एक सौ वर्ष से हम हिन्दुस्तानी विदेशी विचार-धारा का अध्ययन कर रहे हैं, और अब अपने को उस विदेशी विचार-धारा में पूरी तौर से खो चुके हैं। धन और उत्पीड़न को सत्य माननेवाली आज की हिंसात्मक विचार-धारा हिन्दुस्तान की नहीं है। आज तुम अपनी दया, त्याग, ममता, भावना की संस्कृति को छोड़कर जीवन के कुरूप और हिंसात्मक संघर्ष को अपना सत्य मान बैठे हो !"

मार्कण्डेय ने जो कुछ कहा था, उस पर ब्रह्मदत्त थोड़ी देर तक सोचता रहा; फिर उसने कहा, "जो बात आपने कही है मार्कण्डेयजी, मैं उससे इनकार नहीं करता और न करना चाहता हूँ ! वास्तव में मैं अपनी संस्कृति और अपनी सभ्यता का विरोधी हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि हमारी संस्कृति और सभ्यता गलत है ! इस सभ्यता और संस्कृति के कारण ही हमें गुलामी भोगनी पड़ रही है—इन्हीं के कारण हम पशुओं से भी गए-बीते हैं !"

मार्कण्डेय ने कहा, "ब्रह्मदत्त ! मैं स्वीकार करता हूँ कि हम अपनी ही कमजोरियों और बुराइयों के कारण गुलाम बने हैं, लेकिन इसके ये अर्थ नहीं कि हमारा सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास ही गलत है। सही सिद्धान्तों को जीवन पर लागू करने का हमारा तरीका गलत हो गया ! यही हमारी सब से बड़ी कमजोरी रही !"

इस बातचीत में उमानाथ को कोई रस न आ रहा था ! वह अनुभव कर रहा था कि उसके लिए—और उसके ही लिए क्या, सारी दुनिया के लिए समय काम करने का है, बात करने का नहीं । पर उसकी समझ में न आ रहा था कि क्या काम किया जाय । वह उठ खड़ा हुआ और उसने ब्रह्मदत्त से कहा, "चलो कामरेड, थोड़ा-सा घूम ही आया जाय !"

ब्रह्मदत्त भी दयानाथ के बंगले में बैठने न आया था। उठते हुए उसने भी कहा, "चलो !"

उमानाथ ब्रह्मदत्त के साथ बंगले के बाहर पैदल ही निकल पड़ा । दोनों तांगे की तलाश में चले जा रहे थे कि ब्रह्मदत्त को कुछ खटका-सा हुआ। उसने पीछे मुड़कर देखा, करीब पचीस कदम की दूरी पर दो आदमी उनके साथ-साथ चले आ रहे थे । इन दो आदमियों को ब्रह्मदत्त ने, जब वह उमानाथ के यहां आया था, दयानाथ के बंगले के फाटक के पास खड़े देखा था । उसने धीरे -से उमानाथ से कहा, "कामरेड, दो आदमी हम लोगों का पीछा कर रहे हैं, और मेरा खयाल है कि ये तुम्हारा पीछा कर रहे हैं।"

उमानाथ ने कनखियों से उन दोनों को देखा, वे लोग निश्चिन्त भाव से इन दोनों के पीछे-पीछे चल रहे थे । उमानाथ ने कहा, "कामरेड, मैं समझता हूँ कि अब मुझे कानपुर से चल देना चाहिए !"

इसी समय ब्रह्मदत्त ने दूर पर एक कार आती देखी । ब्रह्मदत्त सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस की कार पहचानता था । उसने उमानाथ से कहा, "उमा ! तुम्हें यहां से भागना पड़ेगा; मेरा खयाल है उस कार में तुम्हारे नाम वारंट भी है !"

कार दूर ही थी और पीछा करनेवाले दो आदमी उस समय तक ब्रह्मदत्त और उमानाथ के नजदीक पहुंच गए थे । उनके बांए हाथ पर कानपुर का ग्रीनपार्क था; दोनों ने ग्रीनपार्क में प्रवेश किया । पीछा करनेवालों में एक आदमी पार्क के फाटक पर रह गया और एक इन दोनों के पीछे लग गया।

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड ! अब हम दोनों का साथ छूटना

चाहिए । मैं इन पुलिसवालों से उलझता हूं, इस बीच में तुम तेजी से पार्क की दूसरी तरफ़ निकलकर शहर की तरफ़ रवाना हो जाओ ।

साथ वाला आदमी इन दोनों से दस कदम पीछे था। ब्रह्मदत्त ने रुककर साथ चलनेवाले आदमी से पूछा, "तुम हम लोगों के पीछे-पीछे क्यों चल रहे हो ?"

"आपके पीछे मैं कहां चल रहा हूं, मैं तो योंही घूमने चला आया हूं।"

उमानाथ इस समय बहुत आगे बढ़ गया था । उस आदमी ने जैसे ही आगे बढ़ने की कोशिश की, ब्रह्मदत्त ने उसका हाथ पकड़ लिया, "पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो और तुम्हारा मंशा क्या है ?" उस आदमी ने हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा, "छोड़ो मेरा हाथ, बेकार उलझ रहे हो !"

लेकिन ब्रह्मदत्त ने कहा, "पहले मेरे सवाल का जवाब दे दो, तब तुम्हारा हाथ छोड़ूंगा ।"

इस समय तक उमानाथ पेड़ों के एक झुरमुट के नीचे पहुंच गया था और वह पार्क की चहारदीवारी की तरफ़ दौड़ने लगा था। उस आदमी ने जोर से आवाज़ लगाई--"लाला !"

ब्रह्मदत्त ने देखा कि लाला के साथ सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस और एक सब-इंसपेक्टर चले आ रहे हैं । ब्रह्मदत्त के लिए केवल एक उपाय था, उस आदमी का मुंह बन्द कर दिया जाय! ब्रह्मदत्त ने भरपूर एक घूंसा इस आदमी को मारा--और घूंसा खाकर वह आदमी जमीन पर गिर पड़ा।

पुलिसवाले दौड़कर ब्रह्मदत्त के पास आ गए । इंसपेक्टर ने ब्रह्मदत्त से कहा, "तुमने इस आदमी को मारा क्यों ?"

"इसने मुझे गाली दी थी !"

सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस ने दूसरा सवाल किया, "उमानाथ कहां है ?"

"कौन उमानाथ ?" ब्रह्मदत्त ने पूछा ।

"वही जो तुम्हारे साथ थे !" लाला ने कहा।

मेरे साथ कोई नहीं था ! ब्रह्मदत्त ने ग्रीनपार्क के फाटक की तरफ़ कदम बढ़ाते हुए कहा ।

सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस ने लाला से कहा, "इस आदमी को गिरफ्तार कर लो, इसने मुलज़िम के भागने में मदद दी है ।"

ब्रह्मदत्त मुस्कराया, "आप मेरा कुछ भी नहीं कर सकते—और आपका मुलज़िम अब आपको नहीं मिल सकता !"

७

प्रभानाथ के मामले में विश्वम्भरदयाल को अभी तक कोई सफलता नहीं मिली थी ! दो दिन से प्रभानाथ को एक मिनट भी नहीं सोने दिया गया था, लगातार उससे प्रश्न किए जा रहे थे । लेकिन प्रभानाथ यह सब बर्दाश्त कर रहा था !

विश्वम्भरदयाल को आश्चर्य हो रहा था, आश्चर्य ही नहीं, उसे एक तरह की निराशा हो रही थी ! क्या वास्तव में प्रभानाथ इतना वीर है कि वह इन यन्त्रणाओं को बर्दाश्त कर जायगा ? अगर प्रभानाथ ने दो दिन और न बतलाया—तब ? तब विश्वम्भरदयाल की असफलता !

दो दिन बीत गए—अगले दो दिन भी बीत सकते हैं ! विश्वम्भरदयाल अजीब उलझन में था ! आखिर किस तरह प्रभानाथ से बात कहलाई जाय ?

और जब विश्वम्भरदयाल अपनी इन उलझनों में पड़ा था, उसी समय उसे वीणा के आने की सूचना मिली । बरामदे में आकर उसने देखा—एक युवती कुर्सी पर बैठी विश्वम्भरदयाल की प्रतीक्षा कर रही है । विश्वम्भरदयाल ने पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "कहिए, कैसे तकलीफ़ की आपने ?"

"मैं आपसे प्रभानाथ के सम्बन्ध में बातें करने आई हूँ !"

विश्वम्भरदयाल चौंक उठा । उसने वीणा को गौर से देखा —"क्या यह लड़की......?" और वीणा ने उसे अधिक सोचने का अवसर नहीं दिया, "देखिए—मैं आपसे प्रार्थना करने आई हूं कि प्रभानाथ को आप बचा दें । मैं उनकी पत्नी हूं—मेरा सुहाग आप मत लूटें !"

अपने उन्नाव के प्रवास-काल में वीणा ने बड़ी साफ़ हिन्दुस्तानी बोलनी सीख ली थी । विश्वम्भरदयाल यह निश्चय न कर पा रहा था कि वह लड़की हिन्दुस्तानी है या बंगाली । वीणा के बात करने के ढंग में एक अहिन्दी भाषी की झलक तो स्पष्ट थी, लेकिन भाषा वह शुद्ध बोल रही थी ।

विश्वम्भरदयाल ने कहा, "मैं क्या कर सकता हूं ! मैंने तो उसे एक उपाय बतलाया था, और वह राजी भी हो गया था, लेकिन खुद उसके बाप ने उसे बरगला दिया ।"

वीणा ने करुणभाव से कहा, "मैं जानती हूं—ददुआ ने उन्हें मना कर दिया था । ददुआ के तीन लड़के हैं—एक चला गया तो दो तो रह जाएंगे—लेकिन मेरे लिए ?—मेरा केवल एक ही आधार है !"

"लेकिन मैं मजबूर हूं !" विश्वम्भरदयाल ने कहा, "केवल एक उपाय है—प्रभानाथ अपने साथियों का नाम बतला दे—और मैं जिम्मेदारी लेता हूं कि वह साफ़ छूट जायगा !"

वीणा ने कहा, "आप मुझे उनसे मिला दें—मैं उन्हें इस बात पर राजी कर दूंगी । उन्हें जीवित रहना चाहिए, अपने लिए न सही, पर मेरे लिए तो ! मेरी आपसे यही विनय है कि एक बार आप मुझे उनसे मिला दें ! मैं उन्हें राजी कर लूंगी !"

विश्वम्भरदयाल मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था । जिस उलझन में वह पड़ गए थे, अनायास ही उस उलझन से निकलने का एक बहुत सुगम साधन उसके हाथ में आ गया था। उसने कहा, "अच्छी बात है, मैं अभी आपको प्रभानाथ से मिलाता हूं चलकर, लेकिन याद रखिएगा कि अगर आपके घरवालों ने आपको सिर्फ़ इस बात के लिए भेजा है कि आप

प्रभानाथ का पता लगाएं कि वह कहां है, तो इसमें उनको असफलता ही होगी, क्योंकि आज ही मैं उसको यहां से ट्रान्सफ़र करके दूसरी जगह भेज दूंगा।"

विश्वम्भरदयाल ने अपनी कार निकलवाई और वीणा को साथ बिठला कर वे कैम्प-जेल में पहुंचे। उन्होंने प्रभानाथ को बुलवाया।

प्रभानाथ की सारी शक्तियां उस दिन सुबह से ही जवाब देने लगी थीं। अपनी समग्र शक्तियों को वह दो दिनों तक कैम्प-जेल की यन्त्रणाओं पर विजय पाने में लगाए रहा था—और अब उसकी शक्तियां क्षीण होने लगी थीं! प्रभानाथ के चारों ओर निराशा थी। सुबह से कई बार उसने सोचा था कि वह सब कुछ बतलाकर इन यन्त्रणाओं से छुटकारा पाए—लेकिन उन्हीं बची-खुची शक्तियों ने उसे ऐसा करने से प्रत्येक बार रोक दिया। पर प्रभानाथ जानता था कि अधिक समय तक उसकी शक्तियां उसका साथ न दे सकेंगी!

जिस समय प्रभानाथ वीणा के सामने आया, उसके पैर कांप रहे थे, उसके चेहरे पर पीलापन था। वीणा को देखते ही वह कह उठा, "तुम वीणा!"

वीणा ने आंख से इशारा किया—और प्रभानाथ समझ गया कि उसे अधिक बात नहीं करनी है। उसे केवल वीणा की बात सुननी है।

वीणा ने प्रभानाथ के पैर छुए—इसके बाद उसने रोनी-सी सूरत बनाकर कहा, "मैंने सुना है कि तुमने अपने साथियों के नाम बताने से इनकार कर दिया है! दद्दुआ की बात तुमने मान ली, लेकिन तुमने मेरा ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूंगी! बोलो! बोलो!" और वीणा की हिचकियां बंध गईं।

स्त्री कितना बड़ा अभिनय कर सकती है, यह प्रभानाथ ने सोचा तक न था। वीणा कहती जा रही थी, "तुमने मुझे विधवा बनाने के लिए ही मुझसे विवाह किया था क्या? क्या तुम्हारा मेरे प्रति कोई कर्तव्य नहीं है?"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा की बात सुनी ! उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वीणा यह विवाहवाली बात कहां से निकाल लाई ! उसने कहा, "तो तुम क्या चाहती हो ?"

हिचकियां लेते हुए उसने कहा, "तुम्हारी यह कैसी हालत है ? इन यन्त्रणाओं से तुम कब तक लड़ सकोगे ? बोलो ? मैं तुमसे कहने आई हूं कि तुम अपने साथियों के नाम बतला दो !"

प्रभानाथ आसमान से गिरा। "अपने साथियों के नाम बतला दूं—असम्भव ! जाओ मेरे सामने से—जाओ !"

लेकिन वीणा ने प्रभानाथ का हाथ पकड़ लिया। उसने प्रभानाथ की उंगली अपने हाथवाली अंगूठी पर लगा ली, "मैं जाने के लिये नहीं आई हूं, मैं इस यन्त्रणा से तुम्हें मुक्त करने आई हूं !"...और वीणा चुप हो गई। इस बीच में उसने अपनी अंगूठी प्रभानाथ को दे दी थी।

प्रभानाथ उस अंगूठी के स्पर्श से वीणा का मतलब समझ गया। तनिक संयत होकर उसने कहा, "मुझे समय दो !"

"नहीं—समय की बात नहीं—तुम्हें अपने साथियों के नाम बतलाने ही होंगे, अपने लिए नहीं, मेरे लिए !"

"अच्छी बात है—लेकिन तुम मेरे सामने से जाओ—जाओ !" और प्रभानाथ विश्वम्भरदयाल की ओर घूमा, "मुझे यह न मालूम था कि आप मेरे खिलाफ़ इस अस्त्र का प्रयोग कीजिएगा—मैं हारा !" और प्रभानाथ वहां से घूम कर चल दिया।

विश्वम्भरदयाल को ताज्जुब हो रहा था कि कितनी आसानी से उसका काम हो गया। अपनी विजय की प्रसन्नता के भावों में उसने अपने को इतना अधिक खो दिया था कि न वह वीणा के मुख के भावों का अध्ययन कर सका और न प्रभानाथ के मुख के भावों का। उसने मुस्कराते हुए वीणा से कहा, "चलिए ! जहां कहिए, मैं आपको पहुंचा दूं।"

वीणा उसके साथ कार पर बैठ गई, "आपके बंगले के सामने मेरा तांगा खड़ा है—वहीं चलिए; वहां से मैं चली जाऊंगी !"

विश्वम्भरदयाल के साथ वीणा उनके बंगले पर लौट आई। वहां कोई तांगा नहीं था।

"मालूम होता है, मेरा इंतज़ार करते-करते तांगावाला चला गया। आप अपने नौकर से कोई तांगा मंगवा दीजिए, बड़ी कृपा होगी !"

विश्वम्भरदयाल इस समय काफ़ी उदार हो रहे थे, "आप मेरी कार ले जाइए न !"

"नहीं, आप तांगा मंगवा दीजिए।"

विश्वम्भरदयाल ने कार के ड्राइवर को तांगा लाने का आदेश देकर वीणा से कहा, "अच्छी बात है—आप तब तक ड्राइंग-रूम में बैठिए।"

विश्वम्भरदयाल यह कह कर अन्दर चला गया—जब वह बाहर आया उस समय वीणा चुपचाप बैठी थी। सामनेवाली कुर्सी पर बैठते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा, "मैंने नौकर से चाय लाने को कह दिया है, आप चाय पीकर जाइएगा !...अरे..." यह कहते-कहते उसका चेहरा पीला पड़ गया—वह भय से कांप उठा।

उसने देखा कि वीणा पिस्तौल ताने उसके सामने खड़ी है ! वीणा ने कहा, "तुम समझते हो कि तुम जीते—शैतान कहीं के—मैं कहती हूं कि तुम हारे। मैंने प्रभानाथ को पोटेशियम साइनाइड दे दिया है—मैं प्रभानाथ को मार कर खुद मरने के लिए निकली थी। लेकिन खुद मरने से पहले तुम्हें मारने का मुझे मौका मिल गया"...और यह कहते हुए उसने पिस्तौल का घोड़ा दाब दिया, गोली विश्वम्भरदयाल के मत्थे में घुस गई। वीणा लगातार गोलियां चलाती गई—और जब उसकी पिस्तौल में एक गोली बाकी बची, उसने वह गोली अपने मत्थे में मार ली।

book so every student must read it. This book is about the struggle of freedom in our country (India)

पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने देखा--प्रभानाथ का शरीर काला पड़ गया था। पर प्रभानाथ के चेहरे पर एक प्रकार की शान्ति थी, एक प्रकार का संतोष था। श्यामनाथ तिवारी की समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो गया।

विश्वम्भरदयाल ने यहां तक कर डाला--उनका लड़का उनके सामने मरा पड़ा था। उस समय एकाएक श्यामनाथ की मुद्रा में एक अजीब तरह का परिवर्तन हो गया।

वीणा के जाते ही प्रभानाथ ने अंगूठी में दिया हुआ ज़हर खाकर आत्म-हत्या कर ली थी। कैम्प-जेल में एक तरह की सनसनी फैल गई। उसी समय पण्डित श्यामनाथ तिवारी को इस घटना की सूचना भेज दी गई थी।

श्यामनाथ ने जेलर से कहा, "अब क्या होगा?"

"लाश पोस्टमार्टम के लिए भेजी जायगी। शाम तक आपको इत्तिला मिल जायगी!"

"बहुत अच्छा!" शान्त भाव से श्यामनाथ ने कहा, "लेकिन उसी समय वे ज़ोर से हँस पड़े, "मरने के बाद भी उसके शरीर को शान्ति नहीं, मरने के बाद भी उसके शरीर की चीर-फाड़ होगी। खूब मज़ाक करते हैं आप लोग!"

जेलर को पण्डित श्यामनाथ के इस व्यवहार से आश्चर्य हुआ। श्याम-नाथ हँस रहे थे, "भेजिए जेलर साहेब इस लाश को चीर-फाड़ के लिए—इसमें रक्खा ही क्या है? जब जिन्दा आदमी को आप लोगों ने उसके बाप से छीन लिया था, तब मुर्दा शरीर को उस बाप के हवाले करके आप उस अभागे बाप की हँसी उड़ाते हैं। लेकिन मैं ऐसा नहीं हूं कि आप लोग मेरी हँसी उड़ा सकें।" और यह कहकर श्यामनाथ वहां से चल दिए।

अपनी कार पर बैठते हुए श्यामनाथ ने ड्राइवर से कहा, "विश्वम्भरदयाल के मकान पर चलो!"

श्यामनाथ ने बगल में रक्खे हुए एटेचीकेस से अपना सर्विस रिवाल्वर निकाला—आज श्यामनाथ बदला लेने पर तुल गए थे। विश्वम्भरदयाल के बंगले में पहुंचकर उन्होंने देखा कि वहां पुलिसवालों की भीड़ लगी हुई है। श्यामनाथ मन ही मन हँस पड़े, "इतने पुलिसवाले अपनी हिफ़ाजत के लिए इसने रख छोड़े हैं—लेकिन नहीं बचेगा—आज वह नहीं बचेगा !"

श्यामनाथ के कमरे में प्रवेश करते ही पुलिसवालों ने उन्हें रास्ता दे दिया। और श्यामनाथ ने देखा कि विश्वम्भरदयाल मरा पड़ा है।

"यह क्या ?" श्यामनाथ ने कहा।

पास खड़े हुए एक सब-इंसपेक्टर ने कहा, "इस औरत ने इनकी हत्या करके अपनी हत्या कर ली !" और उसने एक तरफ़ पड़ी हुई वीणा की लाश की तरफ़ इशारा किया।

"अरे—यह तो वीणा है !" श्यामनाथ कह उठे। और वे वीणा के पास जाकर खड़े हो गए।"

"क्या आप इसे पहचानते हैं ?" पुलिस इंसपेक्टर ने पूछा।

"पहचानता हूँ ? मुझसे पूछते हो इसे पहचानता हूँ ?" और श्यामनाथ का स्वर प्रखर होता गया, "यह लड़की मुझसे बाजी मार ले गई !" यह कहते हुए श्यामनाथ ने अपना रिवाल्वर निकाल कर विश्वम्भरदयाल की लाश के सामने तान लिया, "मैं आज इस आदमी को मारने आया था—लेकिन इस लड़की ने मेरा अधिकार छीन लिया; चुड़ैल कहीं की !" श्यामनाथ दांत पीसने लगे, "मेरा अधिकार छीन ले गई यह चुड़ैल ! लेकिन—अभी मुझे और कुछ करना है—कुछ और करना है !" यह कहते-कहते उन्होंने अपना रिवाल्वर फेंक दिया और बढ़कर विश्वम्भरदयाल के शव को एक ठोकर मारी।

पुलिसवालों ने उन्हें पकड़ लिया। श्यामनाथ चिल्ला पड़े, नरक का कीड़ा—मेरे खान्दान को मिटाकर गया—गया !"

श्यामनाथ अनायास ही रुक गए—"तुम्हीं मेरे साथ मजाक नहीं कर सकते—मैं भी तुम लोगों के साथ मजाक कर सकता हूं ! सुना विश्वम्भर-दयाल—एक छोटी-सी लड़की—तुम्हारे साथ मजाक कर गई !" और श्यामनाथ जोर से हँस पड़े ।

६

प्रभानाथ और वीणा की दाह-क्रिया समाप्त करके पण्डित रामनाथ तिवारी उन्नाव लौट गए । आज पहली बार उन्होंने अपने जीवन में पराजय की धुंधली छाया देखी थी । श्मशान में पण्डित रामनाथ तिवारी अपनेपन पर अधिकार रक्खे रहे, अविचलित भाव से अपने ही पुत्र का दाह-संस्कार उन्होंने किया । पर लौटकर उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि उनकी शक्तियां उन्हें जवाब देने लगी हैं ।

वे उस बड़े बंगले में अकेले बैठे थे, स्तब्ध, मौन ! वह पराजय की धुंधली छाया, जिसे उन्होंने प्रभानाथ की चिता में आग लगाते हुए देखा था, अब धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थी । जीवन के प्रति एक प्रकार की भयानक उदासीनता वे अनुभव कर रहे थे—इतनी थकावट उनके प्राणों में भर गई थी कि वे चिर-विश्राम की कामना करने लगे थे ।

उनके मन म न मोह था, न विषाद था । उनकी आत्मा में अशान्ति नहीं थी, विद्रोह नहीं था । एक निष्क्रिय अचेतनता का अन्धकार उनकी आंखों के आगे घिर रहा था । उस अन्धकार के प्रति उनकी क्षीण चेतना आत्म-समर्पण कर रही थी—!

पण्डित रामनाथ तिवारी के सामने एक विकराल शून्य था—और उन्हें ऐसा लग रहा था, मानों वह शून्य उन्हें निगले ले रहा है । उस समय उन्होंने आकाश की ओर देखकर कहा,—हे भगवान् ! क्या यही तुम्हारी इच्छा है ?"

पर रामनाथ तिवारी की चेतना को लौटना पड़ा; उनके सामने खड़े हुए श्यामनाथ कह रहे थे, "भइया ! सुना ! वह लड़की वीणा—वह

आपकी अध्यापिका—वह मुझसे बाजी मार ले गई !" और श्यामनाथ हँसने लगे !

"श्यामू !" रामनाथ ने कठोर स्वर में कहा ।

रामनाथ के इस कठोर स्वर से श्यामनाथ चौंक उठे । गम्भीर होकर उन्होंने कहा, "भइया—प्रभा को बचाना है ! मैं उसे न बचा सकूंगा—आप ही उसे बचाइए !" और श्यामनाथ एक खाली कुर्सी पर बैठ कर रोने लगे !"

रामनाथ जोर लगा कर उठे—श्यामनाथ के सर पर हाथ रख कर उन्होंने कहा, "श्यामू ! अपने ऊपर अधिकार रक्खो—चलो, थोड़ी देर के लिए सो जाओ !"

"नहीं भइया—आप जानते नहीं, वे उसे जहर खिला देंगे—बड़े शैतान हैं वे लोग ! मेरे घर से ही मेरे लड़के को पकड़ ले गए—भोला-भाला, सीधा-सादा ! भइया —क्या कभी प्रभा क्रान्तिकारी हो सकता है ? क्या प्रभा कभी हत्या कर सकता है ? फिर क्यों उन लोगों ने उसे जहर खिला दिया ! उसे बचाइए भइया—उसे बचाइए !"

रामनाथ ने कड़े स्वर में कहा, "श्यामू होश की बात करो !"

श्यामनाथ चौंक कर उठ खड़े हुए, "आप खड़े हैं और मैं बैठा हूँ—ऐसी गलती तो मुझसे पहले कभी नहीं हुई ! मुझे क्षमा कीजिए—आपके पैर पड़ता हूँ भइया, मुझे क्षमा कीजिए !"

रामनाथ ने श्यामनाथ का हाथ पकड़कर अन्दर ले चलते हुए कहा, "लेटो चलकर श्यामू ! जब तक मैं न कहूँ, तब तक मत उठना ! सो जाओ !"

श्यामनाथ को पलंग पर लिटाकर रामनाथ लौट आए ! अन्धकार उनकी आँखों के आगे से हट गया था, चेतना उनकी लौट आई थी। उन्हें यह अनुभव होने लगा था कि उनके सामने उनका उत्तरदायित्व था ! परिस्थितियों का मुकाबला न कर सकनेवाले कमजोर और बेबस उनके भाई

को उनकी सहायता की आवश्यकता है। अब भी—इतना सब हो जाने के बाद भी रामनाथ को साहस की ज़रूरत मालूम हुई। उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें वज्र की तरह कठोर होना पड़ेगा। पराजय—पराजय की भावना अपने अन्दर है; मनुष्य जब तक अपने अन्दर से पराजित न हो, पराजित नहीं। बाहरवाली परिस्थितियों से लड़ कर हारना या जीतना मनुष्य के वश की बात नहीं; असीम शक्तियां उसके खिलाफ़ केन्द्रित हो सकती हैं। लेकिन अपने अन्दर से हारना या जीतना—यह मनुष्य स्वयं कर सकता है।

भीतर घर में उन्हें स्त्रियों और बच्चों की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। कानपुर से महालक्ष्मी और राजेश्वरी श्यामनाथ के साथ आ गई थीं। अकेले श्यामनाथ ही नहीं, ये स्त्रियां, ये बच्चे, ये सब के सब रामनाथ पर अवलंबित थे, आश्रित थे। उनका स्वामित्व धीरे-धीरे जाग रहा था। इस निष्क्रिय कमज़ोरी से काम न चलेगा, यह तो जीवित मृत्यु है! उन्हें अन्तिम समय तक लड़ना है, काम करना है।

लड़ना—किससे? काम करना—कौन-सा काम?

न वे अपने विपक्षी को देख सकते थे, और न वे अपना कर्तव्य निश्चित कर पा रहे थे। उनके मन में आ रहा था कि एक बार वे अपने विपक्षी को देख पाते! इन परिस्थितियों के चक्र को चलानेवाले के सामने होकर उसकी इच्छा वे जान पाते—उसके कार्यक्रम को वे समझ पाते! उन पर एक के बाद एक वार हो रहे थे—और वे वार एक अदृश्य स्थान से हो रहे थे, एक अदृश्य शक्ति-द्वारा! और ऐसी हालत में उन्हें लड़ना था, साहस के साथ उस अदृश्य का मुकाबला करना था।

उनके अन्दरवाली गुरुता और अहम्मन्यता करवटें बदल रही थी। सब कुछ खोकर भी लड़ना है, बिना झुके हुए—अन्त समय तक! जब तक वे अपने अन्दर से पराजित नहीं होते, तब तक वे विजयी हैं; और अपने अन्दर विजयी होना अथवा पराजित होना, यह उनके वश में था। वे मुस्करा पड़े—पर उनकी उस मुस्कराहट में कितनी भयानक करुणा थी।

रामनाथ तिवारी कितनी देर तक इस अर्धचेतना अवस्था में बैठे रहे—इसका उन्हें ज्ञान न था ! उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उनके चरण छुए और एकाएक वे चौंक उठे। आंखें खोलकर उन्होंने देखा—सामने उमानाथ खड़ा था !

"तुम उमा !" रामनाथ ने कहा।

"हां दद्दुआ ! मुझे दुःख है कि मैं श्मशान में नहीं पहुंच सका, मेरे खिलाफ़ पुलिस का वारंट है !"

"मझली बहू से मालूम हुआ कि तुम फ़रार हो ! बैठो ! कैसे आए ?"

उमानाथ रामनाथ के इस भावनाहीन और ठंडे स्वर से घबरा गया, "मैंने सुना दद्दुआ—प्रभा का यह अन्त होगा, इसकी मैंने कल्पना भी न की थी !"

"प्रभा की बात छोड़ो—वह विगत का सपना बन चुका है ! अपनी बात कहो ! तुम्हारे खिलाफ़ भयानक अभियोग हैं ! सुना है कि तुम अकेले ब्रिटिश सरकार को ही नहीं, बल्कि हम सब पूंजीपतियों को मिटाने पर तुले हुए हो !"

उमानाथ ने रामनाथ की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ थोड़ी देर तक उमानाथ को देखते रहे, "मिटाना—मिटाना ! यही तुम लोग सीख सके हो—तुम्हारी सारी शिक्षा और सारी संस्कृति तुम्हें केवल इतना सिखा सकी है कि मिटाओ ! लेकिन मिटा वही सकता है, जो सबल है !" और रामनाथ हँस पड़े।

उमानाथ अपने पिता से तर्क करने नहीं आया था, उसके पास तर्क करने का समय भी नहीं था।

रामनाथ ने फिर कहा, "बोलो—अब क्या इरादे हैं ? सुना है कि अगर तुम पकड़े गए तो तुम्हें कालेपानी की सजा हो सकती है !"

"जी हां ! उमानाथ ने कहा, "इसीलिए मैं आपके पास आया हूं !

"तो मैं सब कुछ ठीक करा दूंगा ! कल मैं तुम्हें साथ लेकर गवर्नर से मिलूंगा--तुम्हारे खिलाफ़ वारंट हट जायगा ! अपनी जमीन-जायदाद सँभालो उमा ! शान्तिपूर्वक रहो !"

"आप मेरा मतलब नहीं समझे ! मैं सरकार से माफ़ी मांगने नहीं आया हूँ; मैं हिन्दुस्तान से बाहर जाना चाहता हूँ !"

उमानाथ ने जो कुछ कहा रामनाथ थोड़ी देर तक उसे समझने की कोशिश करते रहे, "समझा ! ब्रिटिश सरकार के हाथ से निकलना चाहते हो--देश के बाहर रहकर तुम ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ना चाहते हो ! तुम अन्तर्राष्ट्रीय लुटेरों के गिरोह में शामिल होकर दुनिया में एक भयानक उथल-पुथल मचाना चाहते हो ! लेकिन इसके लिए मेरे पास आने की क्या जरूरत थी ?"

उमानाथ के अन्दर एक प्रकार की निराशा-सी आ गई थी । उसने दबी जबान से कहा, "हिन्दुस्तान से बाहर जाने के लिए मुझे रुपयों की जरूरत है--अधिक नहीं, दस हजार रुपयों से काम चल जायगा !"

रामनाथ मुस्कराये, "हम पूंजीपतियों को मिटाने के लिए तुम हमारा ही रुपया चाहते हो ? कितनी मजेदार बात है और तुम समझते हो मैं स्वयं विनष्ट होने के लिए तुम्हें शक्ति प्रदान करूंगा--तुम्हें रुपया दूंगा !" रामनाथ कहते-कहते उठ खड़े हुए, "उमा जाओ यहां से ! तुम समाज के सब से भयानक शत्रु हो--जाओ मेरे सामने से--जाओ !" रामनाथ का स्वर बहुत अधिक प्रखर हो गया था !

उमानाथ चल पड़ा, मर्माहत-सा ! वह कमरे के बाहर निकला और वहां उसने देखा कि महालक्ष्मी खड़ी है ! महालक्ष्मी ने भर्राए हुए स्वर में कहा, मेरे साथ आइए !"

उमानाथ चुपचाप महालक्ष्मी के साथ भीतर अपने कमरे में चला गया। उमानाथ को बिठलाकर उसने अपनी आलमारी खोली । आलमारी से उसने अपने गहनों का बक्स निकाला--और वह बक्स उसने उमानाथ के सामने

रख दिया । उसने कहा, "मैंने आपकी और ददुआ की बातें सुनीं ! मेरे पास कुल दो हजार रुपये हैं—बाकी मेरा गहना है ! यह सब आप ले जाइए। जल्दी-से-जल्दी कुशलपूर्वक आप हिन्दुस्तान के बाहर चले जाइए—सिर्फ़ एक विनय है—निरापद स्थान में पहुंचकर किसी तरह अपनी कुशलता का संदेश भेज दीजिएगा !" और उमानाथ ने देखा कि महालक्ष्मी उसके चरणों को पकड़े हुए रो रही है ।

एकाएक उमानाथ ने उठकर महालक्ष्मी को अपने आलिंगन-पाश में कस लिया, "महालक्ष्मी ! तुम स्त्री नहीं हो, देवी हो ! लेकिन...तुम्हारा गहना..."

महालक्ष्मी ने उमानाथ का मुंह बन्द करते हुए कहा, "स्त्री का सब से बड़ा गहना है उसका सुहाग ! मेरा सुहाग अचल रहे—मुझे यह गहना नहीं चाहिए ! आप इसे लेकर जल्दी से जल्दी चले जाइए !"

उमानाथ का लड़का अवधेश बाहर राजेश और ब्रजेश के साथ था । महालक्ष्मी अवधेश को उठाकर ले आई और उसने उसे उमानाथ की गोद में दे दिया, "अपने लड़के को आप अपना आशीर्वाद दे जाइए !"

उमानाथ ने अवधेश को प्यार किया—इसके बाद उसने अपनी स्त्री का आलिंगन किया । उसने कहा, "महालक्ष्मी—मैं जल्दी लौटूंगा—तुम मेरी प्रतीक्षा करना !" और गहने का बक्स लेकर सर झुकाए हुए वह वहां से चला गया ।

१०

उमानाथ के जाने के बाद रामनाथ ड्राइंग-रूम में बैठ गए ! एक अजीब तरह की कठोरता वे अपने अन्दर अनुभव कर रहे थे । कितनी आसानी के साथ उन्होंने उमानाथ को उस रात के अंधकार में निरवलम्ब और विवशता की अवस्था में निकाल बाहर किया ! रामनाथ के अन्दर से किसी ने कहा, "तुम मनुष्य नहीं, दानव हो !"

लेकिन रामनाथ की अहम्मन्यता पूरी शक्ति के साथ उभर आई थी। हरएक पराजय के बाद उनकी अहम्मन्यता और भी अधिक भयानक कटुता लेकर फिर से लड़ने को तैयार हो जाती थी! "अन्त तक लड़ना है—बिना झुके हुए!" रामनाथ ने मन ही मन कहा, "पराजय—नहीं, मुझे कोई पराजित नहीं कर सकता!"

उस समय रात के दस बजे। उसे सुनाई पड़ा, "दद्दुआ!"

रामनाथ ने चौंककर पीछे देखा, "मझली बहू! क्या है?"

"कुछ खा लीजिए—कल से आपने कुछ खाया नहीं है!"

प्रभानाथ की मृत्यु की खबर पाने के बाद से अभी तक रामनाथ के मुख में अन्न का एक दाना न गया था। उन्हें भूख भी नहीं मालूम हो रही थी, उन्होंने कहा, "इस वक्त भूख नहीं है बहू! जाओ, तुम सब लोग खा लो—मैं इस समय न खाऊँगा!"

"कुछ थोड़ा-सा तो खा लीजिए—इस तरह कैसे काम चलेगा!"

"कह दिया है जाओ—इस वक्त भूख नहीं है।" रामनाथ ने कड़े स्वर में उत्तर दिया!

महालक्ष्मी चली गई। महालक्ष्मी के चले जाने के बाद रामनाथ को ऐसा लगा, मानो उनमें कुछ आवश्यकता से अधिक कटुता आ गई है! वे उठे और बरामदे में निकल आए। चारों ओर गहरा अन्धकार छाया था!

थोड़ी देर तक वे उस अन्धकार में खड़े रहे। वे कमरे में चलने को घूम ही रहे थे कि उन्होंने बँगले में एक कार आती हुई देखी! उन्होंने मन ही मन कहा, "इतनी रात में कौन हो सकता है?"

वे कमरे में बैठकर आनेवाले की प्रतीक्षा करने लगे। और उन्होंने देखा कि आनेवाला उनका बड़ा लड़का दयानाथ है!

दयानाथ को देखते ही रामनाथ की भृकुटियों पर बल पड़ गए। उन्होंने दयानाथ को देखते ही कहा, "तुम!"

दयानाथ रामनाथ का चरण छूता-छूता रुक गया, "जी हां!"

रामनाथ की भृकुटियों के बल नहीं गए। उन्होंने कुछ चुप रह कर कहा, 'तुम्हें यहां, अपने घर में देख कर ताज्जुब हुआ! शायद कुल पर जो गहरा धक्का लगा है, उसके दुःख में तुम अपने शब्दों को भूल गए!"

दयानाथ ने उत्तर दिया, "जी नहीं! मैं भूला कुछ नहीं, केवल मैंने अपनी गलती अनुभव कर ली है!"

"कैसी गलती?" रामनाथ ने पूछा।

"कि मैंने कांग्रेस में सम्मिलित होकर गलती की! मैं कांग्रेस छोड़ रहा हूँ!"

रामनाथ ने कड़े स्वर में कहा, "दया! तुम कांग्रेस को छोड़कर और भी बड़ी गलती कर रहे हो! मुझे सब कुछ मालूम है! तुम चुनाव में हारे—और चुनाव में हार जाने पर तुममें निराशा पैदा हो गई। तुम कायर की तरह वहां से भाग रहे हो। तुम बाहर से पराजित नहीं हुए—आज चुनाव में हारे हो, कल चुनाव में जीत भी सकते हो, वह सब तो परिस्थितियों पर निर्भर था—तुम पराजित हुए हो अपने ही अन्दर से! मुझे इस बात का दुःख है।"

दयानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके पिता ने जो बात कही थी, उसमें सत्य है, यह उसने अनुभव किया। वह मन ही मन सोच रहा था—क्या उसने उन्नाव लौटकर गलती की!

रामनाथ ने कुछ रुककर फिर कहा, "तुमने मेरे यहां लौटकर गलती की। जीवन का क्रम आगे बढ़ना है—पीछे लौटना असम्भव है! मेरे यहां तुम्हें स्थान नहीं है दया—तुम समझदार हो, मेरी बात समझ हो गए होगे!"

दयानाथ लज्जा से गड़ा जा रहा था। उसने कहा, "आप ठीक कहते हैं, मैंने अपने प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है—आपने मेरी कमजोरी बतला कर मेरा बहुत बड़ा उपकार किया।" और यह कहकर उसने अपने पिता के चरण छुए!

रामनाथ बैठे रहे। दयानाथ ने फिर कहा, "मेरी पत्नी और बच्चे—वे आ गए हैं। उनको लेकर मैं अभी जा रहा हूँ!"

"अपनी पत्नी और बच्चों को यहां छोड़ सकते हो—केवल तुम त्याज्य हो, तुम्हारी पत्नी और बच्चे नहीं हैं!" रामनाथ ने कहा।

दयानाथ मुस्कराया, "पीछे लौटना असम्भव है ददुआ—आपने ही अभी बतलाया है! आपने सारे कुल को मना कर दिया कि तुमसे कोई सम्पर्क न रक्खा जाय—क्योंकि सारे कुल पर आपका अधिकार था; इस कुल का स्वामी होने के कारण! और मैं समझता हूँ कि अपनी पत्नी और बच्चों पर मेरा अधिकार है! अगर मैं आप के लिए त्याज्य हूँ, तो आप मेरे लिए भी त्याज्य हैं!" और दयानाथ तेज़ी के साथ कमरे के बाहर चला गया।

एक बार रामनाथ के मन में आया कि वे दयानाथ को रोकें—पर उनकी अहम्मन्यता ने उन पर विजय पाई। राजेश्वरी और उसके बच्चे बिना रामनाथ से मिले दयानाथ के साथ चले गए। रामनाथ ने जाती हुई कार का शब्द सुना—उन्होंने राजेश्वरी और उसके बच्चों की आवाज़ें भी सुनी! पर वे अपने आसन से नहीं हिले। वे समझते थे कि राजेश्वरी और राजेश-ब्रजेश उनसे मिलने, उनसे बिदा लेने आवेंगे!

और दयानाथ के जाने के साथ रामनाथ की चेतना एकाएक जाग उठी।

दयानाथ ने रामनाथ के कुल की बात चलाई थी—और आज रामनाथ का कुल उजड़ गया था! उनके तीनों लड़के उनसे बिछुड़ गए थे—शायद हमेशा के लिए! सारा कुल नष्ट हो गया, रामनाथ नितान्त अकेले रह गए!

और उनके अन्दर से किसी ने कहा, "यह सब तुमने किया—तुम्हारी अहम्मन्यता ने! तुम कुलघातक हो!"

रामनाथ बल लगाकर खड़े हो गए। उन्होंने ज़रा ज़ोर से कहा, "यह मैं कुल घातक हूँ—झूठ! एकदम झूठ! और पागल की तरह वे कमरे में टहलने लगे!"

रामनाथ विक्षिप्तावस्था में टहल रहे थे और अपने से कह रहे थे, "सब कुछ समाप्त हो गया—कोई नहीं—सब गए। अकेले तुम प्रेत की तरह मौजूद हो रामनाथ! प्रभा को मृत्यु से रोक सकता था—अगर जेल में जाकर तुम उससे न मिले होते! उमा को रूपये देकर तुम बचा सकते थे—लेकिन तुमने उसे अन्धकार और निराशा में ढकेल कर हमेशा के लिए उसे अपना शत्रु बना लिया। और दया—वह तुम्हारे पास आया, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ! लेकिन तुमने उसे निकाल बाहर किया! अपने ही हाथों तुमने अपना विनाश किया! तुम्हारी समर्थता—तुम्हारी अहम्मन्यता—यह सब निर्माण नहीं कर सके—इन्होंने भयानक विनाश किया है—तुम अधम हो—तुम पापी हो!

रामनाथ का स्वर तेज होता गया, "तुम्हारा छोटा भाई—तुम पर विश्वास करनेवाला, तुम्हारा भरोसा करनेवाला, तुम्हें देवता की तरह पूजनेवाला—पागल हो गया है! अब क्या करोगे, किससे बोलोगे? किस पर शासन करोगे? सब गए—हमेशा के लिए गए! दुनिया में बिना तुम्हारी सहायता के लोगों का काम चल सकता है। तुम समर्थ नहीं हो, तुम जीवन में जीते नहीं, तुम अपने जीवन में भयानक रूप से हारे हो!"

रामनाथ को सुनाई पड़ा, "दद्दुआ!"

रामनाथ ने देखा, महालक्ष्मी दरवाजे पर खड़ी थी और कह रही थी, "शान्त होइए दद्दुआ!—थोड़ा-सा खा लीजिए चलकर!"

लेकिन रामनाथ ने महालक्ष्मी को कोई उत्तर नहीं दिया, वे अपने से ही कह रहे थे, "तुम पापी हो, तुम हत्यारे हो, तुम कुलघातक हो!" और वे कुर्सी पर बैठ गए!

महालक्ष्मी के पास अवधेश खड़ा था! महालक्ष्मी ने अवधेश से कहा, बेटा, अपने बाबा को लिवा लाओ जाकर खाना खाने के लिए।"

अवधेश जाकर रामनाथ के पास खड़ा हो गया। उसने तुतलाते हुए कहा, "बाबा—बा...बा...खाना...!"

रामनाथ ने अवधेश को थोड़ी देर तक निर्निमेष दृष्टि से देखा और फिर धीरे-धीरे उनके हाथ बच्चे की तरफ़ बढ़े । उन्होंने बच्चे को गोद में ले लिया और वे खड़े हो गए !

और उस समय उन्हें अनुभव हुआ कि दूसरों को उनके सहारे की जरूरत नहीं रही ! अब उनको उस बच्चे के सहारे की जरूरत है ! उस बच्चे को छाती से चिपटाते हुए उन्होंने कहा, "बेटा--बेटा, इस बूढ़े का साथ मत छोड़ना !"